सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

।। सारस्वत श्रमण ।।

पूर्वनाम	-	पं. अशोक कुमार जैन ''शास्त्री'
जन्म	-	23.10.1976 को, प्रकाशित अमावश्या दीपावली
स्थान	-	किशनपुरा (सागर)
पिताश्री	-	श्रावक रत्न श्री लखमीचन्द्र जैन
माताश्री	-	श्राविका-रत्न श्रीमती गुलाबबाई जैन
शिक्षा	-	इण्टर संस्कृत शास्त्री प्रथमवर्ष
धार्मिक शिक्षा	-	धर्मशास्त्री द्वितीय वर्ष
शिक्षण संस्थान	-	श्री गणेशप्रसाद वर्णी दि. जैन महाविद्यालय, मोराजी, सागर (म. प्र.)
वैराग्य	-	9 अक्टूबर 1994 को ब्रह्मचर्य व्रत लिया
क्षुल्लक दीक्षा	-	28 जनवरी 1996, देवेन्द्र नगर, पन्ना (म.प्र.)
ऐलक दीक्षा	-	23.02.1997, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.)
मुनि दीक्षा	-	14.12.1998, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.)
दीक्षागुरु	-	गणाचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज
आचार्यपद	-	31 मार्च 2007, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
विशेष	-	जैन आगम रूपी मानसरोवर के राजहंस की तरह झलक देने वाले प्रज्ञा श्रमण की प्रवचन शैली जन-जन द्वारा हृदय-ग्राह्य है।
अलंकरण	-	'सारस्वत श्रमण' एवं 'सारस्वत कवि' जबलपुर में 2009
रुचि	-	पठन-पाठन, काव्य सृजन, चिंतन, मनन
कृतियां	-	अभी तक आचार्य श्री द्वारा 55 कृतियों की सर्जना की गई है जो इसी पुस्तक में सूचीबद्ध है।

तत्त्व शास्त्र
सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

तत्त्व शास्त्र

रचयिता

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

।। सारस्वत श्रमण ।।

पूर्वनाम	-	पं. अशोक कुमार जैन ''शास्त्री'
जन्म	-	23.10.1976 को, प्रकाशित अमावश्या दीपावली
स्थान	-	किशनपुरा (सागर)
पिताश्री	-	श्रावक रत्न श्री लखमीचन्द्र जैन
माताश्री	-	श्राविका-रत्न श्रीमती गुलाबबाई जैन
शिक्षा	-	इण्टर संस्कृत शास्त्री प्रथमवर्ष
धार्मिक शिक्षा	-	धर्मशास्त्री द्वितीय वर्ष
शिक्षण संस्थान	-	श्री गणेशप्रसाद वर्णी दि. जैन महाविद्यालय, मोराजी, सागर (म. प्र.)
वैराग्य	-	9 अक्टूबर 1994 को ब्रह्मचर्य व्रत लिया
क्षुल्लक दीक्षा	-	28 जनवरी 1996, देवेन्द्र नगर, पन्ना (म.प्र.)
ऐलक दीक्षा	-	23.02.1997, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.)
मुनि दीक्षा	-	14.12.1998, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.)
दीक्षागुरु	-	गणाचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज
आचार्यपद	-	31 मार्च 2007, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
विशेष	-	जैन आगम रूपी मानसरोवर के राजहंस की तरह झलक देने वाले प्रज्ञा श्रमण की प्रवचन शैली जन-जन द्वारा हृदय-ग्राह्य है।
अलंकरण	-	'सारस्वत श्रमण' एवं 'सारस्वत कवि' जबलपुर में 2009
रुचि	-	पठन-पाठन, काव्य सृजन, चिंतन, मनन
कृतियां	-	अभी तक आचार्य श्री द्वारा 55 कृतियों की सर्जना की गई है जो इसी पुस्तक में सूचीबद्ध है।

तत्त्व शास्त्र

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

तत्त्व शास्त्र

रचयिता

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

प.पू. सारस्वत कवि श्रमणाचार्य १०८ श्री विभवसागरजी महाराज

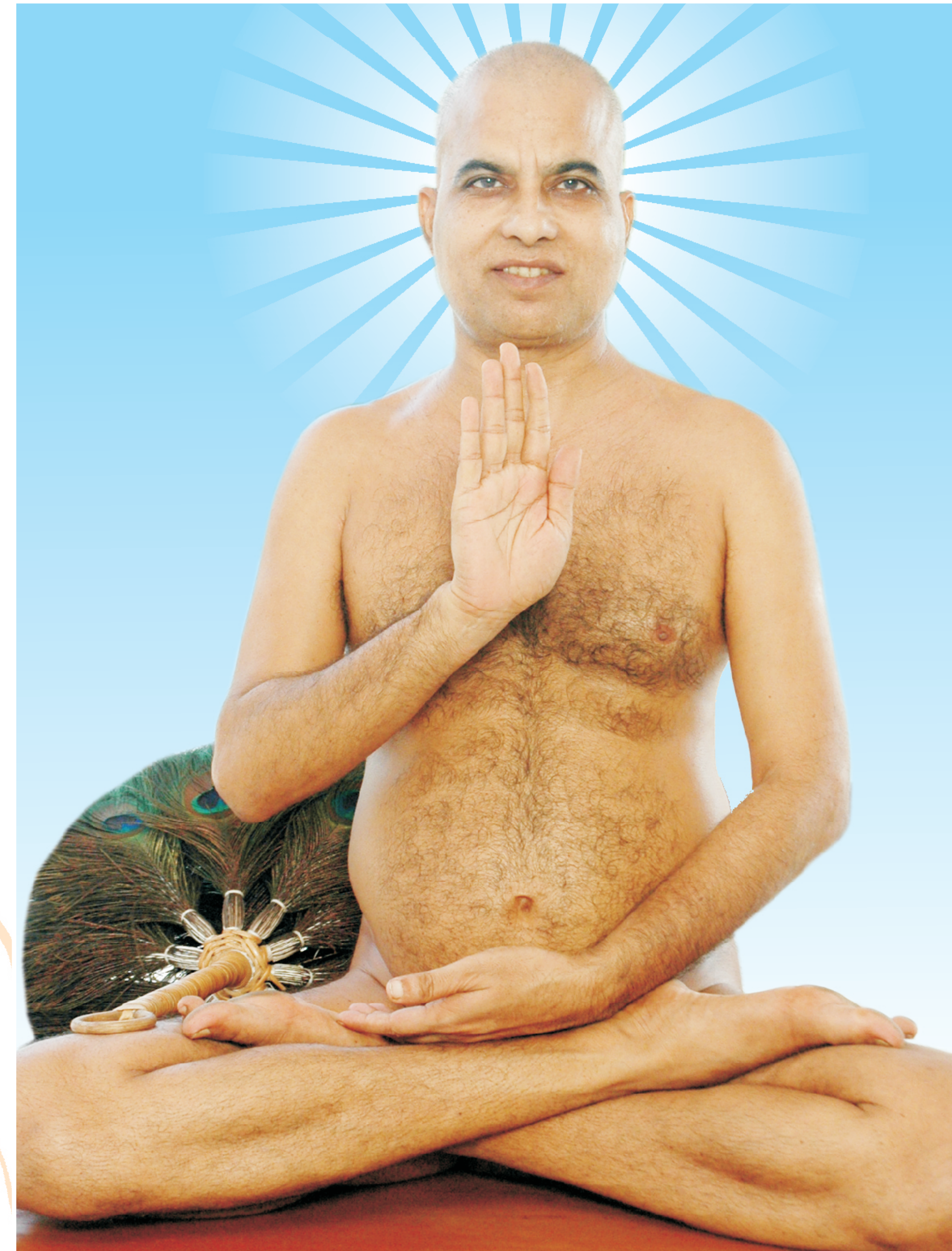

प. पू. श्रमण गणाचार्य श्री १०८ विराग सागरजी महाराज

दान दाता

श्री शिखरचन्द्र, सुभाषचन्द्र
सुरेन्द्र कुमार सर्राफ
वैभव, शुभम, सर्राफ

छत्रसालपुरा, ललितपुर

फर्म

रामप्रसाद शिखरचन्द्र सर्राफ

छत्रसालपुरा, ललितपुर
09415112404
09453039965

आचार्य श्री देवसेन स्वामी विरचित तत्त्वसार ग्रन्थोपरि

श्रमणाचार्य विभवसागर कृत

प्रवचनात्मक टीका

तत्त्वशास्त्र

प्रवचनकार

सारस्वत कवि, श्रमणाचार्य

श्री विभवसागर मुनिराज

ग्रन्थ	–	**तत्त्वशास्त्र**
प्रकाशक	–	**श्रमण श्रुत सेवा संस्थान, जयपुर (राजस्थान)**
आशीर्वाद	–	**प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज**
प्रवचनकार	–	**प.पू. श्रमणाचार्य श्री विभवसागर जी महाराज**
सम्पादक	–	**पं. निहालचंद्र जी (चंद्रेश) ललितपुर**
आलेखन/शब्द संशोधन	–	**अर्हंश्री माताजी संघस्थ**
पावन प्रसंग	–	**शीतकालीन वाचना 2013** **अटा मंदिर, ललितपुर (म. प्र.)**
प्राप्ति स्थान	–	**आचार्य श्री विभवसागर श्रुत संस्थान** **126 सी, अर्जुन नगर साउथ, गोपालपुरा बाईपास,** **जयपुर (राजस्थान)** **सौरभ जैन (9829178749)** **आशीष जैन (9460066534)** **सुनील जैन (7891841644)**

विशेष जानकारी के लिये

www.vibhavsagar.com

www.facbook.com/acharyashree108vibhavsagarjimaharaj

Email - acharyashreevibhavsagar.com

विमोचन	–	**पावन वर्षायोग - 2014** **वर्णी भवन, मोराजी, सागर (म.प्र.)**
संस्करण	–	**प्रथम**
प्रतियां	–	**1000**
भावमूल्य	–	**स्वाध्याय**

मुद्रक :

नवजीवन प्रिन्टर्स व स्टेशनर्स

'नवजीवन कॉम्पलेक्स' निवाई (टोंक-राज.) भारत

V : 01438- 222127, 223127

Email : navjeewannew@yahoo.com

प्रस्तुति

—श्रमणाचार्य विभवसागर

भारतीय प्राच्य विधाओं में प्रारम्भ से ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण विद्या आध्यात्मिक विद्या रही। यह विद्या आत्म शांति को अनुभूत कराने में आत्मनिष्ठ विद्या है। यह विद्या पूर्ण स्वाश्रित विद्या है। श्रमण संस्कृति में यह विद्या आत्मविद्या के नाम से जानी जाती है। प्रत्येक आत्मतत्त्व का जिज्ञासु सत्यपुरूष इस विद्या का आश्रय लेकर आत्म तत्त्व का अन्वेषण एवं अनुभव कर चिरकालीन व्यथा को शांत कर आत्मोन्नति के महान मार्ग पर अग्रसर हो सकता है।

भेदविज्ञान मूलक यह विद्या तीर्थंकर आदि महान साधकों से उत्कृष्ट होती है फलस्वरूप साधक शुक्ल ध्यान ध्याकर कैवल्य दशा एवं निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं।

अध्यात्मविद्या के अभाव में साधक कठिन परिषह एवं घोर उपसर्ग नहीं सह सकता। अतएव मार्ग से विचलित न होने के लिए तथा यथार्थ लक्ष्य पर अग्रसर रहते हुए मनुष्य जीवन में उत्कृष्ट आत्मीय आनंद की अनुभूति के लिए अध्यात्मविद्या अनिवार्य हैं।

श्रमण संस्कृति के उन्नायक आध्यात्मिक संत महानाचार्य श्री कुन्दकुन्द भगवान ने इस विद्या पर अपनी लेखनी चलाकर समयसारादि—अध्यात्मपरक ग्रन्थों का सृजन किया। पथानुगामी परवर्ती आचार्यों ने अपनी कलम चलाकर विभिन्न ग्रन्थों का प्रणयन किया। उसी श्रेष्ठ परम्परा के दैदीप्यमान ध्रुव नक्षत्र आचार्य देवसेन स्वामी ने तत्त्वसार नामक अध्यात्मशास्त्र रचा। जिसमें स्वतत्त्व और परतत्त्व का सार गर्भित संक्षेप रूप सरल विवेचन किया।

बुन्देल खंड की धर्मप्राण नगरी ललितपुर शहर के हृदय स्थल श्री दि. जैन अटा मंदिर में वर्ष 2013–2014 की शीतकालीन वाचना सम्पन्न हुई। वाचना में विद्वत शिरोमणि सिद्धान्त शास्त्री पं. श्री जीवनलालजी, पं. उत्तमचंदजी राकेश, पं. ज्ञानचंद, पं. सुनील संचय आदि ने सभा को सुशोभित ही नहीं किया अपितु प्रवचन तत्त्वों में गम्भीरता एवं मधुरता के साथ प्रमाणिकता प्रदान की। विद्वान के बिना जो सभा वन स्थली लगती है वही सभा विद्वानों के सद्भाव से समवशरण स्थली का रूप ले लेती है।

वाचनाकाल में निःसृत देशना का अर्हंश्री माताजी ने आद्योपान्त पूर्ण लेखनकर ग्रन्थाकार प्रदान किया, उनको साधनामयी यशस्वी जीवन के लिए शुभ आशीर्वाद। जिसे पं. निहालचन्द्रजी चन्द्रेश ने टंकण करवाकर–सम्पादित किया।

दानवीर महानुभाव नगरसेठ श्री शिखरचन्द्र सर्राफ ने शास्त्र प्रकाशन हेतु द्रव्यदान की भावना अभिव्यक्त कर श्रेय प्राप्त किया।

एतदर्थ गुरुदेव के मंगल आशीर्वाद से यह प्रकाशित होकर आपके कर कमलों में सुशोभित हैं। आप स्वाध्यायकर कर्म निर्जरा करें।

भ. पार्श्वनाथ निर्वाण–महोत्सव

3 अगस्त 2014

आ. विभवसागर

वर्णी भवन मोराजी, सागर चातुर्मास 2014

संस्तुति

पं॰ निहालचंदजी “चन्द्रेश” ललितपुर

वर्तमान श्रमण परम्परा में अध्यात्म आराधना के पावन प्रतीक, आत्मसाधना के सजग साधक, समरसी भाव संवेदक, शुद्ध चैतन्य तत्त्व के श्रद्वालु सारस्वत कवि श्रमणाचार्य श्री 108 विभवसागरजी महाराज कुशल शब्द शिल्पी, श्रेष्ठ प्रवचनकार, कवि, वक्ता एवं साहित्यकार हैं। आपकी ओजस्वी वाणी, ने धर्मप्राण ललितपुर नगरी में जैनधर्म के रहस्यों को उद्घाटित कर समाज को अध्यात्म रसधारा में आप्लावित कर परम आनंदित किया। तत्त्वसार की वाचना ने तो जादुई चमत्कारसा कर दिया। शीतकाल की शीतलहर चलती रही पर आपकी वाणी सुनने सुधी श्रोताओं की संख्या बढ़ती रही।

शास्त्रराज तत्त्वसार की वाचना सारगर्भित प्रवचनों से विद्वतवर्ग के मन को प्रफुल्लित कर जनमानस को श्रुतानन्द प्रदान करती रहीं।

मेरे अन्तर्मन में आस्था की अनन्त हिलोरें उछलने लगीं। भावना हुई प्रवचनों का शास्त्र बने। मैंने निवेदन किया – आचार्य देव से, फलस्वरूप अर्हंश्री माताजी ने सम्पूर्ण प्रवचनों का आलेखन कर शास्त्राकार प्रदान कर सम्पादन कार्यभार मुझे सौंपा। मैंने सेवा को सौभाग्य मानकर कार्य किया। फलश्रुति आपके कर कमलों में सादर समर्पित है।

परमपूज्य शास्त्रराज “तत्त्वशास्त्र” की आप स्वाध्याय परमधर्म की आराधना करते हुए मेरे श्रम को सफल करेंगे।

परमोपकारी गुरूदेव के श्री चरणों में नमोस्तु

❑ ❑ ❑

आचार्य श्री विभवसागर श्रमण श्रुत सेवा संस्थान

संस्थापक एवं अध्यक्ष

सौरभ जैन, जयपुर

शिरोमणी संरक्षक

श्री दीपक जैन, शिकागो

श्री चक्रेश जैन (बरकतनगर) जयपुर

सुनील जैन, जयपुर

श्री उमेश कुमार जैन, श्रीमती बबीता जैन, सागर

श्री इन्द्रकुमार जैन जयपुर अशोका इलेक्ट्रीकल्स

श्री चम्पालाल जी जैन, नौहरकला, ललितपुर

श्री स्वतंत्र जैन, प्रिन्स जैन, ललितपुर

आशीष जैन, जयपुर

परम संरक्षक

श्री नेमीचन्द जैन, निवाई

श्री सत्यनारायण जैन, निवाई

श्री बाबूलाल जैन, कोटा

श्री टी.के. वेद, इन्दौर

श्री कपूरचंद्र जी लागौन, ललितपुर

श्री पवन झाँझरी, परभणी

श्री कांतिलाल महाजन, परभणी

श्री हेमन्त शाह, बीना

श्री राजेन्द्र जी पोतदार, टीकमगढ़

श्री नरेन्द्र कुमार, राजेश कुमार जैन, बिरधा ललितपुर

सदस्य

कल्पना जैन जबलपुर

सुशील जैन जयपुर

श्री रजनीश जैन, चीचली

श्री प्रदीप जावके, परभणी

श्री डॉ. डी.के. जैन, अशोकनगर

श्री डॉ. सगुनचंद्र जैन, अशाकेनगर

श्री विमल जैन, गढ़ाकोटा

श्री हेमकुमार जैन, हटा

श्री शिखर चंद्र जैन, भोपाल

श्री अरविन्द जैन, दूध वाले, भोपाल

श्री विमलकुमार जैन, अशोकनगर

श्री बाबूलाल अरूण कुमार,
साइकिल डीलर ललितपुर

श्री विनोद कुमार जैन, मेडीकल, अशोकनगर

श्री भानु जैन, बसंत बिहार, कोटा

प्रस्तावना

तत्त्वसार का सार

पं॰ हीरालाल सिद्धांत शास्त्री

आचार्य देवसेन ने पंच परमेष्ठी रूप परगत तत्त्व के ध्यान को साक्षात् तो पुण्य का कारण और परम्परा से मोक्ष का कारण कहा है। (देखों गाथा 4) उन्होंने आत्म–चिन्तन रूप स्वगत तत्त्व के भी दो भेद किये हैं –सविकल्प और निर्विकल्प। इनमें सविकल्प तत्त्व को विकल्प युक्त होने के कारण सास्रव अर्थात् कर्मों के आस्रव से युक्त कहा है और निर्विकल्प तत्त्व को संकल्प विकल्पों से रहित होने के कारण निरास्रव अर्थात् कर्मों के आस्रव से रहित कहा है। (गाथा 5) यहाँ यह ज्ञातव्य है कि टीकाकार ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जघन्य आराधक को आदि लेकर तारतम्य के क्रम से दशम गुणस्थानवर्ती सूक्ष्म साम्पराय संयत तक सविकल्प आत्म–चिन्तन होता है, अतः वह मोहकर्म के सद्भाव बने रहने तक सास्रव है। ग्यारहवें गुणस्थान में मोहकर्म का उपशम होने से तथा बारहवें गुणस्थान में मोहकर्म सर्वथा क्षय हो जाने के कारण यहाँ निर्विकल्प रूप जो आत्मध्यान है, वह निरास्रव है। केवल एक सातावेदनीय प्रकृति का आस्रव होता है, सो वह एक समय की स्थिति वाला है अतः आने के साथ निर्जीण हो जाने से आस्रव में गिना नहीं गया है।

निर्विकल्प ध्यान के लिए इन्द्रियों का अपने विषयों से विराम लेना सबसे पहिले आवश्यक है। जब इन्द्रियों की विषय–प्रवृत्ति रूकेगी, तब मनकी चंचलता रूकेगी और मनकी चंचलता रूकने से सर्व प्रकार के संकल्प विकलप रूकेगें। संकल्प–विकल्पों के नष्ट होने पर ही निर्विकल्प निश्चल स्थायी शुद्ध स्वभाव प्रकट होगा। (गाथा 6–7) यह संपूर्ण ग्रन्थ का अर्थात् तत्त्वसार का सार है।

आत्म के उस निर्विकल्प रूप शुद्ध स्वभाव का नाम निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है और उसे ही शुद्ध चेतना भी कहा जाता है। (गाथा 8) वह निर्विकल्प तत्त्व ही सार है और वही मोक्ष का कारण है। यह जानकर ध्याता पुरूष को निर्ग्रन्थ होकर उस विशुद्ध तत्त्व का ध्यान करना चाहिए। (गाथा 9)

निर्ग्रन्थ किसे कहतें हैं ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य देवसेन कहते हैं कि जिसने मन, वचन, काय से बाहरी और भीतरी सब प्रकार के ग्रन्थ (परिग्रह) का त्याग कर नग्न दिगम्बर रूप जिनलिंग धारण कर लिया है ऐसे श्रमण को निर्ग्रन्थ कहते हैं। बाहरी परिग्रह दश प्रकार का है – 1 क्षेत्र (खेत), 2 वास्तु (मकान), 3 हिरण्य (चाँदी), 4 सुवर्ण (सोना), 5 धन (गाय–भैंस आदि), 6 धान्य (गेहूँ आदि अन्न), 7 दासी (नौकरानी), 8 दास (नौकर–चाकर), 9 कुप्य (वस्त्र) और 10 भाँड (बर्तनादि)। अन्तरंग परिग्रह चौदह प्रकार का कहा गया है– 1 मिथ्यात्व, 2 क्रोध, 3 मान, 4 माया, 5 लोभ कषाय, 6 हास्य, 7 रति, 8 अरति, 10 भय, 11 जुगुप्सा, 12 स्त्री वेद, 13 पुरूष वेद और 14 नपुंसक वेद। इन बहिरंग और अन्तरंग रूप चौबीस प्रकार के परिग्रह का त्रियोगसे त्याग करने पर ही निर्ग्रन्थ संज्ञा प्राप्त होती है। (गाथा 10)

निर्ग्रन्थ लिंग धारण कर लेने के पश्चात् भी ध्यान करने वाले योगी को भिक्षा, वसतिका आदि के लाभ या अलाभ में, सुख–दुःख में, जीवन–मरण में और शत्रु–मित्र में समान बुद्धि रखना आवश्यक है, तभी वह ध्यान करने में समर्थ हो सकता है, अन्यथा नहीं। (गाथा 11)

आगे आचार्य देवसेन कहते हैं कि यदि तुम शाश्वत मोक्ष सुख की इच्छा करते हो तो राग, द्वेष, मोह का त्याग कर सदा ध्यान का अभ्यास करो और अपनी शुद्ध आत्मा को ध्याओं। (गाथा–16)

आत्मा कैसा है ? इस प्रश्न के उत्तर में बताया गया है कि निश्चय नय से आत्मा अनन्त ज्ञान–दर्शनादि गुणों से युक्त है, असंख्यात प्रदेशी हैं, अमूर्त है, वर्तमान में गृहीत शरीर–प्रमाण है, निरंजन है, क्रोधादि से रहित है, शल्य और लेश्याओं से रहित है, रूप–रसादि से रहित है, कर्मों के बन्ध, उदयादि स्थानों से रहित है, मार्गणा, जीवसमास और गुणस्थानों से भी रहित है। (गाथा 17–21) किन्तु व्यवहार नय से कर्म–नोकर्मादि जनित उक्त विभावों से युक्त भी है। (गाथा 22)

जीव और कर्म का संयोग दूध–पानी के मिलाप के समान है। दोनों एकमेक होकर भी अपने–अपने स्वभाव से युक्त रहते हैं। उन्हें जैसे विधि–विशेष से भिन्न–भिन्न कर दिया जाताा है उसी प्रकार ध्यान के योग से जीव और कर्म के संयोग को भी ज्ञानी पुरूष भिन्न–भिन्न कर सकता है। (गाथा 23–24) अतः उन्हें भिन्न–भिन्न करके सिद्ध

के समान अपने शुद्ध परब्रहमस्वभाव रूप आत्मा को ग्रहण करना चाहिए। (गाथा 25)

उस शुद्ध परम ब्रह्म का क्या स्वरूप है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा गया है कि कर्ममल से रहित, ज्ञानमयी सिद्ध परमात्मा जैसा सिद्धालय में निवास करता है, वैसा ही इस देह में स्थित परम ब्रह्मरुप आत्मा को जानना चाहिए। वह कर्म–नोकर्म से रहित है, केवलज्ञान अनन्त गुणों से समृद्ध है, नित्य है, एक है, निरालम्ब है, असंख्यात प्रदेशी और अमूर्त है (गाथा 26–28)

उक्त स्वरूपवाले परम ब्रह्म प्राप्ति मन के संकल्प रूक जाने पर और इन्द्रियों के विषय– व्यापार बन्द हो जाने पर ध्यान के द्वारा होती है। (गाथा 29) मन का संचार ज्यों–ज्यों रूकता है और इन्द्रियों के विषय ज्यों– ज्यों शान्त होते हैं, त्यों–त्यों आत्मा का परम ब्रह्मरुप स्वभाव प्रकट होता जाता है। जैसे सूर्य ज्यों–ज्यों मेघ–पटल से रहित हुआ उत्तरोत्तर प्रकाशमान होता जाता है और मेघ–पटल से सर्वथा रहित होने पर आत्मा का शुद्ध स्वभाव भी पूर्ण रूप से प्रकट हो जाता है। इसके लिए मन, वचन, काय की प्रवृत्ति का निर्विकार होना परम आवश्यक है। (गाथा 30–31) मन, वचन, काय की प्रवृत्ति रूकने पर नवीन कर्मों का आस्रव भी रूक जाता है और पूर्व–बद्ध कर्मों की निर्जरा भी होती है (गाथा 32)

जब तक मन परद्रव्यों में आसक्त रहता है, तब तक उग्रतप को करता हुआ भव्यपुरूष भी मोक्ष को नहीं पाता है। किन्तु परद्रव्यों से आसक्ति छोड़ने पर एवं निज स्वभाव में स्थिर होने पर मोक्ष की प्राप्ति अल्प समय में ही हो जाती है। (गाथा 33) इसके विपरीत जबतक देहादि पर द्रव्य ममत्व करता है, तबतक वह पर समय–रत है और विविध प्रकार के कर्मों से बँधता रहता है। (गाथा 34)।

ज्ञानी और अज्ञानी की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि जो पुरूष इन्द्रियों वश होकर अनिष्ट वस्तु से रूष्ट होता है और इष्ट वस्तु में तुष्ट होता है, वह अज्ञानी है। जो न अनिष्ट वस्तु से रूष्ट हो और न इष्ट वस्तु से तुष्ट हो वह ज्ञानी है। (गाथा 35) ज्ञानी पुरूष विचार करता है कि जो चेतना–रहित है वह तो दिखाई देता है और जो चेतना–सहित है वह दिखाई नहीं देता। फिर मैं किससे रूष्ट होऊँ, या किससे तुष्ट होऊँ ? अतएव मध्यस्थ ही रहना श्रेष्ठ है। (गाथा 36) योगी पुरूष को त्रिभुवनवर्ती सब जीव अपने समान ही ज्ञानमय और अनन्त गुणवाले दिखाई देते हैं, इसलिए वह न किसी से रूष्ट होता है और न तुष्ट होता है। किन्तु मध्यस्थ ही रहता है। (गाथा 37–38) इस

प्रकार जो वस्तु–स्वभाव को जानता है उसका मन राग, द्वेष और मोह से डाँवाडोल नहीं होता हैं। (गाथा 39) जिसका मन राग–द्वेर्षा से डाँवाडोल नहीं होता, वही आत्मतत्त्व का दर्शन करता है। इससे विपरीत पुरूष को आत्म–दर्शन नही होता है। (गाथा 40)

आगे बताया गया है मन के स्थिर होने पर आत्म–दर्शन होता है। जैसे कि सरोवर का जल स्थिर होने पर उसके भीतर गिरा हुआ रत्न दिखने लगता है। (गाथा 41) इन्द्रियों के विषयों से विमुक्त विमल–स्वभावी आत्मतत्त्व के दर्शन होते ही क्षणमात्र में योगी के सर्वज्ञता प्रकट हो जाती है। (गाथा 42) इसलिये सभी पर–गत भावों को छोड़कर अपने ज्ञानमयी शुद्ध स्वभाव की भावना करनी चाहिये। (गाथा 43) जो साधु स्व–संवेदन ज्ञान में उपयुक्त होकर आत्मा का ध्यान करता है, वह वीतराग और निर्मल रत्नत्रय धारक है। (गाथा 44) जो शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है, उसके ही निश्चय दर्शन, ज्ञान और चारित्र कहा गया है। (गाथा 45)

आगे कहा गया है यदि कोई योगी ध्यान–स्थित होकर भी अपने शुद्ध आत्म–स्वरूप का अनुभव नहीं करता है तो वह शुद्ध आत्म–स्वरूप को नहीं प्राप्त कर पाता है। जैसे कि भाग्य–हीन मनुष्य रत्न को नहीं प्राप्त कर पाता। (गाथा 46) शारीरिक–सुख में आसक्त योगी नित्य ध्यान करते हुए भी शुद्ध आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि वह अचेतन देह में ममत्व करता है, अतः बहिरात्मा है। (गाथा 47–48) किन्तु जो योगी शरीर के रोगों का उसके सड़ने–गलने और जन्म–मरण को देखकर उससे विरक्त होकर अपने आत्मा का ध्यान करता है, वह पाँचों शरीर से मुक्त होकर सिद्ध हो जाता है। (गाथा 49)

योगी साधु के आत्म–साधना करते हुए अनेक प्रकार के परीषह और उपसर्ग आते हैं, उस समय वह विचारता है कि उग्र तपस्या से जो कर्म उदीरणा करके उदय में लाकर भोगने के योग्य थे, वे यदि स्वयं ही उदय में आ गये हैं, तो यह मुझे बड़ा लाभ है, इसमें कोई सन्देह नही है (गाथा 50) इस प्रकार से जो साधु उदयागत कर्म के फल को भोगते हुए उसमें न राग करता है औन न द्वेष करता है, वह नवीन कर्म का बन्ध नहीं करता है और संचित कर्म का विनाश करता है। (गाथा 51) किन्तु जो कर्मफल को भोगते हुए अशुभ भाव करता है, वह पुनरपि कर्मों का बन्ध करता है। (गाथा 52)

आगे बताया गया है कि परमार्थ ज्ञाता साधु भी यदि अपने मनमें पर–वस्तु के प्रति परमाणु मात्र भी राग रखता है तो वह कम्र–बन्ध से नहीं छूटता है। (गाथा 53) किन्तु जो सुख–दुःख को सहते हुए भी पर में रागद्वेष न करके ध्यान में दृढ़चित्त रहता है, उसका तप कर्मों की निर्जरा करता है। (गाथा 54) क्योंकि ज्ञानी अपने स्वभाव को छोड़ता नहीं है और पर–भाव रूप से परिणमन भी नहीं करता है, किन्तु आत्म–स्वरूप का अनुभव करता है, अतः वह कर्मों का संवर भी करता है और उनकी निर्जरा भी करता है। (गाथा 55)

आगे कहा गया है कि जो साधु पर–भावों से विमुक्त होकर निश्चल चित्त से अपने स्वभाव का अनुभव करता है, वही निश्चय दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूप है (गाथा 56) क्योंकि निश्चय से जो आत्मा है वही दर्शन है, वही ज्ञान है, वही चारित्र है और वही शुद्ध चेतना है। (गाथा 57)

आगे बताया गया है कि रागद्वेष के नष्ट होने पर तथा निज शुद्ध स्वरूप के उपलब्ध होने पर योगियों के योगशक्ति से परम आनन्द प्रकट होता है। (गाथा 58) यदि ध्यान करते हुए भी वह सुखद परम आनन्द प्रकट नहीं होता है तो फिर उस ध्यान या योग से क्या करना है ? कुछ भी नहीं। (गाथा 59) ध्यान–स्थित भी योगी का मन जब तक किंचित् मात्र भी चंचल रहेगा। तब तक परम सुखदायक परमानन्द प्रकट नहीं हो सकता। (गाथा 60) किन्तु जब मन की चंचलता रूक जाती है और सर्व संकल्प–विकल्प शान्त हो जाते हैं, तब जो आत्मा का शाश्वत स्वभाव प्रकट होता है वही मोक्ष का कारण है। (गाथा 61)

आत्म–स्वभाव में स्थित योगी को कर्मोदय से आनेवाले इन्द्रियों के विषयों का भी ज्ञान नहीं होता, किन्तु उस समय वह अपनी शुद्ध आत्मा को ही जानता और देखता है (गाथा 62) जिस योगी को आत्म स्वभाव की उपलब्धि हो जाती है, उसका मन इन्द्रियों विषयों में नहीं रमता। किन्तु निराश होकर आत्मा के साथ एक मेक हो जाता है, अथवा यों कहना चाहिए कि वह ध्यान रूपी शस्त्र से मर जाता है। (गाथा 63)

मन कब तक नहीं मरता ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बताया गया है कि जब तक सम्पूर्ण मोहकर्म का क्षय नहीं होता, तब तक मन नहीं मरता है। किन्तु मोहकर्म का क्षय होते ही मन का मरण तो होता ही है, साथ में शेष रहे घातिया कर्मों का क्षय हो

जाता है। (गाथा 64) इसका कारण यह है कि मोहकर्म सब कर्मों का राजा है। युद्ध में राजा के मर जाने पर सेना जैसे स्वयं गलितमान होकर भाग जाती है, उसी प्रकार मोहरूपी राजा के मरते ही शेष घातिया कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। (गाथा 65) चारों घातिया कर्मों के क्षय होते ही लोकालोक का प्रकाशक और तीनों कालों के सर्व द्रव्यों की गुण–पर्यायों को जानने वाला निर्मल केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है और वह योगी सयोगी–सकल परमात्मा बन जाता है। (गाथा 66) भावसंग्रह गाथा 673–674)

जब तक योगी का आयुकर्म विद्यमान रहता है तब तक वह तीर्थकर केवली या सामान्य केवली की अवस्था में भव्य जीवों को मोक्ष मार्ग का उपदेश देते हुए विहार करते रहते हैं। जब आयुकर्म अन्तर्मुहूर्त मात्र रह जाता है, तब वे योगों का निरोधकर अयोग केवली बन जाते हैं। (भावसंग्रह गाथा 679) उस अवस्था में शेष अघातिया कर्मों का क्षय करते हुए त्रिभुवन–पूज्य और लोकाग्र निवासी सिद्ध परमेष्ठी हो जाते हैं। (गाथा 67)

सिद्ध जीव गमनागमन से विमुक्त, हलन–चलन से रहित, अव्याबाध सुख में स्थित और परमार्थ गुणों से परम आठ गुणों से संयुक्त होते हैं। (गाथा 68) उस समय वे इन्द्रियाँ क्रम से रहित होकर सम्पूर्ण लोक–अलोक कों और अनन्त गुण–पर्यायों से युक्त सर्व मूर्त–अमूर्त द्रव्यों को एक साथ जानते और देखते हैं। (गाथा 69) लोक के अग्रभाग से ऊपर धर्मद्रव्य का अभाव होने से उनका गमन नहीं होता। अतः वे अनन्तकाल तक उसी लोकाग्रपर निवास करते हैं। (गाथा 70)

यहाँ पर किसी ने यह शंका की कि कर्मों से मुक्त होते ही जीव नीचे की ओर या तिरछे पूर्व आदि आठों दिशाओं की ओर क्यों नही जाता ? जबकि सर्वत्र धर्मद्रव्य विद्यमान है ? इसका समाधान करते हुए आ. देवसेन कहते हैं कि यतः जीव का ऊर्ध्वगमन स्वभाव है, अतः वह कर्ममुक्त होते ही ऊपर जाता है। (गाथा 71)

सिद्ध जीव पाँच प्रकार के शरीर से रहित, चरम शरीर से कुछ कम आकारवाले और आगे जन्म–मरण विमुक्त रहते हैं। ऐसे सर्व सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ। (गाथा 72)

इस प्रकार जैसे आ0 देवसेन ने सिद्धों को नमस्कार कर तत्त्वसार की रचना प्रारम्भ की थी, उसी प्रकार सिद्धों को नमस्कार कर तत्त्वसार को उन्होंने पूर्ण किया है।

अन्त में आ0 देवसेन कहते हैं, कि जिस स्व–परगत तत्त्व में तल्लीन होकर जीव

इस विषम संसार–सागर को पार करते हैं वह सर्व जीवों को शरण देनेवाला तत्त्व सदा काल कल्याणमय रहे। (गाथा 73) जो सम्यग्दृष्टि पुरूष देवसेन मुनि–द्वारा रचित इस तत्त्वसार को सुनकर आत्मतत्त्व की भावना करेगा, वह शाश्वत सुखको पावेगा। (गाथा 74)

यद्यपि तत्त्वसार के अन्त में अपने नामके अतिरिक्त उसके रचने का कोई समय नहीं दिया है, तथापि उन्होंने दर्शनसार के अन्त में जो दो गाथाएँ दी हैं, उनसे उनके समय और रचना–स्थान का पता चलता है। वे दोनों गाथाएँ इस प्रकार हैं –

पुव्वायरियकयाइं गाहाइं संचिऊण एयत्थं ।

सिरिदेवसेनगणिणा धाराए संवसंवेण ।।

रइयो दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए णवए ।

सिरि पासणाहगेहे सुविसुद्धे माहसुद्धदसमीए ।।

अर्थात् पूर्वाचार्य–रचित गाथाओं का एकत्र संग्रह करके देवसेन गणी ने धारानगरी में निवास करते हुए यह दर्शनसार जोकि भव्यों के लिये हाररूप है – श्री पार्श्वनाथ–जिनालय में वि.सं. 990 की माघसुदी दशमी को रचना की है।

इस प्रकार आ. देवसेन ने दर्शनसार के अन्त में उसके रचना–काल और रचना–स्थान का निर्देश किया है, किन्तु अन्य रचनाओं में कोई निर्देश नहीं किया है। दर्शनसार में उन्होंने अपने को देवसेनगणी कहा है। तत्त्वसार में मुनिनाथ देवसेन कहा है और आराधनासार में केवल देवसेन कहा है। गणी और मुनिनाथ पद को एकार्थक मान लेने पर दोनों के रचयिता एक ही देवसेन सिद्ध होते हैं।

भावसंग्रह अतिरिक्त अन्य किसी भी रचना में देवसेन ने अपने गुरू के नामका कोई उल्लेख नहीं किया है। भावसंग्रह की अन्तिम गाथा में उन्होंने अपने को विमलसेन गणधर का शिष्य कहा है। वह गाथा इस प्रकार है –

सिरिविमलसेणगणहरसिस्यों णामेण देससेणों त्ति ।

अबुहजणबोहणत्थं तेणेयं विरइयं सुत्तं ।।701।।

अन्य रचनाओं में प्रकारान्तर से गुरू के नाम का संकेत अवश्य उपलब्ध होता है। यथा–आराधनासार की मंगल गाथा में विमलगुणसमिद्ध पद से, दर्शन सार में विमलणाण पद से, नय चक्र में विगयमल और विमलणाणसंजुत्त पद से गुरू के विमलसेन इस नाम का आभास मिलता है। अतः ये सब ग्रन्थ एक ही देवसेन–रचित सिद्ध होते हैं। दर्शनसार और भावसंग्रह तो एक ही देवसेन ने रचे हैं, यह बात दोनों ग्रन्थों में श्वेताम्बरमत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दी गई एक ही गाथा की अक्षरशः समानता से सिद्ध है। इस विषय की अन्य गाथाओं में शब्द और अर्थगत बहुत अधिक समानता पाई जाती है।

अभी तक आ. देवसेन की निम्नलिखित रचनाएँ प्रकाश मे आई हैं –

1. **भावसंग्रह**– इसमें चौदह गुणस्थानों के स्वरूप का विस्तृत वर्णन करने के साथ उनमें पाये जानेवाले औपशमिक आदि भावों का भी निरूपण किया गया है। इसमें सबसे अधिक 182 गाथाओं द्वारा मिथ्यात्व गुणस्थान का वर्णन है। मिश्रगुणस्थान का 61 गाथाओं में, अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान का 91 गाथाओं में, देशविरत गुणस्थान का 250 गाथाओं में, प्रमत्तविरत गुणस्थान का 42 गाथाओं में और अयोगिकेवली गुणस्थान का 22 गाथाओं में वर्णन किया गया है। शेष उपशम–क्षपक श्रेणीगत गुणस्थानों का संयोगकेवली गुणस्थान का 64 गाथाओं में वर्णन है। मंगलाचरण, उत्थानिका एवं अन्तिम उपसंहार गाथाओं को मिलाकर पूरे ग्रन्थों में 701 गाथाएँ हैं। इनमें गुण स्थान के स्वरूप वर्णन एवं अन्य मतों की उत्पत्ति–निरूपण करने वाली गाथाएँ प्रायः प्राचीन ग्रन्थों से संकलित की गई हैं, अतः इसका भावसंग्रह यह नाम सार्थक है। आ. देवसेन रचनाओं में यह सबसे बड़ी रचना है।

2. **आराधनासार**– इसमें 115 गाथाओं द्वारा दर्शनाराधना, ज्ञानराधना, चारित्राराधना और तपाराधना इन चार आराधनाओं का वर्णन किया गया है। भगवती आराधना नाम से प्रसिद्ध शिवाचार्य की विस्तृत मूलाराधना का सार खींचकर इसकी रचना की गई है।

3. **लघफचक्रनय**– इसमें 97 गाथाओं द्वारा नयों का स्वरूप, उनकी उपयोगिता और भेद–प्रभेदों का वर्णन किया गया है।

4. दर्शनसार– इसमें 51 गाथाओं के द्वारा श्वेताम्बरमत, बौद्धमत, द्राविड़संघ यापनीयसंघ, काष्ठासंघ, माथुरसंघ और भिल्लकसंघ की उत्पत्ति का वर्णनकर उनकी समीक्षा की गई है।

5. तत्त्वसार– इस प्रस्तुत ग्रन्थ में 74 गाथाओं के द्वारा जीवों के सबसे अधिक उपादेय शुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि कैसे होती है, इसका वर्णन किया गया है। वस्तुतः इसके पूर्व–रचित द्वादशांग वाणी के सारभूत समयसारादि ग्रन्थों का सार ही खींचकर इसमें निबद्ध कर दिया गया है।

उपरोक्त सभी ग्रन्थ प्राकृत भाषा में रचे गये हैं ।

6. आलापपद्धति– यह गद्य संस्कृत भाषा में रचित एकमात्र ग्रन्थ अभी तक आ. देवसेन का उपलब्ध हुआ है। इसमें 16 अधिकारों के द्वारा क्रम से द्रव्य, गुण, पर्याय, स्वभाव, प्रमाण, नय, गुण व्युत्पत्ति, स्वभाव –व्युत्पत्ति, एकान्त पक्ष में दोष, नय योजना, प्रमाण लक्षण, नये स्वरूप और भेद, निक्षेप– व्युत्पत्ति, नये भेदों की व्युत्पत्ति और अध्यात्मनयों का बहुत सुन्दर विवेचन किया गया है। जैन स्याद्वाद को जानने के लिए यह नयवाद जानना अत्यावश्यक है।

❑ ❑ ❑

कृपया ध्यान दें -

1. शास्त्रजी! के प्रारम्भ में मंगलाचरण करें।

2. शास्त्रजी! के पृष्ठ पलटते समय परिमार्जन करें।

3. शास्त्रजी को विनय पूर्वक, जीव रहित, उचित स्थान पर विराजमान करें।

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ जय जय जय नमोऽस्तु ! नमोऽस्तु !! नमोऽस्तु !!!

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।
ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।।1।।

अविरल-शब्दघनौघ, - प्रक्षालित-सकलभूतल मल कलङ्का।
मुनिभि-रुपासित-तीर्था, सरस्वती हरतु नो दुरितम्।।
अज्ञान-तिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जन-शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।2।।

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः सकलकलुष विध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं भव्य-जीवमनः प्रतिबोध-कारकमिदं शास्त्रं श्री (ग्रन्थ का नाम) नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रन्थकर्त्तारः श्री गणधर-देवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोऽनुसार मासाद्य श्री (आचार्य का नाम) आचार्येण विरचितं, श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।
सर्व मङ्गल्य- माङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्।।

अनुक्रमणिका

गाथा सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	मंगलाचरण एवं ग्रन्थ रचना प्रतिज्ञा	1
2.	धर्म प्रवर्त्तन के लिये तत्त्वोपदेश	11
3.	तत्त्व के भेद	11
4.	पंच परमेष्ठी के ध्यान पुण्य और मोक्ष	11
5.	स्वतत्त्व के भेद	21
6.	निर्विकल्प तत्त्व की प्राप्ति	21
7.	शुद्ध स्वभाव में लीनता	31
8.	शुद्धभाव ही आत्मा	40
9.	निर्विकल्प तत्त्व ही सार	41
10.	निर्ग्रन्थ कौन ?	41
11.	ध्यान में कौन समर्थ ?	52
12.	मोक्ष की सामग्री की प्राप्ति कब ?	52
13.	ध्यान हीन कर्म क्षय नहीं कर सकता	64
14.	शंकालु क्या कहता है ?	64
15.	वर्तमान में रत्नत्रय और पालन	64
16.	ध्यानाभ्यास की प्रेरणा	74
17.	आत्मा का लक्षण	82
18.	आत्माध्यान की प्रेरणा	91
19.	आत्मा का शुद्ध स्वरूप	91
20.	आत्मा की पहचान	100
21.	निरंजन आत्मा का स्वरूप	100
22.	व्यवहार नय से जीव का स्वरूप	111

क्र.सं.		पृष्ठ संख्या
23.	जीव और कर्म का एक क्षेत्रावगाही संबंध।	116
24.	भेद ज्ञान की कला	123
25.	भेद ज्ञान की प्रेरणा	123
26.	परमात्मा और मैं	133
27.	जो परमात्मा सो आत्मा	133
28.	आत्मा का स्वरूप	143
29.	आत्म स्वरूप की उपलब्धि	143
30.	आत्म स्वरूप की प्रकटता	151
31.	आत्म में परमात्मा	152
32.	अचल ध्यान से कर्म गलन	152
33.	शुद्ध भाव से मोक्ष	161
34.	परद्रव्य में रत कर्म बंधक	161
35.	ज्ञानी अज्ञानी का स्वरूप	161
36.	माध्यस्थ होने के साधन	171
37.	माध्यस्थ होने का कारण	171
38.	सर्व आत्मा आत्म समान	171
39.	उभयनय ज्ञाता ही तत्त्वज्ञ होता	180
40.	स्थिर मन वाला ही आत्मदर्शी	180
41.	आत्म दर्शन की विधि	180
42.	आत्मदर्शन का फल	185
43.	आत्मभावना की प्रेरणा	186
44.	आत्मध्याता ही वीतरागी साधु	186
45.	योगी ही ज्ञान, दर्शन, चारित्र है	196
46.	ध्यानहीन को आत्मलाभ नहीं	197
47.	ध्यानहीन को आत्मलाभ नहीं	197
48.	बहिरात्मा का लक्षण	197
49.	आत्मध्याता मुक्तिपाता	207
50.	कर्मोदय से लाभ	215

क्र.सं.		पृष्ठ संख्या
51.	समताधारी को कर्मोदय से लाभ	216
52.	कर्मोदय में मोह करने वाला कैसा	223
53.	अणुमात्र राग भी बाधक	223
54.	तप निर्जरा के लिये	223
55.	आत्मा ही संवर निर्जरा	230
56.	आत्मा ही रत्नत्रय	230
57.	आत्मा ही ज्ञान, दर्शन, आदि	236
58.	आत्मध्यान परमानंद प्रकट	245
59.	वह योग नहीं जो परमानंद न दे	255
60.	चंचल मन को परमानंद नहीं	255
61.	निर्विकल्प को स्वभाव प्राप्ति	255
62.	स्थित प्रज्ञ की दशा	262
63.	ध्यानास्त्र से विषयघात	262
64.	मोह क्षय होने पर मन मरण संभव	268
65.	मोह नाश का फल	268
66.	घातिकर्म के नाश का फल	269
67.	अरिहंत होने के बाद सिद्ध होने का क्रम	287
68.	सिद्ध परमात्मा का स्वरूप	296
69.	केवलज्ञान का स्वरूप	302
70.	लोकाग्रवास क्यों और कब तक	312
71.	ऊर्ध्वगमन स्वभावी आत्मा	312
72.	सिद्धों का स्वरूप और नमन	312
73.	स्व पर तत्त्व जयवंत हो।	317
74.	शास्त्र श्रवण का फल।	317

❑❑❑

मंगलाचरण

झाणग्गिदड्ढकम्मे णिम्मलसुविसुद्ध लद्धसब्भावे ।
णमिऊण परमसिद्धे, सुतच्चसारं पवोच्छामि ।।1।।

अर्थ- आत्मध्यानरूपी अग्नि में ज्ञानवरणादि कर्मों को दग्ध करने वाले, निर्मल और परम विशुद्ध आत्मस्वभाव को प्राप्त करने वाले परम सिद्ध परमात्माओं को नमस्कार करके श्रेष्ठ तत्त्वसार को मैं देवसेन कहूँगा।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी ! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्षमहल-धारिणी, पाप-ताप-संताप-हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

हे प्रभो ! मैं समवशरण में आपकी दिव्य-ध्वनि सुनूँ, मेरे नगर में आपका समवशरण आये, और मैं आपके समवशरण में आऊ। हे प्रभो ! तुम प्रमुख वक्ता रहो और मैं श्रोता रहूँ। हे प्रभो ! आज तक संसार में सबकी ध्वनि सुनी है, लेकिन समवशरण में जाकर के तीर्थं भगवान की दिव्य ध्वनि इस जीव ने आज तक नहीं सुनी।

ज्ञानी ! सरगम की ध्वनि सुनना और वीणा की तान सुनना बहुत आसान है। लेकिन सर्वज्ञ की ध्वनि सुनना, जिनवाणी का गान सुनना, बहुत-बहुत पुण्य की बात है। भो श्रीमंत सेठ ! इन हाथों से नोट को गिन

लेना बहुत आसान है लेकिन इन हाथों से जिनवाणी के पृष्ठ पलटने के लिये बहुत-बहुत पुण्य चाहिये।

ध्यान देना ज्ञानी जीवो! वाणी तो दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय सभी के पास हुआ करती है लेकिन जिनवाणी एक मात्र सम्यक्दृष्टि जीव के पास ही हुआ करती है।

सुनने की शक्ति तो असंज्ञी जीव के पास भी है, सुनने का अधिकार तो असंज्ञी जीव को भी है लेकिन समझने का अधिकार मात्र संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव को है। इसलिए सुनना आसान, और समझना बहुत कठिन है।

प्रिय आत्मन्!

जिनवाणी सुनने की बात तो दूर रहे, ज्ञानी! इस जिनवाणी को छूने के लिये भी पुण्य चाहिये जब तक जिनवाणी की महिमा नहीं आयेगी, तब तक कल्याण नहीं होगा। ज्ञानी ! कोण्डेश ग्वाला जिनवाणी की महिमा जानता था, ग्वाला ने मुनिराज को शास्त्र भेंट किया और वह ग्वाला इस युग का महान आचार्य कुंदकुंद बन गया। ध्यान देना-जिनवाणी की महिमा जानता था मेंढक, जो समवशरण में सुनने के लिये जा रहा था।

ज्ञानी जीवो ! संसार में यदि कल्याण करने वाली कोई वाणी है, तो उस वाणी का नाम जिनवाणी है। ध्यान देना पुत्र की वाणी, पिता की वाणी, माँ की वाणी, पत्नी की वाणी, बेटी की वाणी, बेटा की वाणी तो सब सुन लेते हैं। ज्ञानी जीवो तुम्हारा समय ग्राहकों की वाणी सुनने में जाता है, ग्राहक की वाणी को सुन लेना बहुत आसान है, लेकिन गुरुवर की वाणी को सुनने के लिये बहुत बड़ा पुण्य चाहिये। यह जिनवाणी असंख्यात गुण श्रेणी निर्जरा का कारण है। जब जीव के सातिशय पुण्य कर्म का उदय आता है, तब कहीं जिनवाणी सुनने का भाव होता है।

सुनी गयी परिचय में आयी, अनुभव में आयी।
काम भोग अरू बंध कथायें, सर्व जगत भायी।।

प्रिय आत्मन्!

इस जीव ने अनादि से जिसे सुना है, जिसका परिचय पाया है और जिसका अनुभव पाया है वे काम, भोग, बंध की कथायें तो सर्वत्र सुलभ हैं, लेकिन एकमात्र संसार में दुर्लभ है, तो वह मात्र आत्मा की कथा दुर्लभ है। आचार्य कुंदकुंद भगवान ने समयसार में लिखा।

सुदपरिचिदाणुभूया, सव्वस्स वि कामभोगबन्धकहा।
एयत्तस्सुवलंभो, णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।।4।।-समयसार

ज्ञानी जीवो ! संसार में काम, भोग, बंध की कथायें बहुत सुलभ हैं। लेकिन एक मात्र निज शुद्धात्म तत्त्व की कथा है, वह बहुत दुर्लभ है। जिसकी चर्चा में आनंद आता है तो उसकी चर्या में क्या आनंद आता होगा? ज्ञानी जीवो आत्मा की चर्चा ही सुख को देती है। अनादि से पर की चर्चा सुनी है और पर को सुनाई है, लेकिन न अपनी सुनी है न अपनी सुनायी है।

सबकी सुनी है, सबको सुनायी है, न आत्मा की सुनी है, न आत्मा को सुनायी है। यदि आत्मा की सुन ली होती, तो तत्क्षण सम्यक्दृष्टि हो जाता, तत्क्षण सम्यक् ज्ञानी हो जाता। आत्मतत्त्व की चर्चा सुनना भी दुर्लभ है और सुनाना भी दुर्लभ है।

विरला जाणहिं तत्तु बुह, विरला णिसुणहि तत्तु।
विरला झायहिं तत्तु जिय, विरला धारहिं तत्तु।।6।। योगसार।।

अर्थ-

विरले ज्ञानी जीव ही तत्त्व को जानते हैं, विरले जीव ही तत्त्व को सुनते हैं, विरले ही जीव तत्त्व का ध्यान करते हैं और विरले ही जीव तत्त्व को धारण करते हैं।

प्रिय आत्मन्!

ज्ञानी पहली बात तो ध्यान रख लेना, खेद मत करना कि इतने कम व्यक्ति प्रवचन सभा में क्यों आ रहे हैं, यह भी खेद मत करना कि कितने कम व्यक्ति सुन रहे हैं, क्योंकि तीर्थंकर भगवान की सभा में भी ऐसा होता है, नाट्य शाला में देखने वाले बहुत पहुँच जाते हैं किन्तु समवशरण की श्रीमंडप भूमि में तीर्थंकर की देशना सुनने कम पहुँच पाते हैं।

ज्ञानी जीवो। बारह सभाओं में सबसे छोटा स्थान यदि किसी का है तो मात्र देशना मंडप का है, देशना मंडप सबसे छोटा हुआ करता है, बाकी सभी मंडप बड़े-बड़े होते हैं। देशना मंडप में वैभव नहीं है, जितना भी वैभव है देशना मंडप के बाहर है, अज्ञानी मोही जीव बाहर-बाहर के वैभव में लीन हो जाता है, जो ज्ञानी वैरागी जीव होता है, वह वीतराग देशना सुनने के लिये अष्टम भूमि श्री मंडप भूमि में प्रवेश करता है। और जो समवशरण की अष्टम भूमि में प्रवेश करता है, वह सिद्धालय की अष्टम भूमि में प्रवेश करने का पात्र हो जाता है।

प्रिय आत्मन्!

जो आज जिनालय में आया है, समझ के चलना यह उसके सिद्धालय में जाने के चिन्ह हैं। जो आज धर्मसभा में आ रहा है, यह उसके समवशरण में जाने के चिन्ह हैं। ज्ञानी जीव! जो आज धर्म सभा में नहीं आ पाये, धर्म सभा में आने का भाव न बना पाये, कल के दिन समवशरण भी लगेगा, तो वह शायद वहाँ भी नहीं पहुँच पायेंगे।

ज्ञानी जीवो! ध्यान रखना चौबीस तीर्थंकरों में से पारसनाथ स्वामी के शासनकाल में महावीर का जन्म हुआ। और पारसनाथ के कुछ शिष्य/प्रतिशिष्य महावीर के समवशरण में पहुँचे, जब पहुँचे तो उनके लिये गणधर का पद नहीं मिला, क्योंकि नियोग है कि तीर्थंकर के पादमूल में जो दीक्षा लेता है, वह ही गणधर का पात्र होता है, उन्हें अभिमान जाग गया। ओहो! हम बहुत पुराने थे हमारे लिये गणधर नहीं बनाया। और नया छोरा जो अभी आया और इसके लिये गणधर बना दिया। और वह समवशरण से निकल गये, मैं अरिहंत को नहीं मानता, मैं सिद्ध को ही मानूँगा।

ज्ञानी जीवो! इन परिणामों से कल्याण नहीं होता है, और जो जीव देशना को सुनकर के परिणाम निर्मल कर लेता है। वह उसी समवशरण में सम्यक्दर्शन को पा लेता है। ध्यान देना-जब नदी में नहाने गये, और जब नदी से नहाकर लौटे तो कुछ तो अंतर हुआ। अरे ज्ञानी! जब तू घर के स्नान घर में नहाने जाता है, और दो बाल्टी पानी डालता है तो उसके बाद शीतलता मिलती है। तो फिर मंदिर में आके जिनवाणी सुनोगे, तो नियम से कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य आयेगा।

सम्मतस्स णिमित्तं जिण सुत्त, तस्स जाणिया पुरिसा।
अंतर हेउभणिदा, दंसण मोहस्स खय पहुदि ।। नियमसार।।

यह जिनेन्द्र सूत्र और यह जिनवाणी सम्यक् दर्शन का निमित्त है, सामान्य निमित्त नहीं है, ध्यान देना, हम तो यही भावना करते हैं कि तीर्थंकर भगवान का उपदेश ही हमें मिले, लेकिन हे प्रभो! हम उस काल में नहीं जन्में जिस समय सोनागिरि में चन्द्रप्रभ का समवशरण आया था, हम उस समय नहीं जन्में, जिस समय विदिशा में शीतलनाथ भगवान का समवशरण आया था, हम उस काल में नहीं जन्में थे जिस काल में राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर महावीर का समवशरण आया।

हे प्रभो! हमारा उतना पुण्य नहीं था, तो कम से कम आज मेरी सत्ता में इतना पुण्य तो है, कि साक्षात् महावीर न मिले, तो महावीर की वाणी को सुनाने वाले यदि दिगम्बर मुनि हमें मिले हैं, और हमारे

नगर में हमारे मंदिर में धर्मसभा लगी है। हे प्रभो! हम तो यही कल्पना करते हैं, यही हमारी धर्म-सभा ही समवशरण-सभा है और धर्म गुरु ही हमारे भगवान हैं।

प्रिय आत्मन्!

आज की धर्म सभा के संस्कार, आज के मंदिर के संस्कार, कल हमें मंदिर के दर्शन करायेंगे, जब हम छोटी पाण्डुक शिला रखते हैं और बड़ी कल्पना कर लेते हैं, जब इतना सा मंदिर बनाते हैं, तो समवशरण की कल्पना कर लेते हैं, तो जो साक्षात् निर्ग्रंथ योगी के मुख से तीर्थंकर भगवान की देशना को सुनें तो यही कल्पना करें, कि हमारा जीवन धन्य है, कि हमें दे कोई भी रहा हो, लेकिन वाणी तो हम उन्हीं तीर्थंकर भगवान की सुन रहे हैं।

यदि कोई संदेश हम टी.वी. पर सुनते हैं, मान के चलिये, अभी प्रवचन आ रहे हैं किसी मुनिराज के टी.वी. पर, तो उन्होंने पहले कभी दिया, और बाद में प्रसारण हुआ। और हम यही मानते हैं कि मुनिराज ने कहा। उसी तरह से इसे जानना जो तुमने सुना है। ज्ञानी! विरला ही कोई जीव होता है, जो तत्त्व की बात को सुनता है।

ध्यान देना-ज्ञानी जीवो! यह मत सोच लेना कि कौन है यहाँ प्रवचन सुनने के लिये? सिनेमा हाल में दर्शकों की संख्या अधिक हो सकती है, और धर्मसभाओं में श्रोताओं की संख्या कम हो सकती है, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि धर्म सभा का मूल्यांकन कम है, इसका तात्पर्य यह है कि जिसकी रूचि जिसमें जाती है, वह उस बात को सुनता है।

''भिन्नरुचित्वात्लोकस्य''।

संसार में जीवों की रुचि भिन्न-भिन्न है। कोई तत्त्व की बात सुनना पसंद करता है, कोई नहीं। समाज में कोई ज्ञान प्रधान हैं, कोई पूजा प्रधान हैं, कोई उत्सव प्रेमी, कोई धर्म प्रेमी हैं, कोई ज्ञान प्रेमी हैं, कोई गुरु सेवा प्रेमी जीव होते हैं। किन्हीं जीवों को तो इससे प्रयोजन है, कि हमें ज्ञान मिले। कोई जीव तब आते हैं जब उत्सव होता है। कोई जीव गुरु सेवा के समय आते हैं, और कुछ मातायें ऐसी हैं कि उन्हें मात्र आहार से प्रयोजन है कि आहार करा लिये हमारा कार्य हो गया।

नाना प्रकार के जीव हैं, और उनके नाना प्रकार के विचार हैं। किसी भी प्रकार से आप धर्म का अर्जन करें, विशुद्धि को बढ़ायें। आज इस मांगलिक शीतकाल में चाहे बादलों की ओट में सूरज छिप जाये किंतु हे सर्वज्ञ! तुम्हारे ज्ञान को छिपाने वाला कोई आवरण शेष नहीं है। इसलिये आपका ज्ञान इस

अखिल विश्व को सदा प्रकाश दे रहा है। सूर्य के प्रकाश में मानव जगत चलता है, लेकिन धर्म के प्रकाश में सम्यक् दृष्टि चलता है।

आचार्यों ने लिखा यदि संसार में गुरु की वाणी न होती, तो सूर्य भी सन्मार्ग न दिखा पाता। यदि सैकड़ों सूर्य भी एक साथ उदय को प्राप्त हो जायें, तब भी सन्मार्ग नहीं दिखा सकते, यदि गुरु की वाणी प्राप्त न हो तो। इसलिये इस युग में जिनवाणी, गुरुवाणी का अत्यंत महत्व है।

यदि ग्यारह सौ ग्यारह व्यक्ति धर्म को सुनने गये हैं, तो उस तत्व को सुनेंगें ग्यारह सौ ग्यारह पर जानेंगें मात्र एक सौ ग्यारह। ग्यारह सौ ग्यारह में से एक हजार व्यक्ति ऐसे मिलेंगें, जो मात्र सुन पायेंगें लेकिन जान नहीं पायेंगें। जानने वाले एक सौ ग्यारह होंगें। जिन एक सौ ग्यारह ने जाना है उसमें से कुल ग्यारह व्यक्ति होंगें जो तत्त्व की भावना करेगें। घर पर जाकर विचार करेगें, कि महाराज ने क्या समझाया था? क्या बताया था? इसको सोचने वाले मात्र ग्यारह व्यक्ति होंगे और जिन ग्यारह व्यक्तियों ने भावना की है, उनमें से दस तो सोने-सोने के समय तक भूल जायेंगें, कोई एक व्यक्ति होगा, जो धारणा बनायेगा कि यह तत्त्व का ज्ञान, दुर्लभ ज्ञान हमें प्राप्त हुआ है। इसलिये यह बात पहले ही आचार्य भगवन् कह रहे हैं, कि घबड़ाना नहीं कि सभा में कितने आ रहे हैं और कितने नहीं आ रहे हैं और इससे भी मूल्यांकन नहीं कर लेना, कि बोली कितने की हो रही है, क्योंकि अज्ञानी लोग चातुर्मास की सफलता का श्रेय मात्र बोली को दे देते हैं।

ध्यान रख लेना, धन की बोली से चातुर्मास की सफलतायें नहीं आंकी जाती हैं जिनवाणी की वाचना से चातुर्मास की सफलतायें आंकी जाती है। इसलिये जिस तत्त्व से आत्मा संस्कारित होती है, जिस तत्त्व से चेतना में संस्कार आते हैं आचार्य देव कहते हैं-इस जीव को पहली बार सुनने का अवसर आया है। सुनो ज्ञानियो! पर को सुनना और पर को सुनाना बहुत आसान है, निज को सुनना और निज को सुनाना, बहुत कठिन है। क्यों कठिन है? क्योंकि हमने आज तक इसके विषय में सुना ही नहीं और परिचय भी नहीं पाया है और न ही अनुभव में आया है।

भैया यदि मैं आप से कहूँ कि पंडित जीवन लाल जी को बुला दो, तो आप तुरंत बुला देंगें, क्योंकि आपने उनके विषय में सुना है, परिचय भी पाया है, अनुभव भी पाया है, लेकिन एक ऐसे व्यक्ति का नाम ले दूँ, जिससे आपका कोई परिचय न हो, जिसके विषय में आपने सुना न हो और जिसके विषय में अनुभव न हो, तो क्या आप उसको ला पायेगें ? उसके पास जा पायेगें ? नहीं ! इसी तरह से आत्मा को न सुना है, न परिचय है, न अनुभव है, इतना होने पर भी वह है, इसलिये हम अपना मित्र बनायेंगें आत्मा

को। वर्तमान में परिचय सम्मेलन हो रहे हैं और परिचय के बाद परिणय हो जाते हैं। परिणय के बाद परिग्रही हो जाते हैं किंतु आचार्य कहते हैं- एक बार यह आत्मा स्व-परिचय को प्राप्त कर ले तो फिर पर-परिचय की आवश्यकता नहीं रहेगी।

प्रिय आत्मन्!

आप परिचय पत्र निकालते हैं, वायोडाटा निकालते हैं, आचार्य कहते हैं- वह वायोडाटा मात्र एक शरीर और पर्याय का है, लेकिन यदि चेतना (आत्मा) का वायोडाटा तुम्हारा शास्त्र तत्त्वसार ग्रंथ है, जो आत्मा का वायोडाटा है। इसमें चेतना का परिचय है, चिद्चमत्कार, चैतन्य स्वरुप, चिदानंद चिन्मय चिद्ज्योति चारित्रवान चेतना का परिचय, इस वायोडाटा में समाहित है।

यदि प्रथम वाला वायोडाटा आपके पास है तो आपका परिणय हो जायेगा। आप परिणय तो कराना चाहते हैं, लेकिन अपना वायोडाटा नहीं निकाला। हे ज्ञानी! यदि मुक्ति वधु से आपको विवाह करना है तो मुक्ति-कन्या का नाम है। तो तत्त्वसार तुम्हारा वायोडाटा होगा। इस वायोडाटा को आप देखिये और समझिये चेतना का स्वरुप। जिन-जिनने भी आज तक, सिद्धि कन्या को प्राप्त किया है, उन्होने पहले अपना तत्त्व का परिचय पाया है।

प्रिय आत्मन्!

जो मैं हूँ, मैंने अपना परिचय भी नहीं पा पाया तो फिर मेरा ज्ञान किसलिये। आप एक विद्यार्थी हैं और विद्यार्थी के हाथ में एक कलम है, यदि वह कलम उसकी परीक्षा के काम न आये, तो विद्यार्थी क्या बोलता है ? यह पेन किसी काम का नहीं है उसी तरह मैं यह बात पूछना चाहूँ कि मैं कौन हूँ ? आत्मा! ज्ञान क्या है? गुण हैं। किसका गुण है? आत्मा का। आत्मा किसका है? मेरा है। ज्ञान किसका है? आत्मा का। मैं आत्मा हूँ, आत्मा मेरा है, ज्ञान आत्मा का गुण है? इसलिये ज्ञान भी मेरा है। मैं आत्मा, मेरा ज्ञान, और द्रव्य मेरा, गुण मेरा, किसके लिये? आत्मा का ज्ञान, किसके लिये? यदि इस पंक्ति पर श्रद्धान कर लो, तो जीवन में कभी संक्लेश नहीं होगा आर्त-रौद्र ध्यान नहीं होगा, आगे कभी भी भव भ्रमण न हो। मात्र एक पंक्ति कि मैं आत्मा हूँ, ज्ञान मेरा गुण है, मेरा ज्ञान किसके लिये ?

एक छोटा सा बच्चा परीक्षा बोर्ड में पेपर दे रहा है, एक ही पेन उसके पास है, उस समय यदि कोई कहे, कि मेरे लिये पेन दे दो, तो दस रुपये का पेन वह सौ रुपये में देगा? नहीं। क्या हजार में देगा? नहीं। वह नन्हा सा बालक, वह छोटा सा बालक बुद्धिमान है, जो परीक्षा में अपना पेन किसी को नहीं देता है।

प्रिय आत्मन्!

यह संसार एक परीक्षा भवन है, बाल्य-अवस्था प्रथम घंटा है, युवा अवस्था दूसरा घंटा है, वृद्धावस्था तीसरा घंटा है। यह जीवन एक प्रश्न पत्र है, इस जीवन रूपी प्रश्नपत्र को आपको हल करना है, ज्ञान मेरा है, मुझे अपने ज्ञान के द्वारा ही हल करना है। मेरा ज्ञान किसके लिये? झाड़ने के लिये? मेरा ज्ञान पानी भरने के लिये ? मेरा ज्ञान रोटी बनाने के लिये ? कितनी क्रियायें कर रहे हैं आप, लेकिन जिसका ज्ञान है, उसके लिये ? कुछ नहीं और जिसके पास ज्ञान नहीं है, जिसका ज्ञान नहीं है, उसके लिये? सब कुछ, ज्ञान जिसका है उसके लिये ? उपयोग में नहीं आ रहा और जिसका नहीं है, पुद्गल का ज्ञान नही है, ज्ञान है जीव का, जीव का ज्ञान-पुद्गल काम ले रहा है, लेकिन जीव अपने ज्ञान का उपयोग अपने लिये नहीं कर रहा है।

यदि जीव अपने ज्ञान का उपयोग अपने लिये कर ले, तो कुंदकुंद भगवान कहते हैं वह स्वसमय बन जायेगा, समयसार बन जायेगा। जिस समय यह आत्मा अपने ज्ञान का उपयोग, अपने लिये करता है, तो समयसार बन जाता है। और पर के लिये करता है, तो पर समय बन जाता है। ज्ञानी जीवो ! ज्ञान किसका ? मेरा। किसके लिये ? मेरे लिये। यह निर्णय कर लो, कि ज्ञान मेरे लिये, यदि मेरे लिये है तो मेरा ज्ञान मेरे संवर के लिये होना चाहिये, कर्म निर्जरा के लिये होना चाहिये।

ज्ञानी जीवो ! हम नश्वर और क्षणिक वस्तुओं के पीछे शाश्वत, अमूल्य ज्ञान पर्यायों का दुरुपयोग कर रहे हैं, ध्यान देना-ज्ञानी जीवो ! यह अमूल्य ज्ञानमयी पर्यायें कुछ क्षणिक मूल्यों के प्रति हम समर्पित कर देते हैं, लेकिन यह ज्ञान पर्याय है यह निज में लीन हो जाये, जैसे समुद्र की लहर समुद्र में विलीन हो जाती है, फिर बाद में नहीं दिखती है, उसी तरह तुमने प्रवचन को सुना, सुनते समय समझ में आया, बाद में भले ही समझ में न आये, तब भी ज्ञान तो तुम्हारे भीतर ही चला गया। जैसे मिट्टी के नये सकोरे में पानी की बूँद डालते हैं, तो उसी में समाहित हो जाती है, दिखाई नही देती है, उसी तत्त्व का ज्ञान तुम्हारे अंदर के सकोरे में समाहित हो जायेगा, दिखाई नही देगा, लेकिन रहेगा।

प्रिय आत्मन!

बीज जब भूमि में बोते हैं, तो फिर दिखाई नहीं, देता है और दिखाई देगा तो उगेगा नहीं इसलिये बीज बोने के बाद दिखाई नहीं देना चाहिये। इसी तरह शिष्यों के लिये चाहिये, कि वे ज्ञान प्राप्त तो करें, पर वे दिखायें नहीं, यदि ज्ञान दिखायेगें तो ज्ञान उग नहीं पायेगा। बहुत बड़ी नीति है किसान बीज बोये पर दिखाये नहीं, दिखा तो उग जायेगा, दिखायेगा तो चुग जायेगा। पंछी आयेगा और बीज को चुग जायेगा,

इसलिये ज्ञान एक निधि है, इस निधि को अपने पास रख लेना, बहुत अनमोल निधि है। एक कलश की बोली हो सकती है, लेकिन ज्ञान निधी की बोली नहीं हो सकती है, वह अनमोल निधि है।

तुम्हारे कलश की कीमत आंकी जा सकती है, लेकिन जिनवाणी की एक पंक्ति की कीमत को आंका नहीं जा सकता है। तत्त्वार्थ सूत्र का एक सूत्र यदि कोई देशवाला कहे, कि मैं पेटेन्ट कराना चाहता हूँ, तो क्या आप पेटेन्ट करा देंगे ? नहीं। जिनवाणी अनमोल है, इस अनमोल जिनवाणी की महिमा समझो, ग्यारह सौ ग्यारह में से, एक सौ ग्यारह और एक सौ ग्यारह में से ग्यारह और ग्यारह में से एक और वह एक, सिर्फ कौन है ? आत्मा। जब प्रवचन सुनने बैठो, तो इस तरह सुनने बैठो, कि मैं मात्र एक हूँ। जैसे- जंगल में शेर अकेला था, उसी तरह सभा में मैं अकेला हूँ। उपदेश देने वाले दो मुनि थे और सुनने वाला एक था। इसकी परवाह मत करना कि कितने व्यक्ति आये, कितने नहीं आये, अरे ! जब दो वक्ता, एक श्रोता को सुना सकते हैं तब यदि हमारे सामने चार श्रोता भी आ गये, तो चिंता मत करना, कुछ पल के लिये इतना ही समझ लेना, कि तुम शेर हो और उस जंगल में हम मुनिराज हैं।

ज्ञानी जीव ! कुछ समय के लिये अपने आप को शेर मान लेना, कि मेरा यह सौभाग्य है, कि इस जंगल में शेर की तरह हूँ और मेरे लिये मुनिराज उन मुनिराज की तरह हैं, यदि मैं अकेला भी प्रवचन सुनने बैठा हूँ, तो अपने आप को यह मत मानना, कि अभी तो कोई है ही नहीं।

प्रिय आत्मन्!

माँ की गोदी में पहला बेटा आता है, उसे असीम प्यार मिलता है, इसी तरह धर्म सभा में जो सबसे पहले आता है, उसे सबसे ज्यादा स्नेह मिलता है। गुरु उपदेश देते नहीं हैं, शिष्य निकलवा लेते हैं, जैसे गाय का बछड़ा गाय को पला लेता है और दूध निकल आता है, यदि आपसे कहूँ कि दूध निकाल लो तो आप कहते हैं, अब नहीं निकल रहा, नहीं निकल रहा, अब छोड़ो बछड़ा के लिये।

एक व्यक्ति दूध को दुहने गया, थोड़ा सा मात्र पाव भर दूध निकला अब निकल ही नहीं रहा, निकल ही नहीं रहा, अब बछड़ा के लिये छोड़ दो और बछड़ा गया, और बछड़ा ने बड़े प्यार से पलाया, और जब पलाता है तो व्यक्ति के नाम पर एक गिलास दूध निकलता है और बछड़ा के नाम पर तीन गिलास दूध निकला मालिक के लिये एक गिलास दूध मिला और बछड़े के लिये तीन गिलास दूध मिल गया क्यों? यह है पलाने की कला।

यदि गाय ने एक गिलास दूध दिया है, तो यह नहीं है कि उतना ही था, था तो उसके पास बहुत

लेकिन तुम कितना ले पाये उसी तरह गुरु ने कितना ज्ञान दिया है, यह मत समझना, कि उतना ही था। था तो बहुत तुम जितना निकाल पाये, उतना मिला।

प्रिय आत्मन्!

समुद्र की गहराई में इतने रत्न भरे पड़े हैं, जितनी बार डुबकी लगाओगे उतनी बार नया मिलेगा। जितनी बार प्रवचन सुनने आओगे, उतनी बार कुछ नया मिलेगा। तत्त्वसार महा मंगलकारी ग्रंथ है, इस ग्रंथ का नाम तत्त्वसार है। तत्त्व क्या है?

तस्य भावं तत्त्वं!

वस्तु का जो स्वभाव है वही तत्त्व है, तत्त्व यद्यपि अनंत होते हैं लेकिन प्रयोजन भूत जो तत्त्व हैं, जो कल्याणकारी तत्त्व हैं, वे तत्त्व सात होते हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सातों तत्त्वों का जो फल है वह मात्र एक जीव को मिलता है इसलिये जीव तत्त्व सभी तत्त्वों में प्रमुख तत्त्व है। मैं अनादि से जीव तत्त्व हूँ और अनंत काल तक जीव तत्त्व रहूँगा। जीव तत्त्व का कभी अभाव नहीं होता है सदा सद्भाव रहेगा आस्रव समाप्त हो जायेगा, बंध समाप्त हो जायेगा, संवर समाप्त हो जायेगा, निर्जरा समाप्त हो जायेगी, मोक्ष एक बार होने के बाद समाप्त हो जायेगा लेकिन एक ही तत्त्व रहता है। जो तत्त्व सदा रहे वह जीव तत्त्व है और वह जीव तत्त्व मैं ही हूँ जीव तत्व, जीव द्रव्य। तत्त्व और द्रव्य में अंतर है, गन्ना द्रव्य है मिठास तत्त्व है। हे ज्ञानी ! जीव तत्त्व का तात्पर्य ज्ञान, दर्शन, आदि गुणों से है, यह जो जीव तत्त्व है, संसार में यद्यपि अनंतानंत जीव हैं, लेकिन अध्यात्म का क्षेत्र तथा व्यवहार का क्षेत्र भिन्न-भिन्न है, व्यवहार के क्षेत्र में सभी जीव रक्षा के हेतु हैं, सबकी रक्षा करना चाहिये और अध्यात्म के क्षेत्र में पर द्रव्य हेय है, निज द्रव्य उपादेय है, इस तरह की देशना-तत्त्वसार जो ग्रंथ है, इसमें है।

तत्त्वं श्रुतं ज्ञानं!

तत्त्व श्रुत ज्ञान को कहते हैं और ऐसा श्रुत ज्ञान का जो सार है, वह तत्त्व सार में समाहित है। जिस तरह से बीन की ध्वनि बिल में प्रविष्ट सांप को बाहर निकाल देती है उसी तरह से हमारे भीतर में बैठे हुये मोह, राग, द्वेष रूपी सर्पो को यह जिनवाणी की ध्वनि बाहर निकाल देती है।

जिस तरह से गरुण की आवाज सुनते ही सर्प के बंधन ढीले पड जाते हैं, उसी तरह से यह तत्त्व सार की देशना सुनकर के, हमारे मोह के बंधन ढीले पड़ जाते हैं, जिन्होंने ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा कर्मो को जला दिया है और ऐसे निर्मल परम विशुद्ध आत्म स्वभाव को प्राप्त किया है, ऐसे परम सिद्ध अनंतानंत सिद्धों को नमस्कार करके सम्यक् प्रकार के सुतत्त्व प्रणीत मैं देवसेन आचार्य इस ग्रंथ को कहूँगा।

प्रिय आत्मन्!

जीवन का ध्येय सिद्धत्व पाना है और सिद्धों को नमस्कार करना जीवन के चरम लक्ष्य को प्रणाम करना है। जिसे हमने प्रणाम किया है वहाँ तक पहुँचना भी चाहिये, तभी हमारे जीवन की सफलता है।

तच्चं बहुभेयगयं, पुव्वायरिएहिं अक्खियं लोए।
धम्मस्य वत्तणट्ठं, भवियाण य बोहणट्ठं च ॥2॥

अर्थ-

इस लोक में पूर्वाचार्यो ने धर्म का प्रवर्तन करने के लिए तथा भव्य जीवों को समझाने के लिए तत्त्व को अनेक भेदरूप कहा है।

एगं सगयं तच्चं, अण्णं तह परगयं पुणो भणियं।

सगयं णिय-अप्पाणं, इयरं पंचावि परमेट्ठी ॥3॥

अर्थ-

एक स्वगत स्वतत्त्व है। तथा फिर दूसरा परतत्त्व कहा गया है। स्वगत तत्त्व निज आत्मा है। दूसरा परगततत्त्व पाँचों ही परमेष्ठी हैं।

तेसिं अक्खररूवं, भवियमणुस्साण झायमाणाणं।
बज्झइ पुण्णं बहुसो, परंपराए हवे मोक्खो ॥4॥

अर्थ-

उन पंच परमेष्ठियों के वाचक अक्षररूप मंत्रों को ध्यान करने वाले भव्यजनों के बहुत सा पुण्य बँधता है और परम्परा से मोक्ष प्राप्त होता है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्षमहल-धारिणी, पाप-ताप-संताप- हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

तत्त्व ज्ञानं प्रमाणं।

तत्त्व का ज्ञान ही प्रमाण होता है, शब्द से पद की प्रसिद्धि होती है, पद से अर्थ का निर्णय होता है, अर्थ से तत्त्व का बोध होता है और तत्त्व के बोध से आत्मा का कल्याण होता है। इसलिये जो जीव आत्मा का कल्याण चाहते हैं, उन जीवों को तत्त्व की देशना सुनना चाहिये। आचार्य कहते हैं-जिन जीवों ने ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा आठों कर्म रूपी ईंधन को जला दिया है और निर्मल विशुद्ध आत्म-स्वभाव को प्राप्त कर लिया है, ऐसे परम सिद्धों को मैं नमस्कार करके तत्त्वसार को कहूँगा।

सिद्ध को नमस्कार करके, शुद्ध को कहना है, शुद्ध का मनन करके, शुद्ध का वर्णन करना है क्योंकि कथन उसी का होता है, जो होता है। जो नहीं होता, उसका कहना क्या? बंध पूर्वक मोक्ष होता है। इसलिये पहले बंध की चर्चा करना चाहिये थी, बाद में मोक्ष मार्ग की चर्चा करना चाहिये थी, क्योंकि जब तक दोष को नहीं जानेंगें तब तक गुणों को कैसे ग्रहण करेंगें? किंतु आचार्य कहते हैं-नहीं। ज्ञानी, मैं बंध की चर्चा करूँगा, तो तुम डर जाओगे और डर जाओगें तो मोक्ष पर नहीं बढ़ पाओगे। इसलिये बंध के कारणों से और बंध के फल से, शिष्य डर न जाये, इसलिये बंध की चर्चा आचार्य उमास्वामी ने आठवें अध्याय में की है उसके पहले मोक्ष मार्ग की चर्चा प्रारंभ हो गयी, प्रथम अध्याय से ही आश्वासन देने के लिए।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्ष-मार्गः ॥1॥ तत्वार्थसूत्र

यह सहज बात है, कि आपने मोक्ष मार्ग की चर्चा पहले क्यों की? समाधान दिया, कि भयभीत व्यक्ति अपनी कार्य सिद्धि नहीं कर सकता है, इसलिये हमने पहले मोक्षमार्ग का उपदेश दिया है आश्वासन दिया है कि बंध की बात सुनने से भयभीत हो जाओगे, मोक्ष की बात सुनने से आश्वासन मिल जायेगा।

प्रिय आत्मन्!

तत्त्व की बात सुनना है, तत्त्व को पाना है, तत्त्व को ही प्रकटाना है। जिन्होंने परम तत्त्व, निज तत्त्व को प्रकट कर लिया है। ऐसे वे सिद्ध भगवान हैं। हम उन सिद्धों को प्रणाम करते हैं, वे सिद्ध अत्यंत निर्मल है, अत्यंत विशुद्ध हैं इसलिए उन सिद्धों को प्रणाम किया।

''तच्चं बहुभेयगयं''

तत्त्व बहुत भेद वाला है। वाचना, शास्त्र लिखने, प्रवचन करने, उपदेश देने का लक्ष्य क्या है ? हेतु क्या है ? महापुरुषों की प्रत्येक क्रिया उद्देश्य पूर्ण होती है।

जहा उद्देसो, तहा णिद्देसो ।

यथा उद्देश: तथा निर्देश: ।। धवला।।

जैसा उद्देश्य होता है, वैसा निर्देश होता है । जैसा लक्ष्य होता है वैसे लक्षण होते हैं, लक्ष्य के अनुसार व्यक्ति लक्षण प्रकट करता है, उद्देश्य के अनुसार निर्देश प्राप्त करता है । इस ग्रंथ का उद्देश्य क्या है ? क्यों लिख रहे हैं ? क्यों वाचना हो रही है ।

''धम्मस्स वत्तणट्ठं''

जिस धर्म तीर्थ को तीर्थंकर आदिनाथ-पारसनाथ-महावीर ने प्रवर्तन किया है, वह धर्म का तीर्थ कहीं रूक न जाये अवाक् गति से चलता रहे, भले ही तीर्थंकर भगवान सिद्धालय पहुँच गये, लेकिन उनका धर्म तीर्थ न रुक जाये, धर्म तीर्थ निरंतर चलता रहे । कैसे चलेगा धर्म तीर्थ ?

मुख्योपचारविवरण, निरस्तदुस्तर विनेयदुर्बोधा: ।
व्यवहार निश्चयज्ञा:, प्रवर्तयन्ते जगति तीर्थम् ।।4।।

।। पुरुषार्थसिद्धियुपाय ।।

मुख्य और उपचार रूप से, अर्पित और अनर्पित रूप से, व्यवहार और निश्चय रूप से, निश्चय और व्यवहार रूप से, जिन्होंने शिष्यों के अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर दिया है, ऐसे व्यवहार और निश्चय नय के ज्ञाता साधु आचार्य विद्वान पुरुषों के द्वारा, इस जगत में, जैन धर्म का तीर्थ चलता है ।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य देवसेन स्वामी और आचार्य अमृतचंद्रस्वामी कहते हैं कि मात्र वाचना नहीं चल रही है, धर्म तीर्थ चल रहा है । वाचना क्यों चल रही है ? ज्ञानी ! गाड़ी में डीजल या पेट्रोल क्यों डाला जाता है ? गाड़ी चलाने के लिये । बस, वाचना किसलिये ? धर्म तीर्थ चलाने के लिये । यहाँ जो उपदेश हो रहा है, वह पूरे तीन लोक में पहुँच जाता है, क्योंकि उपदेश की वर्गणायें इतनी प्रभावशाली होती हैं, परमाणु में इतनी क्षमता होती है, कि वे परमाणु कुछ ही समय में लोक शिखर का स्पर्श कर लेते है । सर्वत्र लोक में बिखर जाते हैं, जो शब्द यहाँ से कानों तक पहुँचे और वे कहाँ चले गये ? पूरे लोक में बिखर गये ।

सम्पूर्ण लोक में धर्म के तत्त्व पहुँचते हैं, जिस तरह से महावीर स्वामी ने धर्म का प्रवर्तन किया है वैसा ही वर्तमान में आचार्य उस धर्मरूपी रथ को आगे बढ़ायें और जिस तरह का संबोधन समवशरण में

तीर्थंकर महावीर ने दिया है, भव्य जीवों के लिये वैसा ही संबोधन प्रदान करें, तो दो उद्देश्य् सिद्ध होंगे। प्रथम धर्म का प्रवर्तन होगा एवं भव्य जीवों को संबोधन प्राप्त होगा। अब प्रश्न आता है, धर्म क्या है ?

''वत्थु सहावो धम्मो''

वस्तु का जो स्वभाव है, वह धर्म है। आत्मा का जो स्वभाव है ज्ञान, दर्शन, व आत्मा का धर्म है, क्षमा आदि के भेद से धर्म दस प्रकार का है। रत्नत्रय को भी धर्म कहते हैं। जीवों की रक्षा को धर्म कहते हैं। अथवा समंतभद्र की दृष्टि से देखें।

सद्-दृष्टि ज्ञान वृत्तानि, धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीय प्रत्यनी-कानि, भवन्ति भव-पद्धति ।।3।। रत्नकरंडकश्रावकाचार ।।

प्रिय आत्मन्!

सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र को धर्म कहते हैं। हम आचार्य कुंदकुंद की अपेक्षा देखें, चारित्र ही निश्चय से धर्म है और वह चारित्र समता पूर्वक है और वह समता मोह क्षोभ से रहित परिणाम है, आत्मा को मोह और क्षोभ रहित बनाने के लिये यह उपदेश है। धर्म का प्रवर्तन कहाँ होता है ? धर्म का आधार आत्मा है, धर्म का प्रवर्तन आत्मा में होता है धर्म का प्रवर्तन जीव में होता है, यदि जीव में हुआ है तो जगत में होगा। और जीव में ही नहीं हुआ, तो जगत में क्या होगा ? इसलिये अमृतचंद्र देव लिखते हैं।

आत्मा प्रभावनीयो, रत्नत्रयतेजसा सततमेव।
दानतपो जिनपूजा, विद्यातिशयैश्च जिनधर्मः ।।30।। पुरुषार्थसिद्ध्युपायः ।।

रत्नत्रय के तेज से सदा आत्मा को प्रभावित करना चाहिये। पहले स्वयं को भावित करो, बाद में प्रभावित करो, स्वयं की भावना ही तो प्रभावना बनती है। प्रकृष्ट भावना-प्रभावना है, जब सामायिक में बैठा योगी उत्तम-उत्तम भावनायें जागृत करता है, विश्व कल्याण की महत्वपूर्ण भावनाओं को जागृत करता है, जगत जीवों के दु:खों को हरने का भाव बनाता है। तब ध्यान देना-ज्ञानी जीव ! उससे प्रभावना होती है, प्रभावना भावना है और भावना मन का विषय है, आत्मा का विषय है। भावना वचन का विषय नहीं है और भावना तन का विषय नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

यह बल्ब जल रहा है, बल्ब प्रकाश दे रहा है, लेकिन प्रकाश देने से पहले स्वयं प्रकाशित हो रहा है, उसी तरह जब तक स्वयं प्रभावित नहीं होंगे, तब तक तुम दूसरे को प्रभावित कर नहीं पाओगे ? बल्ब

की तरह। आचार्य कहते हैं स्वयं के भीतर धर्म का प्रवर्तन होता है, तब बाहर में प्रर्वतन होता है। घड़े के अंदर जल ठंडा होता है, तभी घड़ा बाहर से ठंडा लगता है और घड़े के अंदर का जल यदि गरम हो, तो बाहर से भी गरम होगा। यदि जल का आंकलन करना है कि जल ठंडा है, या गरम, तो जल को नहीं छूते, बाहर के वर्तन का स्पर्श करते ही, मालूम चल जाता है। उसी तरह से आचार्य कहते हैं-भीतर में धर्म का प्रर्वतन है, तो यह पता पड़ जाता है, कि विषय-कषाय से कितने उपरत हुये हैं।

प्रिय आत्मन्!

धर्म के प्रवर्तन के लिये और भव्य जीवों के संबोधन के लिये पूर्वाचार्यो ने तत्त्व के बहुत भेद कहे हैं। तत्त्व के कौन-कौन से भेद कहे हैं ? यह आगम ग्रंथ नहीं है, सिद्धांत ग्रंथ नहीं है, यह अध्यात्म ग्रंथ है। अध्यात्म ग्रंथ से तात्पर्य है, यह आत्मा से संबंध रखने वाला ग्रंथ है, इसमें अन्य चर्चाओं को गौण करके आत्मा की चर्चा को मुख्य करके कथन किया जायेगा, पर, जीवों के लोक व्यवहार को लोप नहीं किया जायेगा, इसमें मात्र पर्याय दृष्टि को व्यवहार कहा जायेगा, और द्रव्य दृष्टि को निश्चय कहा जायेगा।

प्रवचन-धर्म के प्रवर्तन के लिये है, एक स्वगत तत्त्व है। स्व (आत्मा) स्वं (आत्मा को) स्वेन आत्मा के द्वारा, स्वस्मै-आत्मा के लिये, स्वस्मात्-आत्मा से, स्वस्य-आत्मा का, स्वस्मिन्- आत्मा में ध्यान करके परम पद को पा लेता है। सबसे पहला तत्त्व जो है वह स्वगत तत्त्व है, आत्मा स्वगत तत्त्व है। और अन्य परगत तत्त्व हैं। एक स्व तत्त्व है, दूसरा पर तत्त्व है, जो निजआत्मा है वह ही स्व तत्त्व है, अपनी अपनी आत्मा स्व तत्त्व है लेकिन मेरे लिये तुम्हारी आत्मा पर तत्त्व है। ज्ञानी ! हम किन-किन को अपना मान लेते हैं। आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी लिखते हैं।

अहमेदं एदमहं, अहमेदस्सेव होमि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं, सचित्ताचित्तमिस्सं वा ।।20।। समयसार ।।

अर्थ-

मैं यह हूँ, यह मैं हूँ, मैं इसका होता हूँ, यह पर द्रव्य मेरा होता है इस तरह की कल्पना पर द्रव्य को देखकर अज्ञानी जीव करता है। मैं यह हूँ, यह मैं हूँ, मेरा यह है, यह मैं था, मैं यह था, मैं यह हूँ, यह मेरा होगा, मैं इसका होऊँगा, इस तरह परद्रव्यों को जीव अपना मानता है।

लेकिन आचार्य कहते हैं-इस तरह की मान्यता जब तक जीव में रहती है, तब तक जीव अज्ञानी होता है। सचित्त द्रव्य को, अचित्त द्रव्य को, सचित्ताचित्त द्रव्य को भी जीव अपना मान लेता है, लेकिन

मानने से कुछ नहीं हो जायेगा, मानने से वस्तु का स्वरूप नहीं बदल जायेगा। वस्तु का जो स्वरूप है-सो है, मेरे मानने से वस्तु का स्वरूप नहीं बदल जायेगा, यदि मैं सोने को चाँदी मान लूँ, तो सोना-सोनेपने को नहीं छोड़ देगा और चाँदी को सोना मान लूँ तो चाँदी सोना नहीं हो जायेगी। उसी तरह, पर को निज मान लूँ तो, पर निज नहीं हो जायेगा और निज को पर मान लूँ तो, निज पर नहीं हो जायेगा। अपने को दूसरे का मान बैठे और औरों को अपना मान बैठे, तो मान लो। कर्म बंध कर लो।

रत्तो बंधदि कम्मं, मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो, तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ।।150।। समयसार ।।

जितना तुम्हें कर्म बंध करना है, सो कर लो, जितना आर्त-रौद्रध्यान करना है, सो कर लो। जितने नरक, तिर्यंच गति जाने के परिणाम करना सो कर लो। लेकिन पर द्रव्य न त्रिकाल में अपना था, न अपना है, न अपना होगा। ध्यान देना- परद्रव्य को आप मोक्ष की सामग्री बनाइये, परद्रव्य को संसार और नरक की सामग्री मत बनाइये। आचार्य कहते हैं-परद्रव्य में भी कुछ परद्रव्य-हेय हैं और कुछ परद्रव्य-उपादेय हैं, सभी परद्रव्य हेय नहीं हैं और सभी परद्रव्य-उपादेय नहीं हैं ध्यान देना-अनंतानंत आत्मायें हैं संसार में, लेकिन उन अनंतों में सिर्फ मेरी आत्मा ही मुझे उपादेय है। साक्षात् भगवान का समवशरण लगा है, अरिहंत देव सामने बैठे हैं, गौतम गणधर सामने बैठे हैं, राजा श्रेणिक श्रोता बनकर बैठे हैं। राजा श्रेणिक ने प्रश्न किया भगवान महावीर से, हे प्रभो ! मुझे कौन सा द्रव्य उपादेय है और कौन सा द्रव्य आत्म हेय है ? कौन सा द्रव्य परद्रव्य है ? तो महावीर स्वामी कहते हैं, भो राजा श्रेणिक ! तेरा आत्मा निजद्रव्य है, तेरा आत्मा स्व तत्त्व है, तेरे लिये मेरा आत्मा परतत्त्व है। परतत्त्व में भी यह मेरा आत्मा, अरहंत का आत्मा होने से, तेरे लिये उपादेय रुप है, लेकिन तेरे लिये अन्य आत्मायें जो हैं पंच परमेष्ठी के सिवा वे सब हेय हैं।

ज्ञानी जीवो ! निज आत्मा ही मेरा स्वगत तत्त्व है हम अनादि से इस बात को नहीं मिटा पा रहे हैं, कि तुम मेरे नहीं हो, मैं तुम्हारा नहीं हूँ, क्योंकि मान्यता में इतना बसा हुआ है और जब तक यह मोह की ग्रन्थि नहीं टूटती है, तब तक जीव का कल्याण भी संभव नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

यह मोह की ग्रन्थि ज्ञान और वैराग्य के बल से टूटती है, ध्यान देना-लक्ष्मण ने ज्यों ही सुना राम का देहावसान हो गया, इतना सुनते ही लक्ष्मण का देहावसान हो गया। ज्ञानी जीवो! कितना प्रचण्ड मोह था, कितना प्रबल मोह था। ध्यान देना-स्वतत्त्व और परतत्त्व की पहचान जब तक नहीं होती है, तब तक जीव सम्यक्दर्शन को भी प्राप्त नहीं करता है। सम्यक्दर्शन की उपलब्धि के पूर्व स्वतत्त्व और परतत्त्व की

पहचान अनिवार्य है, यह मेरा आत्मा स्वतत्त्व है परिवार तो पर तत्त्व है ही। हे ज्ञानी ! पंचपरमेष्ठी भी पर तत्त्व हैं, परिग्रह परतत्त्व है, परिचय परतत्त्व का है।

निज के लिये आत्मा उपादेय है, कैसा, आत्मा उपादेय है ? निज शुद्धात्मा उपादेय है। तो क्या पंचपरमेष्ठी पर तत्त्व हैं ? तो क्या इनको छोड़ देना चाहिये ? पंचपरमेष्ठी की पूजा, अर्चा, पंचनमस्कार का जाप करने से पुण्य होता है, पुण्य होने से क्या होगा ? पंचपरमेष्ठी की आराधना, जिनेन्द्र की पूजा, गुरु की उपासना से क्या लाभ मिलता है ? जब कि आधुनिक स्वाध्याय प्रेमी जीव यह चर्चा करते हैं, कि पुण्य तो संसार का कारण है, पुण्य से तो जीव संसार में भटकता है, किंतु आचार्य महाराज देवसेन स्वामी हमें सम्यक् रास्ता दिखाते हुये कहते हैं।

उन पंच परमेष्ठी के अक्षर स्वरूप अरहंत का 'अ' पहला अक्षर है। सिद्ध भगवान अशरीरी होते हैं, उनका प्रथम अक्षर 'अ' है। आचार्य का प्रथम अक्षर दीर्घ 'आ' है। उपाध्याय का पहला अक्षर 'उ' है और मुनि का पहला अक्षर 'म्' है। इन पाँचों की आपस में संधि कीजिये। क्रमशः अ+अ+आ+उ+म=ओम् (ॐ) शब्द बनता है। अरहंत का 'अ', सिद्ध का 'सि', आचार्य का 'आ', उपाध्याय का 'उ', साधु का 'सा', तो 'अ सि आ उ सा' हो गया। आचार्य कहते हैं-

पणतीस-सोल-छप्पण, चदु-दुग-मेगं च जवह झाएह।
परमेट्ठि-वाच याणं, अण्णं च गुरू-वएसेण ॥49॥ द्रव्यसंग्रह ॥

पैंतीस अक्षर का मंत्र णमोकार मंत्र है, महामंत्र, मूलमंत्र, अनादि निधन मंत्र, अपराजित मंत्र, महामंत्र के नाम से यह विख्यात मंत्र है। संसार में सार भूत कोई मंत्र है, तो णमोकार महामंत्र है, ऐसे णमोकार मंत्र के मात्र अक्षर रूप यदि पूरा मंत्र भी ध्यान न कर पाओ, तो मात्र अक्षरों का भी चिंतन करने वाले जीव को बहुत पुण्य बंधता है। मात्र णमोकार के चिंतन से भूतकाल के पाप नष्ट हो जाते हैं, वर्तमान काल में पाप होता नहीं है, इसलिये भूतकाल का प्रतिक्रमण हो गया, वर्तमान की आलोचना हो रही है और भविष्य का प्रत्याख्यान हो रहा है।

ज्ञानी जीवो ! जो णमोकार की जाप करता है, वह एक काल में जाप करता है, किंतु तीन काल के पाप त्याग करता है, जिस समय मैंनें णमोकार को जपा है, णमोकार जपते समय भूतकाल के जो पाप थे, वे उदय में आकर के निष्क्रिय होकर जा रहे हैं। उदय में तो आ रहे हैं लेकिन निष्क्रिय होकर जा रहे हैं। क्यों ? जैसे सरोवर में तुम प्रवेश कर गये हो, तो सूरज की किरणें तपा नहीं रही और पेट में प्यास, भूख भी सता नहीं रही, क्योंकि सरोवर की शीतलता का इतना प्रभाव है, कि उसके कारण न तो प्यास सता रही

है, न तपन बढ़ रही है, आगे की तपन से बच गये और पीछे की प्यास से बच गये और वर्तमान में शीतलता का अनुभव हो रहा है उसी तरह से णमोकार के स्मरण से भूतकाल के पाप प्रलय को प्राप्त हो जाते हैं, भविष्य में पाप नहीं होते है और वर्तमान में आलोचना चल रही है।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य कहते हैं-णमोकार मंत्र को यदि पौन घंटे में व्यक्ति एक बार पढ़ लेता है, तो उस जीव की कभी दुर्गति नहीं हो सकती। लिखकर रख लेना, यह दिगम्बर योगी, वीरसेन-भगवान कलिकाल के सर्वज्ञ भगवान का वचन है, जो जीव--भाव सहित णमोकार मंत्र का मात्र पौन घंटे में एक बार भी जाप कर लेता है, अंतमुर्हुत में एक बार जाप कर लेता है तो उस णमोकार मंत्र वाले की लेश्या शुभ हो जाती है और शुभ लेश्या के अंतमुर्हुत तक परिणाम निर्मल रहते हैं, यही कारण है कि णमोकार जपने वाला स्वर्ग जाता है, नियम से स्वर्ग ही जाता है, णमोकार महामंत्र की ऐसी महिमा है।

प्रिय आत्मन्!

पत्थर पर बीज बोने से क्या मिलेगा और भावरहित क्रिया से क्या मिलेगा। जब बीज बोने की बात करूँ, तो पत्थर की बात आयेगी ही नहीं, मिट्टी की ही बात आयेगी। उसी तरह जैन दर्शन में क्रिया की बात हो तो पहले भाव लगा लेना, जैसे बीज बोने के पहले मिट्टी को देखा करते हो, उसी तरह क्रिया के करने के पहले भाव देखा करो। जितनी मिट्टी उपजाऊ होगी, उतना अच्छा बीज फलेगा और जितने भाव अच्छे होंगे उतनी अच्छी क्रिया फलदायी होगी। भावों की उपजाऊँ भूमि में क्रिया के फल फलते हैं। इसलिये भावों की भूमि को संयम के ज्ञान और वैराग्य के हल से जोतिये ताकि भावों की भूमि उपजाऊँ बनी रहे।

एसो पंचणमोयारो, सव्वप्पाव-पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं ।।

प्रिय आत्मन्!

यह पंचनमस्कार मंत्र सभी पापों को नाश करने वाला है एवं सभी मंगलों में पहला मंगल है इस मंत्र के स्मरण से बहुत पुण्य बंधता है। पुण्य क्या है ? जो परिणाम आत्मा को पवित्र करे, उस परिणाम का नाम पुण्य है, णमोकारमंत्र के स्मरण से आत्मा के परिणाम निर्मल होते हैं। मुझे अरिहंत बनना है, यह मेरे आत्मा की निर्मल परिणति है। मुझे सिद्ध बनना है, यह भाव पैदा हो रहा है, यही भावों की निर्मलता है। मुझे आचरण करना है यही मेरे आचार्य होने के भावों की निर्मलता है। मुझे ज्ञान आराधना करना है, यह उपाध्याय जपने की विशेषता है और मुझे साधना करना है, इस तरह से साधु को जपने की विशेषता है।

भावों की निर्मलता ही तो जीवन की सफलता है। जिसके जितने निर्मल भाव होते हैं उसे उतनी जल्दी निर्वाण मिलता है। और भाव मलिन हो तो निर्वाण दूर होता है। चार प्रकार का पुण्य होता है, एक शक्कर की तरह पुण्य, मिश्री की तरह पुण्य, खांड की तरह पुण्य, और एक अमृत की तरह पुण्य। जब हम णमोकार मंत्र की आराधना करते हैं, तो वह मिश्री रूप और अमृत रूप हो जाता है, पुण्य विष रूप नहीं है। आचार्य कहते हैं शुभ प्रकृतियाँ जो हैं वह गुड़ रूप, शक्कर रूप, मिश्री रूप और अमृत रूप हैं। और पाप प्रकृतियाँ भी चार प्रकार की होती हैं, नीम, कांजी, विष और हलाहल यह चार पाप प्रकृतियाँ हैं।

णमोकार के जपने से विष और हलाहल रूप प्रकृतियाँ अमृत के समान तो नहीं बन पाती हैं लेकिन नीम और कांजी रूप जरूर बन जाती हैं। विष को नीम के काड़े में बदल देना हलाहल को कांजी के काड़े में बदलने की क्षमता है, णमोकार महामंत्र में और शक्कर को अमृत में बदलना हो, खांड को मिश्री में बदलना हो तो, आचार्य कहते है यह ताकत णमोकार मंत्र में है। आप कहते हैं महाराज यह शक्कर है आप इसको अमृत में बदलो। ज्ञानी ! मैं द्रव्य शक्कर की बात नहीं कर रहा, भाव शर्करा की बात कर रहा हूँ, जैसे तुम्हारे परिणाम हैं और उन परिणामों को और मीठा और पवित्र अमृत के समान मीठा बनाना हो तो णमोकार की जाप शुरू कर दो, तो तुम्हारे परिणाम अमृत के समान मधुर हो जायेंगे।

प्रिय आत्मन्!

पाप प्रकृतियाँ एक सौ हैं और पुण्य प्रकृतियाँ अड़सठ हैं। और जो स्पर्शादि बीस प्रकृतियाँ हैं, वे पुण्य रूप भी होती हैं और पाप रूप भी होती हैं। सफेद रंग अच्छा होता है, कि बुरा ? अच्छा। यह आँख कुछ काली है, हमारी आँख यदि पूरी सफेद हो जाये तो क्या अच्छी रहेगी ? नहीं। ज्ञानी यदि तूने काले रंग को बुरा मान लिया, तो यह आँख जो काली है, यह बुरी है, कि अच्छी ? अच्छी। यदि काली न होती, पूरी सफेद होती तो और दाँत सफेद न होकर पूरे काले पड़ जाये तो। इसलिये यह जानना, जब स्पर्श की आठ, रस की पाँच, गंदगी दो, वर्ण के पाँच, ये बीस प्रकृति शुभ अशुभ उभय रूप हैं। किसी स्थान की अपेक्षा शुभ हैं और किसी स्थान की अपेक्षा अशुभ हैं, कालिमा आँखों में अच्छी लग रही है दाँतों पर अच्छी नहीं लगती है।

प्रिय आत्मन्!

जो अड़सठ पुण्य प्रकृतियाँ हैं उनमें से जो प्रकृतियाँ जिस गुणस्थान में बंधने के योग्य हैं, वे णमोकार के जपने से, पंच परमेष्ठी का ध्यान करने से, ऐसी बहुत सी पुण्य प्रकृतियों को बंध प्राप्त हो जाता है, हमें पता भी नहीं पड़ता है, कि हमने ऐसा कौन सा पुण्य किया था ? जो इतना अच्छा स्वर मिला है।

ज्ञानी ! तुम्हें जब गाना नहीं आता था, तो तुमने णमोकार का पाठ किया था, भक्तामर का पाठ किया करते थे, और उसी का परिणाम है, कि आज तुम्हें सुस्वर नाम कर्म मिला है। हम कभी-कभी यह विचार करते हैं, कि हमने ऐसा कौन सा पुण्य किया था।

ज्ञानी ! बहुत से कार्य नहीं करने पड़ते हैं, कार्य एक करना पड़ता है, उसके फल बहुत से प्रकार के हो जाते हैं, क्या फूलों को पानी देना पड़ता है ? नहीं। क्या पत्तों को पानी देना पड़ता है ? नहीं। क्या शाखाओं को पानी देना पड़ता है ? नहीं। क्या तनों को पानी देना पड़ता है ? नहीं। मात्र जड़ को पानी देते हैं, शाखाओं तक पहुँच जाता है, डालियों तक पहुँच जाता है, फुलों तक पहुँच जाता है, पत्तों तक पहुँच जाता है, उसी तरह से एक णमोकारमंत्र की आराधना करते हैं, पंचपरमेष्ठी की जाप करते हैं, जिनेन्द्र की पूजा करते हैं। कारण एक होता हैं और कार्य हजार हो जाते हैं। इसलिये यह ध्यान रख लेना-फुलों को सीचने के लिये फूल नहीं सींचे जाते, पत्तों को पाने के लिये पत्ते नहीं सींचे जाते, मात्र जड़ सींची जाती है।

आत्मा में णमोकार का ध्यान चल रहा है। भगवान का अभिषेक कर रहे हैं, वहाँ व्यापार में अपने आप समृद्धि हो रही है, दुकान खोलने से दुकान नहीं चलती है। और दुकान चलाने से नहीं चलती है। सत्ता में जिसके पुण्य होता है उसी की चलती है और सत्ता में पुण्य न हो तो, ज्यों ही दुकान खोली, उसी समय टैक्स वाले आ गये, इसलिये ध्यान देना-णमोकारमंत्र की आराधना से बहुत सा पुण्य बंधता है और पुण्य से संसार ही नहीं, परम्परा से वही पुण्य मोक्ष का कारण होता है।

यदि पुण्य न होता तो क्या मुझे यह शरीर मिलता ? क्या मुझे यह वाणी मिलती, क्या मुझे इंद्रियाँ मिलती, क्या मुझे यह मन मिलता, यह पुण्य का योग ही है कि हम तुम्हें प्रवचन सुना रहे हैं। हे प्रभो! हमारा जीवन धन्य है जो कि मैंने किस जनम में ऐसा कौन सा पुण्य किया होगा, जिस पुण्य के प्रभाव से आज-मैं अपने लिये भगवान महावीर स्वामी की दिव्य-ध्वनि के अक्षर आपके लिये इन कर्ण कुण्डों में, कंठ में प्रवेश करा रहा हूँ, मेरा सौभाग्य है कि इस मुख से थूक तो सभी निकालते हैं, कफ तो सभी निकालते हैं, लार तो सभी निकालते हैं, लेकिन इस मुख से भगवान जिनेन्द्र देव की वाणी निकालने का सौभाग्य मिल रहा है। यही तो प्रबल पुण्य है।

प्रिय आत्मन्!

रास्ते में चलते देख लेना, पान को खाकर के चबाकर के थूकने वाले बहुत मिल जायेंगे। लेकिन इसी मुख से णमोकार को सुनाने वाले बहुत बिरले मिलेगें।

सम्माइिट्टी पुण्णं, संसार कारणं न होइ णियमेण।
मोक्खस्स होइ हेउ, जह वि णियाणं ण कुवइ ।। भावसंग्रह ।।

आचार्य बामदेव कहते हैं-सम्यक्दृष्टि जीव का पुण्य नियम से संसार का कारण नहीं होता है, सम्यक्दृष्टि का पुण्य नियम से मोक्ष का ही कारण होता है, यदि वह निदान न करे तो। ध्यान रख लेना-आपका यह णमोकार का जो पुण्य है, आपकी जो पूजा का पुण्य है यह मोक्ष का ही कारण है यदि आप निदान न करो तो और निदान कर लिया, कि भगवान आपके दर्शन से हमारी दुकान अच्छी चले, तो संसार का कारण है। इसलिये श्वाँस-श्वाँस में णमोकार होना चाहिये।

बाल्यकाल से अब तक मैंने जो सेवा की हो।
देना चाहो प्रभो! आप तो, बस इतना फल दो।।
श्वाँस-श्वाँस, अन्तिम श्वाँसों में, णमोकार भर दो।
मेरा अन्तिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो ।।5।। समाधि भक्ति।।

पूज्यपाद देव लिखते हैं कि श्वाँस-श्वाँस में णमोकार होना चाहिये, मैं अंतर्मुहुर्त में एक बार की बात कर रहा था, कि कम से कम अड़तालीस मिनिट के अंदर एक बार भी णमोकार का पाठ कर लो तो, कभी किसी की दुर्गति नहीं हो सकती है। इस तत्त्व देशना सार जीवन में अवतरित हो इस मंगल भावना के साथ। ऊँ नमः।

जं पुणु सगयं तच्चं, सवियप्पं हवइ तह य अवियप्पं।
सवियप्पं सासवयं, णिरासवं विगयसंकप्पं ।। 5 ।।

अर्थ-

जो स्वगत स्वतत्त्व है। वह सविकल्प तथा अविकल्प के भेद से दो प्रकार का है। सविकल्प स्वतत्त्व आस्रव-सहित है। और संकल्प-रहित निर्विकल्प स्वतत्त्व आस्रव-रहित है।

इंदियविसयविरामे, मणस्स णिल्लूरणं हवे जइया।
तइया तं अवियप्पं, ससरूवे अप्पणो तं तु ।।6।।

अर्थ-

जब इन्द्रियों के विषयों का विराम अर्थात् इच्छानिरोध हो जाता है, तब मन का निर्मूलन होता है और तभी वह निर्विकल्पक स्वगत तत्त्व प्रकट होता है। और वह आत्मा का अपने स्वरूप में अवस्थान होता है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी ! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्षमहल-धारिणी, पाप-ताप-संताप- हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

जो भाव है, वह तत्त्व है, और जो सारभूत है, वह तत्त्वसार है, जीव अनादि अनंत तत्त्व में से एक स्वगततत्त्व है और शेष परगततत्त्व हैं। ज्ञानी जीवो ! स्वतत्त्व की प्राप्ति के लिये पर तत्त्व हेय भी हैं, और उपादेय भी हैं, किंतु आचार्य लिखते हैं हम सबको, कि परगततत्त्व मैं यहाँ पर नहीं कहूँगा। क्योंकि जो हेय है उसे मैं तत्त्व ही नहीं मानता, न वह स्वतत्त्व हैं, न वह परगतत्त्व हैं, वह तो कुतत्त्व हैं। इसलिये आचार्य ने कुतत्त्व को यहाँ नहीं रखा, परगततत्त्व को यहाँ नहीं रखा, स्वगततत्त्व को रखा है। स्वगततत्त्व दो प्रकार का है, एक सविकल्प स्वतत्त्व दूसरा निर्विकल्प स्वतत्त्व।

आत्मा स्वतत्त्व है। और अरिहंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय और साधु यह पंचपरमेष्ठी परगततत्त्व हैं। किंतु परगततत्त्व होने के बाद भी शुभतत्त्व हैं, श्रेष्ठतत्त्व हैं। पंचपरमेष्ठी की आराधनायें मेरी आत्मा के लिये, सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र की हेतु हैं, इसलिये सुतत्त्व हैं। परमेष्ठी वाचक एक अक्षर रूप ध्यान भी मेरे लिये पाप कर्म का संवर कर्ता, आस्रव का निरोधक एवं शुभास्रव का कारक तथा मोक्ष का साधक है। इसलिये परगततत्त्व में यहाँ पर, परमेष्ठी को नमस्कार किया है संसार के अन्य प्राणियों को नहीं।

तत्त्वसार में परमतत्त्व को परगततत्त्व कहा है। परमेष्ठियों को परगततत्त्व कहा है। अन्य जगत के प्राणियों को तो ग्रहण ही नहीं किया। जो प्रयोजनीय हैं उनको ग्रहण किया, क्योंकि वह तत्त्वों के ज्ञानी हैं। सम्यक्दृष्टि-ज्ञानी हैं। सम्यक्दृष्टि-आत्मा और शरीर का भेद-विज्ञानी है, अत: वह सम्यक्ज्ञानी है। यहाँ उपादेयतत्त्व की चर्चा नहीं की जायेगी, यहाँ हेयतत्त्व की चर्चा नहीं की जायेगी। मात्र परमेष्ठीतत्त्व और आत्मतत्त्व की चर्चा है, जो स्वतत्त्व है। वह स्वतत्त्व दो प्रकार का है। एक सविकल्प तत्त्व है, दूसरा निर्विकल्प तत्त्व है।

अविकल्पतत्त्व को निर्विकल्प तत्त्व भी कहते हैं। सविकल्प तत्त्व को सविकल्पसमाधि कहते हैं। निर्विकल्पतत्त्व को निर्विकल्पसमाधि कहते हैं। जब तक शुभोपयोग की दशा है, तब तक सविकल्पतत्त्व है। जब निर्विकल्प शुद्धोपयोग है, वह निर्विकल्पतत्त्व है। शुद्धोपयोग में लीन साधु आत्मा के ही कार्य

करेगा। जो सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र व्यवहारधर्म की आराधना कर रहा है इसलिये वह सविकल्पतत्त्व का आश्रय लिये है। यह स्वाध्याय, यह प्रतिक्रमण, यह सामायिक, यह आवश्यक, यह सब सविकल्प स्वतत्त्व की अवस्था में होती है। निर्विकल्पतत्त्व क्या है ? शुभोपयोग के उत्कर्ष से शुद्धोपयोग अवस्था को स्पर्श करता है, तब निर्विकल्पतत्त्व में पहुँचता है। निर्विकल्पतत्त्व में जाने के लिये सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व है, शुद्धोपयोग।

निर्विकल्प होने का लक्ष्य क्या है ? निर्विकल्प होने का लक्ष्य है कि परमनिर्वाण प्राप्ति ही परमलक्ष्य है। लेकिन निर्वाण के पूर्व ही उसे परम आत्मानुभूति का संवेदन करना होगा। जब तक जीव निर्विकल्प नहीं होगा, निर्द्वन्द नहीं होगा, तब तक चिदानंद चैतन्यमयी निजआत्मा का अनुभव नहीं कर पायेगा और जिस क्षण निर्विकल्प हुआ है, उसी क्षण परम स्वानुभूति को प्राप्त हुआ है और जब तक सविकल्प हैं, तब तक उसकी स्वानुभूति में बहुत अंतर रहेगा। तो यहाँ पर सविकल्पदशा की अनुभूति है, परआनंद में भिन्नता है, निर्विकल्पदशा की अनुभूति और आनंद में भिन्नता है।

प्रिय आत्मन्!

सविकल्पदशा का पुरुष जानता बहुत है, पर अनुभव कम करता है और निर्विकल्पदशा का पुरुष जितना जानता है, उसका अनुभव करता है, सविकल्पदशा जो है वह आस्रव सहित है और निर्विकल्पदशा आस्रव रहित है। आप कहोगे महाराज आस्रव तो तेरहवें गुणस्थान तक रहता है क्योंकि योग वहाँ पर भी है वहाँ पर भी आस्रव होता है। तो वह सैद्धान्तिक विषय है। पर यह आध्यात्मिक विषय है।

अध्यात्म क्षेत्र भिन्न होता है, सिद्धांत का क्षेत्र भिन्न होता है। यहाँ आस्रव से तात्पर्य अशुभादि आस्रव है वह तत्क्षण रुक जाता है। आस्रव से दो बातें और जानना, अध्यात्म के क्षेत्र में जो बुद्धिपूर्वक आस्रव होता है, उसका रुक जाना ही आस्रव का निरोध है। एक बुद्धि पूर्वक आस्रव होता है और दूसरा अबुद्धि पूर्वक आस्रव होता है। बुद्धि पूर्वक वह कहलाता है, जिसके पंच इंद्रिय और व्यापार के चलने से जो आस्रव हो रहा है, वह बुद्धिपूर्वक आस्रव कहलाता है और जहाँ पंचेन्द्रिय एवं मन का व्यापार रुक गया है, जिसका स्वयं को ज्ञात नहीं है और प्रमाद नहीं होने से अज्ञात नहीं है और इंद्रिय व मन के रुक जाने से ज्ञात ही नहीं है। इस तरह से जो तत्त्व है, वह निरास्रवतत्त्व है। क्योंकि बुद्धिपूर्वक वहाँ पर आस्रव नहीं किया जा रहा है, प्रवृत्ति बुद्धिपूर्वक नहीं की जाती है, सहजरुप से चल रही है।

जैसे अभी हाथ की नाड़ी चल रही है, तो अभी श्वाँस चल रही है, अभी श्वाँस का आना जाना हो रहा है, यह अबुद्धिपूर्वक हो रहा है। बुद्धिपूर्वक काम करेंगें, अधिक श्वाँस लेंगें, अधिक श्वाँस छोडेंगें,

या मंद श्वाँस करेंगें, फिर मंद श्वाँस छोड़ेंगें वह बुद्धिपूर्वक किया जाता है। आस्रव बुद्धिपूर्वक होता है, अपनी समग्र बुद्धि को ध्यान में लगा देना, अब वह बुद्धि बाहरी पदार्थ से हटकर के भीतर में समाहित हो जाती है, तब निर्विकल्प तत्त्व की प्राप्ति होती है। अध्यात्म तत्त्व में जीव निरास्रव होता है, निरास्रव से तात्पर्य सप्तम गुणस्थान आदि ग्रहण करना। क्यों ग्रहण करना ? समयसार आदि ग्रंथों में कहा है अध्यात्मग्रंथ में जहाँ आत्मा में प्रवेश हो चुका है, वहाँ ही जीव निरास्रव कहा गया है। कैसे जीव निरास्रव होता है ? कैसे जीव अबंध होता है ? जब तक इंद्रियाँ, सुख में लीन है, मन शुभ में लीन है, तब तक सविकल्पतत्त्व है, अभी आप उपदेश सुन रहे, शास्त्र अवलोकन कर रहे, गुरुदर्शन कर रहे, प्रभु का दर्शन कर रहे हो, यह सब स्वतत्त्व की स्थिति है।

जो सविकल्प स्वतत्त्व है, वह चतुर्थ, पंचम, षष्ठं गुणस्थान, जहाँ तक शुभोपयोग का व्याख्यान हुआ है, वहाँ ही है। निर्विकल्प तत्त्व की प्राप्ति के लिये आचार्य कहते हैं-

चलो फिरो मत, हिलो डुलो मत, बोल नहीं बोलो।
कुछ न सोचो, कुछ ना चाहो, बस निश्चल होलो॥
राग-द्वेष अरु मोह करो मत, विधि आवश्यक है।
ममता तजना, समता भजना, ही सामायिक है॥

आचार्य नेमिचंद्र जी लिखते हैं-मोह, राग, द्वेष मत करो, यदि निर्विकल्प होना है तो, मोह, राग, द्वेष, चेष्टा मत करो, जहाँ चेष्टा है, प्रवृत्ति है, वहाँ विकल्प है। जहाँ प्रवृत्ति नहीं है, वहाँ निर्विकल्पपना है। चिंतन भी नहीं करना है क्योंकि चिंतन की दशा सविकल्पतत्त्व है और निर्विकल्पतत्त्व अचिंतन की दशा है। जहाँ तक चिंतन है वहाँ तक शुभ विचार है, सविकल्पतत्त्व है, शुभास्रव है। आचार्य कहते हैं- निर्विकल्पतत्त्व के माध्यम से जीव निरास्रव होता है, एक शब्द आता है-

धुन रे धुनियाँ अपनी धुन।
अपनी धुन में पाप न पुन॥

ज्ञानी ! अपनी आत्मा का ध्यान करने से न पाप होता है, न पुण्य होता है। परमेष्ठी की पूजा से, गुरु के दर्शन से, शास्त्रों के अभ्यास से पुण्य होता है। लेकिन निज आत्मा का निर्विकल्पध्यान करने से न पुण्य होता है न पाप होता है। जिन्होंने बुद्धि पूर्वक पाप, पुण्य दोनों क्रियाओं को रोक दिया है, ऐसे व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा के कारण दिगम्बर तपोधन सत्तावन प्रकार के संवर को प्राप्त होते हैं। सत्तावन प्रकार के आस्रव का निरोध होता है।

प्रिय आत्मन्!

गोमटेश्वर में बाहुबली भगवान की प्रतिमा सत्तावन फीट की है, क्यों है ? क्या संदेश देती है ? हे ज्ञानी जीवो ! तुम यहाँ पर आये हो अभी तक संसार में सत्तावन प्रकार का आस्रव होता है, तुम यदि सत्तावन प्रकार के आस्रव को रोक दोगे, तो तुम भी एक दिन मेरे जैसे बन जाओगे। सत्तावन प्रकार के आस्रव को रोकने का उपाय मैंने प्राप्त किया। सत्तावन प्रकार के संवर की विधि को प्राप्त किया है। श्री समयसार जी में संवर की विधि में आचार्य अमृतचंद ने दो बातें विशेष कहीं हैं, आत्मा में आत्मलीन हो जाना संवर की विधि है। आचार्य देवसेन जी तत्त्वसार में कहते हैं, आत्मा-आत्मा में लीन कब होता है ? जब तक योगी इन्द्रियों के विषय विराम को प्राप्त नहीं होंगे और मन का निर्मूलन नहीं होगा, तब तक आत्मा-आत्मा में लीन नहीं हो सकता है। इसलिये सर्वप्रथम निर्विकल्पतत्त्व की सिद्धि के लिये बाहुबली स्वामी ने सत्तावन प्रकार का संवर किया था।

स्वयं को वही 'वर' सकता है, जो संवर कर सकता है। स्वयंवर करने वाला संवर नहीं कर पाता है, इसलिये एक 'वर' ने वन में दिगम्बर को देखा दिगम्बर के चरणों में दिगम्बर होने के लिये, अम्बर में अम्बर को फेंककर दिगम्बर हो गया, स्वयं को 'वर' लिया। वह कौन थे ? भवदेव, जो शादी करके लौट रहे थे, दुल्हन का भाई उसके साथ में था और दुल्हन भी उसके साथ में थी, चला जा रहा था घर वापिस, रास्ते में एक दिगम्बर मुनि दिखे वह ''वर'' दिगम्बर मुनि को देखने लगा, तो दुल्हन के भाई ने मजाक-मजाक में कह दिया कि जीजा जी, दिगम्बर मुनि को देख रहे हो ? क्या दीक्षा का विचार है ? साले से जीजा जी बोले तुम दीक्षा लोगे, तो मैं भी दीक्षा ले लूँगा। भवदेव के मन में तो विचार था ही और दुल्हन के भाई ने भी बोल दिया, तत्क्षण वह दिगम्बर मुनि के चरणों में पहुँच गये, स्वयंवर से आ रहे थे। दिगम्बर के चरणों में साले के साथ गये। दिगम्बर के चरणों में दिगम्बर होने के लिये, अम्बर में अम्बर को फेंककर दिगम्बर हो गये, और स्वयं को 'वर' लिया तो तत्काल संवर हो गया।

प्रिय आत्मन्!

यह है इंद्रियों के विषयों का विराम।

संयम्य करण ग्राम, मेकाग्रत्वेन चेतसः।
आत्मानमात्मवान् ध्याये, दात्मनै वात्मनि स्थितम् ॥22॥ इष्टोपदेश॥

आचार्य कहते हैं-इंद्रियों के समूह को संयमित करके, चित्त को एकाग्र करके निज आत्मा में निज आत्मा का अवलोकन करने से निर्विकल्पतत्त्व की उपलब्धि होती है। जैसे-दही के मंथन से नवनीत की प्राप्ति होती है। उसी तरह से शुभोपयोग के करते-करते, वही शुभोपयोग जब उत्कर्ष को प्राप्त होता है, तो शुद्धोपयोग का उद्भावन हो जाता है। जिसका शुभोपयोग ही उत्कर्ष को प्राप्त नहीं है, उसका शुद्धोपयोग नहीं हो सकता है, इसलिये यदि एक घंटे भी ध्यान में बैठे और एक सेकेंड के लिये भी तुम्हारी शुद्धता बन गयी, तो आचार्य कहते हैं उस जीव को व्रत की उपलब्धि होगी।

अमावस्या की रात में, वन में भटकते हुये व्यक्ति के लिये अचानक बिजली की चमक से राजमार्ग दिखाई देता है। ज्ञानी ! वह राजमार्ग पर आ जाता है, उसी तरह से एक सेकेंड के लिये भी यदि शुद्धदशा की अनुभूति हो जाती है, तो आचार्यदेव कहते हैं-कि समग्र जीवन सफल हो जाता है और शुद्धोपयोग में निर्विकल्पतत्त्व की प्राप्ति होती है। जो निर्विकल्पदशा है, वह शुद्धोपयोग ही है और शुद्धोपयोग में भी सप्तम् गुणस्थान में भी सातिशय दशा है। जहाँ पर श्रेणी के पूर्व की आरोहण दशा है। सिद्धांत दृष्टि से, अध्यात्मिक दृष्टि से, यही उपलब्धि शुद्धोपयोगी सप्तम् गुणस्थानवर्ती करता है, तभी यह उपलब्धि होती है। जब जीव सकल संयम को पाकर के, व्यवहार रत्नत्रय के आगे, जब निश्चय रत्नत्रय में प्रवेश करता है, तो निश्चय रत्नत्रय के साथ निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करता है। उसे निर्विकल्प समाधि, निश्चय रत्नत्रय, शुद्धोपयोग, निश्चय धर्म ध्यान या निर्विकल्प तत्त्व कहो, यह सब एकार्थवाची हैं। इस तरह से यह सप्तम् गुणस्थान में प्राप्त होंगें। उत्कृष्ट नहीं, प्रारंभ की अपेक्षा। उत्कृष्ट अनुभूति तो बारहवें गुणस्थान में जाकर होगी। सप्तम् गुणस्थान में इसका जन्म होता है, बढ़ते क्रम से जाती है बारहवें गुणस्थान में, उत्कृष्टता को प्राप्त होती है। तेरहवें गुणस्थान में और चौदहवें गुणस्थान में उसका फल प्राप्त होता है।

प्रिय आत्मन्!

प्रथम गुणस्थान से तृतीय गुणस्थान तक तारतम्य से घटते क्रम में अशुभोपयोग होता है। चतुर्थ गुणस्थान से छठवें गुणस्थान तक बढ़ते क्रम में शुभोपयोग होता है। सप्तम् गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक बढ़ते क्रम में शुद्धोपयोग होता है। तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में शुद्धोपयोग का फल प्राप्त होता है।

अरहंत, सिद्धों को नमस्कार करते हैं क्या? अरहंत, सिद्धों को नमस्कार नहीं करते, क्योंकि नमस्कार वह करता है जिसके पास मोह होता है, जिसके पास मोह नहीं है, वह नमस्कार नहीं कर सकता है। ज्ञानी जीव! जो सिद्धों को नमस्कार किया है, वह उन्होंने पंचम गुणस्थान में किया है, क्योंकि तीर्थंकर भगवान दीक्षा लेते समय जो सिद्धों को नमस्कार करते हैं वह पंचम गुणस्थान में करते है।

जितने भी तीर्थंकर होते हैं, वे आठ वर्ष अंतर्मुहूर्त में देशव्रती हो जाते हैं, पंचम गुणस्थान को प्राप्त कर लेते हैं, मोहनीय कर्म जब तक है तब तक जीव के नमस्कार और निंदा का भाव हो सकता है, लेकिन नमस्कार और तिरस्कार से परे जिसका जीवन होता है, वहाँ वीतरागता का जन्म हो जाता है। स्वयंभूस्त्रोत में में स्पष्ट लिखा है।

ब्रुवन्नम: सिद्ध:-पदाय-वाक्य-मित्यग्रहीद्य: स्वयमेव लोचम्।
लौकान्तिकेभ्य : स्तवनं निशम्य, वन्दे जिनेशं मुनिसुब्रतं तम् ।।20।। लघु स्वयंभूस्त्रोत।।

एक केवली दूसरे केवली को नमस्कार नहीं करते हैं, भगवान महावीर का समवशरण लगा है, और वहाँ पर बहुत केवली भगवान विराजमान हैं, सभा में शोभायमान तो हैं, शोभा भी बढ़ाते हैं, किंतु एक-दूसरे को नमस्कार नहीं करते, नमस्कार वहाँ किया जाता है, जहाँ गुणों की प्राप्ति की भावना हो और जहाँ पर दोनों ने एक समान गुणों को प्राप्त कर लिया है, तो फिर कौन किसको नमस्कार करेगा ? यह बात हमारे सामने आती है।

'न संस्तुतो न प्रणत: सभायां, य: सेवितोऽन्तर्गण-पूरणाय।
पदच्युतै: केवलिभि र्जिनस्य, देवाधिदेवं प्रणमाम्यरं तम् ।।8।। लघु स्वयंभूस्त्रोत।।

रत्नत्रय विधान में पं. आशाधर जी लिखते हैं, न तो आपकी स्तुति की जाती है, न आपको प्रणाम किया जाता है। आप सभा के मध्य बैठे हैं समवशरण में विराजित हैं, गंधकुटी में बैठे हैं लेकिन केवली भगवान गंधकुटी में बैठे तीर्थंकर महावीर की न स्तुति करते हैं, न प्रणाम ही करते हैं। क्यों ? क्योंकि एक केवलज्ञानी दूसरे केवलज्ञानी को नमस्कार नहीं करता। तेरहवें गुणस्थानवर्ती तेरहवें-गुणस्थानवर्ती को नमस्कार नहीं करेगा। क्योंकि, समान गुण हैं। मोह रहित हैं।

प्रिय आत्मन्!

इंद्रियों के विषय के विराम हो जाने पर, अर्थात् इच्छाओं का निरोध हो जाने पर, मूलाचार में कहा, आप इंद्रियों के विराम की बात क्यों करते हैं ? तो उन्होंने कहा ध्यान में प्रवेश के लिये। जब तक इंद्रियों का निरोध नहीं होगा, इंद्रियों से तात्पर्य-इंद्रियों के विषयों का निरोध नहीं होगा, तब तक आप ध्यान में प्रवेश नहीं कर पायेंगें। इसलिये मूलाचार में दस प्रकार के मुंडन की बात कही है-

पंच वि इंदियमुंडा वचमुंडा हत्थपायमणमुंडा ।
तणुमुडेण वि सहिया दसमुंडा वण्णिया समये ।।

पंचेन्द्रिय मुंडन, हाथ-पैर का मुंडन, शरीर का मुंडन, मन, वचन, काय का मुंडन यह सभी प्रकार के मुंडन बताये हैं, अकेले केशलोंच कर लेने से मुंडन नहीं हो जाता है। आचार्य देव कहते हैं, इंद्रियों का मुडंन कितना किया है, हाथ-पैर का मुंडन हुआ कि नहीं हुआ अर्थात् हाथ-पैर को वश में करना सीखा कि नहीं सीखा। मन, वचन और काय को वश में करना सीखा, कि नहीं सीखा। शरीर को वश में करना सीखा, कि नहीं सीखा। इसलिये दस प्रकार का मुंडन है। आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज प्रत्येक सामायिक में इस गाथा को नियम से पढ़ते हैं। यह दस प्रकार के मुंडन की बात अत्यंत आवश्यक है- ध्यान के लिये। महाराज ! इंद्रियों का निरोध आप क्यों बताते हैं ? हे ज्ञानी ! चक्षु इंद्रिय को लीजिये, क्योंकि सबसे दूर के विषय को बनाने वाली कोई इंद्रिय है, तो वह चक्षु इंद्रिय है। यदि आप अपने घर की छत पर खड़े हो जायें तो कितने दूर तक का विषय देख लेंगें ? या आप टी.वी. के सामने खड़े हो जायें, तो फिर पूरे देश-विदेश को देख लेते हैं। इसके बाद कान से आप सुन सकते हैं, इसलिये आचार्य देव कहते हैं, सबसे पहले चक्षु इंद्रिय के विषय का निरोध, फिर कर्ण इंद्रिय का निरोध।

अब इंद्रिय विषयों को लें, स्पर्शन इंद्रिय के विषय-हल्का, भारी रूक्ष, चिकना, कड़ा, नरम, ठंडा, गरम एवं रसना इंद्रिय के विषय-खट्टा, मीठा, चरपरा, कड़वा, कषायला एवं घ्राण इंद्रिय के विषय सुगंध, दुर्गंध। चक्षु इंद्रिय के विषय काला, पीला, नीला, लाल, सफेद एवं कर्ण इंद्रिय के विषय सा रे गा मा पा धा नी, इस प्रकार से सात प्रकार के स्वर हैं। इन सब सत्ताईस विषयों पर विजय प्राप्त करना यह पंचेन्द्रिय निरोध कहलाता है।

जैसे-हम सिनेमा हाल में चित्र देखना चाहते हैं, तो उसके पूर्व उसके प्रत्येक खिड़की, दरवाजे बंद कर देते हैं, तभी चित्र स्पष्ट नजर आते हैं। उसी तरह से हमें आत्मा के चैतन्य चित्र को देखना है, चित् चमत्कार को देखना हैं तो आचार्य देव कहते हैं, जब तक तुम अपने उपयोग को इंद्रिय के विषयों में डाले रहोगे, तब तक उपयोग भीतर में प्रवेश नही करेगा। इसलिये पाँचों इंद्रियों के विषयों से अपने उपयोग को हटाकर, अर्थात-इंद्रियों के विषयों को स्वतंत्र छोड़कर के, मात्र उपयोग को भीतर में डाल देना ही इंद्रिय के विषयों का विराम है। हमारे यहाँ इंद्रियों को कष्ट नहीं दिया जाता, हमारे यहाँ इंद्रियों को किसी प्रकार का दण्ड नहीं दिया जाता, मात्र उपयोग को अंदर में ले जाते हैं, तो इंद्रियाँ स्वत: ही वशीकरण को प्राप्त हो जाती हैं। स्पष्ट है एक समय में एक ही उपयोग तो हो सकता है। चाहे तो आप उपयोग को बाहर में ले जायें, चाहे आप भीतर में ले जायें, मात्र उपयोग को सम्हालते ही इंद्रियाँ सम्हल जाती हैं। गाड़ी को नहीं, ब्रेक को लगाते हैं, और गाड़ी रुक जाती है। उसी प्रकार उपयोग को बदलते हैं, तो हमारा उपयोग आत्मा में पहुँच जाता है।

प्रिय आत्मन्!

एक समय में ज्ञान, चाहे इंद्रिय को विषय बनाये, चाहे आत्मा को विषय बनाये, दो में से एक को ही विषय बनायेगा। ध्यान देना- जिस समय मेरा ज्ञान, किसी भी इंद्रिय को विषय बना रहा है, उस समय मैंने अपने ज्ञान से अनंतानंत सिद्ध परमात्माओं को त्याग कर दिया है। जब तक मैं किसी दूसरे के बारे में सोच रहा हूँ, उतने समय तक के लिये, मैंने अनंतानंत सिद्ध परमात्माओं का, संख्यात आचार्यों का, संख्यात उपाध्याओं का, संख्यात साधुओं का त्याग कर दिया है। क्योंकि मेरे चिंतन में जिस समय दूसरा आया उस समय उतने काल तक सिद्ध परमात्मा, अरहंत परमात्मा, आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठी नहीं आ सके। उतने समय तक सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र नहीं आ सका, इसलिये आचार्य देव कहते हैं, जब चिंतन पर में चला गया तो तू स्व से चला गया।

आचार्य देव कहते हैं-एक का विचार आने से अनंतानंत से विचार चला जाता है। अनंतानंत का त्याग किये बिना, तुम एक में प्रवेश नहीं कर सकते। चाहे शुभ में प्रवेश हो, तो अनंतानंत अशुभ का त्याग करके आओगे, या अशुभ में प्रवेश करोगे तो अनंतानंत शुभ और शुद्ध का त्याग करके आओगे। ध्यान देना- इस देहरी को लाँघे बिना आँगन में नहीं जा सकते और देहरी को लाँघ बिना आंगन से घर में नहीं आ सकते। देहरी को लाँघोगे तब घर से आँगन में आओगे और देहरी को लाँघोंगे तभी आँगन से घर में जा पाओगे। आचार्य देव कहते हैं जिस समय मैंने अपने उपयोग में, परिवार के एक सदस्य को लिया, उतने समय के लिये परमेष्ठी मेरे उपयोग से चले गये। एक समय में एक ही रहेगा, चाहे पिताजी रह जायें, चाहे परमेष्ठी रह जायें।

ध्यान देना-मोहनीय कर्म परिवार के सदस्यों का स्मरण करायेगा और जब ज्ञान और वैराग्य प्रबल होता है, तो मोहनीय कर्म मंद पड़ता है, तब यह जीव पंच परमेष्ठी को स्मरण करता है। णमोकार मंत्र को जपने के लिये मोहनीय कर्म की मंदता चाहिये, यदि तीव्र मोहनीय, दर्शन मोहनीय है, तो णमोकार मंत्र का स्मरण भी नहीं हो पायेगा। भाव ही नहीं बनेगा और चारित्र मोहनीय है तो बीच-बीच में बाधायें आयेंगी, पहले इनको याद कर लो। महाराज, कैसे हो ? यह विभवसागर नहीं बोल रहे, यह विभवसागर का चारित्र मोहनीय कर्म बोल रहा है, कि महाराज कैसे हो? जिस समय मैं वीतरागी हो जाऊँगा, उस समय समवशरण में तुम आओगे, तो मैं पूँछूँगा भी नहीं, कि तुम कौन हो, कहाँ से आये हो। जितना जिसका प्रबल मोहनीय कर्म होता है, वह उतना पूँछते हैं।

यदि में इस भावना से पूँछूँ कि यह धर्मात्मा है, यह सम्यक्ज्ञानी है, यह सम्यक् दृष्टि है, यह साधु है, तो यह प्रशस्त राग है और प्रशस्त राग शुभ आस्रव करायेगा, लेकिन मैं इसलिये पूँछूँ कि यह मेरा भाई

है, यह श्रावक इतना दान दे देगा, यह श्रावक मेरा यह कार्य कर देगा, अपनी आजीविका चलाने के उद्देश्य से, यदि श्रावक को सम्मान दूँ तो आचार्य देव कहते हैं यह अशुभ आस्रव है।

गुरु-पात्र स्नेही होते हैं। धर्मात्मा की पहचान धर्मात्मा नहीं करेगा तो कौन करेगा ? विद्वान की कीमत साधु नहीं करेगा, तो कौन करेगा ? रत्न की कीमत जौहरी नहीं करेगा, तो कौन करेगा ? विद्वान यदि रत्न हैं, तो साधु उसके जौहरी है। इसलिये विद्वान की कीमत साधु ही करेगा, किंतु राग नहीं करेगा, यदि राग भी करेगा तो सम्यक्ज्ञान से करेगा।

''विद्वान एव जानाति, विद्वान एव परिश्रमं''

विद्वान के परिश्रम को विद्वान ही जानता है, जो साधु दूसरे साधु से प्रशस्त राग के वशीभूत होकर पूँछ रहा है, कि महाराज आप कैसे हो ? वह इसलिये पूँछ रहे हैं, क्योंकि आप मोक्ष-मार्ग की सामग्री हो, यह मेरा मोह, वात्सल्य भाव से युक्त है। एक धर्मात्मा से ऐसी प्रीति रखना, जैसे गाय अपने बछड़े से प्रीति रखती है। निःस्वार्थ प्रेम रखना, यदि साधु ही प्रेम नहीं रखेगा साधु से, तो क्या श्रावक प्रेम देगा ? नहीं दे सकता, क्योंकि गुणवान की कीमत तो गुणवान ही कर सकता है। सोने की कीमत लुहार क्या करेगा ? ज्ञानी ! सोने के फूल की कीमत बागवान क्या जानेगा ? इसलिये ज्ञानी जीवो ! गुणवान व्यक्ति ही गुणवान की कीमत कर सकता है, वह जानता है, कि कितनी दुर्लभता से एक-एक तत्त्व की बात निकल रही है।

प्रिय आत्मन्!

कभी-कभी यह लगता है, कि गुरुजन अपन को बड़े प्रेम से मनाते है। भैया, हम मोक्ष-मार्ग पर चल रहे हैं, क्यों ? आचार्य देव कहते हैं, धर्मात्मा के बिना धर्म नहीं पाया जाता है, एक धर्मात्मा को सम्हालना ही, तो धर्म को सम्हालना है इसलिये कहा है, धर्मात्मा से कभी ग्लानि नही करना, घृणा नहीं करना, उसको सम्हालना चाहिये।

करुणा का भाव होना, चारित्र मोह का चिन्ह है तथा करुणा का अभाव होना दर्शन मोह का चिन्ह है। दर्शन मोह से तात्पर्य मिथ्यात्व है। ज्ञानी यदि करुणा का अभाव है, यदि वात्सल्य का अभाव है, यदि नहीं पूँछते हैं, तो मिथ्यात्व में चले गये। एक धर्मात्मा हमारे पास आता है और पूँछ लेते हैं, यह हमारा पूँछना वात्सल्य का लक्षण है, यदि वात्सल्य का अभाव है, करुणा का अभाव है, तो आचार्य देव कहते हैं, तू मिथ्यादृष्टि है और करुणा का भाव है, तो तू चारित्र मोही है।

प्रिय आत्मन्!

बात सत्य हैं हम चारित्र मोही हैं, किंतु मिथ्यात्वी नहीं हैं और चारित्र मोह तब तक रहेगा, जब तक बारहवें गुणस्थान में प्रवेश नहीं करेगे, तब तक अपने पद के अनुरुप चारित्र मोह रहेगा, क्योंकि चौथे गुणस्थान में बारह कषायें हैं और पंचम में आठ कषायें हैं और छटवें में चार कषायें हैं अब चार कषायों की उपस्थिति है, तो राग तो रहेगा ही रहेगा, लेकिन राग भवसागर में डालने वाला नहीं रहेगा, वह राग भवसागर से तारने वाला रहेगा। ऐसा राग होगा, जो मोक्ष-मार्ग से जोड़े रहेगा, इसलिये मोक्ष-मार्ग की सामग्री बनायेगा। जो सम्यक् प्रकार से जलाती है, वह संज्वलन कहाती हैं, जहाँ सम्यक् परिणाम होते हैं, वहाँ खोटे परिणाम नहीं होते हैं, जब आत्मा में लीन हो जाता है, तब निर्विकल्प तत्त्व प्रकट होता है।

समणे णिच्चलभूए, णट्ठे सव्वे वियप्पसंदोहे ।
थक्को सुद्धसहावो, अवियप्पो णिच्चलो णिच्चो ।।7।।

अर्थ-

अपने मन के निश्चलीभूत होने पर, सर्व विकल्प-समूह के नष्ट होने पर, विकल्प-रहित निर्विकल्प निश्चल नित्य, शुद्ध स्वभाव स्थिर हो जाता है।

जो खलु सुद्धो भावो, सो अप्पा तं च दंसणं णाणं ।
चरणं पि तं च भणियं, सा सुद्धा चेयणा अहवा ।।8।।

अर्थ-

जो निश्चय से शुद्धभाव है, वह आत्मा है। और वह आत्मा, दर्शन-ज्ञान और चारित्र रूप कहा गया है, अथवा वह शुद्ध चेतना रूप है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी ! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्षमहल-धारिणी, पाप-ताप-संताप- हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

संसार में गुरुकृपा, सबसे निराली ।
होली यही दशहरा, यह है दिवाली ।।
जो शिष्य है वह सदैव ऋणी रहेगा ।
सौ जन्म लेय फिर भी, न चुका सकेगा।।

इक जीवन में सौ-सौ शिक्षक भी, सहज सुलभ हो सकते हैं।
सौ जन्म मात्र ले लेने से, सौ मातायें पा सकते हैं ।
जब पुण्य सहस्रों जन्मों का, इक साथ उदय में आता है ।
तब कहीं किसी को सद्गुरु का, दुर्लभ दर्शन मिल पाता है।।

-गुरु विरागसागर पूजा

प्रिय आत्मन्!

गुरु का समागम मिलना अनंत जन्मों के पुण्य की बात है, ध्यान देना-ज्ञानी जीव ! पाप को समझने के लिये भी पुण्य चाहिये, सातिशय पुण्य चाहिये, तब कहीं जीव पाप को समझ पाता है और इस पाप को छोड़ने के लिये गुरु का समागम चाहिये। पाप को समझने के लिये भी पुण्य चाहिये और पाप को छोड़ने के लिये भी पुण्य चाहिये। यदि सातिशय पुण्य नहीं है तो, न तो पाप समझ में आता है और न पाप छूट पाता है।

पुण्य को तो सब समझ लेते हैं और पुण्य का फल भी सब समझ लेते हैं, लेकिन पाप को समझ पाना बहुत कठिन होता है, क्योंकि पुण्य समुदाय में होता है और पाप एकांत में होता है, पुण्य दिखा-दिखा के होता है और पाप छिपा-छिपा के होता है। पुण्य सबको दिखाई देता है, पाप सबको नहीं दिखाई देता है।

जीव के पाप के संस्कार अनादि के हैं। आज मैं सुबह जंगल गया एक पौधे पर मकड़ी का जाल देखा और वह मकड़ी का जाल करीब दो फीट लंबा चौड़ा था। उतने जाल को देखा, इतना सुंदर जाल बनाया उसने, ओहो ज्ञानी ! इतनी सुंदर डिजाइन यदि कोई मनुष्य बनाये, न तो उसे लाखों के पुरुस्कार मिल जायेंगें। कितना सुंदर, कितनी बारीक कलाकारी, इतनी बारीक कलाकारी रेशम के धागा से भी नहीं हो सकती है। चंदेरी की साड़ी वाले इतनी बारीक कलाकारी नहीं कर सकते, जितनी बारीक कलाकारी एक मकड़ी कर लेती है।

यह मकड़ी का जाल मकड़ी के रहने के लिये नहीं है, मकड़ी का जाल यह दूसरे जीवों को पकड़ने, जकड़ने, और फंसाने के लिये है। ज्ञानी जीवो ! देखो तो, जीव की कला, यदि मकड़ी के जाल को कैमरा टच करना चाहे, तो केच नहीं कर पायेगा, इतना बारीक जाल होता है वह, जब प्रथम बार अपने जाल को तैयार करती है, जब बहुत लंबा समय जाल को हो जाता है तो, उस लंबे समय के जाल में, बहुत दीर्घ काल के जाल में, दीर्घकालीन प्रक्रिया में, उस पर धूल के कण पड़ जाने से, हमको भारी दिखने लगता है। मैं यह विचार कर रहा था, कि देखो एक चार इंद्रिय जीव, दूसरे जीवों को फंसाने के लिये, किस तरह का जाल फैला लेता है, किस तरह की जाल की संरचना कर लेता है और दूसरे जीवों को फंसाने का मात्र, एक छोटा सा छिद्र बनाता है और वहाँ दिशा-दिशा से पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण, इस तरह घेरा डालता है, फिर एक घेरा डालता है, ज्ञानी ! एक बार उस जाल पर कोई भी जीव बैठ जाये तो मकड़ी तत्काल उस जाल से उसको केच कर लेती है।

हमारे पास दूसरे जीवों को जाल में फंसाने के जो संस्कार हैं, कब से हैं ? किन पर्यायों से हैं ? ज्ञानी जीवो! मायाचारी के संस्कार कूट-कूटकर जीव के अंदर भरे पड़े हैं, यही कारण है, कि जीव सोचता है और कभी नहीं भी सोचता है, फिर भी पूर्व के संस्कार वश, वे पूर्व के संस्कार अपना कार्य करते रहते हैं, आचार्य देव कहते हैं-उन पूर्व के संस्कारों को मिटाना ही तो जीवन की साधना है। जो पूर्व में वर्तन काला हो गया है, उस वर्तन को साफ कर देना ही तो मांजना है। नर-तन को पाकर के मात्र बर्तन को ही नहीं मांजना है, हमें नरतन को पाकर के चेतन को भी मांजना है।

ज्ञानी जीवो ! ध्यान देना-पर को फंसाने की कला तो जीव ने किसी भी पर्याय से सीख ली है, लेकिन निज में रमने की कला जीव ने आज तक नहीं सीखी है। निज में रमने की कला का नाम तत्त्व बोध है, निज में रमने की कला साधना है, उसी निज में रमने के लिये आचार्य देव तत्त्वसार को कहते हैं।

यथा - यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्व मुत्तमम्।
तथा-तथा न रोचन्ते, विषया सुलभा अपि ।।37।। इष्टोपदेश ।।

प्रिय आत्मन्!

जैसे-जैसे आत्म तत्त्व में गहरी रुचि बढ़ती जाती है, गहरा अभ्यास बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे संसार के विषय रुचिकर नहीं होते हैं। और जैसे-जैसे संसार के विषय नहीं रुचते हैं, तैसे-तैसे तत्त्व के अभ्यास में रुचि बढ़ती जाती है। जैसा आत्मा का संवेदन बढ़ने लगता है, तो फिर आत्म तत्त्व में रुचि आ जाती है।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य देव कहते हैं, जिसकी दृष्टि ही अंधकार का विनाश कर रही हो उसके लिये दीपक का क्या ? जुगनु क्या दीपक लेकर चलती है ? क्या बिल्ली दीपक लेकर चलती है ? नहीं चलती, क्योंकि उसकी दृष्टि में ही प्रकाश है, उसकी दृष्टि अंधकार का विनाश कर रही है, उसे दीपक की आवश्यकता नहीं है, उसी तरह जिसको अपनी आत्मा से सुख मिल रहा हो, जो अपने स्वानुभव में रमण करके, अपने आत्मध्यान में लीन होकर के, भीतर से सुख को पा रहा है, उसको बाहर के सुख की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जिस जीव की दृष्टि ही अंधकार का विनाश करे, उस जीव के लिये दीपक की आवश्यकता नहीं पड़ती है, उसी तरह, जिसके लिये आत्मा के ध्यान से अंदर का सुख मिल रहा है, उसे बाहर के विषयों के सुख की अभिलाषा नहीं होती है।

ऐसी दृष्टि चाहिये, जो स्वयं अंधकार का विनाश करे और वह दृष्टि ही सम्यक् दृष्टि है, वह ही स्वानुभूति है, एक बार आत्मा की अनुभूति होती है, तो विषयानुभूति बहुत दूर चली जाती है। आचार्य देव कहते हैं आत्मा की अनुभूति करने वाले जीव परानुभूति में नहीं जाते हैं, पुद्गलानुभूति में लीन नहीं होते हैं, तब निजानुभूति होती है और निजानुभूति के काल में जीव निर्विकल्प होता है। उस निर्विकल्पता का आनंद, क्या चक्रवर्ती का सुख, क्या कर्म भूमियाँ का सुख। कर्म भूमियाँ जीवों को जितना सुख होता है, उसका अनंतगुणा सुख चक्रवर्ती को होता है। और जितना चक्रवर्ती को होता है, उससे अनंत गुना सुख जघन्य भोग भूमि के जीव को होता है। जितना सुख जघन्य भोग भूमि के जीव को होता है, उससे अनंत गुना सुख मध्यम भोग भूमियाँ जीव को होता है। जितना सुख मध्यम भोग भूमियाँ जीव को होता है, उससे अनंतगुणा अधिक सुख उत्तम भोग भूमियाँ के जीव को होता है। जितना सुख उत्तम भोग भूमियाँ जीव को होता है उससे अनंतागुणा सुख भवनवासी जीव को होता है। जितना भवनवासी को होता है उससे अनंतागुणा व्यंतर, ज्योतिष को होता है। और उससे भी अनंतागुणा सब कल्पवासी देव को होता है। जितना कल्पवासी देव को होता है उससे अनंतागुणा सुख अहमिंद्र को होता है।

सौधर्मेन्द्र के पास संख्यात देवियाँ हैं और नौवें ग्रैवेयक में एक भी देवी नहीं हैं, सर्वार्थ सिद्धि में एक भी देवी नहीं हैं, लेकिन सौधर्मेन्द्र से असंख्यात गुणा सुख सर्वार्थ सिद्धि के देव को होता है और जितना सुख सर्वार्थ सिद्धि के देव को होता है, उससे भी असंख्यात गुणा सुख भरत क्षेत्र में विराजमान आत्मा के ध्यान में लीन रहने वाले षष्ठम्, सप्तम् गुणस्थानवर्ती दिगम्बर तपोधन को हुआ करता है जो आत्मा में लीन होता है।

प्रिय आत्मन्!

ध्यान देना- आप अपने सुख की कल्पना करो, जितना सुख यहाँ के सामान्य मनुष्यों को होता है, उससे अधिक सुख किसको है ? भोग भूमि को। उससे अधिक सुख मध्यम भोगभूमि को। उससे अधिक सुख उत्तम भोग भूमि को। उससे अधिक सुख स्वर्ग में और उससे भी ज्यादा सुख सौधर्मेन्द्र को तीर्थकर का पंचकल्याणक मनाते समय होता होगा, उससे भी अधिक सुख गुरु को आहार कराने पर होता है। क्योंकि सौधर्मेन्द्र का आनंद असंयम का आनंद होता है असंयम गुणस्थान का आनंद होता है, लेकिन यहाँ के मनुष्य का जो आनंद है, एक छोटा सा नियम लेकर भी वह आनंद पाता है, तो वह नियम का आनंद होता है। सौधर्मेन्द्र नियम का आनंद नहीं ले सकता है, सौधर्मेन्द्र जितना भी आनंद लेगा असंयम में आनंद लेगा, लेकिन यहाँ का मनुष्य देशसंयम का आनंद ले सकता है।

सौधर्मेन्द्र के पास देशसंयम नहीं है, सर्वार्थसिद्धि के देव के पास यह आनंद नहीं हो सकता है, जो आनंद हमारी सभा में विराजमान आपके लिये है। इसलिये मैं कहता हूँ-स्वर्ग जाने की इच्छा मत करना, जाना पड़े तो सक्लेश मत करना। और स्वर्ग के देवों से कहता हूँ, कि माँ के गर्भ में आने की मत सोचना, और आना पड़े, तो संक्लेश मत करना। यदि संक्लेश करेगा, तो एकेन्द्रिय में जायेगा मिथ्यादृष्टि हो जायेगा।

प्रिय आत्मन्!

इस भव में यदि तुम स्वर्ग से भी उत्कृष्ट सुख भोगना चाहते हो और सर्वार्थ-सिद्धि से भी अधिक सुख भोगना चाहते हो, तो मैं स्पष्ट कहता हूँ, देशव्रतको धारण कर लो। देशव्रत की महिमा भरतक्षेत्र के चक्रवर्ती की महिमा से ज्यादा है। देशव्रती स्त्री हो चाहे पुरुष हो, देशव्रती की महिमा जो है, वह चक्रवर्ती से ज्यादा है, सौधर्मेन्द्र से ज्यादा है, सर्वार्थ-सिद्धि के देव से ज्यादा है। क्योंकि सर्वार्थ-सिद्धि का देव चौथे गुण-स्थान में रहता है और देशव्रती पंचमगुणस्थान में रहता है। और जिसके घर में एक भी देशव्रती है, मैं उसके घर को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ मानता हूँ।

प्रिय आत्मन्!

लोग स्वर्ग को श्रेष्ठ मानते हैं। लेकिन हम साधुगण, विद्वानगण, जिनवाणी के अध्येता देशव्रती के घर को स्वर्ग से श्रेष्ठ मानते हैं, और देशव्रती को स्वर्ग के देवों से श्रेष्ठ मानते हैं। स्वर्ग के देवता यदि आहार देना चाहें तो दे नहीं सकते। यदि यहाँ पर मुनिराज का आहार चल रहा हो और स्वर्ग का देव चाहे आहार देना, तो हे स्वर्ग के देवता ! आप छल करके तो दे सकते हो, लेकिन सत्य बोलकर के आहार नहीं

दे सकते। ज्ञानी जीवो ! देवता मुनिराज को आहार दान देने के लिये तरसते हैं वे नहीं दे सकते क्योंकि वैक्रियक शरीर से धर्म की साधना नहीं होती है।

''शरीर माद्यंखलुधर्म साधनं''

नियम से औदारिक शरीर ही धर्म का साधन है। वैक्रियक शरीर से धर्म की साधना नहीं होती है। वैक्रियक शरीर से धर्म की आराधना हो सकती है। लेकिन साधना नहीं हो सकती, क्योंकि आराधना चौथे गुणस्थान में होती है, और साधना पंचम गुणस्थान से शुरु होती है। आराधना दया से शुरु होती है और साधना दम से शुरु होती है। चौथे में दया, पाचवें में दमन, छटवें में त्याग और सप्तम में समाधि, समाधि से तात्पर्य निर्विकल्प-ध्यान, यह क्रम है तो चौथे गुणस्थान वाला दया कर सकता है, लेकिन इंद्रियों का दमन करने वाला पंचम गुणस्थानवर्ती हुआ करता है। षष्ठम् गुणस्थानवर्ती त्याग करके बनता है और सप्तम गुणस्थानवर्ती समाधि में लीन होता हैं।

प्रिय आत्मन्!

औदारिक शरीर की विशेषता है कि यह शरीर धर्म का साधन है। एक बालक आठ वर्ष आठ अंतर्मुहुर्त का है और एक तैतीस सागर आयु का देव है। बताइये दोनों में कौन श्रेष्ठ है ? आठ वर्ष अंतर्मुहुर्त के बालक ने देशव्रत धारण कर लिया है। आठ वर्ष आठ अंतर्मुहुर्त का जो बालक है, वह आठ वर्ष अंतर्मुहुर्त में सम्यक्दर्शन पश्चात् रत्नत्रय धारण करता है और अनंतर अंतर्मुहुर्त में शुद्धोपयोग को प्राप्त करता है। सप्तम् गुणस्थान में जाता है। तीसरे अंतर्मुहुर्त में क्षपक श्रेणी आरोहण करता है। और चौथे अंतर्मुहुर्त में नौवें गुणस्थान में पाँचवें अंतर्मुहुर्त में दसवें गुणस्थान में छठवें अंतर्मुहुर्त में बारहवें गुणस्थान में सातवें अंतर्मुहुर्त में तेरहवें गुणस्थान में और आठवें अंतर्मुहुर्त में चौदहवें गुणस्थान को पार करके सिद्ध लोक में विराजमान हो जाता है। इसलिये आठ वर्ष आठ अंतर्मुहुर्त में एक आत्मा सिद्ध लोक तक की यात्रा कर सकता है, और तैतीस सागर का सर्वार्थ सिद्धि का देव चारित्र के अभाव में वही पर विराजमान रहेगा। हे ज्ञानी ! इसलिये सर्वार्थ सिद्धि के देव की तैंतीस सागर की आयु की अपेक्षा आठ वर्ष आठ अंतर्मुहुर्त की आयु श्रेष्ठ है।

प्रिय आत्मन्!

मुझे असंयम के तैतीस सागर नहीं चाहिये, मुझे संयम के आठ वर्ष आठ अंतर्मुहुर्त दे दीजिये। आपकी उम्र सौ वर्ष हो गयी, महावीर की उम्र बहत्तर वर्ष थी। महावीर स्वामी अल्पायुष्क थे क्या? नहीं।

क्यों ? आपकी सौ वर्ष है और महावीर स्वामी बहत्तर वर्ष के थे, तो अल्पायुष्क हुये न ? नहीं? क्यों नहीं हुये ? आठ वर्ष आठ अंतर्मुहुर्त में व्यक्ति सम्यकत्व का पात्र हो जाता है और यही आयु मनुष्य के लिये पूर्ण आयु मानी गयी है, इसके नीचे यदि कोई है तो उसे अल्प आयु कहा गया है और उसके ऊपर वाले को अल्प आयु नहीं कहा गया है, इसलिये महावीर स्वामी अल्पायुष्क नहीं थे। आठ वर्ष से नीचे का अल्पायुष्क कहलाता है आठ वर्ष से ऊपर का अल्पायुष्क नहीं कहलाता है। पहले के बच्चे पाँच साल में स्कूल में एडमीशन लेते थे और अब तीन वर्ष में एडमीशन होने लगा है, इसलिये पहले महावीर स्वामी ने तीस वर्ष में दीक्षा ली थी, तो मुझे अठारह वर्ष में दीक्षा ले लेना चाहिये।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य कहते हैं-विकल्प कषाय के उदय में पैदा होते हैं और जहाँ कषायें शांत हो जाती है जहाँ इंद्रियाँ खटपट नहीं मचाती हैं, वहाँ विकल्प भी पैदा नहीं होते हैं। विकल्प यद्यपि श्रुत ज्ञान का भेद है विकल्प, श्रुतज्ञान की पर्याय का परिणमन है, किंतु एक अशुभ विकल्प होता है, एक शुभ विकल्प होता है, तो अशुभ विकल्पों को तो परित्याग कर ही दिया है। तृतीय गुणस्थान तक अशुभ विकल्प छूट जाना चाहिये, किंतु आर्त और रौद्र की परिणति पंचम गुणस्थान और छटवें गुणस्थान के कुछ अंशों तक रहती है, आर्त ध्यान भिन्न है रौद्र ध्यान भिन्न चलता है। चौथे गुणस्थान में चार आर्तध्यान, चार रौद्रध्यान, दो धर्मध्यान हो सकते हैं। किन्तु पंचम गुणस्थान में चार आर्तध्यान, चार रौद्र ध्यान, तीन धर्मध्यान होते हैं। छठवें गुणस्थान में रौद्रध्यान एक भी नहीं पाया जाता है एवं निदान नामक आर्तध्यान भी नहीं होता है, इस तरह पाँच अशुभ ध्यान छूट जाते हैं।

आचार्य भगवन् कहते है इन संपूर्ण विकल्पों के शांत हो जाने पर शुद्ध स्वभाव स्थिर हो जाता है, अविकल्प, निश्चल और नित्य स्वरुप में आत्मा स्थिर हो जाती है, मात्र मन के निश्चल हो जाने पर। यदि जल निश्चल हो जाये, आपने साइन्स में यह देखा होगा, कि कैसा भी गंदा पानी हो उस गंदे पानी को साफ करने का तरीका क्या है ? निश्चल होना। गुरु ने शिष्य से कहा शिष्य पानी लेकर आओ। शिष्य गया, देखा पानी मैला है। गुरुदेव वहाँ का पानी मैला है। गुरु ने युधिष्ठिर से कहा तुम जाओ, पानी लेके आओ। युधिष्ठिर गया देखा पानी मैला है, वहीं पर ठहर गया। यह पानी मैला क्यों हैं ? क्योंकि, यहाँ पर जानवर आते हैं, इसलिये पानी मैला होता है, वहीं पर ठहर गया, जब तक ठहरा रहा, तो जानवर उस किनारे तक नहीं आये और पानी में किसी का प्रवेश नहीं हुआ और पानी निश्चल हो गया, तो पानी शुद्ध हो गया, उसने पानी लिया और लेकर गुरु के पास आ गया, गुरुदेव यह पानी निर्मल है। बेटा, तू यह पानी कहाँ से लाया है। गुरुदेव, जहाँ आपने बताया था। बेटा, वहाँ का पानी तो गंदा था। गुरुदेव, पानी तो गंदा ही था,

लेकिन विनय के साथ शिक्षा, धैर्य के साथ परीक्षा, वैराग्य के साथ दीक्षा, गुणों के साथ समीक्षा। यह बातें यदि पायी जाती हैं, तो जीवन में सफलता मिलती है और सफलता के लिये प्रतीक्षा की जाये, तो नियम से उपलब्धि होती है। और मैंने धैर्य रखा, मैं वही पर बैठ गया, जल निश्चल हो गया, तो निर्मल हो गया और मैं ले आया।

प्रिय आत्मन्!

जल निश्चल होने पर निर्मल हो सकता है, तो फिर यदि मैं अपने मन को, इंद्रियों को, निश्चल कर लूँ, तो मैं निर्मल क्यों नहीं हो सकता हूँ ? ध्यान देना-ज्ञानी निर्मल जल ही जल को निर्मल करता है।

जलेन जनितं पंकं, जलेन परि शुद्धयति ।
चित्तेन जनितं पापं, चित्तेन परि शुद्धयति ।।

कीचड़ किससे उत्पन्न होता है ? जल से। किससे धुलता है ? जल से। कीचड़ को उत्पन्न करने वाला जल भिन्न नहीं है और कीचड़ को धोने वाला जल भिन्न नहीं है। जिस जल से कीचड़ उत्पन्न है, उसी जल से कीचड़ धुलता है। जिस मन से पाप उत्पन्न होता है, उसी मन से पाप धुलता ही है। ज्ञानी जीव ! जल का उपयोग, कीचड़ को उत्पन्न करने में लगाना है, कि जल का उपयोग, कीचड़ को धोने में लगाना है। उसी तरह मन का उपयोग, पाप की उत्पत्ति में लगाना है, कि मन का उपयोग, पाप के शमन में लगाना है। ध्यान देना- यही मन प्रतिक्रमण करता है, यही मन सामायिक करता है। ज्ञानी जीवो ! बिना मन के जीव सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, चौथा गुणस्थान देशव्रती, महाव्रती नहीं बन सकते, कुछ भी नहीं कर सकते हैं। इसलिये मन तो आवश्यक है।

जैसे-यात्रा के लिये, घोड़ा आवश्यक है तो घोड़े के साथ लगाम आवश्यक है, वाहन आवश्यक है तो वाहन के साथ ब्रेक आवश्यक है। उसी तरह साधना के लिये मन की अनिवार्यता आवश्यक है। बिना मन के सम्यक्त्व ही नहीं होता है, व्रत ही नहीं होते हैं, तो साधना क्या होगी ? इसलिये साधना के लिये मन तो आवश्यक ही है। किंतु साधना के स्थिर रखने के लिये मन का नियंत्रण आवश्यक है। और मन के नियंत्रण के लिये क्या किया जाये ? तो आचार्य कहते है-मन का विषय श्रुत है।

‘‘श्रुतमनिन्द्रियस्य‘‘।।2।। तत्त्वार्थ सूत्र ।।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य देव कहते हैं मन का विषय श्रुत है, तो मन को श्रुत में लगा दो। मन को श्रुत के चिंतन

में लगा देने से मन निश्चल हो जाता है। मन को स्थिर करने का उपाय मन-चंचल होता है। मन-मर्कट, मीन, मकर, मानिनी (स्त्री), मरुत (वायु) के समान चंचल होता है। जिस तरह मरुत चंचल होता है, स्त्री के कर्ण का कुंडल चंचल होता है। जितनी चंचल मीन होती है, बंदर होता है, उतना ही चंचल मनुष्य का मन होता है।

चंचल मीन को, मरकट को, मारुत को पकड़ लेना आसान है। किंतु चंचल मन को पकड़ लेना बहुत कठिन है। आचार्य देव कहते हैं-गुप्तियों में मन गुप्ति, व्रतों में ब्रह्मचर्य, इंद्रियों में रसना इंद्रिय, और कर्मों में मोहनीय कर्म, यह चार बड़े बलवान है। इंद्रियों में रसना इंद्रिय। वृक्ष की जड़ नीचे होती है और मनुष्य की जड़ ऊपर होती है। जीभ इस शरीर की जड़ है, आचार्य देव कहते हैं, वृक्ष को सींचना हो तो जड़ में पानी दे दो और मनुष्य को सींचना हो तो मुख में पानी दे दो। रसना इंद्रिय संपूर्ण इंद्रियों की शरीर की संचालक है, इंद्रियों में जिसने रसना इंद्रिय को जीत लिया। ज्ञानी जीव ! षट्खण्ड पृथ्वी को जीतने वाला सुभौम चक्रवर्ती चार अंगुल की रसना इंद्रिय को नहीं जीत पाया और एक आम खाने के चक्कर में व्यंतर की बातों में आ गया और येन-केन-प्रकारेण एक रसना इंद्रिय की लपटता के कारण सातवें नरक में चला गया।

प्रिय आत्मन्!

षट्खण्ड भूमि को जीतना आसान है, लेकिन चार अंगुल की जीभ को जीतना बहुत कठिन है। इसलिये कहते हैं, चार अंगुल की रसना इंद्रिय और चार अंगुल की स्पर्शन इंद्रिय, इनको जो जीत लेता है, वह आठ अंगुल को जीतने वाला अष्टम् भूमि पर विराजमान हो जाता है। मात्र इतनी ही तो साधना है, अष्टम् भूमि-एक समवशरण की अष्टम् भूमि होती है और दूसरी अष्टम् भूमि सिद्ध शिला होती है, इन दोनों अष्टम् भूमि का अधिनायक आठ अंगुल को जीतने वाला होता है।

आचार्य देवसेन कहते हैं-हाथी को पालना है, तो अंकुश लगाना चाहिये। मन को पालना है, तो श्रुत ज्ञान का अंकुश रखना चाहिये। श्रुतज्ञान के अंकुश के द्वारा, मन को वश में रखा जाता है, शास्त्रों के चिंतन में मन को रमाये रखिये, मन को खाली छोड़ोगे, तो मन शैतान हो जायेगा। आपने एक पिक्चर देखी होगी, उसमें अकस्मात् एक व्यक्ति को जिंद सिद्ध हो जाता है और जिंद सिद्ध होते ही वह कहता मुझे काम दो। काम दिया जाता है, तो वह शीघ्र करके आ जाता है, दूसरा काम, तीसरा काम सभी काम शीघ्रता से होने लगे। और काम-और काम, अब व्यक्ति परेशान, वह जिंद कहता है, तुम मुझे काम दो, अन्यथा हम तुमको ही खा जायेंगें। अब व्यक्ति परेशान, कि मैंने जिंद सिद्ध क्यों कर लिया, इतने में उसे

कोई सलाह देता है। भैया तुमने जिंद सिद्ध कर लिया है, तो उसे काम सौपों। क्या काम सौपू ? क्योंकि, जितने काम देते हैं, सेकंड़ों में करके आ जाता है, जितने भी काम उसे सूझते हैं, वह जिंद सेकेंड में कर लेता है। उसने कहा देखो तुम्हारे लिये मैं एक सलाह देता हूँ, उसने बहुत सुंदर नसैनी बनाई, चढ़ो-उतरो, चढ़ो-उतरो, जब तक पूरी तरह से आप चढ़ उतर न जाओ, तब तक आप चढ़ते-उतरते रहना। अब वह चढ़ता है तो उतरना बाकी रहता है, और उतरता है तो चढ़ना बाकी रहता है। उसी तरह हमारे आचार्यो ने हमारे लिये माला हाथ में दी हैं, चढ़ो-उतरो, चढ़ो-उतरो।

यह मन को वशीकरण करने का मंत्र है, मन के लिये खाली छोड़ दोगे, तो मन-खाली दिमाग शैतान का घर, लेकिन मन के लिये विषय दो, सामायिक के पहले आप अपना चिंतन बनायें, कि आज मुझे किस विषय पर ध्यान करना है, किस विषय पर चिंतन करना है। जिस विषय पर विचार करना है वह विषय दो, उस विषय पर मन को छोड़ दो, तो मन अच्छे-अच्छे विचारों को लेकर आ जाता है, सामने वही चिंतन की उपज अपने आप में मांगलिक प्रवचन हो जाते है।

प्रिय आत्मन्!

हमें अपने ज्ञानोपयोग रुपी जल को अपने ही भीतर बनाये रखने के लिये पाँचों इंद्रियों की मशीन को बंद करना चाहिये, जैसे-कुँए में आपने मशीन लगा दी, तो मशीन के माध्यम से कुँए का पानी बाहर आ रहा है, उसी तरह इंद्रियों के माध्यम से हमारी ज्ञान शक्ति बाहर जा रही है और जब हम इंद्रियों को रोक लेते हैं, उनके विषयों से रोक लेते हैं, तो पूरी ज्ञान शक्ति हमारे भीतर रह जाती है, और भीतर रहती है, तो उसका उपयोग फिर हम अपने लिये कर सकते हैं।

जैसे-किसान अपने खेत के पानी को पहले अपने खेत में देता है जब शेष बचता है, तो दूसरे को देता है, उसी तरह हमें अपनी इंद्रियों की शक्ति को विषयों से रोककर के, अपने लिये उपयोग करना चाहिये। इंद्रियों की शक्ति मोक्ष के लिये है। स्पर्शन इंद्रिय की शक्ति शुक्ल ध्यान में सहायक है। याद रखना इंद्रिय की शक्ति जाप, पूजा, स्वाध्याय में सहायक है। यह इंद्रियाँ जो हैं, इन्हें विषयों से रोको क्योंकि वे विष के समान हैं, लेकिन इंद्रियों को निज आत्मा में रमा दो, क्योंकि इंद्रियाँ हमें निर्वाण दिलाती हैं, इसलिये जैन दर्शन में इंद्रियों को दण्डित नहीं किया जाता।

जो खलु सुद्धो भावो सो अप्पा तं च दंसणं णाणं।
चरणं पि तं च भणियं सा सुद्धा चेयणा अहवा ।।8।।

प्रिय आत्मन्!

सबसे ऊपर धान का छिलका (बक्कल) होता है, उसको निकाला। फिर चावल लालिमा युक्त होता है, लालिमा को भी निकाला तब चावल कहलाता है। चावल पककर के वह हप्पा कहलाता है, उसी तरह से आत्मा पर से जब कर्म निकल गया, तो यही अप्पा-परमप्पा कहलाता है, शुद्धभाव ही आत्मा है, अशुभ भाव ही अनात्मा है। जो शुद्ध भाव है सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र में जो स्थित है वह स्वसमय है, वह स्वसमय ही शुद्धात्मा है, वह शुद्ध भाव ही आत्मा है। अपने भाव को शुद्ध बनाना ही आत्मा के पास आना है।

जं अवियप्पं तच्चं तं सारं सुक्खकारणं तं च ।
तं णाऊण विशुद्धं झायहु होऊण णिग्गंथा ।।9।।

अर्थ-

जो निर्विकल्प तत्त्व है, वही सार है-प्रयोजन भूत है। और वही मोक्ष का कारण है। उस विशुद्ध तत्त्व को जानकर निर्ग्रन्थ होकर ध्यान करो।

बहिरब्भन्तरगंथा मुक्का जेणेह तिविहजोएण ।
सो णिग्गंथो भणिओ जिणलिंगसमासिओ समणो ।।10।।

अर्थ-

इन लोक में जिसने मन, वचन, काय इन तीन प्रकार के योगों से बाहरी और भीतरी परिग्रहों को त्याग दिया है। वह जिनेन्द्र देव के लिंग का आश्रय करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ कहा गया है।

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्षमहल-धारिणी, पाप-ताप-संताप- हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

तत्त्वसार प्रणेता देवसेन स्वामी कहते हैं-मैं धर्म प्रवर्तन के लिये, तथा भव्य जीवों के संबोधन के लिये, तत्त्वसार कहूँगा। प्रश्न उत्पन्न हुआ, कि हे प्रभो ! आपके ग्रंथ के लिखने से क्या धर्म का प्रवर्तन

होगा ? आचार्य देव कहते हैं-हाँ ! धर्म का प्रवर्तन श्रुत के प्रवर्तन से ही होता है। श्रुत की उपासना, उपदेश, आलेखन, यह धर्म प्रभावना के अभिन्न अंग हैं। भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष जाने के पश्चात्, छह सौ तैरासी वर्ष तक, श्रुत परम्परा निर्बाध रुप से अविछिन्न रूप से प्रवाहित रही। भद्रबाहु स्वामी से प्रश्न किया कि यह श्रुत परम्परा, यह धर्म परम्परा कब तक चलेगी ? धरती पर दिगम्बर साधु कब तक रहेंगे ? भद्रवाहु स्वामी ने कहा कि बीस हजार तीन सौ सत्तरह वर्ष तक धरती पर श्रुत रहेगा और तभी तक श्रुतवान साधु रहेगें, तभी तक धरती पर अग्नि रहेगी। जिस दिन धरती पर से धर्म उठ जायेगा, उसी दिन धरती पर से अग्नि उठ जायेगी।

साधु होने का प्रमाण किसी शास्त्र से पूँछने की आवश्यकता नहीं है। जब तक चूल्हे पर रोटी सिकती रहे, समझना कि कहीं न कहीं साधु हैं और जब चूल्हे पर रोटी सिकना बंद हो जाये, अग्नि समाप्त हो जाये, उस दिन दिगम्बर साधु की समाप्ति समझ लेना। ज्ञानी ! जब तक श्रुत है तब तक दिगम्बर मुनि हैं। और जब तक दिगम्बर मुनि हैं तब तक अग्नि है। श्रुत का विच्छेद होगा, साधु के विच्छेद के साथ, जब तक साधु जियेगा, तब तक श्रुत जियेगा।

हे महावीर ! तुम्हारी देशना कब तक जियेगी ? हे महावीर तुम्हारी देशना का पालन करने वाले दिगम्बर एवं श्रावक सुधी जब तक इस धरती पर मौजूद रहेंगे, तब तक महावीर की देशना जयवंत रहेगी। धर्म का प्रवर्तन किसके द्वारा होता है ? श्रुत के द्वारा। तिलोयपण्णति में आचार्यो ने लिखा है, कि यदि धर्म की प्रभावना उत्कृष्ट तरीके से करना हो, तो श्रुतज्ञान उत्कृष्ट होना चाहिये। जिसका जितना श्रुतज्ञान उत्कृष्ट होगा, वह उतना अधिक उत्कृष्ट तरीके से विश्व व्यापी धर्म प्रभावना कर सकता है।

प्रिय आत्मन्!

महावीर स्वामी का ज्ञान विश्वप्रकाशी था, तो उनकी प्रभावना भी विश्वव्यापी थी। हमारा ज्ञान जितना समृद्ध होगा, हमारे पास नाना भाषा विद् ज्ञान संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, हिंदी, मराठी, कन्नड इत्यादि भाषागत् ज्ञान होगा तो उतनी प्रभावना होगी। मैं जयपुर से बिहार करते हुये आ रहा था, रास्ते में विदेशी यात्री की गाड़ी (करीब पैंतीस सीटर बस थी) ठहरी, दर्शन किये। उसमें फ्रांस के कालेज के प्रोफेसर थे, प्राय: शेष सब यात्री इंगलिश को बोलने वाले थे, दो व्यक्ति उनमें संस्कृत को बोलने वाले थे। इस बात को मानना पड़ेगा, कि एक-एक शब्द का उच्चारण इतना शुद्ध था, कि जो मात्र फोटो खींचने के लिये उतरे थे, वह करीब पैंतीस मिनिट तक रास्ते में चलते हुये चर्चा करते रहे, बहनों ने इष्टोपदेश सुनाया संस्कृत का, तो एक-एक शब्द सुनकर ऐसे नाच रहे थे, और जब वही इष्टोपदेश आपको सुनाते है, तो

आप उपयोग नहीं लगाते हैं, वही इष्टोपदेश जब बहनों ने सुनाया तो इतनी लगन से सुना। ओहो! यह जैन गीता है-यह जैन गीता है। आध्यात्मिक शास्त्र जैनों के पास ऐसी संस्कृत भी है, आश्चर्य कर रहे थे। हमारी प्रत्येक वार्ता संस्कृत में हुयी और वह बहुत आनंदित हुये।

मेरा प्रयोजन यह है। कि साधकों के लिये, श्रावकों के लिये, पूर्ण निष्ठा के साथ भाषागत् ज्ञान भी होना चाहिये। संस्कृत का, प्राकृत का, अपभ्रंश का साथ में अंग्रेजी, मराठी, कन्नड भाषा का, क्योंकि आप एक प्रदेश के लिये नहीं हैं आपका जीवन पूरे विश्व के लिये है, इसलिये विश्व व्यापी समस्त भाषायें हमें आना चाहिये, लेकिन सब का ज्ञान नहीं हैं तो, जिनका संपूर्ण ज्ञान जिनसे हो सकता, ऐसी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिंदी भाषा यह तो चार मुख्य ही हैं। इसके साथ अंग्रेजी, पाँच भाषाओं का ज्ञान, तो प्रत्येक साधु को नियम से होना चाहिये। तब कहीं वह जाके श्रुत का प्रवर्तन करेगा और श्रुत के प्रवर्तन से ही धर्म की प्रभावना होगी। धर्म की प्रभावना के लिये निकलने से पहले, साधु को अपने संघ में इन पाँचों भाषाओं को पूर्ण रुप से कम्पलीट कर लेना चाहिये।

प्रिय आत्मन्!

वर्तमान में प्रभावना करने के पहले, प्रभावना का साधन तो होना चाहिये। दुकान खोलने के पहले माल भी तो होना चाहिये। शोरुम कितना भी अच्छा बना लो, लेकिन वैराइटी का माल नहीं होगा, तो शोरुम व्यक्ति एक बार देखेगा, द्वारा नहीं आयेगा। उसी प्रकार आगवानी कितनी भी अच्छी करा देना, लेकिन क्वालिटी का उपदेश नहीं होगा तो अध्यक्ष जी टिकिट के पैसे भी देंगें न तो भी लोग सुनने नहीं आयेगे। मिठाईयाँ भी बाँटेंगें तो भी लोग सुनने नहीं आयेगे। इसलिये धर्म का प्रवर्तन श्रुत के प्रवर्तन से होता है, श्रुत की स्थापना धर्म की स्थापना है।

जो जितनी भीतर में श्रुत की स्थापना करेगा जब बाहर निकलेगा तो श्रुत ही निकलेगा। पहले इन्वर्टर स्वयं चार्ज होगा, तो बाद में बाहर में प्रकाश दे पायेगा। यदि इन्वर्टर में स्वयं के चार्ज होने की शक्ति नहीं है, या स्वयं चार्ज नहीं हो पा रहा है, तो वह इन्वर्टर क्या प्रकाश दे पायेगा ? इसलिये ध्यान देना-इन्वर्टर के साथ दो चीजें होती हैं। गौतम स्वामी महावीर स्वामी के इन्वर्टर थे। जिस समय महावीर स्वामी अपनी वाणी देते थे, तो गौतम स्वामी उसको केच किया करते थे और उसके बाद गौतम स्वामी उसका प्रस्तुतिकरण किया करते थे। तात्पर्य यह है कि जिस समय गुरु ज्ञान देते हैं, उस समय शिष्य को धारण करना चाहिये और जिस समय गुरु बंद कर देते हैं, उस समय शिष्य को प्रदान करना चाहिये, इन्वर्टर की तरह। ऐसा नहीं-इन्वर्टर दोनों समय केच तो करता रहे पूरी क्षमता से, लेकिन, प्रदान कुछ न

करे। उसी तरह से प्रदान करे-जिस तरह से महावीर स्वामी को प्रात: मोक्ष हुआ और गौतम स्वामी ने योग निरोध करके सायं की बेला में केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। और फिर जगत के जीवों का अज्ञान अंधकार दूर करने लगे।

शिष्य का काम है, कि गुरु की ज्ञान परम्परा को आगे बढ़ाये। जिनसेन आचार्य की परम्परा को गुणभद्र आचार्य ने पूर्ण किया। शिष्य का ज्ञान इतना प्रखर होना चाहिये, कि वह गुरु की परम्परा को, या गुरु के अधूरे कार्य को पूरा कर सके। पुत्र के पास इतनी कला होना चाहिये कि वह पिता के व्यापार को सम्हाले। पिता के पास जो व्यापार है, उसको चलाने की कला पुत्र के पास होना चाहिये। और गुरु की सभा, गुरु के शास्त्र लेखन को आगे बढ़ाने की कुशलता शिष्य के पास होना चाहिये।

प्रिय आत्मन्!

जिनसेन स्वामी ने आदिपुराण लिखा, जिनसेन स्वामी की समाधि हो गयी, उसके बाद किसने लिखा ? गुणभद्र आचार्य ने लिखा है, यह विशेषता है। पुष्पदंत आचार्य ने षट्खण्डागम की पहली पुस्तक लिखी, उसके पश्चात् उनका प्रयाण हो गया, अनन्तर भूतबली आचार्य ने उनका संपूर्ण कार्य किया। देखो एक पुष्पदंत और दूसरे भूतबली, यह दोंनों मित्र साधु थे, गुरु भाई थे, दोनों ने इस तरह से ज्ञान अर्जित किया था, कि कुछ काम आचार्य पुष्पदंत ने किया, दोंनों सदा साथ रहे और ऐसा महान कार्य किया है। यदि दोंनों जुदा-जुदा हो जाते तो क्या षट्खण्डागम हमारे हाथ में होता ? नहीं होता। यदि आचार्य पुष्पदंत अकेले सीखने जाते, या आचार्य भूतबली अकेले सीखने जाते और दो में से एक की समाधि हो जाती, तो आज हमारे पास षट्खण्डागम (धवला) नहीं होता।

जैसे आचार्य पुष्पदंत भूतबली दोनों ने अपने गुरु से ज्ञान को पाया और उसे शास्त्रों में लिपिबद्ध कर दिया, तो वह जयवंत हो गया, उसी तरह, पूर्व के शास्त्रों को समझने की कला आज के श्रावकों के पास नहीं है, आज हमारे प्रवचन का जो मूल्यांकन है, पाँच सौ साल बाद, इस प्रवचन का मूल्यांकन पाँच सौ गुना बढ़ जायेगा। आचार्य समंतभद्र स्वामी ने पौन घंटे में स्वयंभू स्तोत्र की रचना कर दी, और आज दो हजार वर्ष तक जयवंत हो गये, यदि संपूर्ण आचार्य समंतभद्र के ज्ञान को सुरक्षित रखा जाता, तो एक लाईब्रेरी तो आचार्य समंतभद्र की ही होती, जितने आचार्य समंतभद्र ने वाद-विवाद किये हैं, उन वाद-विवादों का आलेखन भी होता, तो एक लाईब्रेरी आचार्य समंतभद्र के वाद-विवाद ज्ञान की होती।

हमारे पूर्वाचार्य इतने निर्मोही रहे, इतने वीतरागी रहे, कि उन्होंने उस ज्ञान सम्पदा को सुरक्षित नहीं किया। और श्रावक भी यह समझते थे कि हमको तो ज्ञान है, हम तो समझ गये। लेकिन आगम ज्ञान मात्र तुम्हारी समझ तक के लिये नहीं है अपितु ज्ञान तुम्हारी अगली पीढ़ियों को कौन समझायेगा ? आज हम

बैठे हैं आचार्य कुंदकुंद की परम्परा के लगभग शताधिक पीढ़ी के साधु, आचार्य कुंदकुंद ने ऐसी सम्पत्ति दी है कि आज उनकी शताधिक पीढ़ी के काम आ रही है। आपमें क्या यह क्षमता है कि आप अपनी शताधिक पीढ़ी को कुछ दे पायें ? कल्पना करो। आपने जो दिया है मात्र अपने बेटे तक देकर आपका काम पूरा, इसके आगे कुछ भी नहीं रहा। आपने जीवन भर कमाया और बेटे के हाथ में दिया आपका काम पूरा। लेकिन हमारे पूर्वज आचार्यो-कुंदकुंद आदिक ने दिया। जो आज शताधिक पीढ़ी तक चला आ रहा है।

प्रिय आत्मन्!

कलिकाल सर्वज्ञ समंतभद्र आचार्य जो हो गये, सो हो गये वे द्वारा लौटकर इस धरती को मिलना संभव नहीं है। ज्ञानी जीवो ! आज हमारी समाज में जो विद्वान साधु हैं, वे इस धरती के लिये वरदान हैं, वे पुन: आगे युग में जन्म लेंगें, यह दुर्लभ समझना चाहिये। एक जगह लिखा है, कि विद्वान बनने के लिये पचास साल लग जाते हैं, पचास साल के होने पर तो विद्वान पहचान में आते हैं, कि विद्वान है पच्चीस-तीस साल वाले को तो कोई विद्वान ही नहीं मानता, पचास साल में व्यक्ति विद्वान बन पाता है।

एक-एक विद्वान इस धरती पर श्रुततीर्थं का प्रवर्तक है, श्रुत के अखण्ड दीप को जलाने की कला विद्वान के पास होती है, अथवा ज्ञानी साधु के पास होती है, इसलिये साधुओं को अपनी विद्या में इतना निष्णात् होना चाहिये कि उस तत्त्व को प्राप्त कर सके। ज्ञानी जीवो ! तत्त्वगवेषणा साधु निरंतर करता है, उसी अन्वेषण काल में हम चल रहे हैं। तत्त्व निर्विकल्प है, तत्त्व में विकल्प नहीं है, वस्तु में विकल्प नहीं है। तत्त्व धर्म वाला है, तत्त्व तो निर्विकल्प ही होता है तत्त्व को जानने वाला जो वक्ता है, ज्ञाता है, श्रोता है, उसके ज्ञान का विकल्प है तत्त्व का विकल्प नहीं है। विकल्प ज्ञान में होता है, विकल्प तत्त्व में नहीं होता है लेकिन जब गुण और गुणी में भेद करते है या अभेद करते है तो यह जाना जायेगा कि तत्त्व सविकल्प अविकल्प उभयरूप है।

जब गुण और गुणी में अभेद किया तो तत्त्व में भेद आ गया, अन्यथा तत्त्व तो निर्विकल्प ही है। शुद्ध तत्त्व तो निर्विकल्प ही है, विकल्प श्रुत ज्ञान का भेद है, तत्त्व जो है सो है, वह भाव रुप है। संसार में सार क्या है, कुंदकुंद भगवान से पूछा तो कुंदकुंद भगवान कहते है।

णाणं णरस्य सारो, सारो वि य होइ सम्मत्तं ।
सम्मत्ताओ चरणं, चरणादो होइ णिव्वाणं ।।

जब एक जैनाचार्य कुंदकुंद दिगम्बर तपस्वी से पूछा, कि मनुष्य जीवन का सार क्या है ? तो उत्तर मिला-ज्ञान। मनुष्य जीवन का सार है। जब अन्य लौकिक विद्वान से पूछा, कि मनुष्य जीवन का सार क्या

है ? उसने कहा ''नरस्याभरणं रूपं''। मनुष्य जीवन का सार रूप है, लेकिन कुंदकुंद भगवान बोले मनुष्य जीवन का सार ज्ञान है। ज्ञान आत्मा का गुण है, रूप शरीर का गुण है।

देवसेन आचार्य कहते हैं-जो अविकल्प (निर्विकल्प) तत्त्व है वह सार तत्त्व अविकल्प तत्त्व है। परम समाधि में लीन वह परम योगी निष्पन्न योगी अपने शुद्ध भाव में लीन हो।

जं किंचि वि चिंतंतो, णिरीह-वित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूणय एयत्तं, तदा हु तं तस्स णिच्छयं झाणं ।।55। द्रव्यसंग्रह ।।

निरीह वृत्ति से निज में लीन हुआ साधु, जो कुछ भी चिंतन करता है, वह उसका ध्यान होता है। किसी भी तरह की कोई अपेक्षा नहीं है, सबसे पहले छह बातें ध्यान देना- मोह मत करो, राग मत करो, द्वेष मत करो, चेष्टा मत करो, बोलो मत, चिंता मत करो। यह छह बातें ध्यान के लिये परम आवश्यक हैं, इन छह बातों के बाद ही ध्यान प्रारंभ होता है। इन छह बातों को ध्यान में रखते हुये जो तुम स्थिर हो जाओगे, तो उस स्थिरता में अविकल्प तत्त्व आ जायेगा।

प्रिय आत्मन्!

रंग सात होते है। इन्द्रधनुष के जब सभी रंगों को एक साथ घुमाया जाता है, तो कौन सा रंग दिखाई देता है ? मात्र सफेद रंग दिखाई देता है। उसी प्रकार से नौ तत्त्व जब विकल्प मय होते हैं, अविकल्प एक मात्र आत्म तत्त्व होता है। विकल्प सार नहीं है, निर्विकल्पता सार है। गन्ने का सार उसकी मिठास है। यानि मिठास नहीं है, तो गन्ना बेकार है दूध का सार उसकी पौष्टिकता, विटामिन, घृत पना उसमें से निकाल दिया, तो उसका सार तत्त्व चला गया।

ज्ञानी जीवो ! कीमत सार तत्त्व की है। आचार्य देव कहते हैं-अविकल्प तत्त्व सार है। प्रत्यक्ष रुप से मोक्ष का जो कारण है, साक्षात् जो मोक्ष का कारण है वह अविकल्प ही है, निर्मल तत्त्व जो है, निर्विकल्प तत्त्व है। जहाँ किसी तरह का कोई पक्षपात नहीं है, किसी तरह का राग-द्वेष नहीं है।

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य, इत्यसौ तत्त्व संग्रहः।
यदन्य-दुच्यते किंचित्, सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः ।।50।। इष्टोपदेश ।।

पूज्यपाद स्वामी ने संपूर्ण इष्टोपदेश लिखने के बाद, किसी ने प्रश्न किया, कि हे स्वामी ! आप तो मुझे दो शब्दों में सार बता दो, कि ग्रंथ लिखने का सार क्या है ? तो पूज्यपाद देव बोले, यदि पूरे ग्रंथ का सार समझना हो, तो दो शब्दों में समझ लो, जीव भिन्न है, पुद्गल भिन्न है, यह संपूर्ण ग्रंथों का सार है। इतने

को समझाने के लिये पूरे द्वादशांग की रचना है। संपूर्ण जिनवाणी इसी तत्त्व समझाने के लिये है, कि जीव अलग है और पुद्गल अलग है ।

प्रिय आत्मन्!

किस-किस विधि से कब-किसको-कैसे समझ में आ जाये, आदिनाथ स्वामी तैरासी लाख वर्ष पूर्व के जीवन काल में नही समझ पाये और जब जीव जुदा, पुद्गल जुदा, नीलांजना की मृत्यु देखी, तो समझ गये, कि जीव जुदा है पुद्गल जुदा है । इतने को समझने के लिये, आदिनाथ स्वामी जैसे, तीन ज्ञान के धारी के लिये, तैरासी लाख वर्ष पूर्व लग गये और समझ नहीं पाये । एक मृत्यु को देखा, और समझ गये ।

ज्ञानी जीवो ! उन्होंने समझा क्या ? जीव जुदा, पुद्गल जुदा, यही तो समझा था । सार तो इतना ही है, चाहे एक मिनिट में, चाहे हजार वर्ष में समझो, चाहे एक बार में, चाहे हजार बार में समझो, चाहे जीवन की आदि में, चाहे जीवन के अंत में समझो, जीव जुदा, पुद्गल जुदा । उस विशुद्ध तत्त्व को जानकर के ध्यान करो, निर्ग्रंथ मुनि होकर ध्यान करो । क्यों ध्यान करो ? क्योंकि -

ख पुष्प मथवा श्रृंगं, खरस्यापि प्रतीयते ।
न पुनर्देशकालेऽपि, ध्यान सिद्धि ग्रहाश्रमे ।।

गधे के सींग नहीं होते हैं, लेकिन मान लो कभी हो सकते हैं । आकाश के फुल नहीं होते हैं, मान लो कभी हो जायें । लेकिन ध्यान की सिद्धि घर में रहते हुये गृहस्थ को नहीं हो सकती है । इसलिये हे जीवो ! आचार्य देव कहते हैं-घर में इतने विकल्प रहते हैं, कि ध्यान हो ही नहीं सकता । शुद्धात्मा के ध्यान के लिये जीव में, निरंतर जब शुभोपयोग बनता है, तब कहीं शुद्ध का स्पर्श हो सकता है । जब शुभ का ही स्पर्श नहीं है, आर्तध्यान की परिणति चले, तो मैं कैसे कल्पना करलूँ, कि तुम्हें शुद्धोपयोग होगा ।

वस्त्रधारी को सद्गुरु कहें मूढजन ।
मखमली गद्दियों पर स्वरूपाचरण ।।

ज्ञानी जीवो ! किंतु यह सर्वथा मत मान लेना, कि जिसको आर्त, रौद्रध्यान होगा, वह शुद्ध नहीं हो पायेगा, एक मुनि पलभर पहले क्रोधित मुद्रा (अपने हाथ से यूँ मुद्रा बनाये धनुष बाण) की और दूसरे ही पल में मालूम चला, कि मुनि को केवलज्ञान हो गया । ज्ञानी! पर्याय को बदलने में, परिणाम को बदलने में, एक समय लगता है । इसलिये एक पल को देखकर के त्रिकाल का निर्णय मत कर लेना, मैं बहुत अच्छा हूँ, मैं बहुत बुरा हूँ। जीव का जो स्वभाव है, वह तो शुद्ध स्वभाव ही है परम पारणामिक भाव की

अपेक्षा। लेकिन कर्मो के औदयिक परिणाम के अनुरुप जीव की परिणति प्रति समय बदल रही है, एक जैसे परिणाम जीव में हों, इसके लिये एक भाव परिवर्तन चाहिये, और उसमें अनंत काल लग जाता है।

प्रिय आत्मन्!

जो परिणाम अभी तुम्हारे हैं, यही परिणाम बनाने के लिये अनंतकाल लग जायेगा। इसलिये यह मत कहना, कि उसके परिणाम ऐसे हैं, क्योंकि जिस समय तुमने कहा, उसके परिणाम ऐसे हैं, उस समय उसके परिणाम हजार बार बदल गये। ज्ञानी ! महावीर स्वामी के समवशरण में जाकर के श्रावक सुधी ने पूछा महाराज एक मुनिराज को मैंने जंगल में देखा है, वह यूँ मुद्रा लिये है, (यानी क्रोध की) उन मुनिराज का क्या होगा। जब तक महावीर स्वामी उस प्रश्न का उत्तर देते, तब तक आकाश से देवों के विमान जा रहे थे और मेरा दूसरा प्रश्न यह है, स्वामी कि आकाश से विमान आपके समवशरण को छोड़ते हुये कहाँ जा रहे हैं, महावीर स्वामी की वाणी खिरती है, हे जीव ! जिनके विषय में पहला प्रश्न है, उन्हीं के विषय में यह प्रश्न का उत्तर है। जिन मुनिराज को तुमने इस मुद्रा में देखा है, उनके केवलज्ञान महोत्सव को मनाने के लिये यह देव जा रहे हैं।

प्रिय आत्मन्!

जीव की परिणति कब बदल जाये इसका कोई पता नहीं है, ज्ञानी जीवो ! ध्यान देना- इसलिये मैंने अनुभव किया है कहीं-कहीं पर महान आचार्य पधार सकते हैं और जीव अपना भला नहीं कर पाता है और एक छोटे से साधु पधार जायें, तो अपना भला कर लेता है। कोई-कोई वनस्पतियाँ बरसात में पैदा होती हैं। कोई वनस्पतियाँ ग्रीष्मकाल में पैदा होती है। कोई वनस्पतियाँ शीतकाल में पैदा होती हैं। उसी तरह कोई जीव कभी अपना भला कर पाते है कोई जीव कभी अपना भला कर पाते है।

ध्यान देना- मारीचि का भला आदिनाथ नहीं कर पाये, मारीची का भला साक्षात तीर्थंकर नहीं कर पाये और जंगल में शेर की पर्याय में दो मुनिराजों ने उपदेश दिया और भला हो गया। इसलिये भला करना चाहो, किंतु यह मत सोचो कि हमारे निमित्त से भला हो ही जायेगा। नहीं भी हो, कोई दिक्कत नहीं, लेकिन उसकी काल लब्धि जब निकट आयेगी, तो उसका भला हुये बिना रहेगा नहीं।

ज्ञानी जीवो ! परिग्रह की तैयारी नहीं, परिणामों की तैयारी करो। परिग्रह तो एकेन्द्रिय, द्विइंद्रिय, तीनइंद्रिय भी जोड़ लेता है। ज्ञानी तुम कितना जोड़ पाओगे जीवन भर में एकेन्द्रिय में देखो, पर्वत के नीचे सोना दबा है, तुम अपने घर में कितना लाओगे, क्या जोड़ा तुमने, कुछ भी महत्व नहीं है। आचार्य कहते हैं, इस अमूल्य ज्ञान निधि का उपयोग, तुम पैसों के संकलन में लगा रहे हो।

ज्ञानी जीवो ! आपके लिये तीस हजार रुपये महीने वेतन मिलता है तो एक हजार रुपये दिन में इन्होंने अपनी, अपने जीवन की, श्वाँसों को बेचा है, अब बतायेंगे आप एक मुर्हुत में आप कितनी श्वाँस लेते है ? अठत्तर बार एक मिनिट में श्वाँस लेते हैं तो एक मुर्हुत में लगभग सैंतीस सौ तिहत्तर बार, एक दिन में 30 मुर्हुत होते हैं। तो एक दिन रात में एक तेरह हजार एक सौ नब्बे श्वाँसे चौबीस घंटे की होती हैं, अब हम देखें एक हजार रुपये में यदि एक लाख तेरह हजार एक सौ नब्बे श्वाँसे बेचकर आये है तो एक श्वाँस कितने पैसे में बेची ? एक पैसे में भी नहीं।

प्रिय आत्मन्!

हम जो दुकान पर बैठकर पैसा कमाते हैं, व्यापार में पैसा कमा रहे हैं, वस्तुत: पैसा नहीं कमा रहे हैं, हम अपनी श्वाँसो को वहाँ पर बैठकर बेच रहे हैं। यह तो सबको पता है, कि इनकी कपड़े की दुकान है, यह तो सबको पता है, कि सोने की दुकान है। किंतु ज्ञानी जीव, सच में तो यह है, सर्वज्ञ भगवान बताते हैं कि तू अपनी अमूल्य श्वाँसों को वहाँ पर बैठकर के बेच रहा है, श्वाँसों के बेचे बिना तो सोना चाँदी भी नही बिकता। अत: संसार में जितनी भी जैसी भी दुकानें हैं, वह सब श्वाँसों की दुकाने हैं। जिस श्वाँस में णमोकार जपना था, उसी श्वाँस से ग्राहक से वार्ता हो रही है। दिन भर में एक हजार कमाये हैं, यदि काश एक श्वाँस वापस लेना चाहो, तो कितने पैसे में मिलेगी ? जो श्वाँस तुमने एक पैसे में बेच दी है, उस श्वाँस को वापिस ले लो। जैसे ग्राहक माल वापिस कर जाता है, उस ग्राहक से कहो, कि तुमने माल तो वापिस लौटा दिया, पर मेरी श्वाँस भी वापिस लौटा दो।

बाहरी परिग्रह के त्याग से मुनि मुद्रा नहीं होती, मात्र अंतरंग परिग्रह के त्याग से मुनि मुद्रा नहीं होती है। दोनों त्याग अनिवार्य है, बहिरंग का त्याग भी, और अंतरंग का त्याग भी आवश्यक है। तभी निर्ग्रंथ होता है। मात्र कपड़ों के उतारने का नाम त्याग नहीं है, यदि इतने को ही मुनि मान लिया जाता, तो रोज यह श्रावक कपड़े उतारते हैं। मात्र परिधान के उतारने का नाम साधुता नहीं है, परिणाम के उतारने का नाम साधुता है।

ध्यान देना-ज्ञानी जीवो ! जो सदा नग्न रहते हैं, यदि नग्न रहना ही मुनित्व है तो, जानवर तो सदा नग्न रहते हैं, पूरी प्रकृति नग्न रहती है। ज्ञानी जीवो ! भीतर में कषायों से नग्न होना, नो कषायों से नग्न होना, सच्चा नगन्त्व है। भीतर में राग, द्वेष, मोह कितना घटा, ''स्थान बदल लेने से गुणस्थान नहीं बदल जाता है''। साधना-स्थान बदलना नहीं है, गुणस्थान बदलना है। गुरु देव मूलगुण दे सकते हैं, गुणस्थान नहीं दे सकते।

प्रिय आत्मन्!

एक साथ अनेक दीक्षायें होती हैं, लेकिन परिणाम सबके भिन्न-भिन्न होते हैं। अपने परिणामों को सम्हाल लेना, अन्यथा अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल बाद मुनि बन पाओगे, एक बार मुनि बनने के बाद, यदि परिणाम नहीं सम्हाले तो, अर्द्ध पुद्गल परावर्तनकाल भी लग सकता है, तब फिर मुनि बन पाओगे। इसलिये भीतर की निर्मलता का नाम मुनि दशा है, बाहर का नगन्त्व देखकर तो सब मुनि मान लेते हैं, लेकिन भीतर की निर्ग्रंथ दशा को देखकर ही सर्वज्ञ मुनि मानते है।

ज्ञानी जीवो ! सब मुझे क्या मानते हैं, यह महत्वपूर्ण नहीं है, सर्वज्ञ मुझे क्या मानते हैं, यह महत्वपूर्ण है। भीतर की दशा को निहारना, मेरे भीतर की दशा को कोई नहीं जान सकता, अपने प्रति ईमानदार बनना सबसे बड़ी साधना है, जो अपने प्रति ईमानदार हो सकता है, वही सच्चा साधक हो सकता है।

दूसरों के प्रति सब कुछ कर लेना, लेकिन अपने प्रति ईमानदार न होना। दूसरों का ध्यान रखने वाले ही, अपना ध्यान नहीं रख पाते हैं। ज्ञानी जीवो ! वह निर्ग्रंथता इतनी आसान नहीं है, आचार्य कहते हैं-मुनि दशा में एक बार भी प्रवेश कर जाये, तो जीव का कल्याण हो जायेगा। श्रावक बनना बहुत आसान है, क्योंकि श्रावक आठ वर्ष अंतर्मुहुर्त कम एक पूर्व कोटि तक पाँचवें गुणस्थान में रह सकता है, लेकिन मुनि छठवें गुणस्थान में अड़तालीस मिनिट भी नहीं रह सकता है। क्योंकि गुणस्थान का काल अंतर्मुहुर्त है।

यदि अंतर्मुहुर्त के भीतर-भीतर अपने शुद्ध भाव नहीं बनाता है, तो नियम से पंचम में आ जायेगा और पन्द्रह दिन के भीतर परिणति निर्मल नहीं करता है, तो चौथे में आ जायेगा और छह महीने के भीतर परिणाम नहीं सुधारता है तो सीधा का सीधा पहले में आ जायेगा, मिथ्यादृष्टि हो जायेगा। ऊपर से नग्न बना रहेगा, और भीतर से नंगा बना रहेगा। मुनि बनने के साथ-साथ भीतर की मुनित्व दशा को निहारना सबसे बड़ी चीज है। इसलिये आचार्य देव कहते हैं-सामायिक का समय, मात्र स्वयं को निहारने का समय है।

प्रिय आत्मन्!

जिन परिणामों के साथ मैंने दीक्षा ली थी, जो अक्षय विशुद्धि मैं लेकर आया था और जो अक्षय वैराग्य मैं लेकर आया था, वह अक्षय विशुद्धि और अक्षय वैराग्य मेरा साथ है, कि नहीं। ऐसा तो नहीं है कि कहीं श्रावकों के झमेले में मैं अपनी अक्षय विशुद्धि को नष्ट कर दूँ, यदि अक्षय विशुद्धि नष्ट हो गयी तो ज्ञानी जीवो ! फिर तुम्हारा धर्म भीतर से चला जायेगा।

ज्ञानी जीवों ! ध्यान देना-केंथा का वजन पाँच सौ ग्राम है आकार ज्यों का त्यों है, लेकिन उसी केंथे को हाथी खा लेता है और वापिस ज्यो का त्यों निकल जाये तो, अब बोलो ज्ञानी ! केंथा का वचन कितना बचेगा ? उस केंथे का वचन पचास ग्राम हो गया है, केंथा फुटा नहीं है, केंथा बिल्कुल साबुत है, लेकिन हाथी की पाचन शक्ति ने उसके पूरे सार तत्त्व को ग्रहण कर लिया है, उसी तरह से शरीर का आकार तो यही बना रहेगा, पिच्छी कमण्डलु तो यही बना रहेगा, लेकिन भीतर का राग-द्वेष पैदा हो गया तो गुणस्थान घट जायेगा। जैसे हाथी केंथा को खाकर के उस केथे की शक्ति को नष्ट कर देता है, उसी तरह राग-द्वेष-मोह ये साधु के ज्ञान-संयम को खा जाते हैं। इसलिये साधुओं को हमेशा ध्यान रखना चाहिये कि हमारा ज्ञान वैराग्य अच्छा है, कि नहीं जितना लेके आये थे, उतना है कि नही।

प्रिय आत्मन्!

दीक्षा के दिन के परिणाम यदि दिन में एक बार भी हो जायेगें, तो तुम्हारा सातवाँ गुणस्थान तुमसे कोई नहीं छीन पायेगा। और दीक्षा के दिन के परिणाम याद आते रहेगें तो अतिचार नहीं लगेगें। जिन परिणामों में तुमने भगवान की पूजा शुरु की थी, पहले दिन जो अभिषेक में आनंद आया था, वह आनंद यदि रोज लोगे तो कभी मुझसे पूजा छूटेगी नहीं। जो पहले दिन मंदिर को आये थे, तो जो आनंद आया था, वही आनंद रोज आना चाहिये।

ज्ञानी जीवो ! भीतर से निर्ग्रंथ होना ही सबसे बड़ी निर्ग्रंथता है, दीक्षा लेते समय भी यदि कोई पहले गुणस्थानवर्ती जीव हैं, वह भी जब मुनि दीक्षा को लेता है तो सम्यक्दर्शन पैदा होते ही सीधा सप्तम गुणस्थान में चला जाता है, कोई चौथे गुणस्थानवर्ती श्रावक है वह भी दीक्षा लेता है, तो सातवें गुणस्थान में ही जाता है। और कोई पाँचवे गुणस्थानवर्ती देशव्रती दीक्षा लेता है, तो सातवें गुणस्थान में जाता है। एक व्यक्ति बोला विभवसागर जी बहुत अच्छा प्रवचन कर रहे हैं, लेकिन भैया तुम्हे खुशी की बात हो सकती है, कि विभवसागर जी कितना अच्छा प्रवचन कर रहे हैं, लेकिन मेरे गुरु जी से पूछो, तो मेरे गुरु जी और मेरा जी, दो ही मुझे जानते हैं, या तो मेरा जी मुझे जानता है, या मेरा गुरुजी का जी मुझे जानता है।

प्रिय आत्मन्!

प्रतिसमय परिणामों को सम्हालना साधना है। वस्तुओं का संग्रह करना साधना नहीं है, भीड़ का होना प्रभावना नहीं है, भीतर में शुद्ध भाव का होना प्रभावना है। भीड़ के जोड़ने से प्रभावना नहीं होती है, भीतर में जुड़ने से प्रभावना होती है। यह भगवान की मुद्रा है, यह तीर्थंकर की मुद्रा है, ध्यान रखना, जब महान चीज भी छोटे व्यक्ति के हाथ में आ जाती है, तो कीमत नहीं कर पाता है। ज्ञानी जीव ! अपने इस

तत्त्व को समझो यह पिच्छी, यह कमण्डल यह सामान्य चीज नही है, यह पिच्छी वह है जिसे कुंदकुंद आचार्य ने कभी ली थी, यह कमण्डलु वह है, जिसे कभी समंतभद्र ने लिया था, इसी पिच्छी कमण्डलु के द्वारा पूरे विश्व में प्रभावना हुयी और उन्होंने आत्मा के स्वरुप में रमण किया था।

अच्छा आवास और अच्छा निवास तो कोई भी दे देगा, लेकिन आत्मा में वास तो स्वयं को ही करना पड़ेगा। और यही साधना है। निज में रहना साधना है, चाहे मध्य प्रदेश में रहो, चाहे उत्तर प्रदेश में रहो, चाहे हिमाचल प्रदेश में रहो, लेकिन सबसे बड़ी बात है अपने स्वदेश में रहना, आत्म प्रदेश में रहना।

लाहालाहे सरिसो सुह-दुक्खे तह य जीविए मरणे।
बंधु-अरियणसमाणो झाणसमत्थो हु सो जोई।।11।।

अर्थ-

जो लाभ और अलाभ में, सुख और दुःख में और उसी प्रकार जीवन तथा मरण में सदृश रहता है, इसी प्रकार बंधु और अरि (शत्रु) में समान भाव रखता है, निश्चय से वही योगी ध्यान करने में समर्थ है।

कालाइलद्धि णियडा जह-जह संभवइ भव्वपुरिसस्स।
तह-तह जायइ णूणं सुसव्वसामग्गि मोक्खट्ठं।।12।।

अर्थ-

जैसे-जैसे भव्य पुरुषों की काल आदि लब्धियाँ निकट आती जाती हैं, वैसे वैसे ही निश्च से मोक्ष के लिये उत्तम सर्व सामग्री प्राप्त हो जाती है। अर्थात् पंचेन्द्रियपना, संज्ञिपना, पर्याप्तकता, आर्यक्षेत्र की प्राप्ति, भाव विशुद्धि, सद्गुरु का उपदेश आदि की प्राप्ति हो जाती है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्षमहल-धारिणी, पाप-ताप-संताप- हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

वाचना क्या है ? ग्रंथ का निर्दोष तरीके से पढ़ना वाचना है, वाचना के साथ जब प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वही पृच्छना कहलाने लगती है, जब बार-बार उसका चिंतन मंथन होता है, ध्यान किया जाता है, तो वही अनुप्रेक्षा का रूप ले लेती है। और उसको दुहराया जाता है, तो वह आम्नाय बन जाती है और उसी का आत्मा में जब भ्रमण होता है, तो वह स्वाध्याय बन जाता है। तत्त्वसार ध्यान का उत्तम ग्रंथ है, अब प्रश्न यह है कि ध्यान में समर्थ कौन है ? यद्यपि वर्तमान जगत में सभी सम्प्रदाय और सभी ध्यान विशेषज्ञ अपने-अपने माध्यम से सहज ध्यान करते चलते है।

प्रिय आत्मन्!

सहज वह होता है, जो आत्मा का निज परिणाम होता है, जिसका कभी अभाव न हो। सहज सदा उदय रहता है, सहज-क्रोध नहीं होता है, सहज-मान नहीं होता है, सहज, किया नहीं जाता है, तो क्या हो जाता है ? नहीं ज्ञानी ! सहज स्वभाव में होता है, सहज विभाव में नहीं होता है। हम प्रत्येक कार्य को सहज संज्ञा दे देते हैं, लेकिन आचार्य कहते हैं सहज होता है, आत्मा का ज्ञान, सहज होता है, आत्मा का दर्शन-जो जीवन के साथ आया है और जीव के साथ जायेगा वह सहज होता है। आचार्य कहते हैं, जो लाभ और अलाभ में सदृश भाव रखता हो, जीवन-मरण में सदृश भाव रखता हो, काँच कंचन में सदृश भाव रखता है, शत्रु-मित्र में सदृश भाव रखता है, वन-भवन में एक सम भाव परिणाम रखता है। सहज वह होता है।

प्रिय आत्मन्!

जिसके लिये मिट्टी का ढ़ेला और सोने का पिटारा, एक समान नजर आता हो। जिसके लिये रेत की राशि और रत्न की राशि एक समान नजर आती है। जिसने सूत्र और पदार्थो को अच्छी तरह से जान लिया हो। जो तप और संयम से संयुक्त है और संयत है, जिसने राग को जीत लिया है, बुद्धि पूर्वक राग को जीत चुका है, सुख और दुख में सम्भावी है, उस जीव के शुद्धपयोग होता है।

ज्ञानी जीवो ! हरी घास पर बैठने का आनंद वही कर सकता है, जो मच्छर के काटने की वेदना को सहन कर सकता है, उसी तरह आत्मा के ध्यान में वही रम सकता है, जो विषय कषायों के मच्छरों से या उपसर्गो से चलायमान नहीं होगा।

प्रिय आत्मन्!

ध्यान में समर्थ कौन है ? जो बाह्य विकल्पों में न उलझे, जो स्वयं आत्मा में उपस्थित हो सके, वह ध्यान में समर्थ है। आचार्य भगवन् कहते हैं, लाभ हो गया या हानि हो गयी, हमारी परिणति, लाभ के होने पर आनंदित हो जाती है और हानि होने पर, विषाद के होने पर, ग्लानि हो जाती है। आचार्य कहते हैं, तुम में अभी ध्यान की पात्रता नहीं हैं, लाभ कितना भी होता रहे तब भी याद रहे, कि मेरे आत्मप्रदेशों को क्या लाभ हुआ है, यह गृहस्थ जीवन व्यापार में लाभ हो जायेगा, मन झूम उठेगा, हानि हो जायेगी अलाभ हो जायेगा तो विषाद से भर जायेगा।

आचार्य कहते हैं, कि ऐसे परिणाम जब तक रहेगें, तब तक ध्यान की अवस्था नहीं बनेगी, इसलिये लाभ और हानि से बचो। प्रशंसा और निंदा से बचो। ज्ञानी रहता तो लोक में है, जीता निज लोक में है। ध्यानियों और योगियों पुरुषों का जो जीवन होता है, वह वस्तुत: रहते लोक में हैं-जैसे सो रहा है। उसका कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता, जानते हैं लाभ होने से आत्मा का एक प्रदेश नहीं बढ़ जायेगा और हानि हो जाने से मेरी आत्मा का एक प्रदेश घट नहीं जायेगा।

प्रिय आत्मन्!

संवर और निर्जरा होना सच्चा लाभ है। आस्रव-बंध होना सच्ची हानि है और पर के रुपये पैसे के लाभ से, न मेरी संवर निर्जरा हो रही है और हानि से, न आस्रव-बंध हो रहा है। तो साधुओं और साधकों को चाहिये, कि वस्तुत: धन आदि का भाव, यश आदि का भाव, यह क्षण भंगुर है इसलिये ध्याता पुरुष विनश्वर-धन, आदि में हर्ष नहीं मानता। जानता है कि वस्तुत: जो संवर तत्त्व का लाभ है, जो निर्जरा तत्त्व का लाभ है, वही मेरा लाभ है। आत्म स्वरुप का लाभ ही यथार्थ लाभ है।

ज्ञानी जीवों अपनी विशुद्धि जितनी बढ़ जाये उतना लाभ है और जितना संक्लेश हो जाये उतनी हानि है, इसलिये ध्याता-पुरुष विशुद्धि को लाभ मानता है और संक्लेश को हानि मानता है। न तो जन समुदाय की संख्या का आना लाभ है, न भौतिक पदार्थो का आना लाभ है। लाभ है-विशुद्धि की पराकष्ठा। हानि है-संक्लेश की वृद्धि। यदि परिणामों की शुद्धि बढ़ रही है, तो समवशरण का भी विघटन हो जाये, तो भी हानि नहीं है। धन का (रुकना) घटना हानि नहीं है, क्यों नहीं है हानि ? क्योंकि समवशरण में से सम्पत्ति विनाश को प्राप्त हो रही है, लेकिन वह आत्मा तेरहवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान में जा रहा है, और हमारे पास से जरा सा धन वैभव हाथ से छूटता है, तो हम संक्लेषित हो जाते है।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य कहते हैं, लाभ में अलाभ में समान भाव होना चाहिये। एक सेठ के पास संदेश आया सेठ जी समुद्री रास्ते से जहाज आ रहा है, जिसमें अपना माल आ रहा है, सेठ ने कहा-ठीक है। दूसरा संदेश आया कि तूफान चलने से जहाज समुद्र में कहीं खो गया। सेठ ने कहा-ठीक है। तीसरा संदेश कुछ देर बाद आया कि सेठ जी वह जहाज मिल गया, सेठ ने कहा-ठीक है। ज्ञानी ! लाभ में भी जहाँ समता है और अलाभ में भी जहाँ समता है। ज्ञानी ! व्यापार भले ही कितना बढ़ा करो, छोटा करो, आज हम देखते हैं, कभी व्यापार के क्षेत्र में हानि हो जाती है, तो व्यक्ति-यहाँ तक कि आत्म हत्या के विषय में सोच लेता है। कई-कई बार ऐसी परिणति होती है। जब लाटरी चली थी, तब व्यक्तियों ने कई उपाय रचे। आज भी शेयर बाजार में व्यक्ति प्रवेश कर जाता है और लाभ के लालच में सब कुछ लगा देता है।

आचार्य कहते हैं-ज्ञानी जीवो ! तुम आर्त और रौद्र ध्यान के सिवा कुछ नहीं कर पाओगे, ध्यान देना-ज्ञानी ! धर्म ध्यानी जीव जिसकी परिणति निर्मल है, वह व्यापार भी करता है, लेकिन लाभ या हानि में आत्मा को कष्ट में नही डालता है। ऐसा व्यापार नहीं करना, जिससे संक्लेश हो जाये। श्रीमद् रायचंद्र जी के पास एक व्यक्ति पहुँचा, उसके म्लान रूप को देखकर रायचंद्र जी ने कहा-क्यों भाई क्या बात है ? उसने कहा रत्नों का भाव बाजार में बहुत बढ़ गया है, इसलिये मेरे परिवार के सदस्य, रत्न बेचने के लिये गये हैं, किंतु मैं आपसे बोल चुका हूँ, मैं क्या करूँ ? रायचंद्र जी ने जिस कागज पर लिखा पढ़ी दी थी, उस कागज को मंगाया, उसी के सामने फाड़ देते हैं, हमारा तुम्हारा सौदा जो था, वह समाप्त भी नहीं किया, आज का जो भाव है, हम उस भाव पर माल खरीदने को तैयार है।

प्रिय आत्मन्!

सामान्य सम्यक्दृष्टि जीव की ऐसी परिणति होती है, किसी की आत्मा को दुखाकर के, किसी को संक्लेश पहुँचाकर के, वह लाभ लेना नहीं चाहता और हानि भी हो जाये तो स्वयं को संक्लेश में नही डालता है। जब संक्लेश की स्थिति में धर्म-ध्यान भी नहीं बनता है। तो फिर शुक्ल ध्यान की बात करता है। यदि संक्लेश है तो आचार्य कहते हैं-आर्त-ध्यान चल रहा है, इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोग, पीड़ा-चिंतन, निदान-बंध, हिंसानंदी, मृषानंदी, चौर्यानंदी, परिग्रहा नंदी हम इन ध्यानों में लवलीन हैं।

ज्ञानी जीवो ! लाभ में आनंद मना रहे हैं, सुबह छह बजे से दुकान में विराजे हैं, रात्रि के दस बजे तक, एक-एक ग्राहक के आने की खुशी है। ग्राहक मेरा देवता, दुकान मेरा मंदिर, व्यापार मेरी पूजा, ऐसी परिणति बनाये जीव बैठा है। एक-एक ग्राहक आते ही ऐसा आनंद आता है, जैसे मेरे घर में कोई देवता

आ गया हो और जब पैसे सामने आते हैं, तो बड़ा आनंद आता है उस आनंद में व्यक्ति आपने आपको स्वस्थ महसूस करता है।

आचार्य कहते हैं-लाभ परिग्रहानंदी रौद्र ध्यान है, अभी धर्म-ध्यान से तो बहुत दूर है लाभ और हानि में दोनों में समान भाव होना, वर्णी जी की धर्म माँ चिरोंजाबाई सम्मेद-शिखर जी की यात्रा पर गयीं। यहाँ घर पर चोरी हो गयी, तीन दिन बाद तार पहुँचा, कि घर में चोरी हो गयी है, तो चिरोंजाबाई जी कहती हैं, कि अब तो चोरी हो ही गयी है, अब क्या करें ? पहले सोच रही थीं दो वंदना करेंगें, अब तो चोरी हो ही गयी, अब क्या घर पर जाना? तो आराम से सात वंदना कीं। करने के बाद लौटी, तो घर में देखा कि चोरी हो गयी। उनके आने तक दूसरा कोई व्यक्ति घर में प्रवेश नहीं किया, कि भइया यदि हम आसपास भी घूमेंगे तो, कहीं हम न पकडे.जायें, इसलिये सात दिन तक कोई उनके घर के पास ही नहीं गया और जब माता जी लौट के आयीं, तो देखा कि चोर क्या ले गये ? कुछ बिना मंजे वर्तन बाहर छोड़ गयी थीं, सो वह ले गये। और देखा कि हमारा सब कुछ विधिवत् रखा है।

प्रिय आत्मन्!

कहने का भाव यह है, कि उनकी समता की परिणति को निहारिये कि लाभ में भी और अलाभ में भी समता थी। एक सामान्य सम्यक्दृष्टि जीव की परिणति को देखो, हम जो व्यापार कर रहे हैं, यद्यपि यह तत्त्वसार है। चर्चा मुनि की चल रही है, लेकिन हमें आपको यह तत्त्वज्ञान देना है, कि व्यापार करते हुये चाहे लाभ हो जाये, चाहे हानि हो जाये, किंतु ऐसा संक्लेश मत करना, कि कहीं दूसरे पर संकट आ जाये या अपने प्राणों को संकट आ जाये। क्योंकि मुझे ऐसा व्यापार नहीं चाहिये, कि उस लाभ के कारण मैं किसी के प्राणों को संकट में डाल दूँ, या मेरे प्राणों पर संकट आ जाये। आचार्य कहते हैं-यदि ऐसा हो गया तो अनंतानुबंधी कषाय में आ जायेगा।

प्रिय आत्मन्!

अपने यहाँ यह विशेषता है, कि हम सताते नहीं हैं, हमारे यहाँ समता है। यद्यपि यह सत्य है, आपके व्यापार में प्रतिसाल एक, दो लाख का पाँच प्रतिशत, दस प्रतिशत ग्राहक पचा जाता है, लेकिन फिर भी लाभ में रहते हैं। क्यों रहते ? क्योंकि यह जानते हैं, कि हमारे पुण्य के उदय से आखिर कमा कर तो तू ही देगा, हम तुझे तोड़े क्यों ? आज व्यापार के क्षेत्र में जैन समाज ही आगे क्यों हैं ? क्योंकि जैन समाज के पास आज नहीं कल, कल नहीं परसों, मान लो आप पचास नहीं देगें, सौ नहीं देगें, लेकिन हम पाँच सौ कमाने की क्षमता रखते हैं। केशरिया जी में जब विवाद हुआ, बहुत बड़ी हानि पहुँची, दूसरे ने

सोचा अब तो जैन समाज लुट गया, लेकिन जैन समाज ने एक ही, शब्द कहा, आप कितना भी लूटो, लेकिन जैन समाज की किस्मत को कोई नहीं लूट सकता है। यह जैन समाज के पास किस्मत से बुद्धि है। इसके पास इतना असीम ज्ञान और समता का भंडार हैं, जैनों के जो समता, शांति और जैनों में जो सामान्य सहज पना है, उस सहजपने के कारण, क्योंकि, व्यापार में विनम्रता चाहिये, व्यापार में ईमानदारी चाहिये, लोग इस पर चर्चा करते हैं, कि आखिर जैन ही व्यापार में सफल क्यों होते हैं ?

प्रिय आत्मन्!

जैन हर परिस्थिति में तत्काल उत्तर नहीं देता है, वह समता धैर्य को बनाये रखता है, लाभ, अलाभ, सुख और दु:ख में भी समता रखता है। ऐसा नहीं, सुख में फुल जाये और दु:ख आने पर रोने लगे। नहीं, दोनों में समता भाव होना चाहिये, यदि सुख आया है तो उसमें भी समता रखो और दुख आया है तो उसमें भी समता रखो। अधिकांशत: व्यक्ति, जरा सा सुख मिल जाये तो गुब्बारे के समान फुल्ल जाता है और जरा सा दु:ख आ जाये तो पूरी गैस खाली हो जाती है, गुब्बारे की तरह।

सुख और दु:ख दोनों में सम्भाव रहना चाहिये। जीवन-मरण, यदि आज हम दुख में सम्भाव नहीं रखेंगे, तो आचार्य कहते हैं-धर्म-ध्यान नही बनेगा। इसलिये दुख में भी समता रखना है। कहने से ज्यादा अच्छा होता है सहना-सहना भी साधना है। सहो, तो ऐसा सहो, कि साधना बन जाये और कहो तो ऐसा कहो कि प्रार्थना बन जाये। यदि तुमने आर्त-रौद्र के साथ सहा रो-रोकर के सहा तो क्या सहा, सहना ही है तो प्रसन्नता से सहोगे, तो साधना बन जायेगी और विनम्रता से कहोगे तो प्रार्थना बन जायेगी।

आचार्य कहते हैं-सहना महत्वपूर्ण नहीं है, सहते समय आकुलता तो नहीं हो रही है, व्याकुलता तो नही हो रही है, क्योंकि कर्म के उदय में नवीन कर्म का बंध न हो, यही सबसे बड़ी साधना है। प्रत्येक जीव को कर्म का उदय आ रहा है, उस कर्म के उदय काल में यदि जीव अपनी समता को नहीं खोता है, तो जो कर्म उदय में आया है, वह निर्जरा को प्राप्त हाकर के गल जायेगा। और यदि समता नहीं रखता है, आकुल व्याकुल हो जाता है। तो आचार्य कहते हैं-वृक्ष की डाल में आम लगे हैं, और उस आम की जड़ों में पानी दे दिया जाये, तो भविष्य में और आम लगेंगे, हजारों आम लगेंगे। इसी तरह कर्म के उदय काल में यदि समता न रखी जाये और आकुलता रूपी जल उन कर्मो को दे दिया जाये तो नवीन कर्म का बंध हो जाता है।

प्रिय आत्मन्!

कर्ज चुकाया कम, और लिया ज्यादा, तो यह व्यापार नहीं है। भैया यह जैन समाज यह जानती है, कि दुकान भले ही कम चले, लेकिन कर्जा नहीं हो जाये और दूसरी बात है, बिक्री भले ही कम हो, लेकिन मुनाफा ज्यादा होना चाहिये। और बिक्री ज्यादा है और मुनाफा कम है, तो व्यापार नहीं कहलाता है। ध्यान देना-कर्म का आस्रव ज्यादा हो और कर्म की निर्जरा कम हो, तो यह साधना नहीं कहलायेगी। साधना तो तब है, जब निर्जरा अधिक हो और आस्रव कम हो। पुराना कर्ज चुकता जाये और नया कर्ज लेना न पड़े और दुकान बढ़ती जाये तब व्यापार है।

ध्यान के लिये-पाण्डवों जैसी समता चाहिये यशोधर स्वामी पर राजा श्रेणिक तलवार चलाये, सांप डाले और रानी चेलना उपसर्ग दूर करें। और मुनिराज दोनों के लिये एक समान आशीर्वाद दें "उभयो धर्मवृद्धि रस्तु" यह है मुनि का स्वरुप, यह है ध्यानी का स्वरुप। ज्ञानी जीवो! जैन मुनि शाप नहीं देते हैं, अभिशाप नहीं देते हैं। क्यों ? ध्यान देना-बदला नहीं लेते हैं, बदल देते है।

राजा श्रेणिक से बदला नहीं लिया यशोधर महाराज ने श्रेणिक को बदल दिया, हृदय परिवर्तन कर दिया। मुनि शाप नहीं देता, मुनि जानता है, कि भैया तू तो भावी सिद्ध है, मैं सिद्ध परमात्मा को क्या शाप दूँगा। नैगम नय से पूँछा, कहाँ जा रहे हो ? तो नैगम नय कहेगा सिद्ध होने जा रहा हूँ। जब मंदिर आते हुये केशरिया धोती दुपट्टे में पहने हुये पुजारी को देखा उससे पूँछा कहाँ जा रहे हो ? तो नैगम नय की अपेक्षा उत्तर मिलता है, सिद्ध होने जा रहे है। प्रवचन सुनने के लिये एक श्रोता घर से आया, नैगम नय से पूछा कि क्या करने जा रहे हो ? वह कहता है अरहंत होने जा रहा हूँ।

प्रिय आत्मन्!

जब भीतर की परिणति निर्मल होती है, तो हम दूसरे को परमात्मा के रुप में देखने का प्रयास करते हैं। संसार के सभी जीवात्मा के समान दिखाई देते हैं और जब अंदर की विशुद्धि कम होती है, तो हम अपने आप को बुरा मान लेते हैं, दूसरों को तुच्छ मान लेते हैं, अपने को उच्च मान लेते हैं, यह ध्यान में बाधा है। जो आत्मा से जोड़ दे-वह योग है, मात्र शरीर के बल को बढ़ाना, आसनों को लगाना, हाथ पाँव टेड़े करना, बदन को मोड़ना और आँखों को घुमाना, योग नहीं है।

ज्ञानी जीवो ! यह तो चौरासी लाख यीनियों में करते आये हो। मात्र दो ही आसन से आत्मा का कल्याण हो जायेगा, पद्मासन, कयोत्सर्ग आसन। इन दोनों आसनों से मोक्ष जाया जा सकता है। इसलिये वह आसन लगाओ, जो आसन तुम्हारे भगवान ने लगाया है। जिस आसन के लगाने से तुम भगवान बन

सकते हो। ज्ञानी ! आसन भी भगवान बनने के लिये लगाया जाता है।

जैसे-जैसे जीव की परिणति निर्मल होती है, वैसे-वैसे जीव के लिये मोक्ष मार्ग की सामग्री मिलती है। और जेसे-जैसे मोक्ष मार्ग की सामग्री मिलती है, वैसे-वैसे परिणाम निर्मल होते चले जाते हैं।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य कहते हैं-काललब्धि का इंतजार नहीं करना चाहिये। जो कार्य आप जिस काल में कर लो, वही काल-काललब्धि है। हम कभी-कभी, काललब्धि का इंतजार करते हैं आचार्य कहते हैं-काललब्धि का इंतजार मत करिये, ''शुभस्य शीघ्रं'' अच्छे कार्य में जल्दी करना चाहिये। ध्यान देना-दीक्षा के पहले सुना जाता है, कि मुहुर्त देखे जाते हैं, लेकिन समाधि के पूर्व यदि दीक्षा होती है, तो कोई मुहुर्त नहीं देखे जाते हैं, उसमें एक सेकेंड का भी प्रमाद नहीं बताया है।

जिस समय कार्य कर लो, उसी समय काललब्धि है, प्रत्येक कार्य की काललब्धि है, अपने पुरुषार्थ पर निर्भर है। आचार्य कहते हैं-फिर भी अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल शेष रह जाना एक जीव के आसन्न भव्य की सूचना है।

प्रिय आत्मन्!

भव्य पुरुषों के लिये, जैसे-जैसे, काललब्धि निकट आती है, वैसे-वैसे, मोक्ष के लिये जो-जो सामग्री चाहिये, वह-वह सामग्री मिल जाती है। जैसे भवितव्यता होती है, वैसे सहायक मिलते हैं। ज्ञानी जीवो ! आचार्य कहते हैं-कि मोक्ष की सामग्री के लिये आपको क्या क्या चाहिये था ? और क्या-क्या मिल गया ? इस पर विचार करो। हम जब विचार करते हैं, तो हम पाते हैं कि हमारा एकेन्द्रिय से संज्ञी पंचेन्द्रिय में आना, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याय मोक्ष की पहली सामग्री है। मनुष्य पर्याय होना मोक्ष की सामग्री है, सकलेन्द्रिय होना मोक्ष की सामग्री है। हम जो यह बोलते हैं, कि हमारे पास कुछ नहीं है हम गरीब है, मेरे पास कुछ नही है।

ज्ञानी जीवो ! जो सौधर्मेन्द्र के खजाने में नही है, वह तुम्हारे शरीर में है, ध्यान देना-यह मनुष्य का शरीर इतना अमूल्य है, कि धन कुबेर का पूरा खजाना अलग होने के बाद भी, मनुष्य का शरीर नहीं पा सकते। सौधर्मेन्द्र एक पल के लिये आँसू बहा लेता है, कि हे मनुष्यो ! मेरा स्वर्ग का सारा वैभव ले लो, लेकिन मुझे भगवान की पालकी उठाने के लिये एक पल के लिये मनुष्य की पर्याय दे दो। ज्ञानी जीवो ! एक पल के लिये मनुष्य की पर्याय नहीं मिलती है जिस मनुष्य की पर्याय को हम पैसे के लिये गमा देते हैं। जिस मनुष्य की पर्याय को हम बातों में गमा देते हैं। जिस मनुष्य की पर्याय को हम चर्चाओं में गमा देते हैं।

ज्ञानी जीवो ! ध्यान देना-यह मनुष्य की पर्याय भी कीमती है, कि एक-एक पल, एक-एक हीरे के बदले में भी बदला जाये, तो नहीं बदल सकते हो। एक-एक पल में इतनी क्षमता है, कि पल भर का परिणाम सम्हालने वाला जीव अनंत काल को सुखी हो सकता है। भरत चक्रवर्ती ने मात्र एक पल के परिणाम सम्हाले और अनंत काल के लिये अनंत सुखी हो गया। तैतीस सागर तक के परिणाम को सम्हालने वाला सर्वार्थ सिद्धि का देव, जितना सुख-वह नहीं भोग सकता है, उतना सुख मात्र तीन मिनट, अपने परिणाम सम्हालने वाला मुनि, भोग सकता है। और यदि अड़तालीस मिनिट परिणाम सम्हाल लिये, तो वह मुनि क्षपक श्रेणी पर आरुढ़ होकर के सीधे केवलज्ञान को प्राप्त कर लेगा। इसलिये मैं कहता हूँ कि ज्ञान भीतर से पैदा होता है। सुख भीतर से पैदा होता है। परिणाम सम्हालो, परिणति सम्हालो, भाव सम्हालो, भव सम्हलेगा।

प्रिय आत्मन्!

प्रत्येक इंद्रिय से मोक्ष के लिये, काम लो जिन इंद्रियों का उपयोग हम संसार के लिये कर रहे हैं। क्या, उन इंद्रियों का उपयोग मोक्ष के लिये नहीं कर सकते हैं ? जिन वाहनों से हम इंदौर, भोपाल की यात्रा करते हैं, क्या उन्हीं वाहनों से सोनागिर, थूवोन, चन्देरी, देवगढ़ की यात्रा नहीं कर सकते हैं ? वाहन तो वही होता है, जिस वाहन से भोपाल, इंदौर जाते हैं, उसी वाहन से देवगढ़ भी तो जा सकते है ? उसी तरह इंद्रिय वही हैं, जिन इंद्रियों से हम संसार के काम लेते हैं, उन्हीं इंद्रियों से यदि हम बुद्धि का उपयोग कर लें, तो उन्हीं इंद्रियों से मोक्ष का काम ले सकते हैं।

आचार्य कहते हैं-देने का तराजू भी यही होता है और लेने का तराजू भी यही होता है। इंद्रियाँ तो वही हैं, जो मिली हैं, यह सहजता से नहीं मिल गयी हैं, आज अनंतकाल के बाद हम पंचेन्द्रिय हुये हैं, यह आसान मत समझना और पंचेन्द्रिय में भी सज्ञी मनुष्य और मनुष्य में भी उत्तम देश, उत्तम क्षेत्र और उसमें भी जैन धर्म, श्रावक कुल, जैनों का समुदाय, मुनियों का समागम, जिनवाणी का श्रवण, जिनेन्द्र का दर्शन। ज्ञानी जीवो ! यह सब जो है आसन्न भव्य के चिन्ह हैं।

प्रिय आत्मन्!

इतना ध्यान रखना-यह सामग्री जितनी पायी है, क्या अगले भव में मिलने की क्षमता हमने बनायी है ? ऐसा तो नहीं कि हमारे पास जितना पुण्य इस भव में था, उस पुण्य को खर्च करके जा रहे हैं, या कि उस पुण्य में कुछ जोड़ करके जा रहे हैं ? पूर्व पुण्य के प्रभाव से मनुष्य पर्याय पायी, इस मनुष्य पर्याय में हमने ऐसा कितना और पुण्य जोड़ा है ? जिसके बल पर हम नि:संदेह कह सकें, कि अगली

पर्याय मेरी मनुष्य पर्याय हो जायेगी। देव पर्याय के बाद मनुष्य पर्याय ही होगी और मनुष्य पर्याय में नियम से मुनि बनूँगा, ऐसा दृढ़ संकल्पी मेरा मन भीतर से हो सकता है क्या ?

ज्ञानी जीवो ! कितना भी धन का दान ले लेना, लेकिन जब तक व्रत और शील का जन्म भीतर में नहीं होगा, तब तक व्यक्ति स्वर्ग नहीं जा सकता। देव आयु में जाने के लिये नियम से व्रत, शील और सम्यक्त्व चाहिये। यदि कर्म भूमियाँ कोई जीव है, तो जब तक वह व्रत, शील, सम्यक् दर्शन में परिपक्व नहीं होगा, तब तक स्वर्ग का द्वार वह खोल नहीं सकता है। इसलिये हे भव्यो ! ध्यान रखना-यदि हम निरंतर पाप करते रहे और दान देते रहें, इतने मात्र से यह न मान कर बैठ जायें, कि अब तो हमारी स्वर्ग की सीट आरक्षित हो गयी। स्वर्ग की सीट दान से आरक्षित नहीं होती है, स्वर्ग की सीट व्रत, सम्यक्त्व, और शील से आरक्षित होती है।

दान स्वर्ग का कारण है, लेकिन पहले सम्यक्दर्शन होना चाहिये। दान उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितनी महत्वपूर्ण श्रद्धा है। यदि श्रद्धा है तो दान की कीमत है, सम्यक्दर्शन है तो दान की कीमत है और सम्यक्दर्शन नहीं है, तो वह दान तुम्हें स्वर्ग नहीं ले जा सकता है भोग भूमि में पटक देगा।

ज्ञानी जीवो ! ध्यान रखना-कि हम कभी दान के माध्यम से भी, अहं में न डूब जायें। कि, हमने तो इतना दान दे दिया और विशेष त्यौहार पर पूजा कर ली, नहीं ज्ञानी जीवो ! इसलिये प्रतिदिन के श्रावक बनो, मात्र दिन दस के श्रावक नहीं। प्रतिसमय के परिणाम सम्हालो, सामग्री मोक्ष की है, और तुम उपयोग क्या कर रहे हो ? इन हाथों का उपयोग अनादि से आज तक सभी जगह करते आये हैं ? लेकिन अब मोक्ष के लिये करना है।

प्रिय आत्मन्!

भगवान हाथ पर हाथ रखकर बैठे हैं। और तुम अपने हाथ दूसरे के गाल पर रखते हो। अपने हाथ पर हाथ रखकर बैठना साधना है। दूसरे के गाल पर अपना हाथ जमाना, साधना नहीं है। ज्ञानी ! ध्यान देना-आचार्य कहते है-हाथों का उपयोग अपराधी को पकड़ने में मत करो, इन हाथों का उपयोग, एक बार निज आत्मा के पकड़ने में कर दो, जब यह हाथ नाभि कमल के समक्ष मौजूद हों, और आँखे नासाग्र दृष्टि पर विराजमान हो, चित्त निज स्वरुप में लीन हो, कान अंतरात्मा की बात सुनने लगें, तब समझना कि मेरी इंद्रिय आज सार्थक हुयी।

ज्ञानी जीवो ! यह पाँचों इंद्रियों में सारा काम आत्मा का है, इसलिये आत्मा तक पहुँच गये, तो फिर इंद्रियों की कोई आवश्यकता नहीं है। और आत्मा तक नहीं पहुँचे, तो भी इंद्रियों की कोई आवश्यता नहीं है।

यदि पाप-निरोधोऽन्य, सम्पदा किं प्रयोजनम् ।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्य सम्पदा किं प्रयोजनम् ।।27।। रत्नकरंड श्रावकाचार ।।

प्रिय आत्मन्!

यदि तुम्हारा पाप आस्रव रुक गया है, तो फिर सम्पत्ति से क्या ? और पाप का आस्रव नहीं रुका है, तो फिर सम्पत्ति से क्या ? यदि आत्मा तक पहुँच गये हो, तो फिर इंद्रियों से क्या ? और आत्मा तक नहीं पहुँचे हो, तो इंद्रियों से क्या मतलब ? यदि आत्मा में प्रवेश हो गया है तो इंद्रियों से प्रयोजन नहीं रह गया, और आत्मा तक नहीं पहुँच पा रहे हो, तो जैसी मिली वैसी न मिली।

यह इंद्रियाँ इतनी अमूल्य हैं, एक इंद्रिय से दो इंद्रिय पर्याय में आने के लिये अनंत काल लगता है। दो इंद्रिय से तीन इंद्रिय, तीन इंद्रिय से चार इंद्रिय, और चार इंद्रिय से पंचेन्द्रिय होने में कितना काल लगता है। और हम इन कानों से क्या-क्या सुनकर के आत्मा में डालते हैं। एक बात अच्छी तरह से सुनना, ज्ञानी जीवो ! जैसे- चार पाँच दिशाओं से पानी बहकर के आता है और तालाब में पहुँचता है, ऐसे पाँचों इंद्रियों के माध्यम से पाप आता है और आत्मा में पहुँचता है।

जो इंद्रियाँ सिद्ध होने के लिये मिली हैं, जो इंद्रियाँ सिर्फ शुद्ध होने के लिये मिली हैं, उन इंद्रियों से अशुद्ध और असिद्ध काम क्यों करे ? उपयोग सही करके देखो, हमारे पास सब कुछ है मोक्ष जाने के लिये। मात्र वज्र, वृषभ, नाराच संहनन नहीं है, शुक्ल ध्यान नहीं है। ज्ञानी जीवो ! बीस रुपये में से अठारह रुपये तुम्हारे पास हैं, तो क्या अठारह रुपये से दो रुपये और नहीं कमा सकते। यदि तुम अठारह रुपये का उपयोग कर सकते हो, तो दो रुपये और कमा लोगे और अठारह का नुकसान कर दिया, तो बीस कभी नहीं होंगे। उसी तरह इन इंद्रियों से साधना करना सीखो। आज मेरी स्पर्शन इंद्रिय ने, रसना इंद्रिय ने, घ्राण इंद्रिय ने, चक्षु इंद्रिय ने कर्ण इन्द्रिय ने, मन ने, वचन ने और मेरे शरीर ने मोक्ष का कौन सा काम किया है ? पर हम बोलते हैं हमें बहुत सारे काम हैं।

ज्ञानी जीवो ! इस शरीर से क्या संसार के बहुत सारे काम करते रहोगे ? हाथ, कान, मुख मोबाइल के लिए, बोलो ज्ञानी ! बोलो, क्या काम हो गया, आँखे टी.वी ने ले ली, कान मोबाइल ने ले

लिया, हाथ मोबाइल ने पकड़ लिया, मुख मोबाइल में चला गया। अब तनक तो, नाक बचा कर रखो कि तुम क्या हो?

हम चले देवता कहलाने,
पर मानव भी कहला न सके।
हम चले विश्व विजयी बनने,
पर विजय स्वयं पर पा न सके।
हम रहे सोचते कैसे भी वस,
जल्दी से भगवान बनें।
पर नहीं सोचते हैं हम कि,
इससे पहले इंसान बनें ॥

प्रिय आत्मन्!

इंद्रियाँ भगवान बनाने की क्षमता रखती हैं, इन्हीं इंद्रियों से भगवान बना जा सकता है। इसी मन से भगवान बनेंगे, जो इंद्रियाँ भगवान महावीर को मोक्ष ले गयी है, इन्हीं इंद्रियों का सद्उपयोग करने वाले भगवान महावीर, मोक्ष चले गये और इन्हीं इंद्रियों का दुरोपयोग करने वाला सुभौम चक्रवर्ती नरक चला गया। स्पष्ट बात है, उसी रुपये से रसगुल्ला खरीदा जाता है और उसी रुपये से जहर की पुड़िया भी खरीदी जा सकती है, रुपया कोई भिन्न नहीं होता है।

उसी तरह से जिस इंद्रिय से मोक्ष साधा जाता है, उसी इंद्रिय से तो नरक जाते है। उपयोग जैसा किया है, यही इंद्रियाँ मोक्ष के लिये हैं, शिवलोक के लिये है। इंद्रिया हमसे कहती हैं, कि आप हमारा उपयोग मोक्ष के लिये करें, मैं मोक्ष की सामग्री हूँ, मैं आपके लिये संसार की ही सामग्री नही हूँ। जैसे-आप लोग लिख देते हैं, कि इस वस्तु का उपयोग इसलिये करें। जैसे सूचना-यह क्रीम है, इसका उपयोग बाह्यत्वचा पर करें। उसी तरह से मेरी बात मानिये, एक दिन, एक घंटे, एक मिनिट के लिये सही, दो मिनिट के लिये तो मान जाओ, इस आत्मा से कह दो कि हे आत्मा! इस शरीर का उपयोग दो मिनिट मोक्ष के लिये कर लो।

प्रिय आत्मन्!

आज आप अपने बच्चो से बोलो, कि बच्चो आज मेरा उपयोग मोक्ष के लिये कर लो। क्योंकि संसार में संसार का उपयोग कराने वाले बहुत मिल जायेंगे, लेकिन मोक्ष का उपयोग कराने के लिये मैं

तुम्हारे लिये हूँ। तुम्हारे इस शरीर से संसार का काम लेने वाले असंख्य जीव बैठे है, लेकिन इस शरीर से मोक्ष का काम लेने वाले सिर्फ आँनली वन आप ही लाखों का वेतन देकर के इस शरीर का उपयोग करने वाले तो बहुत मिल जायेंगे, लेकिन सिर्फ मोक्ष का वेतन देने के लिये, शरीर का उपयोग कराने के लिये, सिर्फ आँनली वन तुम ही हो सकते हो।

वस्तु के ऊपर जैसे चेतावनी लिखी रहती है, वैसे ही यह चेतावनी अपनी आत्मा पर लिखकर रखो। वैसे ही चेतावनी अपने चित्त और चेतना पर लिखकर रखो। कि इस शरीर का इस मन का, इस वचन का, इस काया का उपयोग सिर्फ मोक्ष के लिये करेगें। सावधान।

संसार की पकड़ से, राग की पकड़ से, द्वेष की पकड़ से, मोह की पकड़ से, सावधान। मोह के लिये नहीं मोक्ष के लिये, साधु संघ का नगर में आना, मोक्ष के लिये है, परमात्मा बनने का मार्ग है, मोक्ष सामग्री पुण्य से मिलती है। पत्नि पुण्य से नहीं मोक्ष सामग्री पुण्य से मिलती है हम तुम्हारे मोक्ष के लिये तुम हमारे मोक्ष के लिये।

चलणरहिओ मणुस्सो, जह वंछइ मेरुसिहरमारुहिउं।
तह झाणेण विहीणो, इच्छइ कम्मक्खयं साहू।।13।।

अर्थ-

जैसे पाद (पैर) रहित मनुष्य सुमेरु पर्वत के शिखर पर, चढ़ने के लिये इच्छा करे, वैसे ही ध्यान में रहित साधु कर्मो का क्षय करना चाहता है।

संका-कंखागहिया, विसयपसत्ता सुमग्गपब्भट्ठा।
एवं भणंति केई, ण हु कालो होइ झाणस्स ।।14।।

अर्थ-

शंकालु और विषय-सुख की आकांक्षा वाले इंद्रिय विषयों में आसक्त और मोक्ष के सुमार्ग से पथभ्रष्ट कितने ही पुरुष इस प्रकार कहते हैं, कि यह काल ध्यान के योग्य नहीं है।

अज्जवि तिरयणवंता, अप्पा झाऊण जंति सुरलोए।
तत्थ चुया मणुयत्ते, उप्पज्जिय लहहि णिव्वाणं।।15।।

अर्थ-

आज भी रत्नत्रय धारक मनुष्य आत्मा का ध्यानकर, स्वर्ग लोक को जाते हैं और वहाँ से च्युत होकर, उत्तम मनुष्य कुल में उत्पन्न हो, निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी ! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्षमहल-धारिणी, पाप-ताप-संताप- हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य देव कहते हैं-मनुष्य के जीवन का सार क्या है ? समाधान देते हैं-''णाणं णरस्स सारो''। ज्ञान मनुष्य के जीवन का सार है। ज्ञान किस लिये है ?

णाणेण झाण सिद्धि, झाणादो होइ कम्मणिरज्जरणं ।
णिज्जर फलं तु मोक्खं, णाणब्भासो तदो कुज्जा ।।

अर्थ-

ज्ञान के द्वारा ध्यान की सिद्धि होती है, ध्यान से कर्मो की निर्जरा होती है, निर्जरा का फल मोक्ष है, अत: ज्ञान का अभ्यास हमेशा करना चाहिए।

ज्ञान से मोक्ष होता है, इसलिये ज्ञान का अभ्यास आवश्यक है। ज्ञान-ज्ञान के लिये नहीं है, ज्ञान-ध्यान के लिये है। ध्यान-ध्यान के लिये नहीं है, ध्यान-निर्जरा के लिये है। और निर्जरा-निर्जरा के लिये नहीं है निर्जरा-मोक्ष के लिये है। और मोक्ष-आत्मा के परम सुख के लिये है।

वर्तमान काल में ज्ञान होता है, तो ज्ञान का फल ध्यान है। यदि वृक्ष में फल आया है, तो फुल आने की सार्थकता है। फल आना ही चाहिये, यदि फल न आये और फुल मात्र झड़ जाये, तो फिर उपलब्धि नहीं है। उसी तरह, ज्ञान जो पाया है उस ज्ञान का प्रयोग कितना हुआ। शांति-ज्ञान से नहीं मिलेगी, ज्ञान को जब ध्यान में बदलेंगें तब शांति मिलेगी। जिस तरह से- कोई लंगड़ा व्यक्ति मेरु पर्वत पर चढ़ना चाहे,

तो नहीं चढ़ सकता। उसी तरह से ध्यानहीन व्यक्ति, कर्मो को नष्ट करना चाहे, तो नहीं कर सकता। इसलिये एक उदाहरण से बताते हैं।

एक ग्वाला एक दिन में, जितने दूध का घी बना लेता है, तो वह सदा के लिये घी बन जाता है, लेकिन यदि मात्र दूध को एकत्रित कर ले, जमाये नहीं, तो वह दूध अगले ही दिन खराब हो जायेगा, उसी तरह जैसे ग्वाला दूध को घी में परिवर्तित कर लेता है, उसी तरह साधक के लिये, अपने ज्ञान को, ध्यान में बदलना चाहिये। बच्चे बोलते हैं, हमें याद नहीं होता, याद करना भिन्न चीज है, याद करने के बाद उसको ध्यान मे ंजाकर के देखो, कि मुझे कितना याद रहा, पुस्तक के पढ़ते समय तो सभी को याद हो जाता है। लेकिन पुस्तक बंद करने के बाद आँख बंद कर लीजिये, आँख बंद करने के बाद फिर चिंतन में लायें, कौन से पेज पर किस पंक्ति में, मैं क्या पढ़ रहा था ? या शिक्षक ने मुझे किस क्रम में क्या समझाया था ? मैंने किस क्रम से याद किया था ? यदि ध्यान में आपको याद आता है तो वह सही मायने में याद माना जायेगा। यदि ध्यान के काल में याद नहीं आता है, तो समझो कि परिपूर्ण रूप से याद नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

बहुत से बच्चों कि यह शिकायत रहती है, कि हमें हर समय तो याद रहता है, हम परीक्षा के समय भूल जाते हैं। हे माताओ ! यह आपके परिवार की समस्या का समाधान, इसका कारण बच्चों को बताइये, कि बच्चे याद करने के बाद पुस्तक एक तरफ रख दें, अब जिस तरह भगवान हाथ पर हाथ रखे बैठे हैं, उस तरह बैठ जाइये, अब आप सुनाइये, कि आपने दो घंटे में क्या याद किया है ? दो दिन पहले क्या याद किया था ? तीन दिन पहले क्या याद किया था ? यदि हाथ पर हाथ रखने के बाद, नाभि कमल के सामने दोनों हाथ रहे, नासाग्र दृष्टि रहे, आँखे बंद रहें फिर आप सुनाइये, कि आपने किस क्रम से कितना याद किया है, किस तारीख में कितना। एक घंटे सुनने के, याद आने के बाद, एक लाइन भी आप, सुनाने में सक्षम हैं तो हम मानेंगें। जब मुझे एक महीने के पहिले का सुना सकते हो, तो स्कूल में जाकर के आप परीक्षा में लिख सकते हो।

हे माताओ! अपने बच्चों को यह दिशा दीजिये, आपने किस दिन याद किया है, उस दिन की तारीख, समय को याद रखते हुये, मुझे यह बताइये, इस तारीख को आपने कौन सी पंक्ति याद की ? इस तारीख को हमने यह शब्द यह पंक्ति याद की है। यदि एक पंक्ति भी निश्चित रूप से सुनाने में सक्षम है, तो मैं कहूँगा याद सही है।

प्रिय आत्मन्!

स्मृति क्या है ?

''संस्कारोद्बोध निबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः''॥3॥परीक्षामुख ॥

आचार्य देव कहते हैं-जो संस्कार स्थायी रूप में बैठ जाता है, वही स्मृति में आता है। हम स्मरण करते हैं, क्यों नहीं आ रहा ? संस्कार कमजोर है, तो स्मरण में नहीं आता है और संस्कार मजबूत हैं, तो स्मरण में अवश्य आता है, इसलिये मैं आपको यह बताना चाहूँगा, कि बारम्बार याद करो, आचार्य भगवन् कहते हैं-''बहुत नहीं बहुत बार पढ़ो''। 'पहाड़ समझकर नहीं पहाड़ा समझकर पढ़ो'।

यदि हम विद्या को कठिन मान लेंगे, तो फिर विद्या हमारे पास नहीं आयेगी। यदि हम विद्या को सरल मानेंगे, तो विद्या हमारे पास आ जायेगी। इसलिये आचार्य भगवन् कहते हैं, ध्यान आवश्यक है। ध्यान क्या है?

''एकाग्र चिंता निरोधो ध्यानं''

चित्त को एक विषय में स्थिर कर देना, स्थिर हो जाना, ध्यान कहलाता है। यह चित्त किसी न किसी विषय में भ्रमण कर रहा है और जब तक पूर्व संस्कारों में भ्रमण करता है, आर्तध्यान होता है, रौद्रध्यान होता है, लेकिन धर्मध्यान के लिये पुरुषार्थ चाहिये। ध्यान देना-पानी की गति और मन की गति नियम से नीचे की ओर होती है। पानी को ऊपर ले जाने के लिये यंत्र चाहिये और मन को ऊपर ले जाने के लिये मंत्र चाहिये। इसलिये आचार्य भगवन् कहते हैं- मंत्रों का ध्यान करो।

प्रिय आत्मन्!

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और वनस्पति यह पाँचों जो जीव हैं, इन पाँचों को देखिये कि इनके पास भी ध्यान है। एक पौधा भी इष्ट का वियोग मना सकता है, एक वृक्ष भी अनिष्ट के संयोग से दुखी हो जाता है, जब कोई वृक्ष के पास कुल्हाड़ी लेकर पहुँचता है, तो उसको दुःख होता है, उसके पास अनिष्ट संयोग नाम का ध्यान है। उसे जब कष्ट होता है, तो उसे दूर करने का उपाय भी सोचता है यह पीड़ा चिंतन है। निदान बंध, आगे की कांक्षायें उस वृक्ष के अंदर भी हैं, जिसे तुम उखाड़ कर फेंक रहे हो, उस वनस्पति के पास भी कुछ आकांक्षायें हैं। वह निदान बंध है।

हिंसा में आनंद वृक्ष भी मनाके जानता है, आप कहेंगे वृक्ष बोल नहीं पाता है, तो झूठ में क्या आनंद मनायेगा। ज्ञानी जीवो ! जो बोल नहीं पाते है वे अपने इशारे से झूठ का प्रयोग कर लेते हैं। वृक्ष के

पास कुश्रुत ज्ञान है, वह भी ध्यान कर लेता है, हिंसानंदी, मृषानंदी, चौर्यानंदी, परिग्रहानंदी, ओहो। खेत में से रखे हुये बीजों को उठाकर के नीचे बिल में ले जाना, यह चींटियाँ बहुत कुशल होती हैं। इतनी कुशलता है और इतनी प्रबलता है, कि छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े भी इस क्रिया में कुशल होते हैं।

परिग्रहानंद वृक्ष के पास भी पाया जाता है, बहुत से वृक्ष अपने नीचे धन को दबाकर रख लेते हैं। घर में रखे हुये धन को वृक्ष की जड़े घर के नीचे से निकाल ले जायेंगी अपनी ओर खींच लेंगी। और अपने पास रख लेगी। कुछ वृक्ष ऐसे भी होते हैं, तात्पर्य यह है, कि आर्तध्यान, रौद्रध्यान तो सभी के पास पाया जाता है, इसी ध्यान के कारण जीव तिर्यंच और नरक गति में भ्रमण करता है।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य देव कहते हैं-कि जिन ध्यानों को सदा किया है, उन को नहीं करना है, अब दो ध्यान हैं, जो मोक्ष के हेतु है। वे कौन से हैं ? धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान। शुक्ल ध्यान इस काल में होना नहीं है, मात्र धर्म ध्यान है हमारे पास और धर्म ध्यान के चार भेद हैं, आज्ञा विचय, अपाय विचय, विपाक विचय, संस्थान विचय यह आगम की अपेक्षा भेद किये हैं, अथवा पिण्डस्थ ध्यान, पदस्थ ध्यान, रूपस्थ ध्यान, रूपातीत ध्यान, यह भी धर्म ध्यान के भेद हैं।

आचार्य देव कहते हैं-अध्यात्म के क्षेत्र में सविकल्प ध्यान, अविकल्प ध्यान होते हैं, ज्ञान ही ध्यान में जाता है। जब ज्ञान-ज्ञान में ठहर जाता है, जैसे-जब पानी-पानी में ठहर जाता है, तो पानी ही वर्फ बन जाता है वैसे ज्ञान-ज्ञान में ठहर जाता है, तो ज्ञान ही ध्यान बन जाता है। उपयोग ज्ञान में लीन हो जाये, तो ध्यान बन जाता है। अन्यथा वचन चलते रहते हैं, काया से हाथ जुड़े रहते हैं, और ध्यान कहीं और होता है।

आचार्य देव कहते हैं-यदि कर्म क्षय की इच्छा करते हो, तो हे साधु ! ध्यान से रहित साधु, कर्म की निर्जरा नहीं कर सकता है। इसलिये, ज्ञान के लिये भी समय दो और ध्यान के लिये समय दो। ऐसा नहीं हो सकता, कि सामायिक के काल में पुस्तकें खोलकर के बैठ जाओ। हे श्रावको ! धन के लिये समय देते हो, पर शांति के लिये धन नहीं, ध्यान की आवश्यकता है। हमारे मुनिश्वरों ने ध्यान से शांति पायी है और हमारे श्रावक धन से शांति पाना चाहते हैं।

शांति का मार्ग धन नहीं, ध्यान है। यहाँ तक कि ध्यान-त्रयोदशी को भी श्रावकों ने धनतेरस कह दिया, जबकि धनतेरस नहीं ध्यानतेरस है, इस दिन महावीर स्वामी ने शुक्लध्यान के लिये योग निरोध किया था, उस योग निरोध की साधना में जुटे थे। आप संयोग और परिग्रह के लिये जुट जाते हैं। मन यदि

धन में रमा हो तो आर्त-रौद्र-ध्यान ही हो पायेगा, धर्म-ध्यान होना बहुत कठिन है। चौथे गुणस्थान में धर्मध्यान होता है किंतु उसके साथ आर्त-ध्यान बैठे हैं, रौद्रध्यान भी बैठे हैं। इसलिये सम्यक्‌दृष्टि को धर्मध्यान होता है, किंतु जितने समय करेगा, तभी होगा, प्रयास पूर्वक होता है। खेत में बीज उगता है, जितना बोयेगा, जितनी जगह में बोयेगा, उसी में उगेगा और शेष में तो कूड़ा करकट अपने आप उग आयेगा।

प्रिय आत्मन्!

जैसे खेत में बीज उगता है लेकिन किस के खेत में उगेगा ? जो बोयेगा। किस ऋतु में उगेगा ? योग्य ऋतु में, योग्य बीज बोयेगा और यदि खेत में फसल आने की सम्भावना है बरसात की, ग्रीष्म की, शीत की, तीन ऋतुओं में व्यक्ति बोता है। उसी प्रकार लेकिन ध्यान रखो, यहाँ पर आचार्य देव कहना चाहते हैं, कि ध्यान सबको हो सकता है। लेकिन सब करें तो, जो नहीं करेगा, नहीं होगा। खेत तो सबके पास है, बीज उगाने की क्षमता भी सबके पास है, लेकिन बीज बोओगे नहीं, तो उगेगा क्या ? जैसे, बिना बोये जाने पर भी खरपतवार सहज रूप से पैदा होती है, वैसे ही धर्म-ध्यान के नहीं होने पर आर्तरौद्रध्यान अपने आप पैदा हो जाते हैं। क्यों ? जैसे-खेत में खरपतवार पैदा होने के संस्कार, संमूर्च्छन वनस्पतियाँ पैदा होने के संस्कार, चिरकाल के हैं, उसी तरह से इस आत्मा में आर्तरौद्रध्यान के संस्कार चिरकाल के हैं।

ज्ञानी जीवो ! जिस खेत में कभी उत्तम वनस्पति पैदा न हुयी हो, उस खेत में उत्तम वनस्पति पैदा करने के लिये कितने प्रयास करना पड़ते हैं, बंजर भूमि को उपजाऊँ बनाने के लिये, कितने प्रयास करना पड़ते हैं, कटीली झाड़ियाँ, नाना प्रकार की वनस्पतियाँ, तो बंजर भूमि में पैदा हो जाती हैं, लेकिन उत्तम फसल और उत्तम फल को पाने के लिये, भूमि को उपजाऊँ बनाना ही पड़ती है। ऐसे ही आर्तरौद्रध्यान तो किसी भी मनुष्य को, कहीं पर भी, किसी भी समय, पैदा हो सकते हैं। आर्तरौद्रध्यान करने के लिये न समय देखना है, न व्यक्ति देखना है, न स्थान देखना है, किसी भी स्थान पर, किसी भी समय, किसी भी व्यक्ति को आर्तरौद्रध्यान हो सकता है। लेकिन धर्मध्यान के लिये आत्म रूचि की उपजाऊ भूमि चाहिये।

प्रिय आत्मन्!

दुर्ध्यान जो हैं, यह प्रतिक्षण होते हैं। एक भी समय ऐसा नहीं है जिस समय ध्यान न होता हो, प्रतिसमय ध्यान चल रहा है और यह नियामक है कि धर्मध्यान नहीं होगा, तो आर्तरौद्रध्यान के होने से कोई नहीं रोक सकता है। ध्यान देना-आर्तरौद्रध्यान तो हे साधको ! बिना बुलाये आ जाते हैं। आर्तरौद्रध्यान, दुर्ध्यानों से भी बच पाना, पंचम काल की सबसे बड़ी साधना है।

कुसंगति से बचना, सदाचार की सबसे बड़ी पहचान है। उसी तरह खोटे ध्यान से बचना, भी साधुता की पहचान है। हम अपने आप को निहारें, कि मेरे चित्त में खोटा ध्यान तो नहीं चल रहा है, ऐसा तो नहीं है, कि इस समय मेरा चित्त आर्तरौद्रध्यान में चल रहा हो। ओहो ! मैं अपने लिये नहीं, किस के लिये रो रही हो? मेरा बेटा मुनि बन गया है और माँ तू बेटे के राग में रो रही है। ओहो ज्ञानी ! कई दिन से माँ ने भोजन नहीं किया, कई दिन से माँ ने पानी नहीं पिया, मात्र बेटे के राग में भोजन नहीं किया, बेटे के राग में पानी नहीं पिया और माँ का देहांत हो गया। क्या हुआ ? देहांत हुआ, स्वर्गवास नहीं हुआ। मरण हुआ, समाधि मरण नहीं हुआ।

ज्ञानी जीवो ! मृत्यु हुयी, मृत्यु महोत्सव नहीं हुआ, एक मुनिराज की माँ मुनिराज के वियोग में रो रही है, विलख रही है, बोलो कहाँ गयी ? श्यालिनी बन गयी, माँ जिसे तू अपना पुत्र मान रही थी, वह पर्याय बदल गयी, परिणाम बदल गये, अब क्या हो रहा है ? जिसे पुत्र मान के रो रही थी, उसी को दूसरी पर्याय में, जब तू श्यालिनी बन गयी तो उसी पुत्र का शिकार कर रही है। जो पूर्व भव में पुत्र था, एक ही पर्याय बदली है और सामने शिकार रूप में खड़ा है। जो माँ थी वह श्यालिनी के रूप में सामने खड़ी है। यह है पर्याय का परिणमन, तुम किसे माँ मान रहे हो, भूल जाओ। मात्र एक पर्याय का मोह है, अज्ञान है, जब साक्षात् सुकुमाल की माँ, श्यालिनी होकर के, सुकमाल मुनि का भक्षण कर सकती है, फिर तुम्हें किस की गारंटी है, कि यह परिवारीजन तुम्हें साथ देगें, किसी पर विश्वास मत कर लेना।

प्रिय आत्मन्!

किसी के लिये मत रोना, ध्यान देना-हे माँ ! तू जिसके लिये रो रही है, वह सुकमाल सर्वार्थसिद्धि (उच्च गति) को पा गये, लेकिन जो पुत्र वियोग में रोई थी, वह संक्लेश के कारण तिर्यंच गति में चली गयी, श्यालिनी बन गयी। रोने वाला पशु बन गया और ध्यान करने वाला सुकुमाल, सर्वार्थ सिद्धि का देव बन गया। परिणाम निहारो, किस के लिये रो रहे हो। ज्ञानी जीवो ! बिना किये, चलते-चलते, बोलते-बोलते, खाते-खाते, पीते-पीते, सोते-सोते, नहाते-नहाते जीवन की प्रत्येक क्रिया में, प्रत्येक चर्या में ध्यान होता है, लेकिन वह ध्यान आर्तरौद्रध्यान होता है। करना नहीं पड़ता, होता ही है।

ऐसा कौन सा जीव है, जिसे ध्यान न होता हो। एकेन्द्रिय-द्विइन्द्रिय-तिइन्द्रिय, चतुइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अंसज्ञी, पंचेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि, इन सबको आर्तरौद्रध्यान तो नियम से होते हैं, क्योंकि यह ध्यान तो अनादि से किये हैं। मैं कहता हूँ यदि तुम्हें ध्यान न होता हो, तो ध्यान करना छोड़ दो। लोग पूँछते हैं महाराज मुझे ध्यान करने की विधि बता दो और मैं एक ही बात कहता हूँ, तुम ध्यान करना छोड़ दो। है

क्षमता आर्तरौद्रध्यान छोड़ने की, अगर है तो, धर्म ध्यान हो जायेगा। खोटा ध्यान छठवें गुणस्थान तक चलता है।

ज्ञानी जीवो ! जितने समय हमें कोई दुख देता है, उससे ज्यादा समय हम दुखी होते हैं, जितने समय तक हमें किसी पदार्थ का संयोग मिलता है, उससे ज्यादा समय हम संयोगी का आनंद मनाते हैं। और जितना परिग्रह हमारे पास नहीं आता है, जितने समय परिग्रह नहीं आता है, उससे अधिक समय तक हम परिग्रह के आनंद में लीन होते हैं।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य देव कहते हैं-जब तक यह दुर्ध्यान नहीं छूटेगा, तब तक धर्मध्यान में कैसे बढ़ोगे और जब तक धर्मध्यान नहीं करोगे, तब तक दुर्ध्यान को छोड़ने की ताकत कैसे आयेगी। अशुभध्यान करने के लिये कहीं नहीं जाना है, न किसी को गुरु बनाना है, और न कोई पाठशाला ही होती है। शुभध्यान करने के लिये मंदिर आये, हो यह मंदिर धर्मध्यान के लिये हैं। यह गुरु धर्मध्यान के लिये हैं। यह जिनवाणी धर्मध्यान के लिये है। अर्थात् देव शास्त्र गुरु आलम्बन हैं। दुर्ध्यान के लिये तो किसी भी राह पर, किसी भी चौराहे पर खड़े हो जाओ, दुर्ध्यान हो जायेगा, लेकिन बिना धर्मध्यान के किसी की निर्जरा नहीं होती है, इसलिये कोई जीव कहते हैं कि ध्यान होता ही नहीं है।

आचार्य देव कहते हैं-जिनके हृदय में, जिनके विचार में, तत्त्व के प्रति शंका है, ऐसे शंकालु जीव ही इस तरह का विचार करते हैं। या जिनके मन में कांक्षा है, तो वह लोभ पिशाच से दबे हुये हैं, उनका चित्त हमेशा लोभ में रहता है, उनको ध्यान नहीं बन पाता है, उनको विश्वास ही नहीं होता है, कि वर्तमान में ध्यान होता भी होगा। ऐसे शंका और आकांक्षाओं से जो ग्रसित हैं, विषयों में जो आसक्त हैं, इंद्रियों के विषयों में लीन हैं, तो कैसे ध्यान हो।

प्रिय आत्मन्!

जैसे- एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती हैं, उसी तरह यदि मृगनयनी मन में बस गयी है, तो आत्मा का विचार नहीं हो सकता है।

मृग नयनी मन में बसी, क्यों हो ब्रह्म विचार।
एक म्यान में कब रही? देखो दो तलवार।।

मन में यदि स्त्री का वास है, तो ईश्वर का वास हो नहीं सकता है। मन में यदि हिंसादि पाप डोल

रहे हैं, इंद्रिय के विषय डोल रहे हैं, तो आत्मा का ध्यान कैसे हो सकता है। इसलिये पहले कहा इंद्रिय के विषयों का पूर्णतः विराम करो, फिर कह दिया, मन का पूर्णतः विराम करो। तब ध्यान में प्रवेश होगा। किंतु जिन्होंने इंद्रियों के विषयों को नहीं रोक पाया है, मन को नहीं रोक पाया है, ऐसे जीव कहते हैं कि इस काल में ध्यान नहीं होता है। इसलिये ध्यान नहीं कर पाते हैं, तो मत करो, पर जिनवाणी का अवर्णवाद तो मत करो, इंद्रियों के गुलाम बने रहो, किस ने रोका है।

जो सुमार्ग से, सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप मोक्ष मार्ग से, पतित हैं, ऐसे ही कोई-कोई जीव कहते हैं, इस काल में ध्यान नहीं होता। ज्ञानी जीवो ! सत्य तो यह है कि इस काल में शुक्ल ध्यान नहीं होता, किंतु धर्मध्यान तो होता है। जो आज होता है उसको तो आज कर लो। कल्याण हो जायेगा। कल तो यह अवसर भी नहीं मिलेगा।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य देव कहते हैं-सम्यक् दर्शन मिल गया, ज्ञानी ! अब इसको मत छोड़ना, यदि तुमने सम्यक् दर्शन छोड़ दिया तो तो कहाँ जाओगे ? क्योंकि विदेह क्षेत्र जाने की गारंटी नहीं है, और यदि सम्यक् दर्शन है तो स्वर्ग जाने की गारंटी है, इसलिये यहाँ से सम्यक् दर्शन लेकर स्वर्ग जाओ, स्वर्ग से जाकर विदेह क्षेत्र में देशना सुनना ठीक है, लेकिन सम्यक् दर्शन का त्याग करके मिथ्यादृष्टि बनना और फिर विदेह क्षेत्र जाने की कल्पना करना। जिसकी कि कोई गारंटी नहीं है।

ज्ञानी जीवो ! विदेह क्षेत्र जो जायेंगे, वे भव्य मिथ्यादृष्टि जीव होंगे। और वे ही बहुत बिरले, कुल एक सौ तेईस जीव और उनका क्रम है, तीन-तीन हजार वर्ष में एक निश्चित संख्या प्रमाण यह उनका क्रम है, कि इतने कम इक्कीस हजार वर्ष में कुल एक सौ तेईस जीव ही तो जाना है विदेह क्षेत्र। इसलिये मिथ्यादृष्टि बनके विदेह क्षेत्र मत जाना।

ध्यान रखना-जब तुम यहीं पर इतनी निर्मल परिणति नहीं बना पाये तो विदेह क्षेत्र में जाकर शुभ परिणति बना पाओगे, इसकी क्या गारंटी है ? इसलिये हे ज्ञानी जीवो ! जो पर्याय की सुयोग्यता है उसमें मिलती है, निर्मल परिणति बनाओ। कोई-कोई जीव कहते हैं, इस काल में ध्यान नहीं होता, तो ध्यान रखना, यदि इंद्रियों के विषयों को जीता है और मन पर नियंत्रण है, तो इस काल में भी ध्यान होता है।

प्रिय आत्मन्!

जैसे किसान पौधे को सींचता है, तो पौधा वृक्ष बन जाता है, उसी तरह से श्रावक साधु को

सींचता है, तो साधु अरिहंत बन जाता है। हे श्रावको ! इस तरह से साधु को सींचो, कि वह साधु अरिहंत बन जाये और हे साधुओ ! तुम अपनी आत्मा को इस तरह से सींचो, इस तरह संस्कारित करो, कि जो पौधा, बीज से लेकर के इतना बड़ा हो चुका है, यह पौधा सूख न जाये, मुरझा न जाये।

आपको मालूम है, गवर्मेन्ट की ओर से नर्सरी से पौधे दिये जाते हैं वे पौधे छोटे-छोटे होते हैं और पौधे की विशेषता कुछ भी हो, किंतु आम के पौधे तो बरसते पानी में लगाये जाते हैं। क्योंकि बहुत गीली मिट्टी उसके लिये आवश्यक होती है, ताकि जड़ें.तत्काल मिट्टी को पकड़ लें, तत्काल जड़ों को पानी मिलता रहे, तब कहीं वे पौधे, मजबूती से मिट्टी को पकड़ पाते हैं, उसी तरह मैं कह रहा हूँ, जितने नाजुक छोटे पौधे होते हैं, उनका उतना ज्यादा संरक्षण आवश्यक होता है, पौधों के संरक्षण के लिये हम चारों ओर से बाड़ी बना देते हैं, ताकि उस पौधे के लिये जानवर न खा जायें। लेकिन जीवन रक्षा के लिये आपने क्या किया है, जो आपको जीवन मिला है इसके लिये आचार्यो ने कहा सात शील व्रतों की बाड़ी बनाओ।

अब तुम्हें इस आत्मा से अरहंत बनना है, यह जीवन जो है अरहंत बनने के लिये है, आज ही अभी तीन रत्न को धारण करो। आज जो मुनिराज हैं, यह तो सब जानते हैं, कि मुनिराज हैं, लेकिन मुनिराज के अंदर बैठा जो भगवान आत्मा है, उस भगवान आत्मा को कौन निहारे। हे मुनि ! तू ही निहार कि तेरा भगवान आत्मा कैसा है ? ध्यान देना-अविलम्ब से परमात्मा बनना और बिलम्ब से परमात्मा बनना यदि शीघ्र परमात्मा बनना है, तो उतना ही ज्यादा ध्यान देना आवश्यक है। ज्ञानी जीवो ! अपने-अपने परिणाम सम्हालना, क्योंकि पल भर में गुणस्थान बदलता है, पल भर में परिणाम बदलते हैं, इसलिये यह भी मत सोचना, कि यह मुनिराज नहीं होंगे, दूसरे मुनिराज होंगे। इसलिये वीतरागता आने में समय नहीं लगता है और वीतरागता जाने में समय नहीं लगता है। प्रमत्त होने में समय अन्तर्मुहूर्त ही लगता और अप्रमत्त होने में इतना समय ही लगता पल-पल में परिणाम बदलते हैं।

चतुर्थ, पंचम्, षष्ठम् सप्तम् गुणस्थान का जघन्य अन्तर काल मात्र एक अन्तर्मुहूर्त है अत: कोई भी श्रावक या साधक को देखकर, सुनकर उसकी निंदा मत करो, उसे सम्हालो। आगम कहता है-सम्हालोगे तो वह अपने योग्य गुणस्थान में आ जायेगा, निन्दा करोगे तो तुम पहले, दूसरे गुणस्थान में पहुँच जाओगे।

आज जो मुनिराज, निज शुद्धात्मा का ध्यान करते हैं, शुद्धपयोग में रमण करते है, वीतराग स्वसंवेदन की अनुभूति करते हैं, ऐसे राग-द्वेष-मोह को कम करने वाले क्रोध, मान, माया लोभ को कम करने वाले, पंचेन्द्रिय के विषयों से उपरत, ऐसे दिगम्बर तपोधन साधु, अपनी आत्मा में जब लीन होते हैं,

तब वह लीन आत्मा में आत्मा, असंख्यात गुणी निर्जरा करती है और शुक्ल लेश्या के परिणाम को धारण करती हुयी समाधि को साधती है।

प्रिय आत्मन्!

सभा में आने का संस्कार समवशरण ले जायेगा। स्वर्ग से च्युत होकर के फिर मनुष्य पर्याय में आयेगा, मनुष्य पर्याय में आकर के फिर मुझे क्या होना था ? मैं कौन हूँ ? वह शीघ्र अतिशीघ्र बिन कारण दीक्षा लेता, वह पूर्व जनम का त्यागी बिना ही कारण जुटाये दीक्षा को प्राप्त हो जायेगा, क्योंकि पूर्व भव के संस्कार है। इस भव के संस्कार इतने मजबूत कर लेना, इतने प्रिय करलो, कि जब तुम स्वर्ग में पहुँच जाओ तो तत्काल विदेह क्षेत्र की याद आये।

तम्हा अब्भसऊ सया, मोत्तूणं राय दोस वा मोहे।
झायउ णिय अप्पाणं, जइ इच्छह सासयं सोक्खं ॥16॥

अर्थ-

इसलिए यदि शाश्वत सुख को चाहते हो तो, राग-द्वेष और मोह को छोड़कर सदा ध्यान का अभ्यास करो और अपनी आत्मा का ध्यान करो।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी ! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

तत्त्वसार में आत्मतत्त्व की उपलब्धि का मुख्य उपाय ध्यान बताया गया है, जैसे-दूध में घी है, ईंधन में आग है, तिल में तेल है, बीज में वृक्ष है, पाषाण में प्रतिमा है, उसी तरह से निज आत्मा में परमात्मा है। उसकी प्राप्ति का उपाय ध्यान है। अब प्रश्न यह है कि आत्मा का ध्यान करने वाला कौन है ? आत्मा है। तो आत्मा का ध्यान-आत्मा करेगा, तो परमात्मा कैसे प्रकट हो जायेगा ?

जैसे-बाँस-बाँस से रगड़ता है। गर्मी के दिनों में बाँस-बाँस से रगड़ जाता है तो अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, उसी तरह से आत्मा-आत्मा का ध्यान करता है, तो परमात्मा प्रकट हो जाता है। जैसे बाँस अग्निमय हो जाता है, वैसे ही आत्मा ही परमात्मा हो जाती है। आचार्य देव कहते हैं-इस काल में श्रावक हो, या मुनि, दोंनों आत्मा का ध्यान करें। क्यों ? देह का ध्यान तो अनादि से किया है, लेकिन देही का ध्यान कभी नहीं किया है, इसलिये।

अजीव का ध्यान जीव ने सदा किया है, लेकिन जीव ने जीव का ध्यान नहीं किया। आत्मा ने अनात्मा का तो ध्यान किया, लेकिन आत्मा ने आत्मा का ध्यान अभी तक नहीं किया। आचार्य भगवान कहते हैं-इस काल में भी आत्मा का ध्यान करने वाले पुरुष, आत्मीय शुद्धि को प्राप्त होते हैं। ध्यान की विशेषता है, कि ध्यान आत्मा को निर्विकार विशुद्ध बनाता है। जितना-जितना ध्यान बढ़ेगा, उतनी-उतनी एकाग्रता बढ़ती चली जाती है। और जितनी-जितनी एकाग्रता बढ़ती है, उतना-उतना ध्यान बढ़ता है।

प्रिय आत्मन्!

ध्यान के बढ़ने से निश्चलता, एकाग्रता बढ़ती है और कर्मो में हीनता आती है, श्रुत का अभ्यास आप कर रहे हैं, लेकिन श्रुत-श्रुत के लिये नहीं है, श्रुत-ध्यान के लिये है, ज्ञान-ध्यान के लिये है। आचार्य भगवन् का यह उपदेश है, कि मैं जो तत्त्वसार रच रहा हूँ, यह मात्र ज्ञान के लिये नहीं, इसको ध्यान के लिये अपनाओ। ग्वाला दूध लाया है, तो जितने दूध का उपयोग हो सके, उतने दूध का उपयोग कर लो, जो शेष दूध बचा रहे, उसका या तो दही बना लो, या उसका घी बना लो, रखे मत रहो, उसी तरह इस ज्ञान को ध्यान में बदल दो, तो ज्ञान स्थिर हो जायेगा।

आचार्य भगवन् का सूत्र है। ध्यान तो करना है, लेकिन ध्यान करने के पूर्व तीन बातें छोड़ देना। यदि तीन बातें रहेगी, तो वही ध्यान होगा, जो सदा से किया है इसलिये आचार्य देव कहते हैं-मात्र तीन बातें छोड़ देना। ज्ञानी जीवो ! संसार में जोड़ने के लिये तो अनंत पदार्थ हैं, जोड़ते रहो, कभी संपूर्ण नहीं जोड़ पाओगे। लेकिन छोड़ने के लिये मात्र तीन ही चीजे हैं यदि तीन चीजों को छोड़ देते हो, तो तीन लोक के नाथ, त्रैलोक्यपति, परमेश्वर बन सकते हो। मात्र तीन ही चीजें छोड़ना है, लोग आते हैं, महाराज श्री ! हम क्या छोड़ दे ? आज हमारा जन्म-दिवस है, हम क्या छोड़ दें ? हमारा वर्थ-डे है, आज हमारे घर पर आहार हुआ, हम क्या छोड़ दें ? आज हम कौन सा नियम ले लें ? आचार्य भगवन कहते हैं, मात्र तीन नियम ले लो, फिर कोई नियम नहीं लेना पड़ेगा। वे तीन वेकार चीजें हैं-राग, द्वेष, मोह।

प्रिय आत्मन्!

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च ।
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि जीवो ॥17॥ समयसार ॥

आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं-मेरे कहने से मत छोड़ देना, छोड़ने के पहले तीन चीजें याद रखना। ज्ञानी ! मेरे कहने से मत छोड़िये, आप तत्त्व का निर्णय कीजिये, यदि चीज अच्छी हो तो मत छोड़ो, यदि चीज बुरी हो तो छोड़ दो। आपके लिये छोड़ने को कहा जा रहा है, तो कुंदकुंद भगवान कहते हैं, तीन बातें याद रखिये, पहली बात तो मेरे कहने से मत छोड़ना, इनके कहने से मत छोड़ना, किसी के कहने से मत छोड़ना, स्वयं निर्णय करो।

वस्तु अपवित्र है या पवित्र है ? कहने से नहीं छोड़ना है मैं निर्णय लेकर छोड़ूँगा, और निर्णय लेकर छोड़ोगे, तो कभी द्वारा नहीं पकड़ोगे, और तुमने मेरे कहने से छोड़ दिया, तो कुछ दिन तक छोड़ दोगे, पुन: पकड़ लोगे। छोड़ के जाओगे बाद में पकड़ लोगे, क्योंकि भीतर से तत्त्व का निर्णय नहीं हुआ है और छोड़ दिया तो फिर पकड़ लिया यह क्यों होता है ? एक बार रात्रि भोजन छोड़ने के बाद, द्वारा रात्रि भोजन शुरु हो गया। एक बार आलू प्याज त्यागने के बाद द्वारा शुरु हो गये। एक बार बैर छोड़ने के बाद द्वारा बैर प्रारंभ हो गया। एक बार कषाय छोड़ने के बाद द्वारा कषाय प्रारंभ हो जाती है। यह सब क्यों होता है ? आइये समझिये।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य कुंदकुंद देव के निर्णय से समझिये स्वयं का ज्ञान लगाइये। सबसे पहले मेरा संकल्प है, मैं आपके कहने से नही छोड़ूँगा। मेरा पक्का निर्णय है, मैंने घर छोड़ा है, गुरु के कहने से नही छोड़ा, कपड़े छोड़े, गुरु के कहने से नही छोड़े। ज्ञानी जीव ! प्रत्येक क्रिया स्वयं के ज्ञान से करता है तो, कैसे छोड़ा ? पवित्र है, या अपवित्र है दो में से एक बताओ ? राग-द्वेष-मोह यह तीन चीजें छोड़ने की बात कर रहा हूँ।

आचार्य देव कहते हैं-पहली बात पवित्र है कि अपवित्र है ? दूसरी बात यह आगम के विपरीत है, कि आगम के अनुकूल है? तुम्हारे धर्म के विपरीत है, कि धर्म के अनुकूल है ? तुम्हारे परिवार के विपरीत है, कि परिवार के अनुकूल है ? तुम्हारी समाज के विपरीत है, कि समाज के अनुकूल है ? तीसरी बात यह कार्य दुखदायक होगा या सुखदायक ? मात्र तीन चीजों में तुम्हारी जीवन की सारी बुराईयों का त्याग हो जायेगा।

प्रिय आत्मन्!

आप घर से आये थे, जूता-चप्पल पहनकर आये थे, दरवाजे पर छोड़ आये। क्यों छोड़ आये ? अपवित्र थे, सो बाहर छोड़ आये। और मंदिर की मर्यादा के विपरीत है, आगम की मर्यादा के विपरीत है, समाज की मर्यादा के विपरीत है। आप जो त्याग करो, पवित्र है या अपवित्र है, यदि आपने पहला विचार किया, यह अपवित्र है। हम घर से रास्ते तक आये, तो आप पहनकर के आये, लेकिन द्वार पर आते ही आपने त्याग दिया, क्योंकि अपवित्र चीज थी। उसके पश्चात मर्यादा के विपरीत भी है, तो आपने बाहर छोड़ दी, और दुख रूप थी, इसलिये कि यदि में मंदिर की मर्यादा की हानि करूँगा, तो मुझे कर्म बंध होगा, इसलिये दुख रुप है। दूसरी बात, व्यक्ति हमको टोकेंगें, तो बुरा लगेगा।

कर्म - परवशे सान्ते, दुःखै - रन्त - रितोदये।

पापबीजे-सुखेऽनास्था, श्रद्धाना काङ्.क्षणा स्मृता ॥12॥ रत्नकरंड श्रावकाचार ॥

प्रिय आत्मन्!

आचार्य भगवन् समंतभद्र लिखते हैं, जो सुख-पाप का बीज हो, ऐसे सुख में मत पड़ना, वह सुख नहीं चाहिये, जो सुख भविष्य में पाप को उत्पन्न करे, उस सुख का त्याग कर दो, उस आनंद का त्याग कर दो, उस हँसी और खुशी का त्याग कर दो जिस हँसी, जिस खुशी, जिस आनंद और जिस सुख से भविष्य में पाप उत्पन्न हो, हँसना अच्छा है, कि बुरा है ? बुरा है। क्योंकि कषाय है। यदि हँसना छोड़ नहीं सकते हो, तो ऐसा मत हँसो, जैसा द्रोपदी ने हँसा हँसना विपरीत था, दुःखद था। इसलिये दुःख रूप हुआ। इसलिये उसको त्याग दो।

आचार्य कहते हैं-जो अपवित्र है, उसका त्याग, जो प्रतिकूल है उसका त्याग, क्यों भइया क्या बात है ? पाँच दिन से आपने आईस्क्रीम नहीं खायी ? महाराज ठण्डी का मौसम है इसलिये प्रतिकूल है, आचार्य देव यही तो कह रहे हैं, जो प्रतिकूल है उसको छोड़ दो, जो अपवित्र है उसको छोड़ दो और जो दुख रुप हो उसको छोड़ दो। ज्ञानी जीव ! वस्तु के माध्यम से तेरे दुख ही तो छुड़ा रहे हैं। रात्रि भोजन क्या छुड़ाया, तेरा दुख ही तो छुड़ा लिया, जिस साधु ने तुझ से रात्रि भोजन का त्याग करवाया है, उस साधु ने तेरा दुख छुड़ा लिया।

छोड़ना, जब-जब होता है, तो बुराई को छोड़ा जाता है, अच्छाई को जोड़ा जाता है अच्छाई से जुड़ते हैं, तो वह पवित्र होती है, और जो पवित्र हो, अनुकूल हो और जो सुख रूप हो उसको जोड़ो और

जो अपवित्र हो, प्रतिकूल हो, दुख रूप हो उसको छोड़ो। मैं जोड़ने की भी बात कर रहा हूँ और छोड़ने की भी बात कर रहा हूँ, एवं आगम के परिपेक्ष्य में बात कर रहा हूँ, समयसार के परिपेक्ष्य में बात कर रहा हूँ। तात्पर्य वही है, आचार्य कुंदकुंद भगवान की दृष्टि में जोड़ना किसे, और छोड़ना किसे ?

जो पवित्र हो उसे जोड़ लो और जो, समाज के अनुकूल, आगम के अनुकूल। पवित्र उद्देश्य है, जिनवाणी का मूल उपदेश और मूल उद्देश्य है, पवित्र होना चाहिये, अनुकूल होना चाहिये और सुख रुप होना चाहिये। घर में वही वस्तु लाना जो पवित्र हो, अनुकूल हो, सुख रूप हो, यह तीन वस्तुयें घर में ले आना और तीन वस्तुयें कभी घर में मत रखना, जो अपवित्र हो, दुख रूप हो और विपरीत हो।

ज्ञानी जीवो ! यह तत्त्व समझ में आ जाये, तो मुझसे पूछने नहीं आओगे, कि किस को छोड़ें और किसको जोड़ें। यह प्रवचन आपको कैसा लग रहा है ? पवित्र लग रहा है कि अपवित्र लग रहा है ? यह अनुकूल लग रहा है कि प्रतिकूल लग रहा है ? यह सुख रूप नजर आ रहा है, कि दुखरूप नजर आ रहा है ? पवित्र भी है, अनुकूल भी है और सुखरुप भी है। इसलिये प्रवचन स्वीकार है।

प्रिय आत्मन्!

भिक्कं वक्कं हिययं, सोधिय जो चरदि णिच्च सो साहु।
एसो सुट्ठिद साहू, भणियो जिण सासणे भयवं।।

आचार्य कुंदकुंद स्वामी कहते हैं-जो भिक्षा का शोधन करता है, वचन का शोधन करता है, जो हृदय का शोधन करता है। आप लोग भोजन तो शोध कर करते हो, मुँह में जो डालते हो तो शोधकर ही लोगे, पानी छानकर पीओगे, जैसे मुख से डाला, तो आत्मा के पास गया, कान से डाला तो अनुभव आत्मा ने किया, आँख से डाला, अनुभव आत्मा ने किया, यह विशेषता है। इसलिये मुख में वही डालो, जो शुद्ध हो, आँखों में भी वही डालो, जो शुद्ध हो।

ज्ञानी! आँख में डालने से वस्तु आँख से नहीं जानी जाती है, यह दोष रूप है। यदि तू आँख के स्पर्श को ही, आँख वाला मान लेगा, तो सन्निकर्ष को प्रमाण मान बैठेगा। जबकि आचार्य कहते हैं, वस्तु आँख में डालने से नहीं पहुँचती है आँख तो जिसको देख लेती है, वही आँखों में वश जाता है। आँख ने किसको देखा ? वह कैमरा चल रहा है, कैमरा मैं कुछ डाला जाता है क्या ? नहीं। कैमरा स्वयं केच कर रहा है, उसी तरह से आँख सबके चित्र ले लेती है। कैमरे की क्षमता है, कि एक मिनिट में हजार चित्र ले सकता है, लेकिन आँख की क्षमता है, कि एक सैकेंड में करोड़ों चित्र ले सकती है।

आत्मा एक सैकेंड में करोड़ों को जान सकती है, देख सकती है, आपने आँख खोलकर जिसको देखा, उसको आँखों में ले लिया। जैसे दरवाजे पर कोई दस्तक दे रहा है, दरवाजा खोला, इसलिये वह प्रवेश कर गया। आँख खुलती है, तो सृष्टि प्रवेश कर जाती है, जैसे दरवाजे के खुलने पर, हम भीतर प्रवेश कर जाते हैं, या भोजन को मुख में देने के लिये, मुँह खोलते हैं भोजन प्रवेश कर जाता है। उसी तरह हम आँख खोलते हैं, तो प्रकृति के पदार्थ हमारे भीतर पहुँच जाते हैं। मुँह खोलने पर तो, वही वस्तु मुख में जाती है, जिसे हम हाथ से ले जाते हैं, लेकिन आँख खोलने पर प्रकृति के जितने दृश्य पदार्थ होते हैं, वे सब, मेरी आँखों के माध्यम से अंदर पहुँच जाते हैं। इसलिये ध्यान के पहले, चक्षु इंद्रिय निरोध बताया है।

ज्ञानी जीवो ! दृश्य नयन का भोजन है, यदि वह दृश्य पवित्र है, तो पवित्र भोजन है और दृश्य अपवित्र है, तो अपवित्र भोजन है। वीतरागियों के चित्र नयन का पवित्र भोजन है, और रागियों के चित्र नयन का अपवित्र भोजन है।

मेरे नयनों के गुरु तारे बन गये ।
गुरु पद हमको, सहारे बन गये ।।
तारण हारी नैया तेरे द्वय चरण ।
ऐसे गुरुदेव चरणों, सिरसा नमन ।।

प्रिय आत्मन्!

बाहर में जिस वस्तु को देखते हैं, वह भीतर में जाके वश जाती है, इसलिये उसी को देखो, जिसे भीतर में बसा के रख सको। जिसे तुम कमरे में प्रवेश नहीं देते हो, तुमने आँखों में प्रवेश कैसे दे दिया? जो तुम्हारे कमरे में नहीं आ सकता, जो तुम्हारे घर में प्रवेश नहीं पा सकता है, उस व्यक्ति, उस वस्तु को तुमने नयनों में कैसे बसा लिया ? जिसे हम अपने घर में प्रवेश नहीं दे सकते, उसे आज हम नयनों में प्रवेश देते हैं। क्यों ?

आज टी.वी. के माध्यम से, देश-विदेश के सारे बुरे विचार, बुरे चित्र को हम अपने नयनों में प्रवेश देते है। जब भवन में प्रवेश नहीं दे सकते हैं, तो नयन में प्रवेश कैसे ? भवन में प्रवेश नहीं, तो मस्तिक में प्रवेश कैसा ? आँखों का अपवित्र भोजन मत करना, आँखों को भी शुद्ध भोजन कराओ। वीतराग जिनेन्द्र की मुद्रा, जिस समय तुम दर्शन करने के लिये आते हो, उस समय तुम प्रभु की प्रतिमा को निहारते हो, तो तुम्हारी आँखों का शुद्ध भोजन होता है। मंदिर का दर्शन, तीर्थों का दर्शन, प्रभु की वंदना,

गुरु का दर्शन, यह आँखों का शुद्ध भोजन है। क्षण दो क्षण की संगति से, वस्तु और व्यक्ति, आँखों के सामने रखी हुयी वस्तु, आँखों के सामने बैठा हुआ व्यक्ति, और पल भर के राग में और पल भर के द्वेष में जीवन भर के लिये, प्रवेश कर जाता है, भीतर। प्रवेश पाने में कितनी देर लगती है, स्कूल के प्रवेश में देर लग सकती है, मंदिर के प्रवेश में देर लग सकती है, लेकिन एक बार के नयन खोलने में करोड़ो का प्रवेश हो जाता है।

ज्ञानियो ! और की तो बात क्या कहें, जब तक नहीं आये, तब तक मन नहीं था, आने के बाद जब नयनों ने निहारा, इतना विशाल समुदाय, इतनी अच्छी भक्ति, तो महाराज वर्धमान सागर बोलने लगे, ललितपुर चातुर्मास के योग्य है। क्यों, भाई क्या हो गया ? यह होता है, आँखें खोलने का परिणाम, आँख खोलते हैं, तो आँख के माध्यम से, दृश्य भीतर में प्रवेश कर जाता है। ज्ञानी ! आँख बंद हो जायेगी, लेकिन जो आँख के माध्यम से प्रवेश कर गया है, वह नहीं निकल पायेगा। एक भव में वस्तु को निहारा, एक भव में व्यक्ति को निहारा, आँख बंद हो गई, लेकिन फिर भी व्यक्ति नहीं निकल पाया।

ध्यान देना-रोज आँख खुलती है, रोज आँख बंद होती है, लेकिन जिस आँख से प्रवेश किया है, उस आँख से वह निकल नहीं पाता है। आँख स्थायी रूप से भी बंद हो जायेगी, तब भी नहीं निकलेगा। भव-भव तक साथ जायेगा, एक बार आँखों से प्रवेश पा लिया और नौ भव तक नहीं निकल पाये। ज्ञानी जीवो ! आँखे प्रवेश कराती हैं, लेकिन निकालना बहुत कठिन होता है, क्योंकि राग से प्रवेश कराती है, तो निकल नहीं पाता है और द्वेष से भी प्रवेश कर जाये, तो भी निकल नहीं पाता है, कमठ की आँखों से पारसनाथ नहीं निकल पाये।

सुकौशल की माँ की आँखों से नहीं निकल पायी, शत्रुता। सुकुमाल की भाभी की आँखों से नहीं निकल पायी, शत्रुता। ज्ञानी जीवो ! एक बार आँखों से मित्रता प्रवेश कर जाये, या एक बार शत्रुता प्रवेश कर जाये, तो नहीं निकल पाती है, बहुत कठिन होता है, उसको निकालना, जब तक मोह नहीं निकलता है, तब तक वह शत्रुता-मित्रता भी नहीं निकलती है।

प्रिय आत्मन्!

जिन दृश्यों को को औदारिक शरीर में प्रवेश मिला था, शरीर बदल गया कार्माण शरीर के माध्यम से वैक्रियक शरीर में प्रवेश हो गया। जैसे कुँए का पानी पाइप के माध्यम से टंकी में आ गया, टंकी का पानी पाइप के माध्यम से वर्तन में आ गया, उसी तरह औदारिक शरीर के संस्कार, औदारिक शरीर से छूट जायेगा, मनुष्य पर्याय छूट जायेगी, लेकिन संस्कार वैक्रियक शरीर में चले जायेंगे और वैक्रियक शरीर

के संस्कार, फिर औदारिक शरीर में चले जायेंगे। नरक के संस्कार मनुष्य, तिर्यंच गति में आ जाते हैं, मनुष्य, तिर्यंच गति के संस्कार नरक, देव, तिर्यंच और मनुष्य गति में पहुँच जाते हैं।

जैसे तू कुँये से पानी लेकर टंकी में छोड़ देता है, टंकी का पानी वर्तन में छोड़ देता है, पानी वही रहता है। उसी तरह संस्कार वही रहते हैं संस्कारों को बदलना बहुत कठिन होता है। ज्ञानी ! इसलिये इतने अच्छे संस्कार पालो, कि जैसे कुँए का पानी मीठा होता है, मशीन कोई भी लगा दो, पानी तो मीठा ही निकलेगा। जिस प्रकार कुँये का पानी टंकी में डालने से खारा नहीं होता है। उसी प्रकार पूर्व भव के संस्कार जितने उत्तम होंगें, तो देव पर्याय में भी जाओंगे तब भी संस्कार रहेंगे।

प्रिय आत्मन्!

जब काली मिट्टी मिलती है, तो पानी काला हो जाता है और लाल मिट्टी मिलती है तो पानी लाल हो जाता है, पीली मिट्टी मिलती है पानी पीला हो जाता है। उसी तरह से हमारे संस्कार निमित्तों के अनुसार प्रभावित होते हैं, इसलिये इन आँखों के माध्यम से शुद्ध भोजन करना। कानों का शुद्ध भोजन करना।

यदि आपकी थाली में बाल आ जाता है, तो आप थाली में से बाल अलग कर देते हो, इसी प्रकार यदि कोई, दो गलत बातें कह रहा है और अट्ठानवें अच्छी बातें कह रहा है, तो अट्ठानवें बातें आप रख लीजिये और दो बातें छोड़ दीजिये। संशोधन कर लीजिये। हम अकेले भोजन का संशोधन करते है। वचन का संशोधन, वाणी का संशोधन, करो। जब यह होगा, तो धर्म-ध्यान बढ़ेगा, आज से दो बातें सीख कर जाओ। पहला-आँखों का भोजन शुद्ध और दूसरा-कान का भोजन शुद्ध करेंगे।

प्रवचन सुनना कर्ण का भोजन है जो कर्ण के माध्यम से आत्मा में जा रहा है इसलिये आत्मा का भोजन है। ज्ञानी जीवो ! ध्यान देना- इतना स्थिर होके सुनना चाहिये, जैसे-तेल को नापने वाला, नीचे के वर्तन को भी सही रखता है, ऊपर की चुंगी (पीक) भीतर के वर्तन में रखता है, फिर तेल डालता है, तब तेल नीचे के वर्तन में पहुँचता है। और यदि ऊपर वाले ने तेल डाला और नीचे वाले ने वर्तन खिसका लिया, तो तेल नीचे गिर जायेगा उसी तरह मैंने तो उपदेश देना शुरु किया, लेकिन तुमने उपयोग को भटका दिया। तो उपदेश सुनना व्यर्थ हो जायेगा।

ज्ञानी ! तुम मुझे मुख का भोजन देते हो, मैं तुम्हारे लिये कानों का भोजन देता हूँ। मन में अच्छा सोचना, अच्छे भोजन का परिणाम है, और मन में बुरा सोचना बुरे भोजन का परिणाम है। ज्ञानी जीवो ! यदि कोई किसी की निंदा कर रहा है, और वे शब्द तुम्हारे कान में पड़ रहे हों, तो वहाँ से उठके चले जाना।

कान में अशुद्ध आना, आँख में अशुद्ध चीज का आना, अंतराय है। भोजन के अंतराय के साथ-साथ, आँख, कान का अंतराय पालना भी सीखो।

संशय, विमोह, विभ्रम यह सम्यग्ज्ञान के अंतराय दोष है, राग, द्वेष, मोह को छोड़कर इन अंतरायों से बचो। ओहो ! पर्वत के राग में, पर्वत की माँ ने, राजा वसु से कह दिया कि बेटा ! तू बचा लेना। ज्ञानी जीव ! वसु ने गुरु माँ के राग में कह दिया, जो पर्वत कह रहा है, सो सही है, इतना मात्र कहने से सातवें नरक जाना पड़ा, एक जीव के राग में। उस समय से आज तक बलि प्रथा चली आ रही है। एक जीव के राग में, माँ ! यदि मेरा वचन सत्य नहीं निकला, तो मैं प्राण दे दूँगा। हे माँ ! तूने एक के प्राण को बचाने के लिये, कितनों के प्राणों को चले जाना दिया। लाखों के प्राण चले गये, एक के राग में। लाखों करोड़ों का बलिदान दे दिया।

प्रिय आत्मन्!

राग के कारण व्यक्ति झूठ बोलता है, चोरी करता है, अब्रह्म करता है, हिंसा करता है, येन-केन-प्रकरेण परिग्रह जोड़ता है, पाँचों पाप करता है। राग हिंसा कराता है, झूठ बुलवाता है, चोरी करवाता है सेठजी टैक्स क्यों चुराना पड़ता है ? राग के कारण। यदि पैसों से राग न हो, तो चोरी क्यों करेगें ? देवशास्त्र, गुरु से जो राग है, वह प्रशस्त है। अप्रशस्त राग से बचना, जो राग अप्रशस्त में ले जाये, उससे बचना चाहिये। कमठ ने द्वेष कर लिया, कमठ के भव-भव बिगड़ गये इसलिये द्वेष भी मत कर बैठना।

सास ने बहु से कुछ कह दिया, जीवन से द्वेष हो गया। ज्ञानी ! एक के राग में अपना पतन नहीं कर लेना, किसी के द्वेष में अपना पतन नहीं कर लेना, राग, द्वेष, मोह इन तीनों को छोड़कर के निज आत्मा का ध्यान करो। यदि यह तीन रहेंगे तो आत्मा का ध्यान नहीं होगा। यदि तुम शाश्वत सुख चाहते हो, तो राग-द्वेष-मोह मत करो। जैसे आप मंदिर में प्रवेश करने के पहले जूते चप्पल बाहर उतार देते हो, उसी तरह ध्यान के पूर्व राग-द्वेष-मोह इन तीन चीजों को बाहर उतार देना चाहिये। तब कहीं निज आत्मा का ध्यान होगा।

दंसण णाणपहाणो, असंखदेसो हु मुत्तिपरिहीणो।
सगहियदेहपमाणो, णायव्वो एरिसो अप्पा ॥17॥

अर्थ-

निश्चयनय से आत्मा दर्शन और ज्ञानगुण प्रधान है, असंख्यात प्रदेशी है, मूर्तित्व से रहित है, अपने द्वारा गृहीत देह-प्रमाण है। ऐसे स्वरूपवाला आत्मा जानना चाहिये।

माँ-जिनवाणी ! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो ।

प्रिय आत्मन्!

तत्त्वसार ग्रंथ में अपना स्वरूप क्या है ? चर्चा चल रही है, कि ध्यान करो। प्रश्न उत्पन्न होता है कि किसका ध्यान करें ? समाधान मिला, आत्मा का ध्यान करो । आत्मा क्या है ? आत्म द्रव्य की सिद्धि होने पर ही, तो आत्म कल्याण की भावना जागेगी । अकलंक देव का यह महामंगलकारी वचन है, कि तुम जिसको पाना चाहते हो, जिसको करना चाहते हो पहले उसका निर्णय तो कर लो । जैसे कि आत्मा का ध्यान करना है, तो निर्णय करो, आत्मा क्या है ? आत्मा कैसा है ? आत्मा कहाँ है ? आत्मा का स्वरूप क्या है ? आत्मा का लक्षण क्या है ? आत्म द्रव्य क्या है ? आत्म तत्त्व क्या है ? इसकी परीक्षा करना आवश्यक है ।

आचार्य भगवन् कहते हैं जो परिणमन करे वह आत्मा है । परिणमन किसमें ? सम्यक्दर्शन ज्ञान-चारित्र में, जो परिणमन करे वह आत्मा है । पुन: कहते हैं, ''स: आत्मा अस्ति'' अर्थात् वह आत्मा है। अकलंक देव का यह वचन है, यदि हम स: को हटा देते हैं तो ''आत्मा अस्ति'' आत्मा है। ''क: आत्मा अस्ति''? ''स: आत्मा अस्ति''। ''एष: पुरुष: आत्मा अस्ति'' (यह पुरुष आत्मा है) स्वरूप संबोधन ग्रंथ में आचार्य अकलंक स्वामी आत्मा का लक्षण बतलाते हैं, कि वह आत्मा उपयोग लक्षण वाला है।

सोऽस्त्यात्मा सोपयोगोऽयं, क्रमाद्हेतुफलावह:।
योग्राह्योऽग्राह्यनाद्यन्त:, स्थित्युत्पत्ति व्ययात्मक: ॥2॥ स्वरूप संबोधन ॥

''उपयोगो लक्षमण्'' ॥ तत्त्वार्थसूत्र ॥

उपयोग क्या है ? आचार्य देव कहते हैं, आत्मा के साथ जो सदा रहता है, वह आत्मा का अभिन्न परिणाम उपयोग है । जो परिणाम आत्मा के साथ सदा रहता है, वह उपयोग है । उपयोग के दो प्रकार है ।

उवओगो दुवियप्पो, दंसण-णाणं च दंसणं चदुधा ।
चक्खु-अचक्खु ओही दंसणमह केवलं णेयं ॥4॥ द्रव्यसंग्रह ॥

दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग। आचार्य देव कहते हैं-दर्शनोपयोग के चार भेद हैं और ज्ञानोपयोग के आठ भेद हैं, चक्षु-अचक्षु, अवधि, और केवल दर्शन, यह चार दर्शन उपयोग के भेद हैं। आँख बंद करने के बाद शेष इंद्रियों से जो दर्शन होता है, उसे अचक्षु दर्शन कहते हैं। कुण्डलपुर में आचार्य श्री विद्यासागर की वैयावृत्ति हम कर रहे थे, आचरण सागर जी करने लगे। आचार्य श्री उस समय आँख बंद किये हुये बैठे थे, आँखों में घी डाले हुये थे, तो इन्होंने (आचरण सागर) ज्यों ही छुआ, तो बोले मुझे अचक्षु दर्शन तो अभी भी हो रहा है, हाथ ठंडे लगे तो, अचक्षु दर्शन तो अभी भी हो रहा है। यह मत सोचो कि पता नही है।

हाथों के स्पर्श से कौन सा दर्शन होता है ? अचक्षु दर्शन। स्पर्शन, रसना, घ्राण और कर्ण इन चार इंद्रियों से जो दर्शन होता है, वह अचक्षु दर्शन है। अत: चक्षु दर्शन को छोड़कर शेष इंद्रियों से जो दर्शन होता है, वह अचक्षु दर्शन है। दर्शन अविकल्प होता है, ज्ञान सविकल्प होता है। दर्शन निराकार होता है, ज्ञान साकार होता है और चक्षु दर्शन नेत्र इंद्रिय के द्वारा, अचक्षु दर्शन शेष इंद्रियों के द्वारा, अवधि ज्ञान के साथ जो दर्शन पाया जाता है, वह अवधि दर्शन है। केवलज्ञानी अरहंत, सिद्ध आत्माओं के केवल दर्शन पाया जाता है।

मति-श्रुतावधिमन: पर्यय केवलानि ज्ञानम्॥ तत्त्वार्थ सूत्र॥

प्रिय आत्मन्!

ज्ञान आठ प्रकार का है, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यय ज्ञान, केवलज्ञान। यदि संसारी प्राणी का बोध करना है, तो आठ ज्ञान की चर्चा होगी, लेकिन आत्मा के शुद्ध स्वरूप की यदि चर्चा करना है, तो मात्र ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग की चर्चा होगी। यद्यपि आत्मा में अनंत गुण हैं, किंतु दो गुण प्रमुख हैं, एक दर्शन गुण और एक ज्ञान गुण और दो में भी एक प्रमुख है ज्ञान गुण।

प्रिय आत्मन्!

इसलिये आत्मा को दो प्रमुख गुण वाला बताया है, दर्शन और ज्ञान यद्यपि आत्मा में अनंत गुण हैं, लेकिन वे अनंत गुण बिना दर्शन और ज्ञान के हमारे विषय नहीं बनते हैं। उन समस्त गुणों को जानोगे ज्ञानोपयोग के द्वारा, इसलिये दर्शन और ज्ञान में समस्त गुण गर्भित हो जाते हैं।

अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसणणाणमइओ सया रूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचिवि, अण्णं परमाणुमित्तं पि॥38॥ समयसार॥

आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी समयसार में लिखते हैं, कि मैं एक हूँ। सरकार कहती है, हम दो हमारे दो। परंतु आचार्य देव कहते हैं-मैं एक हूँ, द्रव्य दृष्टि से निहारो तो पर्याय दृष्टि से निहारो तो मैं अनंत हूँ। क्योंकि अनंत पर्याय बीत चुकी हैं एक-एक द्रव्य की अनंत-अनंत पर्यायें बीत चुकी हैं, एक पर्याय (वर्तमान) उदय में चल रही है, अनंत पर्यायें भविष्य में होंगीं। एक द्रव्य में अनंत गुण होते हैं, एक गुण की अनंत पर्यायें होती हैं। इसलिये हे ज्ञानी जीव! न तो मैं तुझे जान सकता हूँ, क्योंकि तू द्रव्य है और द्रव्य में अनंत गुण होते हैं, अनंत गुण में से एक गुण की अनंत पर्यायें होती हैं। एक पर्याय को तो जानना मुश्किल है। जो कि हम बोलते हैं, कि हम तुम्हें अच्छी तरह से जानते हैं।

भो ज्ञानी ! जिस दिन तू मुझे अच्छी तरह से जान लेगा, उस दिन तू सर्वज्ञ हो जायेगा। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ, यदि तुम मुझे अच्छी तरह से जानते हो तो। मैं तुम्हें अच्छी तरह से जानता हूँ, यदि यह प्रश्न आता है तो तात्पर्य है, अच्छी तरह से जानने वाला तो सर्वज्ञ होता है, जो भूतकाल, भविष्य काल, वर्तमान को भी जानता है। ज्ञानी ! तू कितना जानता है, मात्र चेहरे को देखकर जानता है, पेट को देखकर भी नहीं जानता है, इतना सा तो परिचय है, पर्याय के परिचय से जुड़ा है। उम्र पूरी होगी, इस पर्याय में से जब आत्मा चली जायेगी, तो फिर पूछना कहाँ गये हो ? पता नहीं। किस पर्याय में गये ? पता नहीं। तो कैसा परिचय, कैसा जानना, अच्छी तरह से जानते तो यह भी बता दो भाई, मैं वर्तमान भव में कहाँ से आया हूँ ? भविष्य में कहाँ जाऊँगा ?

प्रिय आत्मन्!

अच्छी तरह से जानते हो तो जानो, इतना ही जानो, कि मैं भावी भगवान आत्मा हूँ और तुम भी भावी भगवान आत्मा हो, यही अच्छी तरह से जानना है। यदि तुमने मुझे क्रोधी जाना तो बुरा जाना, मानी जाना तो बुरा जाना, मायावी जाना तो बुरा जाना, लोभी जाना तो भी बुरा जाना। ज्ञानी जीवो ! अच्छा जानो, अच्छा देखो, हमने संस्कार अपने बच्चों को दिये हैं कि अच्छा खाओ, अच्छा पियो, लेकिन आज मैं शिक्षा दें रहा हूँ, कि अच्छा देखो, अच्छा जानो, अच्छा सोचो, अच्छा सुनो, यही तो जीवन है।

मैं ज्ञाता दृष्टा हूँ, द्रव्य दृष्टि से निहारिये, संसार में कितने पदार्थ हैं। क्या सबके प्रति राग होता है? नहीं। ज्ञाता भाव से जान लेते हो, दृष्टा भाव से देख लेते हो, न राग है न द्वेष है। जानने वाले को ज्ञाता कहते हैं। लेकिन जानना और देखना बुरा नहीं है, देखने जानने के साथ उसमें अपना राग द्वेष मिलाना बुरा है। कुअवधि ज्ञान तो होता है, लेकिन कुअवधि दर्शन नहीं होता है। क्यों नहीं होता है ? इस कारण नहीं होता है, कि जानने के लिए चश्मा बदलने की आवश्यकता नहीं है, आप वस्तु को देखेंगें, देखने के बाद

जानना यह आपके ज्ञान का काम है कि आप कैसा जानते हैं। दिखेगा एक ही, लेकिन जानोगे भिन्न-भिन्न। आपने मुझे जैसा कल देखा, वैसा आज भी देखा, लेकिन जैसा कल जाना क्या वैसा आज जान रहे हो ? नहीं जान रहे, तो देखना तो एक प्रकार का होता है लेकिन जानना भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है, इसलिये कुअविध दर्शन नहीं होता है मात्र कुअवधि ज्ञान होता है।

प्रिय आत्मन्!

दर्शन एक है और ज्ञान दो है। कुअविध ज्ञान और सुअवधि ज्ञान, देख एक ही पदार्थ को रहे, लेकिन देखने वाला अच्छा जाने या बुरा जाने, यह उसके ऊपर निर्भर है। पदार्थ एक है, देखने वाला देखता है, अच्छा जानता है या बुरा जानता है, उस पर निर्भर है। मैं एक हूँ, ज्ञाता दृष्टा हूँ, मात्र जान रहा है देख रहा है किंतु जानते और देखते हुये भी न राग है न द्वेष है, वह ज्ञाता है, जो अपने स्वभाव में लीन है, मात्र निज को जान रहा है, वह संपूर्ण पदार्थो को जानने वाला होने पर भी, निज में लीन है वह ज्ञायक है।

गुणों का विकास आत्मा का विकास है। गुणों का प्रकाशन होता है, उद्घाटन होता है, उद्भावन होता है। गुण लाना नहीं पड़ते हैं, गुण प्रकट हो जाते हैं, आत्मा में ही अनंत गुण हैं एक भी गुण न बाहर से लाना है, न बाहर वाले को देना है, प्रत्येक आत्मा में निजी अनंत गुण हैं वे अनंत गुण आवरण के घटते-घटते ही प्रकट होते चले जाते हैं। पाषाण खण्ड में प्रतिमा है मात्र अनावश्यक को निकाल दोगे, और जो आवश्यक बचेगा, वह प्रतिमा बन जायेगा।

शिल्पी प्रतिमा बनाने के लिये अनावश्यक को निकाल देता है, तो जो शेष रहता है वह आवश्यक रहता है, जो आवश्यक रहता है वह प्रतिमा बन जाता है, अपनी आत्मा में जो-जो अनावश्यक हो उस-उस को छोड़ने की बात है। आवश्यक नहीं छोड़ना, जो अनावश्यक हो उसको छोड़ना। दर्शन और ज्ञान दो आत्मा के गुण हैं, पहचान तीन तरीके से होती है, एक-लक्षण, दो-निर्देश, तीन-परीक्षा। लक्षण-एक आत्मभूत लक्षण होता है, दूसरा अनात्मभूत लक्षण होता है, जो लक्षण द्रव्य में मिला हुआ है, वह आत्मभूत है और जो लक्षण आत्म द्रव्य में नही मिला है वह अनात्मभूत लक्षण कहलाता है।

जैसे अग्नि का ऊष्णता से तादात्म्य संबध है वैसे ही आत्मा का ज्ञान से तादात्म्य संबंध है। जहाँ-जहाँ ज्ञान, वहाँ-वहाँ आत्मा। जिस -जिस में आत्मा, उस-उसमें ज्ञान। जिस-जिसमें ज्ञान, उस-उसमें आत्मा। जहाँ-जहाँ आत्मा नहीं, वहाँ-वहाँ ज्ञान नहीं। जहाँ-जहाँ ज्ञान नहीं, वहाँ-वहाँ आत्मा नही। आप लोग ज्ञानी हो कि अज्ञानी ! ज्ञानी ! क्योंकि बिना ज्ञान के आत्मा होती ही नहीं है।

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं, ज्ञानादन्यत् करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा, मोहोऽयं व्यवहारिणाम्।। अ0अ0क0।।

अमृतचंद्र देव का यह कलश अमृत कलश है, आत्मा ज्ञान ही है और है ही क्या चीज ? गुण और गुणी में अभेद है, ज्ञान से भिन्न करेगा क्या ? जैसे जल-जल ही है, जल का परिणमन भी जल है, उसी तरह ज्ञान में से ज्ञान आया और ज्ञान में ज्ञान चला गया। यही तादात्म्य है, जैसे अग्नि के बिना ऊष्णता नहीं है, ऊष्णता के बिना अग्नि नहीं है। ज्ञान के बिना आत्मा नहीं है, आत्मा के बिना ज्ञान नहीं है। जहाँ-जहाँ आत्मा वहाँ-वहाँ ज्ञान। होने पर होना अन्वय और नहीं होने पर नहीं होना व्यतिरेक संबंध है। आत्मा के होने पर ज्ञान का होना अन्वय संबंध है और नहीं होने पर नहीं होना व्यतिरेक संबंध है। तादात्म्य संबंध जो होता है वह होने पर होता है यही अविनाभावी संबंध, उसका पर्यायवाची नाम है।

प्रिय आत्मन्!

जिसके बिना जो नहीं हो और जिसके होने पर जो हो उसका नाम अविनाभाव है। आत्मा है, तो ज्ञान होगा ही होगा। जब मैं आत्मा हूँ, तो यह पक्का है, कि मुझे केवलज्ञान हो सकता है, तो मतिज्ञान क्यों नहीं हो सकता ? श्रुतज्ञान क्यों नहीं हो सकता है ? जो आत्मा की बात रूचि पूर्वक सुनता है, जिसको आत्म तत्त्व की चर्चा सुनने में रूचि लगती है, वह जीव नियम से भव्य होता है और जो भव्य है, उसके केवलज्ञान की गारंटी लेने में तैयार हूँ।

''विणयेण सुद मदीदं जहवि पमादेण होदि विस्सरिदं''

विनय के साथ सुना गया श्रुतज्ञान, यदि प्रमाद से तुम भूल भी जाओगे तब भी आचार्य देव कहते हैं-वह भविष्य में केवलज्ञान का बीज बनेगा ही बनेगा। छोटी-छोटी सी बात सुन लेना, जैसे वट का बीज कहीं भी गिर जाये, यहाँ तक कि पच्चीस साल तक उसे पानी न मिले, पचास साल तक उसे पानी न मिले, लेकिन जब भी पानी मिलेगा वह वट का बीज फलीभूत हो जायेगा। उसी तरह से जिनवाणी को यदि आज सुन लिया है और हृदय में चला गया है, तो चिंता मत करना, कभी न कभी जब कभी फलीभूत होगा तो तुम्हें सिद्ध परमात्मा ही बनायेगा। यह तो वट के बीज की तरह है।

प्रिय आत्मन्!

क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी की समाधि ईसरी में हुयी। समाधि के पश्चात् साहू श्रेयांस प्रसाद जी के सुपुत्र वहाँ पधारे और व्यवस्था यह थी, कि स्मारक बनना है, चरण छतरी बनना है, तो उन्होंने कहा

इंजीनियर मैं दिल्ली से लाऊँगा, तो ईसरी वालों ने कहा आप दिल्ली से इंजीनियर लायेंगे? इसकी अपेक्षा हम यहीं के इंजीनियर से छतरी बनवा देगें। उन्होंने कहा कि आप अपने इंजीनियर से काम कराईये, मैं भी अपना इंजीनियर साथ में लाता हूँ। अब देखिये-ईसरी के इंजीनियर ने क्या कराया ? एक बट के वृक्ष के नीचे रेत छानने का काम लगवा दिया। अब जो दिल्ली से इंजीनियर आया, उसने देखा, पूँछा भाई सामग्री आ गयी ? रेत कहाँ पड़ी ? वट वृक्ष के नीचे। वह बोले ठीक है, चलिये इंजीनियर कौन है ? यह हैं। जो दिल्ली से इंजीनियर आया था, उसने एक मुट्टी रेत उठायी, इंजीनियर को दिखाई, क्या रेत छन गयी ? बोला छन गयी-छन गयी। तो इसमें बट का बीज कैसे आ गया ? बोला बट का बीज छोटा सा है, क्या होगा ? बोले वट के बीज की क्षमता यह है, जो हम स्मारक बना रहे हैं इस स्मारक में यदि एक भी वट का बीज चला गया, तो आज नहीं, पचास-सौ साल के बाद भी, यदि इस बीज को यदि पानी मिलेगा, तब यह दीवाल में दरार करके ऊपर निकल आयेगा।

ज्ञानी ! उसी तरह से जानना, प्रत्येक ज्ञान की पर्याय, बीज की तरह भीतर जा रही है, चाहे मेरी ज्ञान पर्याय-राग मयी, वैराग्यमयी, क्षमामयी, चाहे क्रोधमयी हो। वह वट के बीज की तरह प्रवेश पा रही है। और वह उगेगी नियम से, जो ज्ञान भीतर में चला गया वह फिर से प्रकट होगा। और बट के बीज की तरह विशालता को लेकर प्रकट होगा। इसलिये ध्यान देना- मैं तुम्हारे लिये क्या दे रहा हूँ। यह महत्वपूर्ण नहीं है ? महत्वपूर्ण यह है, कि तुम अपनी कौन सी पर्याय अपनी आत्मा को दे रहे हो।

प्रिय आत्मन्!

ज्ञानदान दो प्रकार का है। एक व्यवहार ज्ञानदान होता है। दूसरा निश्चय ज्ञानदान होता है। निश्चय दान में अपनी आत्मा में जो ज्ञान पर्याय प्रकट हो रही है, उस ज्ञान पर्याय को, सम्यक् बना लिया, तो आत्मा को सम्यक् ज्ञान दे दिया और मिथ्या बना लिया, तो मिथ्या ज्ञान दे दिया। आचार्य देव कहते हैं-प्रवचन सुनने वालों की निर्जरा हो या न हो, पर सुनाने वाले की निर्जरा अवश्य होगी। यदि सुनाने वाले की ज्ञान पर्याय, सम्यक् उत्पन्न होगी तो सुनाने वाले की निर्जरा होगी और सुनाने वाले की ज्ञान पर्याय मिथ्या होगी तो सुनाने वाले को अशुभ बंध होगा। इसलिये वक्ता को अपनी ज्ञान पर्याय ऐसे प्रकट करना चाहिये, जैसे हीरे की खदान से हीरा प्रकट हो रहा हो।

ज्ञानी जीव ! सूरज के मण्डल से जैसे किरणें प्रकट होती है और चन्द्रमा से जैसे चाँदनी प्रकट होती है, आकाश में चन्द्रमा चमकता है और धरती शीतल हो जाती है, वैसे ही साधु जब मुख से कुछ भी बोले, तो वे वचन-गंगा से, चंदा से, चंदन से, मोतियों की माला से, और काशी के तल से भी शीतल साधु के वचन होना चाहिये, तब वे शीतल वचन महीतल पर पूज्यता को प्राप्त करते हैं।

न शीतलाश्चन्दन-चन्द्र-रश्मयो।
न गांगमम्भो न च हार यष्टय:।
यथामुनेस्तेऽनघ वाक्य रश्मय:।
शमाऽम्बुगर्भा: शिशिराविपश्चिताम्।।46।। स्वयंभू स्त्रोत।।

प्रिय आत्मन्!

हे जिनेन्द्र ! आपके अपूर्व वचन-निष्पाप हैं, निर्दोष हैं इसलिये कहा है, आपका मत अद्वितीय है, आपके मत के समान कोई दूसरा मत नहीं है। आपने निष्पाप धर्म तीर्थ का प्रवर्तन किया है। ज्ञान की प्रधानता और दर्शन की प्रधानता ही हेतु को और उसके फल को धारण करती है, आत्मा ग्राह्य है स्व संवेदन की अपेक्षा, अग्राह्य है इन्द्रियज्ञान की अपेक्षा। यदि ग्राह्य (ग्रहण) न होती, तो न सुख का वेदन होता न दुख का वेदन होता।

आचार्य देव कहते हैं-आत्मा ज्ञानमयी और दर्शनमयी है। तो तीन लोक, तीन काल में, इस आत्मा को कहीं पर भी रखा जाये, आत्मा चाहे सुमेरू पर्वत के तल के नीचे पहुँच जाये, चाहे सिद्ध लोक में पहुँच जाये, लेकिन ज्ञान को नष्ट करने वाली सामग्री, कोई भी यहाँ पर नहीं है। ज्ञान घट सकता है, बढ़ सकता है, लेकिन नष्ट नहीं हो सकता है। सत् द्रव्यदृष्टि से विनाश नहीं होता है, असत् का उत्पाद नहीं होता है। यही जैन दर्शन है।

सत् का नाश होता न, पैदा असत् न होता ।
जिनमत अटल नियम है, चाहो तो आजमालो ।।

अन्य दर्शन कहते हैं, किंतु जैन दर्शन कहता है सत् का नाश नहीं होता है, असत् का उत्पाद नहीं होता है। द्रव्य दृष्टि से निहारो तो सत्य का नाश नहीं होता है, असत् का उत्पाद नहीं होता है।

ज्ञानी जीव ! जीव संख्या न घटती है, न बढ़ती है। किंतु जन्म-मरण चलता है, तो जन्म-मरण के अनुसार पर्याय का परिवर्तन होता है और पर्याय के परिवर्तन को ही यहाँ मरण कहा है, यह व्यवहार नय की दृष्टि से निहारिये। व्यवहार नय भी अशुद्ध नहीं है, असत्य नहीं है, सत्य है परम सत्य है।

प्रिय आत्मन्!

''असंख्येया: प्रदेशा धर्माधर्मैक जीवानाम्''।। तत्त्वार्थसूत्र ।।

प्रत्येक जीव के प्रदेश स्वतंत्र-स्वतंत्र हैं-माँ ने बेटे को जन्म दिया है, लेकिन माँ ने अपना एक

प्रदेश भी जन्म के साथ नहीं दिया। माँ ने बेटे को जन्म दिया है, लेकिन माँ ने जीव को जन्म नहीं दिया है, माँ ने अपने भोजन को तो शरीर में प्रदान किया है, लेकिन आत्मा का एक प्रदेश भी बेटे की आत्मा को प्रदान नहीं किया है। यह भेद-विज्ञान जिस दिन जागेगा, उस दिन वैराग्य बलवान हो जाता है और माँ को छोड़ना भी सहज हो जाता है।

प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र-स्वतंत्र है। हमने भारतीय स्वतत्रंता के मापक में अन्य लक्षणों को तो स्वीकार किया, लेकिन इसको स्वीकार करके देखो कि वस्तुत: मेरी आत्मा स्वतंत्र है। कैसी स्वतंत्र है ? आत्मा असंख्यात प्रदेशी है, धर्म द्रव्य असंख्यात प्रदेशी है, अधर्म द्रव्य असंख्यात प्रदेशी है, काल द्रव्य एक प्रदेशी है, आकाश द्रव्य अनंत प्रदेशी है, लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी है। अलोकाकाश अनंत प्रदेशी है।

अरसमरूवमगंधं, अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं, जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ।।49।। समयसार ।।

आत्मा में कोई रस नहीं है और आत्मा जैसा कोई रस नहीं है, जितने भी संसार के रस हैं, वे-रस बेरस हैं। जितने संसार के रस हैं, वे रस फीके हैं, आत्मा का एक रस-स्वानुभूति रस, जब आत्मा में आता है। ज्ञानी जीवो ! साहित्य की दृष्टि में निहारो नौ रस होते हैं। लेकिन नौ रसों के पीछे जो में सबसे अंत में शांत रस है। तो उन आठ रसों का ध्येय एक शांत रस है। प्रांरभ के जो आठ रस हैं, उन सबका एक ही लक्ष्य है, कि शांत रस को पाना है। और वह शांत रस आत्मा में मिलता है।

जब अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है, तो किसी भी रस की आवश्यकता नहीं पड़ती है। यह परम सत्य है कि कवि ने जो कविता रची है, वह कवि की पुत्री है, कवि उसका आनंद नहीं लेता उसका जो आनंद है, वह जगत लेता है। यह साहित्यक व्यवहार दृष्टि है उसी तरह अन्य रस का आनंद तो पूरा संसार लेता है, लेकिन निज रस का आनंद आत्मानुभूत आत्मानुभवी लेता है, इसलिये कहा है।

जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पर पहुँचे कवि
जहाँ न पहुँचे कवि, वहाँ पहुँचे अनुभवि।

समयसार की रचना अनुभवी की रचना है, एक-एक रचना में अनुभव का रस टपक रहा है, शब्द-शब्द में अमृत झर रहा है, आचार्य अमृतचंद्र स्वामी की शैली को जब निहारते हैं, तो ऐसा लगता है, कि आत्मा में से निचोड़-निचोड़ कर रख दिया हो। ज्ञानी जीवो ! जैसे गन्ने के रस को निचोड़ कर

गिलास में रख देते हो, ऐसे ही आचार्य कुंदकुंद देव ने आत्मा के आनंद को निचोड़कर के समयसार में भर दिया है।

कवि तो पत्तों को, नदियों को, वृक्षों को, समुद्रों को, कल्पना के जाल बुनकर बंद कमरे में लिखता है। लेकिन ज्ञानी अनुभवी, भीतर शांत रस में निमग्न होकर के जो भीतर से प्रकट होता है, उसको लिखता है।

प्रिय आत्मन्!

अभी हमारा जीवन बहुत खट्टा है, इस खट्टे जीवन में मिठास लाने के लिये स्वामी समंतभद्र का आचरण लाने के लिये, उमास्वामी का सूत्रमयी जीवन लाने के लिये, हमारे सामने एक भी कलम नहीं है, एक वृक्ष में पचास-पचास कलम लग रही हैं और पचास जाति के फल एक वृक्ष में उगाये जा रहे हैं। तो आचार्य देव कहते हैं-कुंदकुंद के पास तो मात्र स्वयं कुंदकुंद थे, लेकिन तुम्हारे पास तो कुंदकुंद भी हैं, उमास्वामी भी है, समंतभद्र भी है सब की एक-एक कलम भी चुन लो तो कुंदकुंद की तीन हजार कलमें हैं, एक-एक गाथा एक-एक कलम है। और यदि एक कलम भी तुम चुन लेते हो और अपने जीवन से जोड़ लेते हो, आचरण से जोड़ लेते हो, तो तुम्हारे जीवन में विषय कषायों के खट्टे फल नहीं लगेगें। मात्र ज्ञान और वैराग्य के मीठे फल ही लगेंगें।

रागादिया विभावा, बहिरंतर उहयवियप्प मोत्तूणं।
एयग्गमणो झायउ, णिरंजणं णियय-अप्पाणं ।।18।।

अर्थ-

रागादि विभावों को, तथा बाहरी और भीतरी दोनों प्रकार के विकल्पों को छोड़कर एकाग्र चित्त होकर कर्मरूप अंजन से रहित शुद्ध अपने आत्मा का ध्यान करना चाहिए।

जस्स ण कोहो माणो, माया लोहो य सल्ल लेस्साओ।
जाइ जरा मरणं चिय, णिरंजणो सो अहं भणिओ ।।19।।

अर्थ-

जिसके न क्रोध है, न मान है, न माया है, न लोभ है, न शल्य है, न कोई लेश्या है और न जन्म जरा और मरण भी है, वही निरंजन मैं कहा गया हूँ।

माँ-जिनवाणी ! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

भाव-भव का निर्माता है। भाव-आत्मा के ज्ञान पर्याय की परिणति हैं, या तो अशुद्ध रूप होती है या शुद्ध रूप। प्रत्येक जीव भाव सहित है, यद्यपि असाधारण भाव तो जीव के तिरेपन होते हैं। औपशमिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, क्षायिक, पारणामिक भाव यह पाँच भाव जो हैं, जीव को छोड़कर अन्य द्रव्य में नहीं पाये जाते हैं, इसलिये जीव के असाधारण भाव कहे जाते हैं।

भावों में कुछ औदयिक हैं, कुछ पारिणामिक हैं, कुछ औपशमिक भाव हैं जो छोड़ने योग्य हैं और क्षायिक, भाव उपादेय है। आत्मा-ध्यान की उपलब्धि के लिये, साधना के लिये, अंतरंग और बहिरंग भाव जरूरी हैं। अंतरंग भाव से तात्पर्य मन के भावों से है और बहिरंग से तात्पर्य वचन और काय संबंधी विकल्प एवं चेष्टाओं से है।

आचार्य देव कहते हैं-जब तक अंतरंग में शुद्ध भावों का निर्माण नहीं होगा और अशुद्ध भावों का निष्कासन नहीं होगा तब तक, आत्मा-ध्यान किसका करेगी ? क्योंकि भीतर में जैसी वस्तु होगी वैसी ही तो निर्मित होगी।

यदि राग अंदर में उपस्थित है, तो राग सहित ज्ञान आयेगा, द्वेष उपस्थित है तो ज्ञान द्वेषमय होता जायेगा और मोह उपस्थित है तो मोहमय होता जायेगा।

मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान् पदार्थानां, यथा मदन कोद्रवैः ॥7॥ इष्टोपदेश ॥

जो मोह सहित ज्ञान है, वह स्वभाव को नहीं पाता है इसलिये आचार्य प्रवर कहते हैं। रागादि भाव आर्त का परिणमन है, कर्मो का परिणाम है, यह विभाव दशा में आत्मा में उत्पन्न हो रहे हैं, लेकिन आत्मा के हैं नहीं। मैल कपड़े में है, लेकिन कपड़े का नहीं है। कचड़ा घर में है, लेकिन घर का नहीं है। ध्यान देना- भले ही कचड़ा घर में है, लेकिन वह कचड़ा घर का नहीं है इसीलिये तो सुबह से साफ करके निकाल देते हो।

राग-द्वेष भाव आत्मा रूपी चादर में मैल की तरह है, उनको धोने के लिये ज्ञान और वैराग्य यह दोनों अत्यंत आवश्यक हैं। राग कहने से राग ही ग्रहण नहीं करना, चार कषाय, नौ नौकषाय, पंचेन्द्रिय के विषय, और चार संज्ञायें, इतने प्रत्ययों को यहाँ एक साथ ग्रहण कर लेना, यह सब वैभाविक परिणतियाँ हैं। जो अशुद्ध, त्याज्य, छोड़ने योग्य परिणति हैं, वह विभाव हैं और विभाव के विषय में नियम है, कि वह छूटेगा। क्यों ? क्योंकि आत्मा का स्वभाव नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

बाह्य और अंतरंग विकल्पों को छोड़कर शरीर की चेष्टा बहिरंग विकल्प है, वाणी की चेष्टा बहिरंग विकल्प है। मन की चेष्टा अंतरंग विकल्प है। राग-द्वेष विभाव परिणाम, जितने समय तक आत्मा में राग-द्वेष-मोह मय परिणाम रहेगा, उतने समय तक शुद्धात्मा का ध्यान नहीं होगा।

आचार्य देव कहते हैं-शुद्धात्मा तो दूर, शुभोपयोग भी बाधक है, राग-द्वेष-मोह तो शुभ उपयोग में भी बाधक होगा। इसलिये, उन मुनिराज को निहारो, जो मुनिराज जंगल में विराजे हैं। मुनिराज की माँ ने पूँछा-मुनिराज बेटे से, महाराज, मैं बेटी के विवाह के लिये धन लेके जा रही हूँ, आगे कहीं बाधा तो नहीं है? तब भी मुनिराज ने नहीं कहा, कि माँ आगे की राह में चोर हैं। जबकि मुनिराज को ज्ञात था, कि आगे चोर हैं, लेकिन फिर भी मुनिराज की परिणति को निहारिये, जरा सा भी किंचित मोह नहीं, कि यह मेरी माँ है और यह मेरी बहिन है। धन्य है ज्ञानी जीवो ! यह कहलाती है शुभ उपयोग की दशा वैरागी मुनि की। यह कहलाती है वैरागी दशा, धन्य-धन्य है यह परिणति।

आचार्य कुंदकुंद भगवान तो नियमसार में ज्ञान को ही विभाव भाव कह रहे हैं। मति श्रुत, अवधि, मन: पर्यय ज्ञान विभाव हैं। दो प्रकार के ज्ञान होते हैं, एक स्वभाव ज्ञान होता है, दूसरा विभाव ज्ञान होता है। केवलज्ञान स्वभाव ज्ञान है और शेष चार ज्ञान विभाव ज्ञान हैं। यह सम्यक् ज्ञान के दो भेद हैं। और मिथ्या ज्ञान तो विभाव ही होता है, उसकी तो चर्चा ही नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

सम्यक्ज्ञान-के विभाव और स्वभाव दो भेद करने वाले, यदि कोई आचार्यप्रवर हैं तो वह कुंदकुंद भगवान हैं। उन्होंने दो भेद कर दिये, आज हम जिस सम्यक्ज्ञान की आराधना कर रहे हैं यह ज्ञान भी विभाव है, अप्रशस्त राग तो त्याज्य है ही, प्रशस्त राग भी त्याज्य है, मिथ्या ज्ञान तो त्याज्य है ही, सम्यक् ज्ञान भी त्याज्य है। किंतु कब? जब तक केवलज्ञान की उपलब्धि नहीं हो जाती है, तब तक जीव के लिये यही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान उपादेय है। ग्राह्य हैं (ग्रहण करने के योग्य है) ध्यान और आराधना के

योग्य हैं। जिस तरह सम्यक् ज्ञान उपादेय है, उसी तरह से कुछ विभाव परिणाम ऐसे हैं, जो बिल्कुल ही अशुद्ध हैं, कुछ क्षायोपशमिक रूप परिणाम हैं, जो किंचित शुद्ध हैं, किंचित अशुद्ध है। प्रशस्त राग रूप परिणााम, पद के अनुरूप उपादेय है। अपनी पदवी और शक्ति को निहार कर तप का सेवन करना चाहिये।

आपकी पदवी क्या है ? आपकी शक्ति क्या है ? कभी पदवी बड़ी हो सकती है, शक्ति छोटी हो सकती है। और कभी शक्ति बड़ी हो सकती है, पदवी छोटी हो सकती है। एक मुनिराज हैं वह चार उपवास नहीं कर रहे और श्रावक बत्तीस उपवास कर रहा है श्रावक की शक्ति अधिक है, लेकिन पदवी छोटी है। एक की पदवी बड़ी है, शक्ति छोटी है, तो आचार्य कहते हैं-पदवी को भी निहारना और शक्ति को भी निहारना, शक्ति अधिक हो तो पदवी के अनुरुप भी कार्य करना, और पदवी के अनुरुप शक्ति से कार्य करना, दोंनों का तालमेल है।

राग-द्वेष-मोह यह विभाव हैं, सुकौशल की माँ और पुत्र, पुत्र तो स्वभाव में विराजा है, लेकिन माँ विभाव में विराजी है। पुत्र मुनि बन गया, स्वभाव में चला गया, पुत्र को माँ की याद नहीं आ रही है, लेकिन माँ पुत्र की याद में झर-झर आँसू बहा रही है। बोलो ज्ञानी ! स्वभाव कहाँ ले गया पुत्र को? स्वभाव में रहने वाला शुक्ल ध्यान करके सर्वार्थ सिद्धि की ओर चला गया, और विभाव में रहने वाली माँ तिर्यंच गति में सिंहनी बन गयी।

विभाव नीचे की ओर ले जाता है, स्वभाव ऊपर की ओर ले जाता है। अनादि से आज तक मैंने विभाव परिणाम किये हैं अब स्वभाव का अवसर आया है। आत्मा के भाव-जो सदा साथ में रहे, ऐसे भाव, ज्ञान भाव और दर्शन भाव, को स्वभाव भाव कहते हैं। शुद्ध भाव को स्वभाव कहते हैं। अशुद्ध भाव को विभाव कहते हैं। दोंनों भावों को छोड़ना-रागादि अंतरंग भावों को भी छोड़ना और वचन का विकल्प, तन का विकल्प दोनों के विकल्पों को त्याग कर के, एकाग्र मन होकर के ध्यान करना चाहिये।

यत्रैवाहित धी पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते।
यत्रैव जायते श्रद्धा, चित्तः तत्रैव लीयते ॥95॥

जहाँ बुद्धि जाती है, श्रद्धा, आस्था, भक्ति, रूचि वहीं चली जाती है। और जहाँ श्रद्धा चली गयी, चित्त वहीं पर लीन हो गया, मन एकाग्र हो गया, क्योंकि बुद्धि वहीं चली गयी। जो-बुद्धि, कर्म और कर्म के फलों में जा रही थी, वही बुद्धि, जब सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप निज समय में चली जाती है, तो एकाग्र मन हो जाता है, ऐसे निरंजन कर्म, निरपेक्ष परम पारणामिक भाव दशा का अध्ययन करना। मैं क्या

हूँ? यह महत्वपूर्ण नहीं है मुझे क्या होना है? कैसा होना है? यह महत्वपूर्ण है, वर्तमान में भविष्य को निहारना है।

एक किसान कुँआ खोदता है, एक शिल्पी पाषाण में प्रतिमा को निकालता है, वर्तमान में भविष्य को निहारता है। बीज में पौधे को देखता है किसान, वर्तमान में भविष्य को निहारता है वह बीज को बीज ही रूप में नहीं देखना है बीज को वृक्ष रूप भी देखो। पत्थर को पत्थर ही मत मानो, पत्थर को पत्थर मानोगे तो पत्थर की कीमत नहीं कर पाओगे और जिस दिन पत्थर में प्रतिमा का अवलोकन करोगे, तो पत्थर की कीमत बढ़ जाती है। जो पत्थर प्रतिमा बन सकता है, उस पत्थर की भी कीमत होती है वह पत्थर भी मूल्यांकन पाता है, उसी तरह जो आत्मा भगवान बन सकता है, वह भव्यात्मा भी कीमती है।

ज्ञानी जीव ! ध्यान देना- जब तक चंदन मंदिर की शिला पट पर नहीं आता है, तब तक वह चंदन घिसकर के परमात्मा के चरणों में नही चढ़ पाता है, लेकिन सुगंध नहीं बिखेरता है। उसी तरह जब तक यह आत्मा निज स्वभाव में नहीं आता है, तब तक विभाव के घर में रहता है। और विभाव के घर में रहेगा तो, जैसे चंदन का चमार के घर में रहना और चेतना का विकार के घर में रहना, एक समान है। उसी तरह चेतना विकार में है, तो वही दशा है जो चंदन की दशा है। चंदन तो चैत्यालय में होना चाहिये और चेतना को, स्वभाव में होना चाहिये। इसलिये निज सिद्धालय में आओ। जो आठ प्रकार के कर्म हैं, वे अंजन स्वरूप हैं, काजल स्वरूप हैं।

प्रिय आत्मन्!

जैसे बीज पानी को पाकर के जीवंत हो उठते हैं, वैसे ही कर्मो की दशा है। द्रव्य कर्म तो जड़ ही हैं, किंतु जो भाव कर्म हैं, उन भाव कर्मो को कथंचित चेतन कहा है। समयसार में कुंदकुंद भगवान ने सजीव मिथ्यात्व, और अजीव मिथ्यात्व के भेद से दो तरह का कहा है।

जीव क्रोध, अजीव क्रोध, दो-तरह का क्रोध होता है। जीव मान, अजीव मान, दो तरह का मान होता है। जीव माया, अजीव माया, दो तरह की माया होती है। जीव लोभ, अजीव लोभ दो तरह का लोभ होता हैं। भाव मिथ्यात्व-रागादि परिणाम रूप जो अवस्था है वह भाव मिथ्यात्व है। और जो पौद्गलिक कर्मो का संचय है, वह द्रव्य मिथ्यात्व है। द्रव्य मिथ्यात्व को अजीव मिथ्यात्व कहते हैं। द्रव्य आस्रव को अजीव आस्रव कहते हैं। और भाव आस्रव को जीव आस्रव कहते हैं, जो भाव मिथ्यात्व है वह जीव मिथ्यात्व है और जो द्रव्य मिथ्यात्व है, वह अजीव मिथ्यात्व है।

वस्तुत: रागादि परिणाम, जब तक आत्मा संसार दशा में है, तब तक है। लेकिन यह जीव नहीं है। क्योंकि-इनमें ज्ञान दर्शन, चेतना नहीं पायी जाती है, लेकिन यह ज्ञान, दर्शन, चेतना की संगति कर रहे हैं। जीवकृत परिणाम भिन्न हैं, जगत कृत परिणाम भिन्न हैं। जीव कृत परिणाम से तात्पर्य है, जिस परिणमन में जीव का हस्तक्षेप है, हस्ताक्षर है, वह जीवकृत परिणाम है। और जिस वस्तु में सहज परिणमन चल रहा है, आपके पास एक कपड़ा है, उसे आपने बंद करके रख दिया है, आप पन्द्रह साल बाद निकाल लेना। क्या होगा ? परिणमन हो गया, एक भी दिन नहीं पहना, फिर भी पुराना हो गया, उपयोग का नहीं रहा। यह है नैसर्गिक परिणमन। दो तरह का परिणमन होता है, नैसर्गिक परिणमन और प्रायोगिक परिणमन। जो कपड़ा आप पहन रहे हैं और पहनते-पहनते एक ही साल में खराब हो गया है यह प्रायोगिक परिणमन हुआ।

यह शास्त्र जी रखा है, इसकी मर्यादा सौ साल है। सीमेंट का एक मकान बना दिया, आप रहें या न रहें, सौ साल की मर्यादा है उसकी। यह खम्बा खड़ा है, न कोई इसको तोड़ रहा है, न इसको फोड़ रहा है, न जोड़ रहा है, फिर भी परिणमन चल रहा है, यह नैसर्गिक परिणमन है। यह खम्बा काले कलर का है, इसको गोल्डन कलर में करवा दो यह प्रायोगिक परिणमन है।

आपके पास में आटा है, आटा टीन में रखा है, हाथ भी नहीं लगाया लेकिन तुम कहते हो तीन की मर्यादा, पाँच दिन की मर्यादा, सात दिन की मर्यादा क्यों? नैसर्गिक परिणमन चल रहा है, उसमें तुम्हारे हाथ लगाने न लगाने से कुछ नहीं होगा उसमें परिणमन चल रहा है, उसके परिणमन को कोई नहीं रोक सकता। प्रत्येक कण-कण स्वतंत्र है, किसी के परिणमन को कोई नहीं रोक पायेगा, तुम मुझे नहीं रोक पाओगे, मैं तुझे नहीं रोक पाऊँगा। तुम्हारे नैसर्गिक परिणमन को नहीं रोक पाऊँगा, लेकिन प्रायोगिक परिणमन रोकने की क्षमता है।

प्रकृति अनादि-अनिधन है, क्योंकि प्रकृति में नैसर्गिक परिणमन सदा से चला आ रहा है, सदा चलता रहेगा। ज्ञानी जीवो ! जब तक इन दोनों का निर्णय नहीं करोगे तब तक तत्त्व ज्ञान की सिद्धि नहीं होगी। नैसर्गिक परिणमन तो स्वयं ही होता है, लेकिन प्रायोगिक परिणमन प्रयोग से होता है। प्रायोगिक परिणमन औषधि खा ली, जीवन दान मिल गया और विष खा लिया तो मृत्यु दान मिल गया।

ज्ञानी जीवो ! भोजन ले लिया, ऊर्जा मिल गयी। भोजन नहीं लिया, ऊर्जा समाप्त हो गयी। प्रायोगिक परिणमन चल रहा है, हाथ जोड़ना प्रायोगिक परिणमन है। आँख खोलना प्रायोगिक परिणमन है। बोलना, चलना, खाना, पीना, ओढ़ना जितनी भी क्रिया चल रही है वह सब प्रायोगिक परिणमन है।

पाणिनी व्याकरण में जो उन्नीस सौ तैतालीस क्रियायें है वे सब प्रायोगिक क्रियायें हैं। नैसर्गिक क्रिया को दिखाया नहीं जा सकता, बताया नहीं जा सकता, वह तो सहज रूप में चल रही है। असंख्यात गुण हानि, असंख्यात गुण वृद्धि, संख्यात गुण हानि, संख्यात गुण वृद्धि, अनंत गुण हानि, अनंत गुण वृद्धि, षट् गुण हानि वृद्धि रुप जो है यह सब नैसर्गिक है। उसे मैं दिखा नहीं सकता।

जल का परिणमन जल में प्रति समय हो रहा है, सुमेरू पर्वत के नीचे जो सोना पड़ा है, उस सोने में भी परिणमन हो रहा है। ज्ञानी ! जो नोट तूने दबाकर रख दिये हैं तिजोरी में। सोच रहा है कि कोई हाथ न लगाये, हाथ तो नहीं लगायेगा, लेकिन परिणमन चलता रहेगा, यह नैसर्गिक परिणमन है। अर्थ पर्याय का परिणमन है, वह नैसर्गिक परिणमन है। एक समयवर्ती जो परिणाम चल रहा है, वह सूक्ष्म, अदृश्य, वही नैसर्गिक परिणमन है अर्थ पर्याय जो स्थूल परिणमन है, व्यंजन पर्याय है, वह प्रायोगिक परिणमन है।

प्रिय आत्मन्!

आँखे बोलती हैं। लोभ-आँखों से बोलता है। क्रोध-में आँखे लाल हो जाती है। गुस्सा आया आँखे लाल हो गयी, प्रायोगिक परिणमन हुआ, रोका जा सकता है। आचार्य देव कहते हैं-जो रागादिक विभाव परिणाम है, अन्य कोई निमित्त मात्र ही है, लेकिन परिणमन तो तेरा ही है। तू इस परिणमन को रोक, दोंनों विकल्पों को छोड़कर के कर्म रहित अपनी निज शुद्धात्मा का ध्यान कर। तू कर्म सहित है। लेकिन कर्म सहित का ध्यान नहीं करना है।

एक सोना खान में पड़ा है, एक सोना स्वर्णकार तपा रहा है और एक सोने की शुद्ध डली रूप में बन गया है। तीन दशायें हैं, अब जो सोना खान में पड़ा है, या तो हम सब उसे खान के रूप में देखते रहे, तो खान से कभी नहीं निकालोगे। और जिसने खान में पड़े हुये सोने में शुद्ध सोने को देखा है, वही खान में पड़े हुये सोने को निकाल पायेगा। जिसने कभी शुद्ध सोना ही न देखा हो, कि सोना शुद्ध भी होता है, वह क्या खान में पड़े हुये सोने को निकालेगा ?

जैसे गेहूँ में से कंकर-कंकर बीन लेते हैं, उसी तरह आत्मा में जो-जो दोष थे उन-उन दोषों को हटा दिया तो, आत्मा शुद्ध हो गया। तत्त्वानुशासन में नागसेन आचार्य ने कहा है भाव जिन का ध्यान करो, अपने आपको भाव जिन बनाओ, द्रव्यजिन नहीं बन सकते तुम, अरहंत-सिद्ध नहीं बन सकते, लेकिन आत्मा को तो अरहंत-सिद्ध बनाओ, आत्मा का अर्हत्-सिद्ध रूप ध्यान करो। मैं अरिहंत हूँ, मैं सिद्ध हूँ। इस तरह का ध्यान करने से, आत्मा उन परिणामों से युक्त होती है इसलिये कल्याणमंदिर कार कुमुदचंद्र आचार्य कहते हैं। विष को उतारने वाला मांत्रिक-अमृत नहीं लाता है स्वर्ग से, इसी जल को लेता है, एक

लोटे में भरता है, नीम की पत्ती हाथ में लिये है। क्या कर रहा है ? अहं अमृतं सिंचयामि...........। मैं अमृत का सिंचन कर रहा हूँ, जब बार-बार भावनायें देता है, कि अमृत का सिंचन करता हूँ, उन भावनाओं का परिणमन होता है, तो जल भी अमृत का काम करता है।

आचार्य देव कहते हैं-यदि शुद्ध भावनाओं से आत्मा-परमात्मा स्वरुप का ध्यान करता है, तो यही आत्मा एक दिन परमात्मा हो जाता है। जैसे भाव करता है, वैसा परिणमन होता चला जाता है। महावर की एक गोली पानी की एक कटोरी में डाली, तो जल का परिणमन रंगीन होना शुरु हो गया। उसी तरह से आत्मा में जब मैंने राग-द्वेष-मोह रूप परिणाम डाले, तो आत्मा वैसा हो गया। दूसरे जल की कटोरी में केशर डाल दी, तो वह जल पीला होने लगा। उसी तरह जिस आत्मा ने शुद्ध भावों को डाला है, तो उसकी आत्मा शुद्ध होती है। जो अशुद्ध भावों को डालता है उसकी आत्मा अशुद्ध होने लगती है, इसलिये अपने भावों का निर्माण ही आत्मा का निर्माण है।

आपकी आत्मा तो जल की तरह है, कोई रंग नहीं है। लेकिन उस आत्मा में परिणाम कैसे डाले हैं, जल की कटोरी में महावर की गोली, जल की कटोरी में केशर के फुल और जल की कटोरी में कोयले का चूर्ण, जिस रंग का डालोगे, उस रंग का परिणमन हो जायेगा। उसी तरह आत्मा में जैसे भाव डालोगे आत्मा वैसा हो जायेगा।

प्रिय आत्मन्!

अपनी परिणति को हम स्वयं सम्हाल सकते हैं। शुद्धात्मा, सिद्धात्मा के क्रोध है क्या? नहीं है। क्रोध विभाव परिणाम है, स्वभाव परिणाम नहीं है। जो-जो सिद्धों के पास है वह-वह मेरा है। जो-जो मेरा है वह-वह सिद्धों के पास है। जो-जो सिद्धों के पास नहीं वह-वह मेरे पास नहीं और मेरा नहीं। अपने पास देखो जो चीज अपने पास है, क्या वह सिद्धों के पास है ? यदि सिद्धों के पास है, तो वह चीज मेरी है, यदि सिद्धों के पास नहीं है, तो वह चीज मेरी नहीं है। जो-जो वस्तु, जो-जो व्यक्ति, जो-जो परिणाम, जो-जो अभिव्यक्ति, सिद्धों के पास नहीं है वह-वह मेरा स्वभाव नहीं है और जो-जो सिद्धों के पास है, वह-वह मेरा स्वभाव है। सिद्धों का मेरा नहीं, मेरा सिद्धों का नहीं, लेकिन सिद्धों के पास है, वह-वह वैसा-वैसा मेरा स्वभाव है।

यदि तलवार है, तो स्वाभाविक बात है, कि पानी चढ़ा ही होगा, क्योंकि बिना पानी चढ़ाये तलवार तैयार होती ही नहीं है। जो हसिया आपके पास आया है, उसपे पानी चढ़ा-चढ़ा कर आपके पास आया है, बिना पानी चढ़ाये कभी हंसिया बन ही नहीं सकता है। क्योंकि उसको लुहार कूटता है, पानी

डालता है, कूटता है पानी डालता है। उसी तरह से हम लोगों को आचार्यो ने तप से तपाकर के पानी डाल-डालकर के पक्का किया है। कौन सा पानी ? स्याद्वाद का पानी। सम्यक् दृष्टि का जो वचन होता है, वह स्याद्वाद से सहित होता है, जैसे तलवार पर पानी चढ़ा होता है।

जहाँ-जहाँ भा0ज0पा0 की सभा होगी, वहाँ-वहाँ कमल का चिन्ह तो रहेगा ही रहेगा। जहाँ-जहाँ कांग्रेस का नेता खड़ा है, वहाँ-वहाँ स्वाभाविक है, कि पंजा का निशान तो रहेगा ही रहेगा। और जहाँ जैन दर्शन खड़ा है वहाँ स्याद्वाद का चिन्ह तो रहेगा ही रहेगा, स्याद्वाद तो हमारा चिन्ह है। भा0ज0पा0 की सभा हो और कमल का फुल न हो तो? वह सभा ही भा0ज0पा0 की नहीं है। उसी तरह स्याद्वादी जैन दर्शन का प्रचारक जहाँ खड़ा हो, वहाँ स्याद्वाद तो होगा ही होगा क्योंकि स्याद्वाद तो उसका निशान है। स्याद्वाद विजय को प्राप्त हो, इसलिये हम सब यहाँ बैठे हैं। उपदेश भी स्याद्वाद को विजयी बनाने के लिये है।

प्रिय आत्मन्!

आपका समाचार पत्र जो निकलता है, एक दिन के लिये निकलता है, दैनिक जागरण आदि एक दिन के लिये। लेकिन जो यह शब्द निकला है, यह जो शास्त्र निकला है, यह तीर्थंकर वर्धमान स्वामी की दिव्य देशना से निकला है, लोग-कहते हैं समयसार सोनगढ़ का ग्रंथ है, लेकिन मैं कहता हूँ, समयसार सोनगढ़ का ग्रन्थ नही, समयसार समवशरण का ग्रंथ है। समयसार ही क्या? णमोकार भी ज्ञानियो ! समवशरण का मंत्र है। तुम कहते हो लाये हैं तूफान से किश्ती निकालके और हम कहते हैं लाये हैं समयसार को समवशरण से निकालके, यह णमोकार, यह प्रवचनसार, यह तत्त्वसार, यह रत्नकरण्डश्रावकाचार ज्ञानी जीवो ! यह सब समवशरण से लाये हैं। कहाँ से प्रकाशित है ? तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि से प्रकाशित है। स्याद्वाद मुद्रा से मुद्रित है।

यदि अपने बेटे का एक पत्र आ जाये, या कहीं पोता, पोती, नाती, नता या रिश्तेदार का पत्र आ जाये, तो तत्काल पढ़ने बैठ जाते हैं, भोजन बाद में करेंगें, पानी बाद में पीयेंगें और ज्यादा हुआ तो डाकिया को भी, एक लड्डू खिला देंगें। ध्यान से-सुनना जब पत्र आता है, अपने रिश्तेदार का और पत्र में अच्छा समाचार लिखा हो, तो सबसे पहले पढ़ने बैठते हो। आप अपने पिता जी का पत्र, भाई का पत्र, मित्र का पत्र पढ़ने को इतने लालायित हो। अब बताओ ज्ञानियो ! यह जो ग्रंथ है, यह जो समयसार है, तत्त्वसार है इसमें एक-एक पेज एक-एक पत्र है। किसका पत्र आया है? कहाँ से आया है? समवशरण से आया है, तीर्थंकर का पत्र है। अरिहंत भगवान के पत्र हैं। आचार्य कुंदकुंद के लिखित पत्र हैं। समंतभद्र का पत्र आया है।

ज्ञानी जीवो ! जितनी आस्था से अपने परिवार के, मित्रों के, पत्रों को पढ़ा जाता है । उतनी आस्था से यदि आचार्य कुंदकुंद और संमतभद्र के पत्रों को पढ़ा जाये। परिवार के सभी सदस्य पूँछते हैं, कि यह पत्र कहाँ से आया? किसका आया है? और पूरा पत्र इतनी लगन से पढ़ते हैं, कि एक-दूसरे को सुना देते हैं। यदि उतनी आस्था से, उतने विश्वास से, इस ग्रंथ को भी पढ़ो, कि पूरे संसार को सुना सको। जिसको क्रोध, मान, माया, लोभ, शल्य, लेश्या, जनम, बुढ़ापा और मरण भी नहीं है वह मैं निरंजन हूँ। कैसा निरंजन हूँ? न मेरा जनम, न मेरा मरण, न मेरा बुढ़ापा इस तरह के समस्त वैभाविक परिणतियों से जुदा, संपूर्ण लेश्या, कषाय, शल्य, जनम-मरण से जुदा, मैं इन सभी परिणामों से भिन्न निर्विकार निरंजन अशरीरी, उस दशा को निहारो, कि सत्य में वह दशा मेरी है। मैं क्या हूँ ? यह बात अलग है अभी जो पानी कीचड़ युक्त दिखाई दे रहा है, जरा सा धैर्य रखो वही पानी निर्मल हो जायेगा, निर्मली डालकर तो देखो । क्योंकि जिस पानी में कीचड़ है, उसी पानी में जरा सी फिटकरी तो डाल दो, स्वच्छ हो जायेगा। उसी तरह भले ही आत्मा में सब कुछ है, जरा सी शुद्ध भावों की फिटकरी डाल के देखो, सब अशुद्धि दूर हो जायेगी।

णत्थि कलासंठाणं, मग्गण गुणठाण जीवठाणाइ।
ण य लद्धिबंधठाणा, णोदयठाणाइया केई ।।20।।

अर्थ-

उस निरंजन आत्मा के कोई कला नहीं है, कोई संस्थान नही है, कोई मार्गणास्थान नहीं है, कोई गुणस्थान नहीं है, और न कोई जीतस्थान है, न कोई लब्धिस्थान है, न कोई बंध स्थान है, और न कोई उदयस्थान आदि है।

फास रस रूव गंधा, सद्दादीया य जस्स णत्थि पुणो।
सुद्धो चेयणभावो, णिरंजणो सो अहं भणिओ।।21।।

अर्थ-

और जिसके स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द आदिक नहीं है, वह शुद्ध चेतनभाव रूप मैं निरंजन कहा गया हूँ।

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी,

विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

तीर्थंकर वर्द्धमानं मोक्षं गतः पंच विंशति शत वर्ष उपरि जाताः अधुना, तस्य उपदेशः भारतदेशे अति कल्याणकारी अस्ति। वयं सौभाग्यशील पुरूषाः अद्यत्वेऽपि तीर्थंकरवर्द्धमान स्वामिनः या गिरा राजगिरिः विपुलाचले निर्गताः सः प्रवाहरूपेण वयं कर्णयोः अमृतवत् प्रवशति श्रणमः।

भो भव्याः! वयम् मम सौभाग्यः तीर्थकर देशना प्राप्तः वयं सौभाग्य शील पुरूषाः। अद्य तीर्थकर सद् उपदेशात् जीवन धन्यं अभवत्, काल क्रमेण तत्त्वसार ग्रंथ मध्ये अहं अत्र जानामि विंशंति गाथा मध्ये आचार्य वर्य देवसेन अत्र उच्यते, कोहं, को अहं !, कः अहं? अस्य उत्तरम् ददामि, यः निरंजनः सः अहं। कः निरजंनः यः द्रव्यकर्मभावकर्मनोकर्म रहित जन्म जरा मृत्यु रहितः सकल रागद्वेष विभावभाव रहिताः यः लेश्या क्रोध मान माया लोभाः सर्व कषायाः रहितः अशरीरः सः निरंजनः सः अहं अस्मि। शक्ति रूपेण अहमेव निरंजन अभिव्यक्ति रूपेण, सिद्ध शिलायां, यः तिष्ठति सः सिद्ध परमात्माः एव निरंजनः।

प्रिय आत्मन्!

जैन विद्यायां बहबः विद्याः सन्ति, तीर्थंकर देशनायाम् अष्टादश उपरि सप्तशत भाषा, विविधानि भाषा सन्ति, विश्व मध्ये, या या भाषा ता ता भाषा दिव्य ध्वनि काले सन्ति स्म। यद्यपि दिव्य ध्वनि निरक्षरः अस्ति। किन्तु देवातिशय, कृता ध्वनि भव्य जीवानां, उपकारं करोति। तस्य, उपकारस्य, अहं, स्मरामि। सर्व प्रथम कुंदकुंद आचार्य देवं अहं प्रणमामि, तेन अध्यात्म भाषायाम अध्यात्म रस पूरितः श्री रचितः।

समयसार ग्रंथः तस्य ग्रंथ मध्ये, आत्मरस पूरितः स्व संवेदन अनुभूति, रस समन्विता जिनेन्द्र वाणी समाहितास्ति, पंच विशंति शतम् वर्ष प्राक् या देशना अभवत सा देशना अद्यपि समयसार मध्ये, तत्त्वार्थ सूत्र ग्रंथ मध्ये, रत्नकरण्डराकाश्रावकाचार मध्ये, सम्प्रति तत्त्वसार ग्रंथ मध्ये, तथैव देशना अस्ति।

प्रिय आत्मन्!

यः इच्छति सः प्राप्नोति। यस्मिन् मनसि इच्छा अस्ति कः दुर्लभः।

प्रिय आत्मन्!

यत् कार्यम् पाणिनी करोति तत् कार्यम् जटिलं अस्ति। अनंतरम् जैनेन्द्रवृत्ति लिखित्वा आचार्य

वर्य श्री पूज्यपाद: महत्कार्यं, संस्कृत भाषा अल्पं नास्ति। प्राकृत भाषा, संस्कृत भाषा तौ भाषौ जैन दर्शनस्य महत्व पूर्ण भाषौ स्त: । कारणं अहं कर्नाटक प्रदेशे गत:, श्रवणबेलगोलायाम् अहं पश्यामि आदि पुराणं लिपि कन्नड़ास्ति, भाषा संस्कृतमस्ति ।

तस्य लिपि कन्नडम् अस्ति । भाषा संस्कृतम् अस्ति । एतद् किं? अहं विचारयामि, किं कारणं, भाषा संस्कृतं लिपि कर्नाटकम् यथा अशोक शब्दीवा आंग्ल भाषा लिपि, शब्द हिन्दी ! अस्ति । हिन्दी शब्द: अशोक संस्कृत शब्दम् अशोक:, आंग्ल भाषा ीवा यथा वत् जानामि हिन्दी भाषा समये-समये परिवर्तनम् भवति ।

किन्तु प्राकृत भाषा, संस्कृत भाषौ, द्वौ भाषा मध्ये व्याकरणं स्त: व्याकरणं यस्यां भाषायाम् भवति । सा भाषा सदाजीया चिरम् भवति । प्रिय आत्मन् ! एतत् कारणेन, सर्व प्रथम उमा स्वामी आचार्य वर्य: तत्त्वार्थ सूत्रग्रंथ राज: संस्कृत भाषायाम्, प्रथमग्रंथा रचित: एक: तत्त्वार्थ सूत्र ग्रंथ: ।

अहं तम् नमामि । प्रिय आत्मन् ! प्रवचन की ओर चलें, प्रशंसा नहीं प्रवचन से कल्याण होगा । आत्मा का स्वरूप क्या है? आत्मा में न कला है, न संस्थान है, न मार्गणा है, न गुणस्थान है, न जीवस्थान है, न लब्धि स्थान है, न बंध स्थान है, न उदय स्थान है ।

प्रिय आत्मन्!

आत्मा को जानिये, इन हाथों की कलायें, आत्मा की कलायें नहीं हैं । वाणी की कला, आत्मा की कला नहीं है । ज्ञानी ! श्रवण की कला, आत्मा की कला नही है । कितनी भी भाषा सीख लेना, भाषा पुद्गल की है, भाव आत्मा के हैं । आत्मा भाव वाली है, और शरीर भाषा वाला है । भाषा कला, भाषण कला भी आत्म कला नहीं है ।

ध्यान देना-कीमत भाषा की नहीं है, कीमत भावों की है । तीर्थंकर की ध्वनि भाषा में नहीं खिरती है, तीर्थंकर की ध्वनि भावों में खिरती है । तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि किस भाषा में खिरती है? अक्षर ही नहीं है, तो भाषा क्या होगी ? दिव्य ध्वनि भावों में खिरती है, तो सभी भाव वाले अपनी-अपनी भाषा के अनुसार समझ जाते हैं । ज्ञानी ! बादल से गिरी हुई पानी की बूँद केले में जाती है और कपूर बन जाती है । सीप में जाती है, मोती बन जाती है । आम में जाती है, मधुर बन जाती है । गाय पी लेती है, तो दूध बन जाती है । ईख में जाती है, तो मधुर हो जाती है । उसी तरह जैसे वृक्ष पानी की बूँद को अपने-अपने रूप परिणमन करा लेते हैं, उसी तरह तीर्थंकर की भाषा सभी प्राणियों को, अपनी-अपनी भाषा में समझ आ जाती है । और भाषा स्वभाव से गुणों के द्वारा अपने-अपने अनुसार परिणमन कर जाती है । जब पुण्य

का उदय तीव्र होता है, तो सब समझ में आ जाता है और पाप का उदय तीव्र होता है तो समझ में नहीं आता, तत्त्व समझने के लिए, पाप के उदय में भूल जाते हैं। और पुण्य के उदय में अनुकूल हो जाते हैं। प्रश्न भाषा सहित भाव में होते हैं क्योंकि प्रश्न करने वाले भाषावान् हैं ?

हे ज्ञानी ! प्रश्नकर्ता राजा श्रेणिक मतिश्रुतज्ञानी श्रावक हैं, लेकिन उत्तर देने वाले केवलज्ञानी हैं भगवान। श्रुतज्ञान में भाषा होती है, केवलज्ञान में भाषा नहीं होती है इसलिये प्रश्न ! भाषा में होते हैं, उत्तर भावों में होते हैं। ज्ञानी जीवो ! केवलज्ञानी के भावों को हर जीव नहीं समझ सकता, इसलिए भावों को व्यक्त करने का माध्यम भाषा है। तीर्थंकर की ध्वनि भावात्मक होती है लेकिन उन भावों को हर जीव अपनी-अपनी भाषा में समझ जाता है।

ध्यान देना-कभी-कभी माँ के भावों को शिशु समझ सकता है लेकिन बड़े-बड़े व्यक्ति नहीं समझ पाते। प्रिय आत्मन् ! वह दिव्य ध्वनि सात सौ अठारह भाषा में परिणमित हुई। भगवान से पूँछा ''कोहं'' भगवान ने कहा नास्मि कला, नास्ति कला, ''त्वं कला नासि'' तुम कला नहीं हो मैं कला नहीं हूँ।

तुम कल भी नहीं हो। 'कल' (शरीर) की कला होती है। जिसके पास कल होता है, उसके पास कला होती है। और जो निश्कल होता है, सिद्ध भगवान क्या हैं ? निश्कल हैं। कल से रहित हैं। ज्ञानी जीवो ! सिद्ध प्रभु निकल हैं। कल नहीं हैं, तो कला क्या होगी ?

कहो, बाहर की कोई कला नहीं है। लेकिन सबसे महानतम् कला है, तो एक केवलज्ञान की कला है, जिसमें विश्व के सारे पदार्थ झलकते हैं, भाव झलक आते हैं, भाषा की आवश्यकता क्या है? ध्यान देना ज्ञानी, प्रतिमा में सब कुछ लिख दिया शिल्पी ने प्रतिमा में वीतरागता, निर्ग्रंथता, सर्वज्ञता, हितोपदेशता लिखी है। प्रतिमा में कयोत्सर्ग लिखा है। सब कुछ लिखा है। उसको पढ़ने वाले, समझने वाले सब नहीं हैं। यदि भावों से ही, सब कुछ समझा जाता तो, शास्त्रों की आवश्यकता नहीं होती।

जीवों की बुद्धि भिन्न-भिन्न है। ''भिन्ने-भिन्ने मतिर्मुण्डः तुण्डे-तुण्ड पयः'' जितने जीव हैं, उतने प्रकार की बुद्धि है। जितने प्रकार के घट हैं। उनमें उतने प्रकार का पानी भरा है। इसलिए ज्ञानी जीवो, मेरे भाव एक से हैं पर मेरे ही प्रवचन को, सब एकसा समझ रहे हैं क्या? नहीं। ज्ञानी जीव ! भावों को समझना कला है।

भाव विज्ञान कला सबके पास नहीं होती है। एक गाय रास्ते से जा रही है, उसके पीछे एक बछड़ा जा रहा, पीछे-पीछे एक बछड़ा दौड़ के आया, ध्यान से सुनना। गाय उसको अपने सीगों से भगाने लगी। अहो, अब एक बछड़ा दूध पी रहा है। गाय बड़े प्रेम से पिलाती है। और दूसरे बछड़े को सीगों से दूर भगाती है।

बोलो भैया! गाय की यह क्रिया अच्छी है क्या? गाय को ऐसा करना चाहिये क्या? कि एक बछड़ा के सीगों से भगा देना। और दूसरे को दूध पिला देना ! ऐसा करना अच्छा है क्या? बोलो ज्ञानी एक ही, गाय के दोनो बछड़े हैं, ज्ञानी ! अब बोलो क्या, बात है एक को सीगों से भगा रही है और एक को रंभा-रंभा कर बुला रही है। अपना दूध पिला रही है। बोलो ज्ञानी ! ये दृश्य मैंने अपनी आँखों से निहारा है।

ध्यान देना-ज्ञानी अपने पप्पू की माँ से जाकर पूँछ लेना ! कि तुमने कैसा किया। महाराज बोल रहे थे उस माँ ने अच्छा किया। गाय ने अच्छा किया कि-एक बछड़ा को भगा दिया और दूसरे बछड़े को, रँभा-रँभा के बुला लिया। अब बोलो कैसे अच्छा किया तेरे साथ भी ऐसा ही हुआ होगा। तुझे भले ही पता न हो।

सुनो ज्ञानी गाय का जो बड़ा बछड़ा है। वह घास चरने के योग्य हो गया है। वह हरी-हरी घास खा सकता है। लेकिन छोटा बछड़ा है। उसका अभी जन्म ही हुआ है। दूध के सिवा उसका कुछ भोजन ही नहीं है। बताओ, गाय अपने आँचल का दूध उस बेटे को पिलाये जो घास चरने लगा है कि उस बेटे को बचाके रखेगी जिस-बछड़े का दूध ही जीवन है। बोलो ! इस तरह-माँ का भाव बेटे को भगाना नहीं है। माँ का भाव ये है दूध उस बेटे को मिल जाये, जिसका दूध ही जीवन है और तुम दूध इतना पी चुके हो, कि घास खाने के योग्य बन गये हो, घास खाकर तुम्हारा जीवन चल जायेगा। बोलो ! माँ का भाव गलत था कि नहीं ? नहीं। सब समझ पाये क्या? तो भावों को सब नहीं समझ सकते हैं। तो उसे समझाने के लिये, भाषा का प्रयोग करते हैं। न कला अस्ति। आत्मा के पास कोई कला नहीं है।

इन कलाओं से आत्मा का भला नही होना है, व्यापार वाणिज्य ये सव पापार्जन की कला है। इस कला से आत्मा का भला नहीं होना है। संस्थान (आकार) भी आत्मा का नहीं है, आकार शरीर का है। ज्ञानी जीवो ! किसी के आकार को देखकर हँसना मत, हँसी मत उड़ाना, ये आकार भी, एक दिन नहीं रहेगा। नश्वर है। परमात्मा निराकार होता है।

प्रिय आत्मन्!

ये आकार भी सदा नहीं रहेगा-तुम किस गति के जीव हो ? मैं मनुष्य गति का जीव हूँ, ये मनुष्य गति भी सदा नहीं रहेगी। देव गति सदा नहीं रहेगी। ज्ञानी जीवो गति सदा नहीं रहेगी। इंद्रियाँ सदा नहीं रहेगी। ध्यान देना-ज्ञानी जीवो आत्मा, की इंद्रियाँ नहीं है। जिस दिन यह आत्मा आत्म-स्वरूप को प्राप्त हो जोयगी तो वह इंद्रियाँ भी यहीं पड़ी रहती है। इसलिए मैं बारम्बार कहता हूँ।

''सुसर्व सामग्री मोक्षार्थं''

ये इंद्रियाँ मोक्ष के लिए हैं। इनका उपयोग कर लेना अन्यथा ये यहीं पड़ी रहेंगी। ये शरीर भी मात्र, नामकर्म की रचना है। और यह आत्मा इस काया से भी भिन्न है। यदि आत्मा का ही शरीर हो। तो आत्मा कभी शरीर से मुक्त होकर के सिद्ध भगवान नहीं बन पायेगा। इसलिए ध्यान देना-जो-जो सिद्धों के पास है वैसा-वैसा मेरा स्वभाव है।

और जो-जो सिद्धों के पास नहीं, वह-वह मेरा स्वभाव नहीं। सिद्धों के पास इंद्रियाँ, गति, काय, वेद, योग, कषाय क्षायोपशमिक ज्ञान नहीं है। जो ये ज्ञान कला है ये कला सदा नहीं रहेगी। जिस कला से तुम हजारों लोगों के चित्त को रंजायमान कर रहे हो, ये कला भी सदा नहीं रहेगी। क्यों? ये श्रुत ज्ञान भी सदा नहीं रहेगा। ज्ञानी जीव ये क्षायोपशमिक ज्ञान भी नाशवान है। कभी घट जायेगा, कभी बढ़ जायेगा। जब तक ज्ञान की विनय होगी ज्ञान बढ़ता जायेगा। और ज्ञान, ज्ञानी की अविनय हो गई तो घट जायेगा। ध्यान देना-ज्ञानी जीव ! ज्ञान घट जायेगा। गुब्बारे में से हवा निकलने में देरी लग सकती है। लेकिन ज्ञान के घटने में देरी नहीं लग सकती है। ट्यूब में हवा भरने में देरी लग सकती है। लेकिन आत्मा में ज्ञान उत्पन्न होने में देर नहीं लगती है। ध्यान देना-ज्ञानी ! यदि जीव की विशुद्धि पुण्य सत्ता पा जाये तो अंतर्मुहुर्त के अंदर चार ज्ञान हो सकते हैं। गौतम स्वामी को, दीक्षा लेते ही चार ज्ञान हो गये सप्तम गुणस्थान में प्रवेश किया और हो गया ज्ञान। कितनी देरी लगी। ज्ञान पुस्तकों से नहीं आता है विशुद्ध परिणामों से आता है।

सम्यग्ज्ञान सातिशय पुण्य से आता है। इसलिए ''चर्या के निर्मल स्रोतों से संज्ञान के निर्झर फुट पड़े'' चर्या के निर्मल स्रोत जहाँ रहते हैं वहाँ संज्ञान के निर्झर स्वयं फुट पड़ते हैं। चर्या से ज्ञान प्रकट होता है।

श्रुतज्ञान और अधिक विशुद्धि से प्रकट होता है। मन:पर्यय ज्ञान के लिए और अत्याधिक विशुद्धि चाहिए। क्योंकि, मुनि के ही प्रकट होता है। जैसी विशुद्धि होगी वैसा ज्ञान प्रकट होगा। इसलिए मैं साधुओं से कहता हूँ। सामायिक अच्छे से करो। क्योंकि ज्ञान पुस्तक के ही पढ़ने से नही आयेगा। ज्ञान जितनी अच्छी सामायिक होगी उतना अच्छा चिंतन होगा।

जितनी अच्छी चर्या होगी। उतना उत्कृष्टतम ज्ञान होगा। वह ज्ञानकल्याण के अवसर पर काम आयेगा। ध्यान देना-एक ज्ञान होता अर्थ अर्जन के लिए। कुछ ज्ञान होता है पापार्जन के लिए। कुछ ज्ञान होता यश अर्जन के लिए। और कुछ ज्ञान होता है कर्म निर्जरा के लिए। प्रिय आत्मन् ! हमारे यहाँ जो स्वाध्याय है-वह कर्म निर्जरा के लिए है। कर्म क्षय के लिए है। जो कर्म क्षय संबंधी, ज्ञान प्रकट होता है।

वह चारित्र से प्रकट होता है। इसलिए ज्ञान भले ही थोड़ा हो, लेकिन चारित्र से सहित होगा, तो नियम से अवसर पर काम आयेगा।

प्रिय आत्मन्!

मार्गणा स्थान-मार्गणा किसे कहते हैं? जिसमें जीवों की खोज की जाती है उसे मार्गणा कहते हैं। मार्गणा कितनी होती हैं। चौदह होती हैं। कौन-कौन सी होती हैं ?

गइ इंदिय च काये, जोये वैदे कसाय णाणे य।
संजम दंसण लेस्सा, भविया सम्मत्त सण्णि आहारे।।

गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहारक।

ये चौदह मार्गणायें हैं इन चौदह मार्गणाओ में। क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, तो सिद्धों के हैं। लेकिन अन्य विशेषताऐं जो संसारी जीवों के पास पाई जाती हैं। वे उन के पास नहीं है।

सिद्ध भगवान के गुणस्थान नहीं होता है। गुणस्थान किसे कहते हैं ? मोह और योग के निमित्त से होने वाले आत्मा के परिणाम को गुणस्थान कहते हैं। मोह और योग से गुणस्थान बनता है। सिद्धों के गुणस्थान नहीं है। श्रावक के चौथा, पंचम गुणस्थान है। मुनि की छठवें से लेकर चौदहवें गुणस्थान की यात्रा होती है। प्रिय आत्मन् ! अरिहंत भगवान का तेरहवाँ, चौदहवाँ, गुणस्थान होता है। सिद्धों के कोई, गुणस्थान नहीं पाया जाता है। गुण सब होते हैं, गुणस्थान एक भी नहीं होता है। गुण अनंत होते हैं, गुणस्थान एक भी नहीं होता है। क्योंकि गुणस्थान मोह और योग की परिणति है। जहाँ मोह और योग भी नहीं रहा। तो गुणस्थान भी नहीं रहा।

प्रिय आत्मन्!

इसी लिए मैं कहता हूँ स्थान नहीं, गुणस्थान बदलो। ज्ञानी ! स्थान बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यदि गुणस्थान बदल लेगा तो। स्थानान्तरण होता है, पंचम, से षष्ठम् में पहुँचो। ज्ञानी ! महाराज आप दे दो गुणस्थान। ज्ञानी जीवों ! ध्यान देना-गुरुदेव मूलगुण दे सकते हैं, गुण स्थान नहीं।

महाराज गुणस्थान नहीं दे सकते हैं। दीक्षा होगी तो मिल जायेगा। ज्ञानी ! गारंटी नही है, कि दीक्षा होने से मूलगुण मिलते हैं। गुणस्थान तो अपनी परिणति से बनता है। यदि दीक्षा लेने से गुणस्थान बदलता, तो अभव्य जीवों का भी बदल जाना चाहिए। नहीं बदलता। लेकिन दीक्षा निमित्त है।

बिना दीक्षा के गुणस्थान नहीं बदलेगा। लेकिन दीक्षा होने पर बदल जायें, इसकी कोई गारंटी नहीं है। प्रिय आत्मन्! गुणस्थान भी जीव का स्वभाव नहीं है। जीव स्थान (जीव समास) जीवों के स्थान को जीव समास कहते हैं। जीव समास उन्नीस होते हैं। अथवा चौदह होते हैं। पृथ्वी कायिक, जल कायिक, अग्नि कायिक, वायु कायिक, नित्य निगोद, इतर निगोद ये छह, इनके सूक्ष्म और बादर दो-दो भेद होने से बारह हो गये।

सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित इस तरह एक इंद्रिय के चौदह, दो इंद्रिय का एक बादर, तीन इंद्रिय का एक। चार इंद्रिय एक असंज्ञी पंचेन्द्रिय का एक संज्ञी पंचेन्द्रिय का एक। इस तरह उन्नीस जीव समास होते हैं। ये सब किसके हैं ? जीव के। संसारी जीव के हैं। मुक्त जीव के कोई जीव समास नहीं है। मुक्त जीव के कोई जीव स्थान नहीं है। मुक्त जीव के कोई गुणस्थान नहीं है।

ज्ञानी ! वे मुक्त जीव गुणस्थानातीत हैं, लब्धि स्थान भी नहीं है। बंध स्थान नहीं है। आप सभी यहाँ बैठे हुए प्रति समय सात कर्म का बंध कर रहे हो। जितने समय प्रवचन सुन रहे हो, या कोई भी क्रिया कर रहे हो। प्रत्येक क्रिया में, सात कर्म का बंध तो होता ही होता है। अच्छे भाव रखोगे तो शुभ बंध होगा। बुरे भाव रखोगे तो अशुभ बंध होगा। लेकिन बंध नियम से होगा, शुद्ध भाव हो जाये तो संवर हो जाये।

शुद्ध भाव होंगे तो, फिर बंध की प्रक्रिया बंद होगी। प्रिय आत्मन्! सिद्धों के न शुभ भाव हैं, न अशुभ भाव हैं। क्या हैं? शुद्ध भाव भी नहीं है। क्योंकि-अब भाव ही नहीं बनाना उनको। कर्ता पना नहीं रहा। सिद्धों के कोई कर्म का उदय नहीं आता। कर्म ही नहीं है। तो उदय क्या आयेगा। बोलो ज्ञानी! कुये में पानी न हो तो मशीन से क्या निकालोगे ?

जब सत्ता में ही कर्म नहीं है, तो उदय में क्या आयेगा ? सिद्धों के न उदय स्थान है न बंध स्थान हैं। और न औदयिक भाव है। और कर्म के उदय की प्रक्रिया भी नहीं है। तो वह इन सभी से रहित हैं। इस तरह जिनेन्द्र देव की यह विशेषता है। जिनेन्द्र भगवान इन सब कर्मो से परे हैं। और क्या नहीं हैं-

''फास रस रूव गंधा सद्दादीया य जस्स णत्थि पुणो''

''णिरंजणो सो अहं'' और मैं क्या हूँ ? गति, मार्गणा, गुणस्थान, जीव समास मैं नहीं हूँ। और क्या-क्या नहीं है, आत्मा में? आप कहते हैं, घर में कूलर नहीं है, फ्रिज नहीं है, घर की सामग्री का लेखा जोखा बताते हो, एक बार आत्मा की सामग्री का लेखा-जोखा बताओ, कि आत्मा में क्या-क्या नहीं है?

जो-जो तुम्हारे घर में दिख रहा है, वह-वह आत्मा में नहीं है। जो-जो शरीर में दिख रहा है, वह-वह आत्मा में नहीं है। प्रिय आत्मन् ! आत्मा को छू नहीं सकते। क्योंकि आत्मा में स्पर्श गुण नहीं है। महाराज हम चरण, छू लें आप, पूछते हो-हम चरण छू लें। लेकिन पुद्गल तन के ही चरण छू पाओगे, आत्मा में स्पर्श होता ही नहीं है, तो चेतना को स्पर्श कैसे कर पाओगे। चेतना में कोई रस नहीं है। श्यालनी सुकुमाल के तन को भक्षण कर रही है। लेकिन वह जानते हैं कि इस आत्मा में रस नहीं है। हे श्यालनी ! तू पुद्गल रस का भक्षण कर पायेगी, मेरे निज रस का तो भक्षण नहीं कर पायेगी। निजरस, ज्ञानरस है। और मेरे ज्ञानरस का भक्षण, अन्य कोई मेरे सिवा कर नहीं सकता है। श्यालनी पुद्गल के रक्तरस का भक्षण कर रही है। और सुकुमाल निजानुभूतिरस का भक्षण कर रहे हैं। ध्यान देना-ज्ञानी जीवो ! एक बात ध्यान में रख लेना।

''तिमिर हरा जह दिट्ठी'' ॥ प्रवचन सार ॥

यदि दृष्टि ही अंधकार को हर रही है। तो दीपक की आवश्यकता क्या है? यदि आँखें ही अंधकार का निवारण कर रही हों तो दीपक की आवश्यकता नहीं पड़ती है। उसी तरह जिसे आत्मा का सुख मिल रहा हो, उसे शरीर के सुख की आवश्यकता नहीं पड़ती है। उसी तरह आत्मा का सुख मिल रहा हो। तो पुद्गल सुख की आवश्यकता क्या है ? विषयसुख की आवश्यकता क्या है ? प्रिय आत्मन् ! ये रस आत्मा का नहीं है। रूप आत्मा का नहीं है। कोई कितना भी सुंदर हो। और कोई कितना भी कुरूप हो। ध्यान रख लेना ! ये तुम्हारा रूप नहीं है। ये मेरा रूप नहीं है। क्योंकि रूप भी आत्मा का नहीं है। आत्मा का स्वरूप होता है, आत्मा का रूप नहीं होता है। लेकिन हम रूप, रूपया, रूपसी, इन तीन में-व्यक्ति स्वरूप को कैसे निहारे? कोई रूप में डूबा है। कोई रूपये में डूबा है। कोई रूपसी में डूबा है। जब ये तीन में डूबे होंगें। तो अरूप को और स्वरूप को कैसे निहारोगे।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य कहते हैं-रूप को नहीं अरूप को निहारो। हे ब्रह्मगुलाल बहुरूपिया ! तू कितने रूप बना लेता है ? स्वामी ! में जितने चाहे रूप बना सकता हूँ। क्या तू शेर का रूप बना लेगा ? हाँ, मैं शेर का भी रूप बना लूँगा। पर मेरे लिए एक अपराध माफ होना चाहिए। ज्ञानी जीव ! उसने शेर का भी रूप बना लिया और शेर का रूप देखकर, राजकुमार के व्यंग्य करने पर, शेरोचित व्यवहार स्वरूप एक ही पंजे से उसने राजकुमार का प्राणांत कर दिया। राजा सोचता है, मेरा बेटा तो नहीं रहा। कहानी आपको पता है। हे ब्रह्मगुलाल ! तू एक रूप और बनाके बतादे। जो आज्ञा स्वामी कहिये ? एक बार तू जिन रूप बना के बता

दे? स्वामी मुझे छह महीने का समय चाहिए। हे ब्रह्मगुलाल ! तूने शेर बनने के लिए एक दिन का समय नहीं माँगा, तूने स्त्री बनने के लिए समय नहीं माँगा, आज तू मुनि रूप धारण करने के लिए छह महीने का समय माँग रहा है ? महाराज ! अभी तक जितने रूप धारण किये हैं वे रूप मैंने भव-भव में धारण किये थे, सो बहुत आसान थे। लेकिन अब जो जिनरूप है। उसे किसी भव में धारण नही किया है। एक बात और है स्वामी ! जो आज तक रूप धारण किये हैं, वे रूप बदलकर दूसरे रूप पा लेते हैं, लेकिन एक बार मुनि रूप में आने के बाद फिर कभी रूप बदलता नहीं है। इसलिए, मैं छह माह का समय चाहता हूँ। जब तक मैं मुनि स्वरूप का पालन नहीं करूगाँ, तब तक मुनि रूप में नहीं आ पाऊँगा। और मुनि रूप में आने के बाद निज स्वरूप को पाऊँगा। और निज स्वरूप में जाने के बाद किसी रूप में नही जाऊँगा। एक बहुरूपिया एक दिन में एक हजार रूप बना लेता है। प्रिय आत्मन् ! मैं यह कहना चाहता हूँ कि, स्वरूप पाने के लिये रूप बदले जाते हैं। पर स्वरूप को पाने के बाद फिर रूप नहीं बदलता है।

ज्ञानी जीव !

तुम कूप देखते हो, हम जल देखते हैं।
तुम वृक्ष देखते हो, हम फल देखते हैं।
तुममें और हममें अंतर इतना ही है भाईयो।
तुम रूप देखते हो, हम दिल देखते है।

आत्मा का स्वभाव अरूप है और रूप पुद्गल का है, रूप बदल जायेगा। ओहो ! लक्ष्मीमति का सुंदर रूप पल भर में बदल गया। सनत कुमार चक्रवर्ती का रूप जिनके रूप को निहारने के लिए, स्वर्ग के देवता आया करते थे। और वह चक्रवर्ती भी एक दिन कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गया।

ये रूप मेरा नहीं है। सदा नहीं रहेगा। ध्यान देना-जितनी बार दर्पण में निहारोगे उतनी सुंदरता घटती-घटती जायेगी। ध्यान देना-दोपहर का सूरज ढलता-ढलता जाता है। यौवन के साथ बुढ़ापा आता जाता है। बुढ़ापा एक दिन में नही आता। और सूरज एक क्षण में नही ढलता। क्षण-क्षण सूरज ढलता है। और क्षण-क्षण बुढ़ापा आता है।

पुद्गल की पर्याय है। रूप पर्याय बदलती है। इसीलिए में कहता हूँ। पर्याय बदलने के पहले परिणाम बदल लेना। माताओ ध्यान देना-इस पर्याय में स्त्री पर्याय नहीं बदल सकती। लेकिन इस पर्याय में परिणाम तो बदल सकती हो। माताओ, आप कहती हो, महाराज, हम तो स्त्री हैं। हम क्या करें ? माताओ आपकी स्त्री पर्याय है। लेकिन स्त्री पर्याय में परिणाम तो बदल सकती हो। ये पर्याय पुरूष की है, लेकिन पर्याय नहीं बदल सकते हो, लेकिन परिणाम तो परमात्मा के भी लाये जा सकते हैं।

ध्यान देना-कोई साँवला है, कोई ठिगना है, कोई गोरा है, कोई काला है। पर्याय को बदलने की चेष्टा मत करना। कभी-कभी पर्याय को बदलते हैं। ओहो ज्ञानी इस जन्म में नहीं अगले जन्म में मिलेंगे। क्या मिलेगा ज्ञानी, परिणाम नहीं बदले तो क्या मिलेगा। ध्यान देना-मैं तो इतना ही कह सकता हूँ। कि तुम इस जन्म में मिले हो, तो अगले जन्म में कभी मिलूँ तो समवशरण में ही मिलूँ। कही मिलूँ तो सिद्धालय में ही मिलूँ।

मेरे मिलने के दो ही ठिकाने बनें। आप मुझे मिलें तो कहाँ मिलें ? मेरा स्थाई पता सिद्धालय है। अभी तो मैं सफर में हूँ। इस सफर का क्या पता दें ? रेल के डिब्बे में बैठे है। दूसरी रेल में बैठ जायेंगे डिब्बा बदल जायेगा। रेल बदल जायेगी। लेकिन जो मेरा स्थाई पता है। वह है सिद्धालय। और मैं सिद्धालय में मिलूगाँ वहाँ कौन है तुम्हारा ? कौन है मेरा ? ज्ञानी ! वहीं मेरे सब हैं। यहाँ तो मेरा कोई है ही नहीं, मेरी समान जाति के लोग वे सब वही हैं, यहाँ तो असमान जाति के हैं।

समान जाति-जहाँ सबमें एक समान गुण हैं। अनंत गुण, केवल ज्ञान, केवल दर्शन, अनंत शक्ति, और आठों गुण जिनमें एक समान हैं। ऐसे एक समान जाति के जीव जहाँ एक साथ रहते हैं। ऐसे सिद्धालय में हम सभी का वास हो। वह है अपना स्थाई पता, लेकिन स्थाई, पता पर आप नहीं पहुँचे, हम भी कहाँ पहुँचे ? चलते चलो, मिलेगी मंजिल। लक्ष्य बना लिया है, लक्षण प्रकट होने लगे हैं। बीज को मिट्टी में दबा दिया है। बीज उगेगा उगेगा ! धैर्य रखो।

गंध आत्मा में नहीं होती है, ज्ञानी जीवो नाक जिसको सूँघ रही है, वह गंध भी अचेतन, जो नाक सूँघ रही है वह भी अचेतन है।

आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने समयसार में लिखा है-गंध ने कब कहा, तू मुझे सूँघने आ। बोलो ! स्पर्श ने कब कहा, तू मुझे छूने आ। रसना ने कब कहा तू मुझे स्वाद लेने आ। मैं ही स्वाद लेने पहुँच जाता हूँ।

न रूप कहता है, कि देखने को आ। बोलो ! आज तक किसी रूप ने कहा, कि तू मुझे देखने आ। ये मकान किसका है ? तू कहले, कि मेरा है। मैं अभी मकान से पूँछता हूँ, कि तू किसका है ? मकान नहीं कहेगा, कि-मैं इसका हूँ ! ज्ञानी जीवो ! शब्द भी आत्मा के नहीं है। कितनी भी प्रशंसा कर लेना पुद्गल के शब्द हैं। ये शब्द के दिवाने लोग, कब पीछे हट जायेंगे, इनका कोई पता नही है। इन पर कभी विश्वास मत करना। ध्यान देना-गुणों को चाहने वाले भिन्न होते हैं। और शब्दों को चाहने वाले भिन्न होते हैं। मात्र जिनको शब्दों से प्रेम है। मात्र जो पुद्गल के शब्दों का रस लेना चाहते हैं। वे जीव कब पीछे

हट जायेंगे। ज्ञानियो ! कवि का समय, कुछ समय ही रहता है। प्रिय आत्मन् ! जब मैं वाणी सम्राट, क्षमा सागर को देखता हूँ। तो यथार्थ बोध होता है।

जब इसी ललितपुर की धरती पर क्षमासागर बैठते थे, तो यही स्थान छोटा पड़ जाता था। तब अगर सबके आँसुओं को इकट्ठा किया जाये, तो बाल्टी भर जाती। लेकिन अब कौन है उनके लिए आँसू बहाने बाला ?

इसीलिए ज्ञानी जीवो ! जितने पुण्य परमाणु है, उनका निरन्तर उपयोग कर लो। ये वाणी कल रहेगी, या नहीं रहेगी। भज ले जिन नाम अरे रसना फिर अंत समय में हिली न हिली।

प्रिय आत्मन्!

प्रकाश-पुद्गल की पर्याय है। अंधकार-पुद्गल की पर्याय है। उसी तरह शब्द भी पुद्गल की पर्याय है। मैं शुद्ध चैतन्य भाव हूँ। और मैं निरंजन हूँ। उस शुद्ध चैतन्य भाव को निहारो, जहाँ न शब्द, रस, गंध, रूप न वर्ण हैं। अपने आपको निहारो, एक बार, कि मैं रूप, रस, गंध, शब्द रहित हूँ। न मैं देखता हूँ। न मैं सुनता हूँ। ये देखने का काम मेरा नहीं है। ये सुनने का काम मेरा नहीं है। इन सब से परे एक मात्र निज को निहारो। निज को देखो, बाहर की इंद्रियों को बंद करके शुद्ध निरंजन भाव जो मैं हूँ, वह मैं कब बन जाऊँ ? अपनी ही शुद्ध दशा को कैसे, कब, प्राप्त करलूँ ? हे ईश्वर ! मुझे किसी का कुछ न मिले। मात्र मेरा भगवान मुझे मिले।

(तृतीय पर्व)

अत्थि त्ति पुणो भणिया, णएण ववहारिएण ए सव्वे।
णोकम्म-कम्मणादी, पज्जाया विविहभेयगया॥22॥

अर्थ-

पुन: व्यवहारिक नय से अनेक भेद-गत ये सर्व नोकर्म और कर्म-जनित पर्याय जीव के हैं। ऐसा कहा गया है।

प्रिय आत्मन् !

माँ-जिनवाणी ! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-

उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

श्रुत विकल्पो नयः। ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः।।

ज्ञाता के अभिप्राय अथवा वक्ता के अभिप्राय को नय कहते हैं, अथवा ''श्रुत विकल्पो नयः'' श्रुत के विकल्प को, नय कहते हैं। अथवा वस्तु के एक देश ग्राही अंश को, नय कहते हैं। यह नय, श्रुत का विकल्प है। श्रुत भगवान की देशना का भाग है। यदि जिनेन्द्र की देशना सत्य है, तो नय भी सत्य है। क्योंकि तीर्थंकर की देशना असत्य नहीं है, इसलिए चाहे व्यवहार नय हो, वह भी सत्य है। और चाहे निश्चय नय हो, वह भी सत्य है। बोलो ज्ञानी ! कौन सा नय सत्य है ? कौन सा नय असत्य है ? ध्यान देना-एक्सरे की फोटो, एक्सरे की फोटो है, कैमरे की फोटो, कैमरे की फोटो है। जहाँ एक्सरे की आवश्यकता है, वहाँ एक्सरे की फोटो सत्य है। और जहाँ कैमरे की फोटो की आवश्यकता है, वहाँ कैमरे की फोटो सत्य है। व्यवहार-व्यवहार की दृष्टि से सत्य है। निश्चय-निश्चय की दृष्टि से सत्य है। प्रश्न-क्या दोनों समान है ? समान नहीं हैं, लेकिन सत्य हैं। ध्यान-देना, समान होना भिन्न है और सत्य होना भिन्न है। ज्ञान और दर्शन दोंनों समान नहीं है, पर दोनों सत्य हैं। महावीर, और पारसनाथ समान नहीं हैं, पर दोनों सत्य हैं। प्रिय चैतन्य आत्माओ ! व्यवहार-व्यवहार की दृष्टि से सत्य है, निश्चय निश्चय की अपेक्षा सत्य है। पर व्यवहार निश्चय की अपेक्षा असत्य है, और निश्चय व्यवहार की अपेक्षा असत्य है।

ध्यान-देना, घी-घी की जगह सत्य है। तेल-तेल की जगह सत्य है। घी तेल की अपेक्षा असत्य है और तेल घी की अपेक्षा असत्य है। ज्ञानी ! आँख सत्य है, लेकिन एक आँख दूसरी आँख के समान नहीं है, पर सत्य है। यदि समान होती, तो एक को दाईं न कहते, दूसरी को बाईं न कहते। और समान होती तो, दोनों में अलग-अलग नम्बर के चश्में नहीं लगते, लेकिन आँख सत्य है। लेकिन बाईं आँख की अपेक्षा, बाईं आँख सत्य है। और दाईं आँख की अपेक्षा, दाईं आँख सत्य है। दाई आँख चेक की और नम्बर बना दिया बाई का तो, चश्मा बेकार। और बाईं आँख चेक की, और चश्मा बना दिया दाईं का, तो चश्मा बेकार। अगर दाईं आँख चेक की, और चश्मा दाईं का बनाया, चश्मा सत्य है। ज्ञानी ! यही तत्त्व बोध जागता है, कि व्यवहार-व्यवहार की अपेक्षा सत्य है। भैया बोलो ! तुम कौन हो ? मनुष्य हैं। पुरूष हो कि स्त्री हो ?। यह जो कथन है, वह व्यवहार की अपेक्षा, पर्याय की अपेक्षा सत्य है।

क्योंकि द्रव्य दृष्टि से द्रव्य सत्य है। पर्याय दृष्टि से, पर्याय भी सत्य है। यदि पर्याय को असत्य ठहरा देगें, तो कथन किसका करेंगे ? ज्ञानी ! एक पर्यायार्थिक नय होता है, एक द्रव्यार्थिक नय होता है। जब द्रव्यार्थिक की विवेचना चलेगी, तो द्रव्य का कथन होगा, द्रव्य पर दृष्टि जायेगी, तब द्रव्यार्थिक सत्य है। और जब पर्यायार्थिक पर जायेगी, तो पर्याय सत्य है। द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है वह द्रव्यार्थिक नय है। पर्याय जिसका प्रयोजन है, वह पर्यायार्थिक नय है। जो स्वयं के आश्रित है, शुद्ध द्रव्य के आश्रित है, वह निश्चय नय है। जो पर के आश्रित है पर्याय के आश्रित है, वह व्यवहार नय है। ''स्वाश्रितो निश्चय: पराश्रितो व्यवहार:'' जो स्वाश्रित है वह निश्चय नय है, और जो पराश्रित है, वह व्यवहार नय है। दोंनों समान नही हैं। क्या फल और फुल दोनों समान हो सकते हैं ? फल फल है फुल-फुल है।

फुल-फल नहीं है, फल-फुल नहीं है। फल-फल है, फुल-फुल है। फुल सत्य है कि असत्य है ? फल सत्य है, कि असत्य है ? फुल भी सत्य है और फल भी सत्य है और फुल भी असत्य है, और फल भी असत्य है। यदि में हाथ में फल ले लू और कहूँ कि ये गुलाब का फुल है, तो क्या कहोगे ? असत्य है। और हाथ में फुल ले लूँ और कहूँ कि फल है, तो असत्य है। तो सुनो ज्ञानियो ! फल के कथन की अपेक्षा फल सत्य है। और फुल की अपेक्षा फुल सत्य है। ध्यान देना-द्रव्य दोंनों हैं। जिस वृक्ष में फुल हैं, उसी पेड़ में फल भी हैं, (अनार के पेड़ में)। आपका प्रश्न है, कि पहले व्यवहार होता है, कि निश्चय होता है ? तो बोलो ! वृक्ष में पहले फुल आता है कि फल आता है, पहले फुल आता है ? बाद में फल आता है, ऐसा भी होता है।

क्या कि फुल न आये और फल आ जाये? नही होता।
व्यवहार और निश्चय दोनों, ये साधन साध्य कहाते हैं।
ज्यों तरू में पहले फुल खिलें, पीछे निश्चय फल आते हैं॥
यह दिव्य देशना जिनवर की, सर्वोदय मंगलकारी है।
जो इस पथ का अनुयायी है, वह श्रेयस पथ अधिकारी है॥

प्रिय आत्मन् ! पहले साधन होता है, फिर साध्य होता है। माताओ ! रोटी से आटा बनता है, कि आटे से रोटी बनती है। आटा में निमित्त हुआ बाद में रोटी बनना कार्य शुरू हुआ।

आटा साधन हुआ, और रोटी बनना साध्य हुआ। ध्यान देना-आटा ही रोटी बना है, कारण ही कार्य रूप हो जाता है। जैसा कारण होगा, वैसा कार्य हो जायेगा। ''**कारणानुसारी कार्य:**'' ध्यान देना-निमित्त कारण हजार होते हैं, लाख होते हैं। लेकिन, अंतरंग उपादान, अंतरंग कारण एक होता है।

कारण की अपेक्षा चर्चा कर रहा हूँ, जैसा अंतरंग कारण होगा वैसा कार्य होगा। ध्यान देना ज्ञानी! चकला पर रोटी बनती है, बेलन से रोटी बनाई जा रही है, तबे पर रोटी सिक रही है, तबा रोटी नहीं बना, बेलन रोटी नहीं बना, चकला (उरसा) रोटी नहीं बना, आटा ही रोटी बना। क्योंकि आटे में ही वह उपादान कारण है, जिससे रोटी बन सके।

ध्यान देना ! जिस खेत में बीज हैं, उसी खेत में कंकर भी हैं। लेकिन कंकर नहीं उगते हैं, बीज ही उगा करते हैं, उसी तरह भव्य जीव में, सिद्ध बनने की उपादान शक्ति है। वह उपादान शक्ति, भव्य जीव में अभिव्यक्ति रूप में प्रकट कराती है। शक्ति तो सब के पास है। ज्ञानी ! लेकिन योग्यता, भव्य के पास है। शक्ति तो अभव्य के पास भी है, केवलज्ञान की, लेकिन योग्यता, भव्य के पास ही है। योग्यता और शक्ति में अंतर है। शक्ति होना अलग बात है, योग्यता होना अलग बात है। ध्यान देना-व्यवहार नय से जीव के अनेक भेद होते हैं। ''संसारिणो मुक्ताश्च'' जीव के दो भेद हैं, संसारी जीव और मुक्त जीव। ''संसारिणस्त्रसस्थावर'' संसारी जीव के दो, भेद-त्रस और स्थावर। ''द्वीन्द्रियादयस्त्रसा:'' दो इंद्रिय तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, पंचेन्द्रिय त्रस जीव के भेद हैं। ''पृथिव्यप्तेजोवायु-वनस्पतय: स्थावरा:'' पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायु कायिक, वनस्पतिकायिक, यह पाँच स्थावर के भेद हैं। यह सब व्यवहार है। भेद करके कथन करना व्यवहार है।

दीपक है। दीपक को भेद कर देंगें। तो लौं, घी, बत्ती, तीन भेद हो गये, व्यवहार हो गया। सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक् चारित्र, व्यवहार हो गया। भेद कर देना व्यवहार है। और अभेद नय से हम सब जीव कहे गये हैं। संसारी जीव संसार में से हम त्रस जीव हैं। त्रस में-पंचेन्द्रिय जीव हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं।

व्यवहार नय की अपेक्षा हम संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं, और निश्चय की अपेक्षा मात्र जीव हैं। हम मनुष्य हैं, तो ये मनुष्य क्या है? आयु कर्म का उदय, गति कर्म का उदय, इन दोंनों के कारण आप मनुष्य हैं। ये गति क्या है ? गति एक कर्म है। ये शरीर क्या है ? नोकर्म है। कर्म और नोकर्म की अपेक्षा जीव होता हैं। यदि हम व्यवहार को न मानें, तो आचार्य जयसेन स्वामी, समयसार की टीका में लिखते हैं। जो जीव व्यवहार को स्वीकार नहीं करेगा, वह नि:शंक होकर के ''त्रस स्थावर जीवानाम् पादेन कूर्दते'' त्रसस्थावर जीवों को वह पैरों से कुचलेगा। और जो व्यवहार को स्वीकार करेगा। वह त्रस जीवों का घात ही नहीं करेगा। ज्ञानी जीवो ! यह व्यवहार नय की कृपा है, कि तुम मुझे देख रहो हो। निश्चय नय में संसार नहीं है। निश्चय नय में कोई मनुष्य दिखाई नहीं देता, निश्चय नय में कोई जानवर भी दिखाई नहीं देगा। व्यवहार नय ही धर्म की रक्षा का कवच है। व्यवहार धर्म से ही तीर्थ की प्रवृत्ति होती है। **''जीवति,**

जीविष्यति, अजीवत् स: जीव। जो जीता था जीता है, और जीवेगा। सो जीव है।

जो है, सो है। जीव था, जीव है, जीव रहेगा। दोनो नयों को समझके चलना, एक महाभारत तब हुआ था। मात्र जीव को व्यवहार नय से नहीं पहिचाना। तो ज्ञानी ! अक्षौहिणी प्रमाण सेना की हानि हो गई, व्यवहार उपस्थित नहीं था, इसलिए।

यदि वहाँ पर, व्यवहारालंबी एक जीव होता तो, महाभारत न होता। व्यवहार नय कहता है।

तिक्काले चदुपाणा, इंदिय - बल - माउ आणपाणो य।
ववहारो सो जीवो, णिच्छय-णय दो दु चेदणा जस्स ।।3।। द्रव्यसंग्रह ।।

तीन काल में जिसके चार प्राण होते हैं। इंद्रिय, बल, आयु स्वासोच्छवास मुख्यत: चार हो गये, भेद अपेक्षा से प्राण दस। पाँच इंद्रिय, बल, आयु, स्वासोच्छवास इन दस प्राणों से, जो जीता है, जीता था, वह मनुष्य है। व्यवहार नय की अपेक्षा। लेकिन इन प्राणों का वियोग होना ही मरण हैं।

''प्राण वियोगो मरणं''

प्राणों का वियोग होना मरण है। इसलिए ज्ञानी यदि हम व्यवहार को स्वीकार नहीं करेंगें। तो एक इंद्रिय जीव को स्वीकार नहीं कर पायेंगें, त्रस जीव, स्वीकार नहीं होंगें, संसारी जीव स्वीकार नहीं होगें। मार्गणायें स्वीकार नहीं होंगी।

गुणस्थान स्वीकार नहीं होंगे। जीव समास स्वीकार नहीं होंगें फिर क्या बचा ? यदि व्यवहार को स्वीकार नहीं करोगे। तो प्रथमानुयोग समाप्त, करणानुयोग समाप्त, चरणानुयोग समाप्त अब बचा क्या। प्रथमानुयोग भी नहीं बचेगा, क्यों? क्योंकि प्रथमानुयोग में व्यवहार है। चरणानुयोग में व्यवहार है। करणानुयोग में व्यवहार है। ज्ञानियो ! कुंदकुंद ने समयसार लिखा है, वह समयसार है। तो नेमिचन्द्र ने एक समयसार लिखा है। जीवकाण्ड।

ध्यान दीजिए-पं0 बनारसी दास जी ने अपने जीवन के अनुभव में लिखा मैंने समयसार पढ़ने के बाद आलू-प्याज खाना प्रारम्भ कर दिया, मैं सन्मार्ग से भटक गया। क्योंकि मैंने बिना गुरु के स्वेच्छा से समयसार पढ़ा, किन्तु जब मेरे गुरु ने मुझे गोमट्टसार पढ़ाया तब मुझे पुन: सन्मार्ग मिला। इस कथानक से प्रेरणा मिलती है कि गुरूमुख से सक्रम अध्ययन करो।

बिना गुरु के ज्ञान कैसा होता है ? जैसे मयूर का नृत्य। मयूर का नृत्य मत देखना। क्योंकि मयूर तन को खोलकर नृत्य करता है। यदि कोई मनुष्यनी नृत्य करेगी, तो कपड़ों से ढ़क कर करेगी। लेकिन

जब मयूरी नृत्य करती है तो तन को खोल कर नृत्य करती है। क्योंकि उसका कोई गुरु नहीं होता है। उसी, तरह जिसने जीवन में गुरु नहीं बनाया है, वह एकाक्षी ज्ञान प्राप्त करेगा। और जो एक एकपक्षीय ज्ञान होता है। वह तत्त्व के निर्णय तक नहीं ले जाता है। बोले उसमें ही, तो लिखा है। ''सव्वे सुद्धाहु सुद्धणया'' ''जरिसया सिद्धप्पा भव मल्लिय जीव तारिसा होंति'' जिस तरह, सिद्धालय में जीव हैं। उसी तरह संसारी हैं। जो चाहे, आलू में हो। चाहे प्याज में हो। चाहे नाली में हो, चाहे माली के बाग में हो। सब जीव सिद्ध है। किसी में भी हों।

प्रिय आत्मन्! कहने का औचित्य ये है कि शुद्ध नय से शुद्ध हैं। पर वे शुद्ध, सिद्ध सिद्धालय में बिराजे हैं। ज्ञानी! दृष्टि से शुद्ध हैं पर अभिव्यक्ति में शुद्ध नहीं है। प्रत्येक पाषाण में प्रतिमा है, लेकिन हर पाषाण को प्रतिमा का मूल्य नहीं मिलता है।

हर बीज में वृक्ष है। लेकिन बीज पाँच पैसे में बिकता है। और वृक्ष पाँच हजार में बिकता है। बीज, बीज है, वृक्ष, वृक्ष है। दूध में घी है। लेकिन दूध का भाव अलग है, घी का भाव अलग है, और घी को घी मानना व्यवहार है। दूध में घी देखना, दूध में घी निहारना, निश्चय है।

व्यवहार नय की अपेक्षा जीव है। और जीवों की रक्षा करना धर्म है। **''दया विशुद्ध धर्मा:'' धर्मस्य मूलं दया''** इस व्यवहार नय से धर्म का पालन हो।

प्रिय आत्मन्!

व्यवहार-निश्चय दोनों नय जिनमत प्रभावना में कारण हैं। व्यवहार नय से तीर्थ की प्रवृत्ति होती है। और निश्चय नय से तीर्थ का फल मिलता है। प्रिय आत्मन्! जीव की चौरासी लाख योनियाँ पाई जाती है। वे सब व्यवहार नय से हैं। भो ज्ञानी! जिस षट्खण्डागम ग्रंथ को, जैन दर्शन का प्राण मानते हो। ऐसा षट्खण्डागम ग्रंथ पहला ग्रंथ हैं, उस पहले ग्रंथ की दूसरी पुस्तक में, मात्र, चौबीस ठाणा का ही वर्णन है। बीस प्ररूपणा का ही वर्णन है। और बीसों प्ररूपणा व्यवहार हैं ध्यान देना-तत्त्वार्थसूत्र के नौ अध्याय व्यवहार हैं। दसवाँ अध्याय में व्यवहार निश्चय दोनों नय हैं, उभयनयी बनो!

संबंधो एदेसिं, णायव्वो खीर-णीरणाएण।
एकत्तो मिलियाणां, णिय-णियसब्भाव जुत्ताणं॥23॥

अर्थ-

अपने-अपने सद्भाव से युक्त, किन्तु एकत्व को प्राप्त इन जीव और कर्म का सम्बन्ध दूध और पानी के न्याय से जानना चाहिये।

माँ-जिनवाणी ! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

यदि कोई अपनी आँखों को धन्य करना चाहे, तो उसे एक बार आचार्य विशुद्ध सागर का दर्शन कर लेना चाहिए, आँखें धन्य हो जायेंगी। यदि कोई अपने पाँवों को धन्य करना चाहे, तो उसे जीवन में एक बार रत्नत्रय तीर्थ विशुद्धसागर की वंदना कर लेना चाहिए। यदि कोई अपने इन हाथों को धन्य करना चाहे, तो जीवन में एक बार विशुद्धसागर के हाथों में आहार दान दे देना चाहिए। यदि कोई कानों को धन्य करना चाहे, तो जीवन में एक बार विशुद्धसागर की देशना सुन लेना चाहिए। यदि अपने हृदय से विषय कषायों के विकारों को निकालना चाहो, तो विशुद्ध नाम स्मरण कर लेना चाहिए। मन के सारे विकार एक पल में पलायन हो जायेंगे।

जिनके दर्शन से नयन धन्य हो जाते हैं। जिनको दान देने से हाथ धन्य हो जाते हैं। जिनको सुमरण करने से, मन धन्य हो जाता है। जिनके गुणगान से, कंठ धन्य हो जाता है। और जिनके पास जाने से, जीवन धन्य हो जाता है। ऐसे परम पूज्य श्रमणाचार्य विशुद्धसागर जी महाराज का आप सभी जन्मोत्सव मना रहे हैं।

धन्य हैं, वह जिसे माँ के गर्भ में भी रहना न रुचा, उसे संसार क्या रूचेगा ? वह सात माह में गर्भ से बाहर निकल आये। जो गर्भ में न रहा हो, वह घर में क्या रहेगा ? बोलो- ज्ञानी ! रत्तीबाई के गर्भ में आया और रत्ती भर भी, मोह नहीं रहा। रत्तीबाई की कोख से जन्मा, और रत्ती भर भी मोह परिवार से नहीं रहा। अरे ज्ञानी ! रामनारायण के घर में जन्मा, वह न राम का हुआ न नारायण का हुआ। वह तो एक मात्र आत्माराम का हुआ।

प्रिय आत्मन्!

ध्यान देना महापुरूषों का जन्म, वृक्षों का फलना, नदियों का बहना, वर्षा का होना, सूरज का उगना, चंदा का चमकना, ये सब प्राकृतिक उपहार हैं, ये एक के लिए नहीं, पूरे विश्व के कल्याण के लिए

हुआ करते हैं। इसलिए महापुरूष किसी एक के नहीं होते हैं, महापुरूष, सृष्टि के प्रत्येक जीव के लिए हुआ करते हैं। ध्यान देना ! आचार्य उपाध्याय, साधु अर्थात जिनगुरु।

ये किसी एक के नहीं हो सकते। यदि कोई कहता है, ये मेरे गुरु हैं, और ये तेरे गुरु हैं। तो इसका तात्पर्य है तू उसी शिशु की तरह है जो कहता है ये मेरा सूरज है और ये तेरा सूरज है। बोलो ज्ञानी! तेरी छत पर खड़ा हुआ, तेरे बेटे का पप्पू यदि कहे, दादा ये सूरज मेरा है, तो उस पप्पू का कहना ठीक भी है। लेकिन तेरे पप्पू का पापा यानि यदि तेरा बेटा ये कहे, कि पापा ये मेरे घर का सूरज है तो क्या कहोगे? बेटा! ये सूरज किसी का नहीं है, सूरज सारे जग का है। प्रत्येक की छत पर सूरज चमकता है। इसी तरह गुरुओं का आशीर्वाद सूरज की तरह पूरे विश्व के प्राणियों पर होता है।

प्रिय आत्मन्!

हम उन्हें नमोस्तु करें, या न करें। तुम सूरज की नीचे सिर करो, या न करो, लेकिन सूरज का प्रकाश तो तुम्हारे सिर पर सदा है, उसी तरह, तुम विशुद्ध सागर जी को नमोऽस्तु करो या न करो, लेकिन उनका आशीर्वाद तो तुम्हारे सिर पर सदैव है। और यदि सूरज से प्रकाश नहीं माँगोगे, तो क्या सूरज प्रकाश नहीं देगा ?

चन्द्रमा से चाँदनी नहीं माँगोगे, तो चाँदनी नहीं देगा क्या? बादलों से पानी किसने माँगा? चंदा से चाँदनी को किसने माँगा? बोलो ज्ञानी! चंदा से चाँदनी को माँगने की आवश्यकता नहीं है। बादलों से पानी माँगने की आवश्यकता नहीं है। उसी, तरह गुरुओं से आशीर्वाद माँगने की आवश्यकता नहीं है। वह तो अपने आप आशीर्वाद की वर्षा करते हैं।

ज्ञानियो ध्यान देना ! हम कामना करते हैं, कि मेघ समय पर बरसें। भावना करते हैं, कि- वृक्ष अपने आप समय पर फलें। लेकिन ज्ञानियो यह तुम्हारा सातिशय पुण्य ही तो है कि तुम इसी काल में जन्मे हो, और वह भी इसी काल में जन्मे हैं। प्रिय आत्मन्! वह आशीर्वाद जायेगा कहाँ? तुम चाहो कि दोपहर, धूप में निकलें, और सूर्य का प्रकाश, तुम पर न पड़े, यह हो ही नही सकता है। तुम इस पंचम काल में जन्मे हो, इक्कीसवीं सदी में, तुम्हें विशुद्धसागर जी का आशीर्वाद न मिले, हो ही नहीं सकता, वह तो मिलेगा ही मिलेगा।

उसके बिना जाओगे कहाँ ? धूप में चलोगे-सूरज का प्रकाश पड़ेगा। जैसे, दोपहर की खिल-खिलाती धूप में तुम चलोगे तो सूरज तुम्हारे सिर के ऊपर चलता है। उसी तरह कोई पुण्यात्मा पुत्र, पंचपरमेष्ठी को स्मरण करने वाला पुत्र, **''णमो लोए सव्वसाहूणं''** को जपने वाला, पुत्र अपनी राह से

आगे बढ़ता है। ज्ञानी ध्यान देना ! तुम चाहे तेज चलो, चाहे धीमे चलो। तुम्हारे आगे-आगे परमेष्ठियों का आशीर्वाद चला करता है।

ज्ञानियो ध्यान देना ! अपनी जीवन रूपी, इस गाड़ी में एक आशीर्वाद का विद्युत दीप सदा जला करता है। प्रिय आत्मन ! हम अचेतन द्रव्य लेकर, चेतन की पूजा करते हैं। उन्हीं के लिए सजायें मंगल द्रव्य। जो चेतन द्रव्य हैं। ये अष्ट मंगल द्रव्य अचेतन हैं। प्रिय आत्मन् कभी-कभी मैं इसलिए कहता हूँ कि-जन्म जरा- मृत्यु का विनाश जल चढ़ाने से हो या न हो। लेकिन एक बार देशना को सुन लेना, तो तुम्हारा जन्म-जरा-मृत्यु का विनाश हो जायेगा। भवाताप का विनाश हो जायेगा। चंदन तो सदा से चढ़ाया है, लेकिन एक बार चरणों में पहुँच जाना, तो भवाताप का विनाश हो जायेगा। नैवेद्य चढ़ाते-चढ़ाते आपका क्षुधारोग मिट पाये या न मिट पाए। मैंने तो एक चिंतन में लिखा था, जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय "**प्रवचनं**" प्रवचन ही जल-चन्दन है। यही अक्षत है, यही पुष्प, है। जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय प्रवचनं। भवाताप विनाशनाय प्रवचनं, अक्षय पद प्राप्तये प्रवचनं। "**अहं किं करोमि ?** अहं प्रवचनम् श्रृणोमि वयं प्रवचनं श्रणुमः। किं अर्थम्-किस लिए प्रवचन सुनते हैं ?

जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय प्रवचनम्, भवाताप विनाशनाय प्रवचनम्, क्षुधारोग विनाशनाय प्रवचनम् कामवाण विध्वंसनाय प्रवचनम्, ज्ञानियो! बचपन से लेकर पूजा कर रहे हो लेकिन कामवाण का विनाश नहीं हुआ। लेकिन जो गुरु चरणों में पहुँच गया। प्रिय आत्मन्! आज आचार्य श्री का जन्म दिन है। वह आजीवन ब्रह्मचारी बन गया, कामवाणनाश होना प्रांरभ हो गया।

जो मृत्यु के पथ को जीतने चले हैं। हम उनका जन्म दिवस मना रहे हैं। वस्तुत: जो अपने लिए जीता है, जो परिवार के लिए जीता है, उनका जन्म दिवस मना लेते हैं। जो देश के लिए जीता है, राष्ट्र के लिए जीता है, उसके लिए जन्मोत्सव है। जीने के बाद जीने की कामना न हो, उसकी जन्म जयंती है।

प्रिय आत्मन्!

जन्म जयंती मनाओ, लेकिन जन्म के लिए नहीं, जन्म कल्याणक की तैयारी के लिये। जन्म दिवस मनाना, पर तैयारी जन्म जयंती की नहीं करना, जब भी तैयारी करना जन्म कल्याणक की करना। प्रिय आत्मन् ! जन्म किस लिए? जन्म, क्या जन्म के लिए? नहीं। तो क्या, जन्म-मरण के लिए? नहीं। जन्म-जन्म मरण के लिए है क्या? नहीं। तो जन्म किस लिये? रत्नत्रय के ग्रहण के लिए, संयम और आचरण के लिए, आत्मा में रमण के लिए, श्रावक और श्रमण बनने के लिए, कर्मो के क्षरण के लिए, शुद्धात्मा के वरण के लिए, और अंतिम सत्य कहूँ। तो सिद्ध पद के वरण के लिए जन्म मिला है। यह है

जन्म की सार्थकता। हम जन्मोत्सव उनका मनाते हैं, जिनने संयम को पाया है। इसलिए आज विशुद्ध सागर जी के जन्म दिन को मना रहे हैं।

क्योंकि उन्होंने संयम को पाया है। राजेन्द्र जब अपने राज को त्यागता है और धर्म राज्य को प्राप्त कर लेता है। धन्य है-एक नन्हा सा बालक था। मुझे मालूम है। सोरीपुर बटेश्वर से कौन सी नदी निकली है? यमुना। ध्यान देना-ज्ञानी ! यमुना नदी के तीर पर-तीर से निकालने वाला, और तीर से तिराकर तीर तक ले जाने वाला राजेन्द्र को कोई मिला था- तो वह थे विराग सागर। जो राजेन्द्र के लिए यमुना नदी के तीर पर मिले सोरीपुर बटेश्वर में, राजेन्द्र जी ने, ब्रह्मचर्य व्रत लिया था, सोरीपुर बटेश्वर में, यमुना नदी के तीर पर। कोई यमुना नदी के तीर पर बैठकर बाँसुरी बजाता है। कोई व्यक्ति उसी तीर पर अंर्तआत्मा के स्वर को सुनता है वैराग्य को प्राप्त करता है।

उसके पश्चात् क्षुल्लक दीक्षा को प्राप्त किया। फिर श्रेयांशगिरि में मुनि दीक्षा को अंगीकार किया। इतनी यात्रा होने के बाद, औरंगाबाद में विशुद्धसागर जी का, विमदसागर जी का हमारा और आचार्य पद तीनों का एक साथ हुआ।

ज्ञानियों ! विशुद्धसागर जी के विषय में यदि ये कहा जाये, कि जिसको शास्त्र पढ़ना न आता हो, तो मत पढे.। मात्र विशुद्धसागर जी के पास खड़ा हो जाये, उन्हीं को देखता रहें, क्योंकि जितने आप शास्त्र पढ़ोगे, उतने अचेतन पढ़ोगे ! और चेतन शास्त्र को पढ़ना हो, तो विशुद्धसागर के पास आ खड़े हो जाओ।

प्रिय आत्मन्!

ये बीस साल से अनुभूत करता हूँ। श्रावक लोग आते हैं। और क्या अनुभव करते हैं? एक घटना सुनाऊँ! मैं आचार्य श्री विद्यासागर जी से एक बार मिला दमोह में, एक बार मिला कुण्डलपुर में, दो ही बार जीवन में दर्शन किए। और दोंनों दर्शन इसी आचार्य अवस्था में किए। मैंने एक बार के दर्शन में इतना पाया-इतना पाया, कि एक पुस्तक अड़सठ पेज की लिखी, ''हृदय प्रवेश'' ध्यान देना ज्ञानी ! जो व्यक्ति कहते हैं हम इनके भक्त हैं। यदि हमारी एक पुस्तक, पढ़ले-उनके साधु भी ये पुस्तक पढ़ते हैं, आज तक विद्यासागर जी उनके संघ के अनेक साधु मिले होंगे आपको। लेकिन विद्यासागर जी पर एक अनमोल कृति लिखने वाला कोई संत हुआ है, वह आपके सामने बैठा है। सबसे महान कृति लिखी है तो ''हृदय प्रवेश'' और कोई कितनी बार मिला हो, और मैं दो बार मात्र मिला- तो इतना मिला-इतना मिला कि शब्दातीत है। पाने की जिसके पास कला है वह सब कुछ पा लेता है, कोई जाता है, तो मात्र सिर टेक के आ जाता है। और कोई ऐसा जाता है कि आँखे खोलकर दर्शन करता है और भीतर में बसा के लौट आता

है। देखिये किसी की आँखे देखती है, तो काजल की तरह आँखो में बसा लेता है। और कोई आँखो में से प्रवेश देता है और हृदय में बिठा लेता है।

प्रिय आत्मन्!

मैंने उनको भी देखा है। जब मैं ब्रह्मचर्य अवस्था में आया था बीना में, तो सबसे पहले मेरे गुरुदेव ने विशुद्धसागर जी के पास रोका था। आचार्य गुरुदेव विरागसागर जी बोले, विशुद्धसागर जी, आप नये पण्डित जी को अपने पास रखना। मैं मोराजी सागर का छात्र था, शास्त्री पास किया था, और विशुद्धसागर जी भी अध्ययन प्रिय। विशुद्ध सागर जी बड़े खुश थे, कि विरागसागर जी गुरुदेव ने मुझ पर इतना विश्वास किया, कि अपने शिष्य को उनकी जिम्मेदारी में सौंपा है। मुझे विशुद्धसागर जी अपने ही कमरे में रखते थे, मेरा पहला केशलोंच विशुद्धसागर जी ने ही किया था। मैं इस मुकाम तक पहुँचा, तो कहीं न कहीं, मेरे अग्रज का बहुत बड़ा हाथ है। मुझे रत्नकरंडश्रावकाचार, उन्हीं ने फिर से पढ़ाया। और आगे-आगे वह मुझे काफी चाहते रहे। कई बार विशुद्धसागर जी ने मुझसे कहा, कि विभवसागर जी आप मेरे साथ रहो। मैं एक बात करता महाराज, मेरी श्रद्धा आपके प्रति अगाध है। मैं उनके साथ गुरु संघ में ही दो तीन महिने रहा। उसके बाद विशुद्धसागर जी का हमारी क्षुल्लक दीक्षा के बाद विहार हो गया। उसके बाद हमारा उनसे बारम्बार मिलन हुआ, बीच-बीच में अभी भी मिलते रहते हैं। लेकिन चाहे उनका धार्मिक, आस्था का, आगम का, अध्यात्म का, सिद्धांत का, ज्योतिष का और चिकित्सा का क्षेत्र हो। उन्होंने जिस विधा में जहाँ-जहाँ प्रवेश किया है, उससे मुझे अवश्य अवगत कराया है।

मैंने जो पूजा लिखी मुझे पाँच साल तो सोचना पड़ा कि क्या लिखें चार महिने लिखने में लगे। पाँच साल सोचा फिर चार महिने में लिखा, और लिखने के लिए, सिद्ध क्षेत्र द्रोणगिरि का योग संयोग मिला।

प्रिय आत्मन!

ध्यान देना-मैंने जाना है कि कवि जब अपने आत्मा के भावों को, पूर्ण रूप से समर्पित करके उतार देता है। जैसे वृक्ष से गोंद कब आती है? गोंद वृक्ष का रस तत्त्व है यदि वृक्ष में रस तत्त्व नहीं होगा, तो गोंद कहाँ से आयेगी ? वृक्ष का तत्त्व उस गोंद में है। फलों में भी वह रस तत्त्व समाहित हैं। उसी तरह से, कवि के भाव, कवि की आत्मा, उसकी लेखनी में समाहित हो जाते हैं, अवतरित हो जाते हैं।

प्रिय आत्माओ आपने सुना, तत्त्वसार चल रहा है, लेकिन आज सारतत्त्व सुन रहे हो। वाचना में तत्त्वसार चल रहा है, लेकिन वाचना के चलते-चलते कोई सारतत्त्व आ जाता है, तो उसकी चर्चा भी हम कर लेते हैं।

और इसी क्रम में आज सारतत्त्व, वस्तुत: जो सारभूत तत्त्व है, वह चैतन्य तत्त्व है। वह अचेतन तत्त्व नहीं है। जो तत्त्व अपने जीवन में परम तत्त्व-शुद्धात्म तत्त्व को प्राप्त करता है, जो कि जीवंत तत्त्वसार है। ऐसे परम् पूज्य आचार्यवर्य विशुद्धसागर जी के प्रति हम उनके इस जन्मोत्सव पर विनयांजलि समर्पित करते हुए, आगे तत्त्वसार की ओर बढ़ते हैं।

प्रिय आत्मन्!

ध्यान-देना, ध्यान से सुनना। ज्ञानियो ! आपने खीर खाई या नहीं खाई, महावीर स्वामी ने खीर खाई थी, सभी तीर्थंकरों ने खाई, आदिनाथ को छोड़के। खीर-क्षीर जानते हो, दूध पिया है, दूध किस किसने पिया? सवने पिया। आचार्य श्री ने समाज से पूछा बताओ दूध कैसा होता है? गाय, भैंस के दूध की चर्चा नहीं कर रहा हूँ? मीठे की चर्चा नहीं कर रहा हूँ, रंग की बात कर रहा हूँ, दूध का रंग कैसा होता है? समाज की ओर इशारा करके आप सब कहते हो दूध सफेद होता है तो मान लिया जाये क्या? हाँ कि न? सुनो बेटा ! आज तू अपनी माँ से पूछ लेना कि माँ जब, मेरा जन्म हुआ था, तब आपने सफेद दूध पिलाया था, कि पीला? माताओ जब शिशु का जन्म होता है, तो दूध सफेद होता है, कि पीला होता है? बोलो कैसा दूध होता है? दूध को सफेद कहने वाली तो सारी दुनियाँ है, लेकिन दूध को पीला कहने वाला कोई नहीं, तो बोलो माताओ, असत्य तो नहीं कह रहा हूँ? क्योंकि, जब तुमने दूध पिया, तो देखा नहीं और देखने का ज्ञान हुआ, तो पीना बन्द हो गया। बोलो- अब आ गया ध्यान में। जब तुम शिशु थे, तब पिया था। जब शिशु का जन्म होता है, तो दूध पीला ही होता है, इसीलिए एकांत से मत कहना, कि दूध सफेद ही होता है।

प्रिय आत्मन्!

जैसे दूध और पानी का संबंध है। यह संयोगी संबंध है। दूध में पानी कब से है? ज्ञानी ! दूध जबसे निकला है, तभी से दूध में पानी है। बिना पानी के दूध नहीं है। पानी बिना दूध नहीं है। दूध बिन पानी नही है। दूध में लगभग 87 प्रतिशत पानी होता है। ध्यान-देना दूध में पानी कब से है ? जिस समय दूध तत्त्व का निर्माण हुआ है, उसी समय से है। उसी तरह जीव और कर्म का संबंध, अनादि से है।

ज्ञानी! सोना पीला कब से है? चाँदी, सफेद कब से है? अग्नि गरम कब से है? सूरज में प्रकाश कब से है? चंदा में, चाँदनी कब से है? अनादि से है। जैसे-सूरज में प्रकाश अनादि से है। चंदा में चाँदनी अनादि से है। जल में शीतलता अनादि से है। चंदन में सुगंधी अनादि से है। फुलों में गंध अनादि से है उसी प्रकार आत्मा और कर्म का संबंध अनादि से है।

पयडी सील सहावो, जीवंगाढं अणाइ संबंधो।
कणयोवले मलं वा, ताणत्तित्थं सयं सिद्धं ।। -गो0क02

जीव और कर्म का संबंध अनादि से है। जैसे किट्टी कालिमा का संबंध खान में पड़े हुये सोने से, अनादि से है।

योग्यो - पादान - योगेन, दृषदः स्वर्णता मता ।
द्रव्यादि-स्वादि-संपत्ता, वात्मनोऽप्यात्मता मता।। 21।।-इष्टापदेश

योग्य उपादान के योग से स्वर्ण पाषाण, स्वर्णपने को प्राप्त हुआ माना गया है, उसी प्रकार से स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की प्राप्ति होने से आत्मा भी परमात्मपने को प्राप्त हुआ माना गया है।

रत्नत्रय के प्रभाव से, यह आत्मा, ध्यान रूपी अग्नि में, कर्मो को जला कर के, शुद्ध तत्त्व को प्राप्त कर लेता है। ज्ञानी ! जैसे सोने से, कालिमा जुदी हो जाती है, उसी तरह आत्मा से कर्म जुदे हो जाते हैं, आत्मा शुद्ध हो जाती है। दूध एक बार घी बनने के बाद, पुनः दूध नहीं बनता। उसी तरह एक बार, आत्मा संसार से मोक्ष में चली जाये तो, पुनः संसार में नहीं आती।

जह कुणइ को वि भेयं, पाणिय-दुद्धाण तक्कजोएणं।
णाणी वि तहा भेयं, करेइ वरझाण जोएणं ।।24।।

अर्थ-

जैसे कोई पुरूष तर्क के योग से पानी और दूध का भेद करता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरूष भी उत्तम ध्यान के योग से चेतन और अचेतन स्व-पर का भेद करता है।

झाणेण कुणउ भेयं, पुग्गल-जीवाण तह य कम्माणं।
घेत्तव्वो णिय अप्पा, सिद्धसरूवो परो बंभो ।।25।।

अर्थ-

ध्यान से पुद्गल और जीव का और उसी प्रकार कर्म और जीव का भेद करना चाहिए। तत्पश्चात् सिद्ध-स्वरूप परम ब्रह्मरूप अपना आत्मा ग्रहण करना चाहिए।

माँ-जिनवाणी ! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य भगवन् देवसेन स्वामी भेद विज्ञान कौशल को प्रकट करने की विधि बताते हैं। शिल्पी-जैसे अपनी छेनी की द्वारा, पाषाण खण्ड में भेद कर देता है। वैसे ही प्रज्ञावान पुरूष, अपनी प्रज्ञा रूपी छेनी के द्वारा, आत्मा और कर्म में भेद कर देता है। सामान्य व्यक्ति के लिए पत्थर एक है, लेकिन शिल्पी के लिए उस पाषाण में भी परमात्मा है।

वैसे ही ज्ञानी पुरूष के लिए इसी देह में देव दिखाई देता है। शिल्पी पाषाण में परमात्मा को निहारता है। और प्रज्ञ आत्मा देह के, देहालय में देव को देखता है। प्रिय आत्मन् ! चोट हथौड़े की होती है, लेकिन काम छेनी का होता है। पत्थर को तोड़ने के लिए अकेला हथौड़ा ही महत्वपूर्ण नही होता है। पत्थर को तोड़ने के लिए छेनी का भी योगदान महत्वपूर्ण होता है। यदि छेनी नहीं होगी। तो पत्थर आकार नहीं लेगा। हथौड़ा तोड़ सकता है, लेकिन आकार नहीं दे सकता है। इसलिए पत्थर को सुनिश्चित स्थान देने के लिए, छेनी का काम है। और आत्मा को सम्यक् स्थान देने के लिए, प्रज्ञा की छेनी का काम है। ध्यान दो-आज तक जितने जीव सिद्धि को प्राप्त हुये हैं।

भेद विज्ञानतः सिद्धः, सिद्धः ये किल केचन।

अस्यैवाभावतो बद्धः, बद्धः ये किल केचन ॥ समयसार ॥

प्रिय आत्मन्! जितने भी जीव सिद्धि को प्राप्त हुए हैं, वे भेद विज्ञान के पौरुष से ही। और जितने जीव संसार में बंधे हैं, भेद विज्ञान के अभाव से। जब तक भेद विज्ञान नहीं हुआ तब तक आदिनाथ को तेरासी लाख पूर्व वर्ष बीत गये। लेकिन मोक्ष मार्ग नही मिला, और ज्यों ही भेद विज्ञान हुआ, **''नीजांलना**

मृत्यु'' ने अवधिज्ञानी आदिनाथ को दिखा दिया क्या? मुक्ति मार्ग का रास्ता। जन्म से तीन ज्ञान का धारी सुनिश्चित तीर्थंकर, ऐसा जीव, भी भटका है। कब तक भटका है? तेरासी लाख वर्ष पूर्व तक। और एक नीलांजना की मृत्यु देखी, कि एक क्षण में वैराग्य आ गया।

प्रिय आत्मन्!

भेद विज्ञान-जब प्रकट होता है, तो जीव के लिए मोक्ष मार्ग सरल हो जाता है। ज्ञान-अलग चीज है और भेद ज्ञान-अलग चीज है। जानना अलग है और होना अलग है। एक व्यक्ति ये जानता है, कि पत्थर के दो टुकड़े हो सकते हैं, लेकिन शिल्पी-उस पत्थर के दो टुकड़े करके दिखा देता है। ज्ञानी ! आगम के परिपेक्ष्य में भेद विज्ञानी, को ही ज्ञानी कहा है और कैसा ज्ञानी? जो तीन, गुप्तियों से युक्त है। ऐसा ज्ञानी, जब भेद विज्ञान का उपयोग करता है, तो पल भर में असंख्यात भवों के कर्मो को जला देता हैं।

जं अण्णाणी कम्मं, खवेदि भव सय सहस्स कोडीहिं।
तं णाणी तिहि गुत्तो, खवेदि उस्सास मेत्तेण ।।

ओहो! कैसी दशा है। अज्ञानी जीव-जितने कर्मो को असंख्य भवों में क्षय करता है, उतने ही कर्मो को, ज्ञानी जीव-क्षण मात्र में क्षय कर लेता है। एक मंदिर के द्वारे पर भिखारी बैठा है। वह जीवन भर में जितना धन इकट्ठा करेगा, उतना ही धन एक व्यापारी, एक फोन पर अर्जित कर लेता है। उसी तरह अज्ञानी-जीव जितने कर्मो को असंख्य भवों में नष्ट करेगा। हे ज्ञानी! तुमने उन कर्मों को एक श्वाँस में नष्ट कर लिया। क्यों? क्योंकि-

कोटि जन्म तप तपें, ज्ञान बिन कर्म झरें जे।
ज्ञानी के छिन माहिं, त्रिगुप्ति तें सहज टरें ते ।। छहढाला ।।

प्रिय आत्मन! ज्ञान में प्रयास है, पुरूषार्थ है, उसके बाद सब सहज होता है। लीजिए जानिये, भेद विज्ञान कैसे करें ?

हंस होता है, वह दूध और पानी को जुदा करने की कला जानता है। उसकी चोंच के सम्पर्क में आते ही, वह जो दूध होता है, वह छेना बन जाता है। उसकी चोंच में वह, खटास होती है, जो नीबू में पाई जाती है। जो खट्टा पन (अम्ल) नीबू में पाया जाता है। वही गुण हंस की चोंच में पाये जाते हैं, इतनी खट्टी चोंच होती है, कि जीभ के सम्पर्क से, दूध छेना बन जाता है। वह क्या करेगा? छेना-छेना ले लेगा और

पानी-पानी छोड़ देगा। जब नीबू डालके आप, दूध और पानी को अलग कर लेते हो, आपके पास यह प्रक्रिया है। आचार्य देव कहते हैं-जिस प्रक्रिया से, दूध और पानी को अलग किया है, उसी प्रक्रिया से, आत्मा से शरीरी को अलग करके बताओ। उसके लिये आचार्य देव कहते हैं-गुरु उपदेश से भेद-विज्ञान रस की दो बूँदे जब तुम्हारी आत्मा में पड़ेगी, तो भेद विज्ञान हो जायेगा। ज्ञान ही, भेद विज्ञान बन जायेगा। और फिर ये अनुभव होगा कि आत्मा क्या है?

जो ज्ञान-दर्शनमयी है, वह यह आत्मा है। जो स्पर्श रस गंध वर्ण वाला है, वह शरीर है। दूध और पानी के मिश्रण को, दूध मानने वाले सभी हैं, क्योंकि हमने अनादि से, दूध और पानी के मिश्रण को दूध माना है। जबसे आँखे खोली हैं, बिना पानी का दूध देखा ही नहीं है। बिना पानी का दूध होता ही नहीं है, पानी में दूध मिला ही होता है जिस तरह पानी में दूध-स्वभाव से मिला होता है, उसी तरह आत्मा कर्म से सहित ही है अनादि काल से, उसी को हमने आज तक देखा है।

कर्म रहित आत्मा को निहारा ही नहीं है। लेकिन जैसे छेना बनाने की कला है, और घी बनाने की कला है, जो छेना और घी बनाता है, वह तो जानता है, कि दूध भिन्न है, पानी भिन्न है, और उसी तरह शास्त्रों में यह विधि लिखी है, कि आत्मा भिन्न है और शरीर भिन्न है। विधि तो लिखी है, प्रयोग कौन करेगा? आचार्य कुन्दकुन्द भगवान ने विधि लिख दी है, समयसार विधिग्रंथ है, प्रयोग तो, हमें स्वयं करना होगा। ज्ञानी जीव! **''यथा पदवी, यथा शक्ति''** दो बातों को याद रखना अपनी, पदवी और शक्ति के अनुसार तो प्रयोग करो। सुदर्शन सेठ को समयसार नहीं आता था क्या? आता था।

तभी तो वह श्मशान में बैठकर सामायिक करते थे। मनोरमा, चंदना, अंजना, इनको इतना ज्ञान था, कि जितना ज्ञान आचार्य भद्रवाहु और कुन्दकुन्द को भी नहीं था। अंजना, मैना को, इतना ज्ञान था कि जितना ज्ञान आचार्य कुन्दकुन्द को भी नहीं था। क्योंकि कुन्दकुन्द आचार्य को एक अंग का भी ज्ञान नहीं था। यह सब सतियाँ बहुत ज्ञानी थी, जो आर्यिका बनीं।

महिलाओं को उत्कृष्ट रूप से जितना ज्ञान हो सकता है, वो ज्ञान इनके पास था। उस अपेक्षा से देखा जाये तो, जो आचार्य कुन्दकुन्द का जो ज्ञान है, वह ज्ञान यदि अंजना का समुद्र के बराबर था, तो आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी का ज्ञान पानी की बूँद के बराबर था।

प्रिय आत्मन्!

जीवों के पास ज्ञान रहा है और प्रयोग भी किए हैं। इसी प्रयोग के भाव से, समता भाव का निर्माण होता है। उसी प्रयोग के बल पर जीव जीते हैं। तो अविरत सम्यक्‌दृष्टि जो जीव है, वह रोता नहीं है।

ज्ञानी! निहारो, भेद विज्ञान को। आचार्य देव कहते हैं-आस्रव तत्त्व भिन्न है, बंध तत्त्व भिन्न है, इन तत्त्वों को भी आत्मा से भिन्न निहारो। जैसे-पहने हुये कपड़े को शरीर से भिन्न निहार सकते हो। उसी तरह आपका आत्मा भी भिन्न है। सुनो! ज्ञानी कपड़ा मोटा पहन लेने से शरीर मोटा नहीं होता है। कपड़ा पतला पहन लेने से शरीर पतला नहीं होता है। उसी तरह शरीर के मोटे पतले होने से आत्मा, मोटी पतली नहीं होती है। यदि, कपड़ा रंगीन पहन लिया तो, शरीर रंगीन नही हो जायेगा। और कपड़ा श्वेत पहन लेने से, शरीर श्वेत नही हो जाता है। उसी तरह शरीर के रंग में, आत्मा के रंग से, कोई संबंध नहीं है। यदि कपड़ा पुराना पहन लिया, तो शरीर पुराना नहीं हो जाता है। उसी प्रकार शरीर के पुराने होने से आत्मा, पुरानी नहीं हो जाती है। क्योंकि नया-पुराना जीर्ण-शीर्णपना पुद्गल में होता है। आत्मा में कोई जीर्ण-शीर्णपना नहीं होता है। आत्मा, बूढ़ी पुरानी नही होती है, आत्मा, छोटी-बड़ी नहीं होती है।

न मे मृत्युः कुतो भीति, र्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाऽहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्गले ॥29॥ इष्टोपदेश ॥

आत्मा की मृत्यु नहीं होती है, तो भय कहाँ से। भेद विज्ञानी मुनिराज जंगल में विराजे हैं, निज में लीन हैं। सिंह आदि जानवरों की आवाजें आ रही है। ज्ञानी मुनि, भेद विज्ञान में लीन हैं। वह विचार करते हैं, आत्मा की मृत्यु नहीं होती है, व्याधि शरीर को हो सकती है। शरीर मेरा नहीं है, आत्मा ही मेरी है। दर्द किसका, पीड़ा किसकी, जो शरीर को अपना मान बैठता है उसकी पीड़ा बढ़ जाती है। जो शरीर को ही अपना न माने, उसे पीड़ा कहाँ से।

न आत्मा बालक है, न आत्मा युवा है, न आत्मा वृद्ध है, लेकिन हम ये मान लेते हैं। कि मैं वृद्ध हो गया, भैया किस अपेक्षा से ? ये व्यवहार अपेक्षा है। शरीर की अपेक्षा से, तुम बालक हो, युवा हो, वृद्ध हो। लेकिन आत्मा की अपेक्षा, बता दो क्या हो ? न बालक हूँ, न वृद्ध हूँ, न युवा हूँ। ''जो हूँ सो हूँ'' पर्याय की दृष्टि से, आत्मा में भी पर्याय होती है।

चेतन द्रव्य-पर्याय को छोड़कर नहीं होता है। तो चेतन द्रव्य की पर्याय की अपेक्षा भी तुम बालक नहीं हो। ये पुद्गल की अपेक्षा, पर द्रव्य की पर्याय की अपेक्षा, कुछ भी कहो। प्रिय चैतन्य आत्मन्! निहारना इसी को है, कि जो दिख रहा है-वह मैं नही हूँ। जो देख रहा है-वह मैं हूँ। जो दिख रहा है-वह अचेतन है-जो देख रहा हैं वह चेतन है।

''**दिखे सो अचेतन, देखे सो चेतन**'' जो-जो दिख रहा, जो-जो दिखा है, जो-जो दिखेगा वो सब अचेतन है। जो देखने वाला है-वह है चेतन। प्रिय आत्मन् ! जानने वाला, देखने वाला, जीव है,

चेतन है। और जो ज्ञान में आ रहा है, दर्शन में आ रहा है, वह पुद्गल पदार्थ अचेतन है। ज्ञानी ! पदार्थ का ज्ञान में आना-झलकना, ये कैवल्य दशा का प्रतीक है। लेकिन ज्ञान का पदार्थ की ओर ढुलकना, ज्ञान का पदार्थ की ओर जाना, ये संसार दशा का प्रतीक है। ज्ञान-पदार्थ की ओर नहीं जाना चाहिए। ज्ञान में-पदार्थ आना चाहिए। ज्ञान में पदार्थ आ जाये, हानि नहीं है। लेकिन ज्ञान-पदार्थ में न चला जाये। और यदि ज्ञान में पदार्थ आ जाये, तो न राग होगा, न द्वेष होगा, लेकिन जब ज्ञान-पदार्थ की ओर चला जाये, तो राग-द्वेष हो जायेगा।

प्रत्येक पदार्थ ज्ञान का विषय बनता है, यही ज्ञेय है। सभी तत्त्व ज्ञेय हैं। और हम सभी में जानने की योग्यता है। जानना, जानने योग्य, जानने वाला, और जानने का फल, यह चार चीजें है। ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय, और ज्ञान का फल, चारों को समझना, कि-हमें ज्ञान का फल क्या मिला?।

मैंने जिस चीज को जाना है, उसके जानने का फल क्या मिला? मात्र-जानना नहीं है। जानने के साथ चार चीजें देखना, इसके जानने का फल अच्छा है, कि बुरा है। ज्ञाता यानि जानकार (सभी चीजों को जान रहा है) जैसे ये पेन का ज्ञाता मैं हूँ, ये पेन मेरा ज्ञेय है। जानना, सो ज्ञान है। लेकिन ज्ञान का फल क्या आया? उसका फल क्या है? ''ज्ञान फलं सौख्यम्'' ज्ञान का फल सुख है, प्रिय चैतन्य आत्माओ ! चौथी बात पकड़ना। ज्ञान,ज्ञाता, ज्ञेय के बाद ज्ञान का फल। ध्यान, ध्याता ध्येय ध्यान का फल क्या ?

हम क्रिया करें, क्रिया के साथ उसके फलको निहारें। प्रत्येक धातु में दो चीज हुआ करती है? क्रिया और क्रिया का फल। जैसे पठ् धातु है, पठ् धातु में दो चीज छुपी हैं। पढ़ना और पढ़ने का फल। क्रिया और उसका फल क्या है? क्रिया करने पर, कुछ हाथ में आ रहा कि नहीं? जैसे नमस्कार करना एक क्रिया है, तो इसका फल क्या है? फल रहित क्रिया होती ही नहीं है, कोई भी क्रिया फल रहित नहीं है, प्रत्येक क्रिया फल सहित है। अब ऐ बात भिन्न है, कि फल शुभ है या अशुभ है। जब क्रिया शुभ होती है तो, भाव शुभ होते हैं। जब भाव अशुभ होते हैं तो फल भी अशुभ होता है। एक बहुत अच्छी बात निहारना, कर्ता का बोध क्रिया से होता है। एक धातु में नव्वे प्रत्यय लगते हैं, जैसे पठ् धातु है इसमें ति, तः अन्ति आदि प्रत्यय लगाते हैं तो अर्थ बदल जाते हैं। सि, प्रत्यय जुड़ गया। पठ् धातु में नब्बे प्रत्यय, जुड़ जाते हैं। यदि ति अकेला लिख दिया हमने, ति से किसका बोध होगा? कर्ता, एवं काल का बोध होता है। कर्ता+संख्या+काल तीन का ज्ञान होता है। मात्र मैंने एक प्रत्यय लिखा है। ति पठ् के बाद ति के तीन निर्णय होते हैं। कर्ता का निर्णय, उसी से काल का निर्णय, उसी से संख्या का निर्णय। कर्ता प्रथम पुरूष का है, संख्या एक है, और काल वर्तमान लट् लकार का है। सिद्ध हो गया एक प्रत्यय तीन बातों का निर्णय करता है, कर्ता, काल, और संख्या।

प्रिय आत्मन्!

एक-एक अक्षर में ज्ञान भरा पड़ा हुआ है। आचार्य देव कहते हैं। ज्ञान-ज्ञान के लिए नहीं है, ज्ञान का फल क्या पाया ? हम, जितना ज्ञान अर्जित कर रहे हैं, उस ज्ञान के फल को भी पा रहे हैं कि नहीं ? देखो एक ग्वाला है, वह जितना दूध निकालता है, बेच जाता है। यदि न बिके तो दूध को वापिस ले जाता है। क्या करेगा? घी बना लेगा, अगर नहीं बनायेगा तो खराब (सड़) जायेगा।

इसी तरह मैं यह कहना चाहता हूँ। जैसे ग्वाला दूध का घी बनाकर रखता। उसी तरह तुम ज्ञान को, आचरण में बदलो। जितना भी ज्ञान है, और ज्ञान, और ज्ञान। अरे भैया ! कल के दूध को परसों के दूध को इकट्ठा मत करो, आज जितना दूध हैं, उसका ग्वाला आज ही, क्या करता है? विक्रय कर देता है और जो बचता है, उसका उपयोग करता है। उसी तरह आप भी, आज के ज्ञान का जितना उपयोग हो सके, उतना उपयोग, कर लो। प्रवचन दे दिया, क्लासें ले ली। इसके अलावा जो ज्ञान है, आचरण में डाल दो, ध्यान में परिवर्तित कर दो, तो वह ज्ञान स्थाई हो जायेगा। यदि दूध का घी बना लिया, तब तो सार्थकता है, अन्यथा दूध दो दिन बाद काम का नहीं रहेगा। उसी तरह ये ज्ञान भी सदा नहीं रहेगा, ज्ञान को तुरंत आचरण में डाल दो।

इसलिए ग्वाले के घर में, कितनी भैसें हैं? बोले बहुत। चार सौ लीटर दूध प्रतिदिन निकलता है। एक महिने में कितना हुआ? बारह हजार लीटर हुआ। ग्वाले के घर में कितना दूध मिलेगा ? थोड़ा ही मिलेगा। ध्यान देना-ज्ञानी समझ के सुनना, एक ग्वाले के यहाँ बीस भैसें हैं। यदि प्रत्येक भैंस में यदि बीस लीटर भी दूध निकलता है, तो वह चार सौ लीटर दूध, एक दिन में एकत्रित करता है। तो एक महिने में कितना दूध एकत्रित करेगा ? बोलो ! समझ गये ! जैसे ग्वाला दूध निकालेगा वह इकट्ठा कर लेगा, फिर क्या उसका घी बनायेगा ? नहीं। जो दूध चार सौ लीटर निकला, उसमें जितना दूध बिक गया- बिक गया और जो नहीं बिका उसका घी बनाना शुरू कर दिया। यदि दूध जोड़ कर रखते रहेंगे, तो खराब हो जायेगा, यदि घी बना लेंगे, तो अमर हो जायेगा। आ गया ध्यान में, यही प्रक्रिया है। आचार्य देव कहते हैं। अभी हम सभी दूध की तरह हैं। जैसे दूध में जरा सा नीबू डाल दिया तो दूध फट जाता है। इसी तरह हमारा ज्ञान दूध के समान है, जिसमें नीबू के समान राग-द्वेष की बातें डाल दी ज्ञान में, तो तद्रूप परिणमन कर जाते हैं। लेकिन हमारे जो अरिहंत परमात्मा हैं, उन्होंने अपनी आत्मा को घी की तरह शुद्ध बना लिया है। अब वह हमारे राग-द्वेष में, नहीं पड़ने वाले हैं।

प्रिय आत्मन्!

एक दूध है, एक घी है और एक दूध-दूध से घी बनने की प्रक्रिया पर चल रहा है, प्रक्रिया चल रही है लेकिन घी बना नहीं है, प्रक्रिया चालू है। देखिये, भेद विज्ञान यही है। हंस की बात चल रही थी, कि अपनी चोंच के प्रभाव से दूध को छेना रूप कर देता है। और पानी-पानी छोड़ देता है। और सार-सार को ग्रहण कर लेता है। उसी तरह ज्ञानी जीव जो होता है। कर्मों के द्वारा तपाये जाने के बाद भी, अपने भेद-विज्ञान से निज आत्मा का अनुभव करता है। लेकिन कर्मों का अनुभव नहीं करता, क्या? ज्ञानी को कष्ट नहीं आते क्या? ज्ञानी को उपसर्ग नहीं आते क्या ?

कष्ट, उपसर्ग आते हैं, लेकिन आचार्य भगवन् समयसार में लिखते हैं। ज्ञानी भी कष्ट पाता है। दुख आते हैं, संकट आते हैं। जैसे सोना तपाया जाता है, वैसे ज्ञानी भी तपता है। लेकिन उस काल में अनुभव निज का करता है। हमारे अंदर दो विशेषतायें है। यदि कोई कष्ट देगा, तो हम पर का अनुभव करेंगें, कि उसने ऐसा कह दिया, पर ज्ञानी निज उपादान में निहारता है। कि मुझे कर्म का वेदन नहीं करना है, मुझे ज्ञान का वेदन करना है। तो वेदन किसका कर रहे हैं ? ये महत्वपूर्ण है। कौन क्या दे रहा है परासेने वाले को ? परोसने की छूट, परोसो, लेकिन खाना तो मुझे ही है। भाई परोसने वाला सब कुछ परोस सकता है। लेकिन स्वयं की इच्छा है, कि हम कितना ग्रहण करते हैं। आप लोग तो कभी-कभी ''बफर सिस्टम भी'' करते हो, चुन-चुन कर लेते हो, लेकिन जब चुन-चुन करके पदार्थ लेते हो, तो चुन-चुन कर करके परिणाम क्यों नही लेते? जो परिणाम आपके योग्य न हों, उन्हें मत लो, मत सुनो, प्रिय आत्मन्! थाली में सब कुछ परोसा है, लेकिन हम क्या करते हैं? जिस समय नमक लेना उस समय नमक लेते हैं, जिस समय मीठा लेना उस समय मीठा लेते हैं। उसी तरह जो कर्म हैं, उदय में आते हैं, उनको आपको कैसे भोगना है, उपेक्षा से या स्वागत से ?

ध्यान देना-क्या कर्म के उदय में कर्म बंध होता है? नहीं। कर्म के उदय में यदि संक्लेश करता है, तो कर्म बंध होता है। और समता रखता है तो निर्जरा होती है। बोलो! कर्म का उदय में आना अच्छा है, कि बुरा है। ज्ञानी जीव कर्मों को उदय के पहले क्षय किया जा सकता है, लेकिन यदि क्षय नहीं कर पाये, तो क्या है? यदि उदय के पहले क्षय नहीं होता, तो साधना, तपस्या इसीलिए की जाती है कि कर्म उदय में ही, नहीं आ पाये। यदि शत्रु दल-सेना लेकर नगर पर चढ़ाई करने आ रही है तो बीच में जाकर नहीं रोका जा सकता क्या? जो अपराधी तत्त्व आगे बढ़ रहे हैं, तो क्या पुलिस जाकर बीच में नहीं रोक लेती है। उसी तरह तपस्या है, जो कर्म सत्ता में पड़े थे, उन कर्मों को वहीं रोक देती है। इसी लिए वे कर्म उदय में नहीं आ पाते, किन्तु निधत्ती, और निकाचित कर्म ऐसे हैं, जो उदय में आये बिना रहते नहीं हैं।

जो कर्म सत्ता में पड़े हैं। वह पड़े-पड़े परिवर्तित होकर, संकुचित होकर के, निर्जरा को प्राप्त हो जाते हैं, उस रूप में नही आते। दुख-सुख रूप में आ सकता है। दुख को सुख में बदल कर ला सकते हो। मति ज्ञान को, श्रुत ज्ञान में बदल सकते हो, श्रुतज्ञान को अवधिज्ञान रूप कर सकते हो। ध्यान देना ! यह बहुत बड़ी विशेषता है। कुछ प्रकृतियाँ ऐसी हैं। जो प्रकृतियाँ स्वोदयी हैं। कुछ प्रकृतियाँ ऐसी हैं जो परोदयी हैं पर रूप से उदय में आती हैं। कुछ स्वरूप से उदय में आती हैं। जैसे नरक आयु है। उसको बदल के तिर्यच नहीं कर सकते, और तिर्यंच को बदल कर मनुष्य नहीं कर सकते, जो आयु बाँध ली सो भोगना पड़ेगी। गति को बदल सकते हैं। जैसी आयु बाँधोगे उसके अनुसार ही गति मिलेगी, गति बदल जाती है। आयु नहीं बदलती है। ड्रेस बदल जायेगी भेष नहीं बदलेगा। जैसे गुरु जी ने चार विद्यार्थी को दण्ड दिया, क्या? चारों, एक सा दण्ड महसूस करते हैं, क्या? अपने ज्ञान अनुसार उनमें से एक सोचेगा की मेरे गुरु जी कितने अच्छे हैं। कि उन्होंने मुझे दण्ड दिया, कि कल में सीख के तो आऊगाँ, अपनी ज्ञान कला पर निर्भर करता है। कि उदय के समय तुम क्या सोच रहे हो।

तीर्थंकर पारसनाथ पर कितने बड़े-बड़े उपसर्ग हुये। और हमारे ऊपर? बोलो ! रास्ते से आप गुजर रहे हैं, और कदाचित होनहार बहु ने, कुछ पानी की बूँदे ही डाल दी, तो आपको गुस्सा आ जाता है। लेकिन पारसनाथ पर पत्थर बिजली, ओले बरसे, उन्होंने विचार नहीं किया। ज्ञानी ! कर्म का उदय तो सब को आता है। लेकिन उदय के काल में भोगना कैसे है? बोलो ! ध्यान देना, भोगने की विशेषता है कि आप किस रूप में भोग रहे हैं। एक ही दूध है, कोई दही के रूप में भोग लेता है, कोई घी के रूप में भोग लेता है, कोई छेना के रूप में भोग लेता है, और कोई दूध के रूप में भोग लेता है। कर्म के उदय में कितनी समता रखली, कर्म का उदय में आना ही कर्म की निर्जरा है। यदि समता नहीं रख पाये तो, नवीन कर्म का बंध हो गया। समता रख ली, तो निर्जरा हो गई। अदालत में खड़े हो, और तुमने सही तरीके के बयान दे दिए तो छूट भी जाओगे, और गलत बयान दे दिये तो, फंस भी जाओगे। तात्पर्य यह है कि- आपके हाथ में कर्म का उदय, सबसे बड़ी उपलब्धी का काल है यदि मानो तो आया कौन है ? ज्ञानी ! जिस का कर्ज लिया था, वही तो माँगने आयेगा, और वह माँगने आया है। खुशी-खुशी दे दिया, तो उत्तम है, यदि नहीं दिया तो आफत है। यदि बैंक का कर्जा हो, और उसने दुकान सील कर दी, मकान सील कर दिया, तो आफत ही आफत है और ज्यादा नुकसान हो जायेगा। बोलो। इसी तरह कर्म के साथ है। आचार्य देव कहते हैं-जब ज्ञानी के ऊपर कर्म का उदय आता है, तो ज्ञानी ऐसा समझता है, कि मैं पुराना कर्ज चुका रहा हूँ।

इसीलिए वह समता से चुकाता है। ध्यान देना-कर्म रूपी कर्जा जो लिया है, वह चुकाना नियामक ही है, और चुकाना नियामक है तो प्रेम से चुका देते हैं। ध्यान देना-हमारे जैन भाईयों में यही

विशेषता है, कि जिसका कर्ज लेते हैं, बड़े प्रेम से चुका देते हैं। और तुमने किसी अन्य को कर्ज दे दिया, तो क्या बोलते हैं उधार प्रेम की कैंची है'' वह कभी वापिस नहीं आयेगा जिन्हें उधार दिया है। ध्यान देना- इसी तरह ज्ञानी और अज्ञानी मैं अंतर होता है। ज्ञानी कर्म के उदय को कर्ज मानके चुका देता है। और अज्ञानी कर्म के उदय में रोता बिलखता है, और नवीन कर्म का बंध करता है, तो जितना कर्म कर्ज लिया था, उससे कई गुना बाँध लेता है। आया ध्यान में ! क्या है? कि समता रखना ज्ञान का फल है।

इसीलिए कहते हैं। धैर्य का बाँध न टूटे, समता का ताला न टूटे, और अपना वैराग्य कभी न छूटे। जैसे कोई पुरूष अपने तर्क के बल से पानी और दूध का भेद कर देता है, इतना पानी है और इतना दूध है। कैसा तर्क लगाते हैं? जरा सा नीबू डालते हैं और पानी अलग और दूध अलग छेना बन गया। उसी तरह ज्ञानी पुरूष भी उत्तम ध्यान के योग से, चेतन आत्मा और अचेतन शरीर, दोंनों का भेद-विज्ञान कर लेता है। आगे आचार्य देव कहते हैं-जिस तरह आरी के द्वारा आप दो टुकड़े कर देते हो। जैसे साधन के द्वारा आप सब्जी के दो भाग कर देते हो, जैसे कैंची के द्वारा कपड़े के दो भाग कर देते हो, उसी तरह ध्यान के द्वारा-प्रज्ञा पैंनी छेनी के द्वारा ये पुद्गल है, और ये जीव है, जो ज्ञान दर्शन वाला है वह मैं जीव हूँ, जो स्पर्श रस गंध वर्ण वाला है, वह अजीव है (पुद्गल है) ज्ञान दर्शन वाला है, वह मैं आत्मा हूँ। जो कर्म-कर्म है, शरीर-नोकर्म है। क्रोध मान, माया, लोभ कर्म है। पल-पल निहारो, कौन कर्म है? कौन ज्ञान है? ज्ञानियो ! आप जैन हो, आप पानी को छानके पीते हो। पानी में जरा सा कचड़ा नहीं जाना चाहिये। और कोई जीव भी नहीं रहना चाहिए। लेकिन ज्ञान को छानके पिया कि नहीं, महाराज ज्ञान को कैसा छानना? इसमें मोह-राग-द्वेष का कचड़ा तो नहीं मिला।

महाराज कचड़ा? हाँ राग-द्वेष-मोह ये कचड़ा है। ध्यान देना ! भैया ये कौन है ? ये, हमारे मित्र हैं। बस मोह का कचड़ा मिल गया। तुम्हें यह जानना चाहिए था, कि ये जीव हैं। ध्यान देना-साधु को परिचय से दूर रखना। उन्हें क्या परिचय देना, जो स्वयं परिचय से अतीत हो गये हैं।

आप ध्यान के द्वारा, पुद्गल, जीव और कर्म का भेद करो। क्या ग्रहण करना चाहिए क्या नहीं? तो निज आत्मा को ग्रहण करना चाहिए, निज आत्मा को, समयसार में कहा है। शुद्ध आत्मा को ग्रहण करो, पर का विकल्प भी न करो। पर का विकल्प आया, परसमय हो गया, परदेशी हो गया। निज आत्मा में रहने वाला स्वदेशी और पर पर्याय में जाने वाला परदेशी। कर्म प्रदेशों में रहने वाला परदेशी, और रत्नत्रय में रहने वाला स्वदेशी। और पुद्गल पर्याय में रहने वाला परदेशी। निज आत्मा का ग्रहण करो वह आत्मा सिद्ध स्वरूपी है। ''**सिद्ध स्वरूपोऽहं**'' स्वरूप तो यही है, परम सत्य तो यही है, कि तुम सिद्ध समान हो। ''**शुद्धोसि, बुद्धोसि, निरंजनोसि संसार माया परिवर्जितोऽसि**''। आत्मन् ! तू शुद्ध है, बुद्ध है। निरंजन है। संसार की माया से रहित है।

इसलिए सिद्ध स्वरूप है, तू ही परमात्मा है, तू ही परम् ब्रह्म है। ऐसा निज आत्म स्वरूप को ग्रहण करो, जो सिद्ध स्वरूपी है। जो वह है सो में हूँ। जो, मैं हूँ, सो वह है। निज आत्मा को ग्रहण करो।

मलरहिओ णाणमओ, णिवसइ सिद्धीए जारिसो सिद्धो।
तारिसओ देहत्थो, परमो बंभो मुणेयव्वो ।। 26 ।।

अर्थ-

जैसा कर्म मल से रहित, ज्ञानमय सिद्धात्मा सिद्धलोक में निवास करता है, वैसा ही परमब्रह्मस्वरूप अपनी आत्मा देह में स्थित जानना चाहिये।

णोकम्म-कम्मरहिओ, केवलणाणाइ गुणसमिद्धो जो।
सो हं सिद्धो सुद्धो, णिच्चो एक्को णिरालंबो ।।27।।

अर्थ-

जो सिद्ध जीव, शरीरादि, नोकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तथा राग-द्वेषादि भावकर्म से रहित है, केवलज्ञानादि अनंत गुणों से समृद्ध है, वही मैं सिद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, नित्य हूँ, एक स्वरुप हूँ, और निरालंब हूँ।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे श्रुतज्ञान जननी जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

हे जिनेन्द्र ! आपका वचन अमृत है, सर्वभाषाओं में परिणमन करने का स्वभाव है, किंतु सब प्रकार के भावों में परिणमन नहीं करता है। भाषायें सब होती हैं, लेकिन भाव एक होता है, आप जिस भाषा में समझना चाहते हैं, समझिये। लेकिन भाव आपके अनुसार नहीं होगा। भाव शुभ ही होगा, जिनवाणी शुभ भावों का निर्माण करती है। वीतरागवाणी वीतरागी भावों को जन्म देती हैं। स्याद्वाद वाणी स्याद्वाद धर्म की स्थापना करती है।

यह सर्वज्ञ वाणी भले ही सात सौ अठारह भाषा रूप परिणमन कर सकती है, लेकिन भाव एक, शुभ ही होगा। जिनवाणी को सुनते ही शुभभाव होने लगते हैं। अमृत के समान यह जीवों को संतुष्टि प्रदान करती है। गणधर स्वामी, श्रुत केवली, उपाध्याय, मुनि और देव, मनुष्य, तिर्यंच सभी प्राणी जितने भी संसद में विराजमान हैं, समंतभद्र स्वामी कह रहे हैं। हे प्रभो! आपके संसद में जितने भी प्राणी विराजमान हैं, उन सभी के लिये आपकी वाणी अमृत के समान संतुष्टि को देती हैं।

प्रिय आत्मन्!

निज आत्मा को ग्रहण करना चाहिये। हे प्रभु! वह परमब्रह्म क्या है? कैसा है? ब्रह्म का स्वरूप क्या है? हम सुनते आये है कि ब्रह्म होता हैं, वह ब्रह्म और परमब्रह्म है, क्या? जिस ब्रह्म को पाने के लिये, यह जीव सदा प्रयत्न करता है, जो ब्रह्म जगत में पूज्य है, जो ब्रह्म जगत में उपासनीय हैं, जो ब्रह्म निराकारमय है। ब्रह्म में मल नहीं है। मल में ब्रह्म नहीं है। यदि मल रहेगा, तो परमब्रह्म नहीं होगा और परम ब्रह्म होगा तो, मल नहीं होगा। महाराज श्री यह क्या बात हुयी? ज्ञानी ! घातियाकर्म रूपी मल, का मल जब तक जीव में है, तब तक परम ब्रह्म नहीं कहलायेगा।

जो परमात्मा होता हैं वह मल से रहित होता है। निर्मल होता है। तीन मल होते हैं। द्रव्यकर्म, भावमल, नो कर्ममल। परमात्मा परमब्रह्ममयी दो प्रकार का होता हैं। एक सकल परमात्मा, एक निकल परमात्मा तो यहाँ पर सिद्ध परमात्मा की विवक्षा लीजिये निकल परमात्मा। जो ज्ञानावरणादि अष्ट कर्म हैं उन कर्मो से भिन्न हैं।

प्रिय आत्मन्!

हमारा परमात्मा मल रहित है। परमात्मा के मन में मैल नहीं है। परमात्मा के चेतना में मैल नहीं है, न राग का, न द्वेष का, न मोह का मल हैं। न द्रव्य मल है, न मल लगने के कारण हैं। यदि कोई पहलवान तेल लगाकर के कुश्ती करता है तो धूल उसे चिपकेगी ही चिपकेगी लेकिन तेल नहीं लगाये है, तो धूल उसे नहीं चिपकेगी। उसी तरह राग-द्वेष जहाँ होता है, वहाँ पर मल लगता है, जहाँ राग-द्वेष ही न हो, वहाँ मल लगने की संभावना ही नहीं है। वीतराग देव अठारह दोष से रहित होते हैं।

जन्म जरा तृषा क्षुधा, विस्मय आरति खेद।
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिंता स्वेद॥
राग द्वेष अरु मद रहित, ये अष्टादश दोष।
नाहीं हों अरहंत के, सो छवि लायक मोक्ष॥

प्रिय आत्मन्!

अठारह दोष से रहित अरहंत और सर्व दोष से रहित सिद्ध-मल से रहित है। कर्म को मल कहा है, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय मल, यह जो आठ कर्म हैं। यह आठों कर्म मल हैं। यह कोई महान चीज नहीं है। ध्यान देना-जिन्हें तुम बहुत अच्छा कह रहे हो, उन्हें आगम में मल संज्ञा दी है। इन्हीं के कारण आत्मा मलीन हो रही हैं जिस दिन कर्म रहित हो जायेगी उसी दिन आत्मा निर्मल हो जायेगी।

राग-द्वेष-मोह भावकर्म मल है। तीन शरीर, छह पर्याप्ति को, नोकर्म कहते हैं। औदारिक शरीर, वैक्रियक शरीर, आहारक शरीर को शरीर कहते हैं। तीनों शरीर नहीं है छह पर्याप्ति में से एक भी पर्याप्ति नहीं है। इस तरह नोकर्म, द्रव्य कर्म, भाव कर्म से भी रहित हैं, वह सिद्ध परमात्मा है। वह परमात्मा ज्ञानमयी हैं। ध्यान देना-जो परमात्मा है, वह अज्ञानमय नहीं है। तीन लोक, तीन काल को जानने वाला हैं।

यः सर्वाणि चराचराणि विधि-वद्, द्रव्याणि तेषां गुणान्।
पर्यायानपि भूत-भाव-भवितः, सर्वान सदा सर्वदा ॥
जानीते युगपत - प्रतिक्षण मतः सर्वज्ञ इत्युच्यते ।
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ॥ 1 ॥ वीरभक्ति॥ प्रिय आत्मन्!

मेरा जो परमात्मा है, वह परमात्मा सकल विश्व को जानने वाला। ज्ञानमयी है। हम सभी जीव ज्ञानमय और अज्ञानमय है लेकिन मेरे परमात्मा के किसी प्रकार का आवरण नहीं है, संपूर्ण ज्ञान प्रकट हो गया है उस ज्ञान के बल पर विश्व में होने वाले प्रत्येक पदार्थ के परिणमन को वह जान रहे हैं। उनके ज्ञान में तीन लोक, त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थ झलक रहे हैं। उन्हें जानने का प्रयास नहीं करना है, लेकिन झलक रहे हैं। जैसे-दर्पण के सामने आया हुआ पदार्थ, बिना प्रयास के दर्पण में झलकता है, वैसे ही सर्वज्ञ के ज्ञान में तीनों लोक स्वतः झलकते हैं। प्रयास नहीं करना हैं, हमें किसी पदार्थ को जानना है, तो उपयोग लगाना पड़ता है लेकिन उन्हें किसी तरह का उपयोग नहीं लगाना पड़ता है। यह ज्ञानमयी चेतना, इतनी निर्मल चेतना हो गयी है, कि प्रति समय तीन लोक के चेतन अचेतन संपूर्ण पदार्थ झलकते है, परमात्मा ऐसा ज्ञानमयी है।

प्रिय आत्मन्!

परमात्मा का निवाास स्थान कौन सा है? नाना मत की नाना कल्पनायें हैं, कोई कहता है हिमालय पर सोता है। कोई कहता किसी वृक्ष पर सोता हैं। कोई कहता कहीं रहता है, लेकिन जैन दर्शन कहता है, परमात्मा सिद्ध शिला में रहता है। कैसा रहता है ? सिद्ध होकर रहता है। सिद्ध लोक में निगोदिया बनके नहीं रहता है, सिद्ध होकर के रहता है। सिद्ध क्या है ?

अट्ठ वि कम्म वियला, सीदी भूदा णिरंजणा णिच्चा
अट्ठ गुणा किदकिच्चा, लोयग्ग णिवासणो सिद्धा ।।68।।

जो आठों कर्मो से रहित हैं। अत्यंत शांतिमय है, कर्मरूपी अंजन से रहित हैं, नित्य है, आठ गुणों से युक्त हैं, कृत कृत्य हैं, जो कुछ करना था सो पहले कर लिया, अब कुछ करना शेष नहीं है, इसलिये नीचे उतरने की आवश्यकता नहीं है। आप ऊपर की मंजिल पर चले गये, नीचे के सारे काम कर के गये हो, फिर नीचे उतरने की आवश्यकता महसूस करते क्या? नहीं करते। क्यों? कोई काम ही नहीं नीचे का, तो ऊपर रह जाते हो और जब काम पड़ता है, तो नीचे आ जाते हो, लेकिन परमात्मा को संसार का कोई काम ही नहीं रह गया है, इसलिये उनको कभी नीचे नहीं आना पड़ता है।

प्रिय आत्मन्!

पर का काम करने के लिये हाथ की आवश्यकता है। निज का काम करने के लिये हाथ की आवश्यकता नहीं है। हाथ नहीं होगें, तो भोजन कैसे करेगें ? ज्ञानी ! भोजन भी तो पर का काम हैं। क्या? आत्मद्रव्य का काम है भोजन। इन हाथों से जो भी काम होंगें वे पर के ही काम होंगें, लेकिन निज के काम में निज आत्मा की लीनता के अलावा, हाथ का कोई काम नहीं है। हाथ पर हाथ रखकर बैठ गये हैं। क्यों? निज में लीन हो गये हैं।

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन ।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि रज रहस विहीन ।।

ज्ञानी जीवो! इन हाथों से जब भी मेहनत करो, एक बार ध्यान रख लेना, कि मैं पर का करता हो रहा हूँ। जब निज के कर्ता बनोगे, तो हाथ पर हाथ रखकर बैठना पड़ेगा और पर के कर्ता बनोगे तो हाथ जोड़ना पड़ेगा। मैं नमस्कार कर रहा हूँ। इसमे मेरा कर्तव्य भाव छुपा है। बिना कर्ता के क्रिया होती नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

जिनवर भगवान कहते हैं-हाथों की प्रवृत्तियाँ जो हैं वे कर्ता का प्रतीक हैं और यदि स्वयं का कर्ता, अकर्ता बनना हो, कर्ता भाव मिटाना हो, कतृत्व बुद्धि को शांत करना हो, तो फिर हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाओ। कर्तापना-अहंकार का प्रतीक है। कर्तापना कहाँ तक है ? जहाँ तक मोह है और जहाँ मोह का नाश हो गया, वहाँ पर कर्तापना नहीं रहता है। इसलिये बारहवें गुणस्थान में मोह क्षीण होता है और तेरहवें गुणस्थान का जीव किसी का कर्ता नहीं रह जाताहै। कर्ता का भाव कहाँ तक हैं? कर्ता का भाव बुद्धिपूर्वक छठवें गुणस्थान तक है और अबुद्धि पूर्वक सातवें से लकर बारहवें तक है, लेकिन उसके आगे कर्ता का भाव नहीं है। हाथों की जो प्रवृत्तियाँ हैं, चाहे उठाना, रखना, बोलना, कुछ भी हो यह हाथ, पर का कर्ता है। क्यों? क्योंकि हाथ ही पर है। पर, पर को ही करेगा, शरीर भी तो पर है, हाथ अचेतन द्रव्य हैं, आत्मा चेतन द्रव्य है।

जब तक पुद्गल प्रदेशों में, आत्म प्रदेश स्थित हैं, इस अपेक्षा से उसको चेतन-अचेतन कहते हैं, लेकिन यह पुद्गल-द्रव्य की दृष्टि से देखा जाये, तो हाथ पुद्गल हैं। शरीर क्या हैं? पुदग्ल का पिण्ड है। इस विवक्षा में निहारो तो पर है। आत्मा स्व है, शरीर पर है, एक हाथ से दूसरे हाथ को साफ कर रहे हो। क्या कर रहे हो ? मिट्टी को मिट्टी से माँज रहे हो, और माँजने वाला चेतन है। जो मँज रहा है, वह अचेतन है, एक मँज रहा है और एक बंध रहा है। तन गोरा होता जा रहा है, मन मैला होता जा रहा है। क्योंकि जितने समय तू तन को गोरा करेगा, उतने समय मन मैला होता जायेगा। क्यों मैला होता जायेगा ? क्योंकि उतने समय राग की परिणति बनेगी और जितने समय राग की परिणति बनेगी, उतने समय मन मैला होगा। ध्यान से सुनना- यह है वीतराग तत्त्व।

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो ।
एसो जिणोवदेशो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ।। 150 ।। समयसार ।।

आचाार्य कहते हैं-राग से कर्म का बंध हो रहा है, बिना राग के हाथ कौन साफ कर रहा है? बिना राग के साफ नहीं हो रहा है। राग है। आचार्य देव कहते हैं-एक तन का अंग दूसरे अंग को माँज रहा है, लेकिन स्वयं मैला होता जा रहा है। एक हाथ साबुन से कपड़े को साफ कर रहा है, कपड़ा तो साफ हो रहा है, लेकिन चेतनआत्मा कर्म के बंध से युक्त हो रहा है। कपड़ा मैला था, कपड़ा सफेद हो गया, उजला हो गया, लेकिन मन उजला था, मन मैला हो गया। उजला मन मैला हुआ, मैला तन उजला हुआ। इसलिये विशेष बात यह है, कि चेतन आत्मा को चाहिये कि यह ध्यान दें, कि आवश्यक जो है उतना तो ठीक है,

लेकिन आवश्यकता से अधिक राग न करे। क्योंकि मैंने जिसको चाहा, वह मिला है क्या? मैं जिसको चाहूँगा वह मिलेगा क्या? यह जो शरीर मिला है, ज्ञानी ! जिससे जिस वस्तु को प्रेम होता है, लगाव होता है, वह वस्तु मिलती है क्या? यदि इस शरीर से मेरा लगाव बना रहा, तो क्या यही शरीर मिलता रहेगा? ज्ञानी! सोचो।

प्रिय आत्मन्!

अशरीर दशा को पाना है, तो इस शरीर से मोह ममत्व कम किया जाये। आचार्य देव कहते हैं- संसार का कारण क्या है? देह में आत्म बुद्धि होना, इस शरीर को अपना मान लेना, यही संसार का कारण है। शरीर से शरीर रचता रहेगा, जितना शरीर में राग रहेगा, उतने शरीर मिलते रहेंगे।

जौ लों तन में ममता है, तौ लो ही तन बनता है।
जब तू तन से मोह तजे, तब तू आतम तत्त्व भजे।

जब तक शरीर में ममता भाव रहेगा, तब तक शरीर छूटने वाला नहीं है। शरीर मिलते रहेंगे, बदलते रहेंगे। कपड़े से ममता है, तो तुमने कपड़े को बदल लिया, लेकिन कपड़ा छूटा नहीं है। ज्ञानी! एक ड्रेस बदलकर दूसरी पहन ली, दूसरी बदल कर तीसरी पहन ली, उसी तरह एक शरीर बदला, दूसरा शरीर, तीसरा शरीर, पर्याय बदली है, लेकिन छूटी नहीं है।

जब तक शरीर में ममता भाव है, तब तक तन बनता रहेगा, इस तन का बनना बंद कब होगा? जब ममता टूटेगी, तब होगा। इसलिये भगवान परम दिगम्बर मुद्रा में विराजमान हैं, हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं, कृतकृत्य हो चुके हैं। चित्रकार अपने सामने चित्र को रखकर के नये चित्र को तैयार कर देता हैं, उसी तरह हे जिनेन्द्र देव ! मैं आपकी प्रतिमा को सामने इस लिये रख रहा हूँ, ताकि मैं भीतर की प्रतिमा को तैयार कर सकूँ।

एक साधु पद्मासन मुद्रा में बैठकर के ध्यान कर रहा है, णमोकार की जाप कर रहा है, शांत भाव से कायोत्सर्ग के चार प्रकार समझिए-

(1) उत्थित (बैठा हुआ)

(2) उतथितोतथित (अन्दर बाहर दोनों तरह से खड़ा हुआ)

(3) उपविष्ट (बैठा हुआ)

(4) उपविष्टोपविष्ट (अन्दर बाहर बैठा हुआ)

तो जिस समय अंदर में परिणाम विशुद्ध हैं तो आचार्य कहते हैं, ऐसा मुनि! तू बाहर से तो बैठा है, लेकिन भीतर से खड़ा है। अब दूसरा वह है, जो बाहर से तो खड़ा है, लेकिन भीतर में परिणाम नहीं लग रहे हैं, हे मुनि! तू तो बाहर से तो खड़ा है। और भीतर से भी खड़ा है। अब तीसरा वह है, जो बाहर से तो बैठा है, और परिणाम नहीं लग रहे, तो वह बाहर से भी बैठा हैं, और भीतर से भी बैठा है। चौथा वह है जो बाहर से खड़ा है और भीतर से भी परिणाम जागृत है तो वह बाहर से भी खड़ा है और भीतर से भी खड़ा है। इसलिये बाहुबली स्वामी अंदर-बाहर से जागृत हैं। उनकी मुद्रा शिक्षा देती है, प्रतिमा बोलती है, कि हे ज्ञानियो! जागृत रहो।

ध्यान देना-बाहुबली स्वामी जैसी तपस्या चौबीस तीर्थकरों में, किसी भी तीर्थंकर ने नहीं की। बाहुबली स्वामी के मन में ऐसा क्या था? ज्ञानी जीव! बाहुबली स्वामी छठवें गुणस्थानवर्ती, सप्तम् गुणस्थानवर्ती श्रमण थे और अब कहो कि उनके पास शल्य थी, तो शल्य के तीन भेद होते हैं, माया, मिथ्या और निदान। तो बताओ इन तीन प्रकार की शल्यों में उनके पास कौन सी शल्य थी ? कोई शल्य नहीं थी। क्योंकि, जो व्रती होता है वह शल्य से रहित होता है। अब दूसरी बात, जब हम प्रतिक्रमण शास्त्र उठाते हैं, तो उसमें क्रोध, मान, माया, लोभ और भी अनेक प्रकार की शल्यें गिनायी हैं, तो वहाँ पर, शल्य का मतलब है-विकल्प, एक तो आचार्य उमा स्वामी जी ने शल्य का ध्यान से संबंध जोड़ा है, कि व्रती शल्य रहित होता है। वहाँ तीन ही शल्य लगाना माया, मिथ्या और निदान, इन संबंधी कोई शल्य नहीं थी। आचार्य गुणभद्र स्वामी और आचार्य जिनसेन स्वामी लिखते हैं-कि बाहुबली स्वामी जब ध्यान में उपस्थित थे, उस समय उनके मन में एक बिजली कौंध जाती थी, कि मेरे कारण भरत भैया को कष्ट हुआ। ध्यान में बिजली कौंध आती थी, पर हर समय नहीं बनी रहती थी, लेकिन कभी-कभी मन में विकल्प आता था कि, मैं तो यहाँ तपस्या कर रहा हूँ और मेरे कारण भैया भरत को कष्ट हो गया। जो उनके शुक्ल ध्यान में बाधक होता था। यह विकल्प धर्म-ध्यान में बाधक नहीं है, शुक्ल ध्यान में बाधक था और जब उनका वह विकल्प का निष्कासन हो गया, तो पल भर में उनको केवल ज्ञान की उपलब्धि हो गयी।

भरत चक्रवर्ती आकर के उनकी पूजा करता है, हे महानुभाव ! आप इतने महान हैं, कि आपके द्वारा मुझे कहाँ से कष्ट हो सकता है? आप जैसे महामुनियों की चरणों की रज से तो समस्त भूमण्डल पावन हो रहा है, आप से मुझे कष्ट कहाँ? वह तो तब तक की दशा तभी तक की थी, अब की दशा अब की है, प्रभु! क्षमा करिये।

प्रिय आत्मन्!

यह है पल भर का परिणाम, निज को क्षमा करना बहुत कठिन होता हैं। दूसरों के लिये क्षमा कर देना महापुरुषों के लिये बहुत आसान होता है, लेकिन महापुरुष अपने आपको क्षमा करना बहुत कठिन मानते हैं। कभी-कभी यह होता है, यदि कोई महापुरुष, महान व्यक्ति, किसी को कुछ कह दे, वो तो सुन लेगा, लेकिन महापुरुष विचार करेगा, कि आज मैंने किसी को कष्ट तो नहीं दिया। सामायिक में सोचेगा। प्रतिक्रमण में विचार करेगा, कि मेरे द्वारा किसी को कष्ट तो नहीं हुआ? नहीं। आज मेरे कारण से उसके आँसू वह गये, मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये था। मुझे ऐसा नहीं बोलना चाहिये था। अपने आप को क्षमा करना उसे बहुत कठिन पड़ता है। फिर वह प्रतिक्रमण करता है। सामायिक करता है। आलोचना करता है।

हे प्रभु! यह भी मेरा अपराध है, मुझे क्षमा करें। तो बाहुबली स्वामी के मन में कभी विकल्प आ जाता था, लेकिन शल्य नहीं थी। यह बाहुबली स्वामी की योग मुद्रा है। भरत चक्रवर्ती थे, लेकिन बाहुबली स्वामी योग चक्रवर्ती थे। ऐसे महान योग चक्री एक साल तक उत्कृष्ट योग करने वाला, एक मात्र यदि संसार में हुआ है, तो मात्र एक बाहुबली स्वामी और दूसरा नहीं हुआ।

प्रिय आत्मन्!

कुछ न सही, लेकिन पाँच मिनिट तो बाहुबली जैसे खड़े होकर रहो। एक माला तो खड़े होकर तरीके से करके देखो, चाहे मंदिर में करो, चाहे घर में करो, कहीं पर तो करो। लेकिन एक बार हे बाहुबली स्वामी ! आप जैसा बनने के लिये खड़ा होकर आहार ले रहा हूँ, और तभी तक आहार लूँगा, जब तक मैं आप जैसा खड़ा हो सकता हूँ। और जिस दिन आप जैसा खड़ा होने की क्षमता नहीं रहेगी, उस दिन आहार नहीं लूँगा। किसमें खड़े होना ? ज्ञानी ! ध्यान में खड़े होना, बैठकर सामायिक करना, अलग बात है और खड़े होकर सामायिक करना अलग बात है। बैठकर सामायिक करने में जितनी विशुद्धि जागती है, उससे हजार लाख गुनी विशुद्धि खड़े होकर सामायिक में जागती है।

बैठा हुआ व्यक्ति और खड़ा हुआ व्यक्ति, बैठे में ज्यादा साधन-सुविधा मिलती है, और खड़ा व्यक्ति ज्यादा जागृत रहता है। आचार्य भगवन् ने, भीतर से भी खड़े और बाहर से भी खड़े को सबसे श्रेष्ठ माना हैं। जैसे- सिद्ध भगवान सिद्धालय में हैं, वैसा ही सिद्ध परमात्मा मेरे देहालय में है।

प्रिय आत्मन्!

पर को पहचानना आसान है, लेकिन निज को पहचानना कठिन है। हम इन आँखों से दूसरे को तो देख लेते हैं, लेकिन आँखों ने आँखों को कभी नहीं देखा। तो आँखे, आँखे कैसे देख सकती हैं। उसके लिये दर्पण चाहिये। इन आँखों ने सारे जग को तो देख लिया, लेकिन इन आँखों ने अपनी आँखों को नही देखा। उसके लिये दर्पण चाहिये। उसी तरह से हे ज्ञानी ! जिस ज्ञान से तू पर को देख रहा है, उसी ज्ञान से निज को भी जान रहा है। जानो, कब जानोगे? इसलिये तुम्हारे सामने शास्त्र हैं।

ध्यान देना-पदार्थ से ज्ञान नहीं होता, शास्त्र से ज्ञान नहीं होता है क्या? ध्यान देना-शास्त्र से ज्ञान नहीं होता। शास्त्र पदार्थ है, शास्त्र ज्ञान में निमित्त हो सकता है लेकिन शास्त्र से ज्ञान नहीं हो सकता। यदि शास्त्र में ज्ञान होता? तो जिसके पास पूरा पुस्तकालय है और ताला खोलता है, तो ताला खोलने वाले के पास सबसे ज्यादा ज्ञान होना चाहिये। लेकिन ज्ञानी जीवो! किसी विक्रेता को उतना ज्ञान नहीं होता है, विक्रेता पुस्तक बेचता रहता है और उसको पढ़ने वाला, उसी पुस्तक से लाखों कमाता है। विक्रेता एक पुस्तक से दस रुपये कमाता है और विद्वान उसी पुस्तक से लाखों कमा लेता है।

प्रिय आत्मन्!

पुस्तक से ज्ञान नहीं होता है, पुस्तक में ज्ञान नहीं है। शास्त्र में ज्ञान नहीं है। शास्त्र ज्ञान के साधन हैं।

''नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत्''॥6॥ परीक्षामुख

पदार्थ और प्रकाश भी ज्ञान नहीं है, और यह शास्त्र भी ज्ञान नहीं है। आचार्य माणिक्य नंदी परीक्षामुख में कहते हैं-क्योंकि अंधकार में भी ज्ञान होता है, बिना शास्त्र के और बिना प्रकाश के भी ज्ञान होता है। इसलिये हमारे जो पूर्वाचार्य रहे, पूर्व के ऋषि मुनि रहे, उन्होंने भीतर से ज्ञान प्रकट किया हैं। ध्यान देना- हम शास्त्रों में से ज्ञान निकालते हैं, लेकिन आचार्यो ने अपने-अपने भीतर में से शास्त्र निकाले हैं।

आचार्य कुंदकुंद देव लिखते हैं-जिसकी दृष्टि ही अंधकार का निवारण कर रही हो, उसके लिये दीपक की आवश्यकता क्या है। अमावस्या की रात थी, घना अंधेरा था, बिल्ली दूध पीकर चली गयी। क्योंकि उसकी दृष्टि ही अंधकार का नाश करती है। उसी तरह जिसके भीतर में ज्ञान प्रकट होता है, उसके लिये शास्त्रों की आवश्यकता नहीं हैं। हमारे आचार्यो, मुनियों ने, जंगल में रह रहकर के भीतर में से ज्ञान प्रकट किया है। जैसे-जमीन के अंदर पानी है, उसी तरह आत्मा के अंदर ज्ञान है। जैसे जमीन में से स्रोत

फुटता है तो पानी निकलता है, वैसे ही आत्मा से विशुद्धि फुटती है, तो ज्ञान स्वयं प्रवाहित होने लगता है।

प्रिय आत्मन्!

हमारा प्रयास वैसा है, जैसे कहीं से टैंकर आया और घर में पानी भरके रख लिया। महाराज ने सुनाया, हमने सुन लिया। हमारी स्थिति तो यह है, लेकिन हमारे आचार्यों की स्थिति कैसी थी? कुँये की तरह थी, कि इतना ज्ञान-इतना ज्ञान कि तुम दिन भर में जितना निकाल सको, निकालो। और रात भर में फिर से लबालब हो जायेगा। समय बदलता है, चौथे काल में तीर्थंकर होते है केवलज्ञानी रहते। पंचम काल है, थोड़े साधुगण हैं, फिर क्या करोगे? इसलिये आचार्य कहते हैं, हे किसान! तुझे खेती करना है, तो बीज बोने के पहले कुँआ खोद ले। यदि कुँआ ही नहीं है, जल नहीं है, तो खेती किस से करोगे?

बिना पानी के जैसे खेती नहीं होती है, उसी प्रकार बिना ज्ञान के क्रिया फलदायी नहीं होती है। क्रिया के पहले ज्ञान होना चाहिये और खेती के पहले पानी होना चाहिये। खेती करना हो तो पहले पानी देख लो और क्रिया करने के पहले ज्ञान देख लो। प्रत्येक क्रिया ज्ञान सहित हो। उपजाऊ भूमि में ही बीज बोया जाता है, ज्ञान सहित क्रिया फलदायी होती है। आचार्य कहते हैं- जिस तरह सिद्धालय में सिद्ध हैं, उसी तरह से देह के देहालय में मेरा सिद्ध परमात्मा है। जैसे मंदिर के गर्भालय में परमात्मा है, वैसे ही तेरे देहालय में तेरा परमात्मा है।

प्रिय आत्मन्!

जैसे-कमल के अंदर जो कर्णिका है, उस कर्णिका के बीचों बीच कमलगटा है वैसे ही तेरे देहालय में तेरा परमात्मा है। ज्ञानी जीवो ! हम परमात्मा को पूजें, बाहुबली को पूजें, तीर्थंकर को पूजें, लेकिन एक बार निज से भी तो पूछो, जिसको तुमने पूजा है। भगवान पारसनाथ स्वामी सम्मेद शिखर गये, यह सत्य है, लेकिन उनने सम्मेद शिखर जाके किया क्या? वे सम्मेद शिखर गये, चंद्रप्रभ सम्मेद शिखर गये, लेकिन सम्मेद शिखर जाने के बाद पारसनाथ, चंद्रप्रभ सम्मेद शिखर में नहीं रहे, वे सम्मेद शिखर जाने के बाद, अपने भीतर में चले गये। यदि सम्मेद-शिखर तक गये होते तो कल्याण नहीं होता। जो आत्मा अपने भीतर में चली गयी, वह आत्मा तर गयी। सम्मेद शिखर में जाने से वे पूज्यनीय नहीं हो गये, इसलिये ध्यान देना-ज्ञानी जीवो ! भगवान की पूजा करना, तो कैसे? तो आचार्य देव कहते हैं-हृदय की वेदी पर बिठाकर के प्रभु को पूजना। मेरा सिद्ध परमात्मा, मेरा शिल्पी, मेरा देवता मैं ही हूँ। ध्यान देना-मेरा बीज, मेरा वृक्ष मैं ही हूँ। न मेरा बीज कोई दूसरा है। न मेरा वृक्ष कोई दूसरा है। मैं ही बीज हूँ और मैं ही वृक्ष हूँ। मैं ही आत्मा हूँ। मैं ही परमात्मा हूँ। इस बात को जितनी गहरायी से जानोगे और देखोगे, जैसे

गर्भालय बाहर है, भीतर में प्रतिमा हैं। वैसे ही शरीर गर्भालय की तरह है, और आत्मा प्रतिमा की तरह भीतर है।

सिद्धोहं सुद्धोहं, अणंतणाणाइसमिद्धो हं ।
देहपमाणो णिच्चो, असंखदेसो अमुत्तो य ॥28॥

अर्थ-

मैं सिद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं अनन्तज्ञानादि से समृद्ध हूँ, मैं शरीर प्रमाण हूँ, मैं नित्य हूँ, मैं असंख्य प्रदेशी हूँ, और अमूर्त्त हूँ।

थक्के मणसंकप्पे, रुद्धे अक्खाण विसयवावारे।
पयडइ बंभसरूवं, अप्पा झाणेण जोईणं॥29॥

अर्थ-

मन के संकल्पों के बन्द हो जाने पर और इंद्रियों के विषय-व्यापार के रुक जाने पर योगियों के ध्यान के द्वारा ब्रह्मस्वरुप आत्मा प्रकट होता है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी ! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

जैनदर्शन का तत्त्वदर्शन-अध्यात्म का दर्शन है, आत्मा का दर्शन है। दूरदर्शन से परे, आत्म तत्त्व के अभिन्नदर्शन का नाम अध्यात्मदर्शन है। जब यह जगत दूरदर्शन के माध्यम से अपने से दूर होता जा रहा है, ऐसे समय में जैनदर्शन के तत्त्वदर्शन की महती आवश्यकता है। अपने निकट और अपने भीतर आने के लिये यह अध्यात्म शास्त्र अत्यंत अनिवार्य है। हम परिवार में देखते हैं, कि हम बहुत-बहुत, दूर-दूर तक चले जाते हैं, लेकिन जब पारिवारिक रिश्ते और संबंध होते हैं, तो अपने घर लौट के आ जाते हैं। उसी तरह यह जो अध्यात्म का शास्त्र है, आत्मा से संबंध रखने वाला शास्त्र है, इसका आत्मा से रिश्ता है।

प्रश्न वही है मैं कौन हूँ? क्योंकि प्रत्यूषबेला-ब्रह्ममुहुर्त में, जो जीव इतना ही विचार कर लेता है। वह कभी निम्न स्थान को नहीं पाता, उसकी मति उसे उच्च गति प्रदान करती है।

कोऽहं को मम धर्म:, किं प्राप्य किन्निमित्तक:।
इत्यूहं प्रत्यहं नोचे, दस्थाने हि मतिर्भवेत्।। क्ष0चू0म0।।

आत्मतत्त्व को पाना ही सर्व तत्त्व को पाना है, जिसने निज तत्त्व को पाया है उसने परम तत्त्व को पाया है। आचार्य भगवन् कहते हैं-वह परमब्रह्म कैसा है? वह परमब्रह्म इस देह के देवालय में निवास कर रहा है। क्या उस परमब्रह्म को देखा जा सकता है? अवश्य देखा जा सकता है, स्वसंवेदन के द्वारा देखा जा सकता है। जब एक इंजीनियर मकान बनाने के पहले उसका नक्शा बना लेता है, तो तुम भी अपने सिद्ध होने के पहले अपना आकार देख सकते हो। वह चित्रांकन करता है आप चरित्रांकन करिये, वह चित्र देखता है आप चरित्र देखिये।

प्रिय आत्मन्!

यदि हम अपने भीतर बैठे हुये भविष्य के भगवान को निहारते हैं। जैसे एक इंजीनियर भविष्य का भवन ही तो बनाता है, उसी तरह आप भी भविष्य के भगवान को निहारिये, कि वस्तुत: वह मेरा भगवान मेरे अंदर ही है, वह सुख रूप है, वह शांति रूप है, वह आनंद रूप है। आचार्य देव कहते हैं-जो सिद्ध जीव है, वह नोकर्म से रहित है, तीन शरीर, छह पर्याप्ति से रहित है, द्रव्यकर्म, भावकर्म से रहित, और केवलज्ञान है आदि में जिसके, ऐसे मुख्य आठ गुण, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतसुख, अनंतशक्ति, अब्याबाध, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, इन आठ गुणों से संयुक्त है, अथवा केवलज्ञान को प्रमुख करके जो आत्मा के अनंत गुण है उनसे समृद्ध है। गुणहीन नहीं है, वैशेषिक मत, गुण हीन मानता है, लेकिन जैन दर्शन कहता है, सिद्धात्मा अनंत गुणज्ञ होता है, अनंत गुण वाला है। गुण के अभाव में गुणी नहीं होता है। मैं कौन हूँ? सोऽहं। मैं सिद्धात्मा हूँ, जो नोकर्म से रहित है, जो कर्म से रहित है, केवल ज्ञानादि गुणों से सहित है, वह सिद्ध आत्मा, मैं हूँ। जब मुझ से पूछा जाता है, कि तुम कौन हो तो, हम अपना नाम बता देते हैं। लेकिन ज्ञानी! यही प्रश्न जब आचार्य कुंदकुंद और देवसेन से पूँछा तो वे कहते हैं, यह तुम्हारा परिचय नहीं है, तुम्हारा परिचय तो जो सिद्धों का परिचय है। पर्याय का परिचय क्या देते हो, ध्रुव निज ज्ञायक आत्मा का परिचय दो। क्षणिक का परिचय क्या देते हो, अक्षय का परिचय दो। मकान का, पर्याय का परिचय भी तो पर का परिचय है। लेकिन जो आत्मा है, शाश्वत है, वह ध्रुव शुद्ध ज्ञायक निजगुण सम्पन्न अनंत गुण समृद्धशाली निज आत्मा का परिचय है वह सिद्ध भगवान मैं हूँ।

आगे-आगे अपनी ही, अर्थी के मैं गाता चलूँ।
सिद्ध नाम सत्य है, अरहंत नाम सत्य है ।।
पीछे-पीछे दूर तक, दिख रही जो भीड़ है ।
पंछी शाख से उड़ा, खाली पड़ा नीड़ है ।
सृष्टि सारी देख ले, पर्याय ही अनित्य है ।
सिद्ध नाम सत्य है...........

जिनको मेरे सुख दुःखों से, कोई न था वास्ता।
उनके ही कंधों पर मेरा, कट रहा है रास्ता आँख
जब मुदी तो कोई, शत्रु है न मित्र है ।
सिद्ध नाम सत्य है...........

डोरियों से मैं नहीं, बंधा मेरा संस्कार था,
एक कफन पर ही मेरा, रह गया अधिकार था।
तुम उसे उतारने, जा रहे यह सत्य है।
सिद्ध नाम सत्य है...........

आपके अनुराग को, आज यह क्या हो गया।
जिस क्षण चिता पर चढ़ा, महान कैसे हो गया।
जो अनित्य वो ही नित्य, नित्य ही अनित्य है।
सिद्ध नाम सत्य है...........

मैं अरूपी गंध दूर, उड़ गई थी, फुल से ।
लहर थी चली गयी, दूर मृत्यु कूल से ।
सत्य देख हँस रहा, कि जल रहा असत्य है ।
सिद्ध नाम सत्य है............

मैं तुम्हारे वंश का, बिछुड़ा हुआ हूँ देवता ।
आत्म तत्त्व छोड़कर, मैं जगत को देखता ।
यह अनादि काल की, भूल का ही कृत्य है ।
सिद्ध नाम सत्य है.........

प्रिय आत्मन्!

जैन साहित्य के मर्मज्ञ कवि मिश्रीलाल जैन ''गुना'' की यह कालजयी प्रेरणादायी रचना है। इस तरह जीवन में व्यक्ति अंत में समझ पाता है और अंत में सुनायी देता है, मरने के बाद मिट्टी को तो सब सुना देते हैं, लेकिन चेतना जब तक है तब सुना दिया जाये तो उसकी महिमा है, सिद्ध नाम सत्य है, अरहंत नाम सत्य है। पर इसके साथ कौन सुनाता है? चिता को सुनाने के पहले चेतना को सुना देते, या चिता को जलाने के पहले चेतना को जगा देते, तो यह सुनाना भी सार्थक हो जाता, इसिलये क्योंकि मौत का भरोसा नहीं है, मौत प्रतिपल चली आ रही है और कैसी आती है मौत। देखिये-

दबे-दबे पाँव मौत, आती है आने दो।
आहट मिल जाये तो, मन मत घबराने दो।
निश्चित ही मृत्यु से, जीवन का अंत नहीं।
प्राण मुखर होते हैं, देह बदल जाने दबे-दबे।
मानव तुम साँसों को, इतना मत प्यार करो।
देह को न मानव तुम, इतना दुलार करो।
साँसे छल जायेगी किस, क्षण विश्वास नहीं।
आत्मा अनश्वर है, उसका श्रृंगार दबे-दबे।।

प्रिय आत्मन्!

मैं आत्मा नित्य हूँ। पर्याय की अपेक्षा अनित्य हूँ। आत्मा की अपेक्षा मैं निरालम्ब हूँ। तीन लोक के शिखर पर किसी अवलम्बन की आवश्यकता नहीं है। अनंत काल तक जीव अवलम्बन रहित होकर के ठहर सकता है, आज हम सोचते हैं कि माँ का अवलम्बन है पिता का अवलम्बन है, परिवार का अवलम्बन है, लेकिन यह कब तक, जब तक कर्म की परतंत्रता है, तब तक पर के अवलम्बन की आवश्यकता है और जिस दिन कर्म की परतंत्रता नहीं रहेगी उसी दिन पर के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं रहेगी।

जब भी मुझ से पूछा जाता हैं मैं कौन हूँ ? मैं मनुष्य हूँ या मैं नाम बता देता हूँ। पर आचार्य देव कहते हैं-नाम से परे, पर्याय से परे, अपने स्वरूप को निहारो मैं सिद्ध हूँ जो होना है वह देखो जो हो वह मत देखो। ध्यान देना-यह बात इसलिये कही जा रही है, कि बार-बार संस्कार देने से आत्मा पर वही प्रभाव पड़ता है, इसलिये अपनी प्रिय संतान के नाम भी इतने पवित्र रखना चाहिये, सिद्धोहं, शुद्धोहं ऐसे पवित्र

नाम रखो। किसी बात की दीनता क्यों दिखाते हो? तुम तो अनंत गुणों से समृद्ध हो। किस बात की दीनता? गरीबी? निर्धनता? जो सिद्धों के पास है, वह-वह सब हमारे पास है, उसको प्रकट करना आपका काम है, तुम्हारे लिये सब कुछ तो दे दिया।

जैसे-पिता कहे, कि मैंने जमीन तो सबको बराबर दे दी, अब उपजाना तुम्हारा काम है, उसी तरह प्रत्येक आत्मा को बराबर मिला है। पिता जी अपने चारों बेटों को जैसे बराबर हिस्सा दे देते हैं, उसी तरह प्रत्येक आत्मा को अनंत गुण शक्ति रूप में मिले हैं, एक भी गुण तुम में, हममें कम नहीं है, सब बराबर है। ध्यान देना-कहीं पिता तो राग-मोह के वश किसी को कम बढ़ दे सकता है, लेकिन आत्मा में कमी नहीं है, प्रत्येक की आत्मा में समान गुण हैं जो प्रकट कर ले, कोई पहले प्रकट कर ले, कोई बाद में प्रकट कर ले, कोई बच्चा पहली साल में उत्तीर्ण हो जाता और कोई बच्चा पंच वर्षीय मनाता है। लेकिन सबकी पुस्तकें समान है, जो अध्ययन अच्छा कर लेता है, वह उत्तीर्ण हो जाता है, जो नहीं करता है वह असफल हो जाता है।

मैं इस शरीर प्रमाण हूँ, जो आत्मा जिस शरीर से मुक्त होता है, उससे किंचित न्यून प्रमाण सिद्धालय में रहता है, यह है पूर्व के संस्कार की परिणति, यह शरीर तो नष्ट हो जाता है, लेकिन इस शरीर में रहने वाली आत्मा ने जितने समय तक, इस शरीर में रह लिया आत्मा के प्रदेश उसी रूप में ढल जाते हैं।

प्रिय आत्मन्!

यहाँ पर आप किसी को अपने पास बिठा पाओ, या न बिठा पाओ, लेकिन सिद्धालय में एक सिद्ध में अनंतानंत सिद्ध विराजमान हैं, इतनी विशालता उनकी है। और हम अपनी जगह पर दूसरे को नहीं बिठा पायें, उनकी विशालता और हमारी संकीर्णता का परिचय है। इसलिये इतनी विशालता इतनी उदारता आना चाहिये, कि एक न एक दिन तो हम और आपको वहाँ पहुँचना ही है। जिस स्थान से आदिनाथ स्वामी मोक्ष गये पारसनाथ मोक्ष गये, काश उसी स्थान से तुम्हारा मोक्ष हो जाये, तो तुम कहाँ पहुँच जाओगे? उन्हीं की गोद में पहुँच जाओगे।

जैसे-पानी के गिलास में आपने शक्कर डाली, तो उसी में समा गयी, नमक डाला तो उसी में समा गया। उसी तरह एक सिद्ध में अनंतानंत सिद्ध समाहित हो जाते हैं, यह अवगाहन गुण है, उनके पास। वे नित्य हैं। द्रव्यदृष्टि से नित्य है, पर्याय का परिणमन उनमें भी चलेगा, शुद्ध का परिणमन शुद्ध में होता है, अशुद्ध का परिणमन अशुद्ध में होता है। आत्मा, आत्म-प्रदेशों की अपेक्षा, सिद्धों के प्रदेश असंख्य है

और हम सभी के प्रदेश भी असंख्य हैं, किसी का एक प्रदेश भी कम बढ़ नहीं है, सिद्ध भगवान अमूर्तिक है, ''सोऽहं'' वैसा ही मैं हूँ, बस यही जानना जो तुम हो वही मैं हूँ।

शुद्ध-बुद्ध हो परम सिद्ध हो, जिन परमातम हो ।
ज्ञाता दृष्टा अरस अरुपी, तुम शुद्धातम हो ।।
जो तुम हो वह मैं हूँ भगवन्! निश्चयनय लाके ।
चित्त प्रफुल्लित हुआ हमारा, जिन दर्शन पाके ।।8।। ।। चैत्यभक्ति ।।

प्रिय आत्मन्!

आत्मा अमूर्तिक अर्थात् स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से रहित है। आत्मस्वरूप-परमात्मा कब प्रकट होता है? कैसे प्रकट होता है? क्या विधि है? आत्मा में परमात्मा को प्रकट करने की विधि-मन के संकल्प विकल्प के थक जाने पर-बंद हो जाने पर, विश्राम ले लेते हैं, न मन मैं शुभ संकल्प, न मन में अशुभ संकल्प।

''अहमेदं इति संकल्पं। ममेदं इति विकल्पं ।।

मैं यह हूँ यह संकल्प है। यह मेरा है यह विकल्प है ।
मैं विकल्प की कीलों पर, मूर्च्छाओं के टीलों पर ।
चिंतातुर हो बैठा हूँ, फिर भी मद में ऐठा हूँ ।।
मैं यह हूँ यह मेरा है, तू यह है यह तेरा है ।
करता हूँ संकल्प विकल्प, झूठी माया झूठे जल्प ।।

प्रिय आत्मन्!

यह संकल्प-विकल्प जब तक चलते रहेंगें, तब तक संसार चलता रहेगा और जब तक संकल्प विकल्प चलेंगें, तब तक इस देह में कभी मनुष्य, कभी देव, कभी तिर्यंच, कभी नारकी प्रकट होगा, लेकिन परमब्रह्म परमात्मा प्रकट नहीं होगा। आचार्य देव कहते हैं, जब संकल्प- विकल्प क्षय को प्राप्त हो जाते हैं, संकल्प-विकल्प रूक जाते हैं, तब कहीं आत्मा में परमात्मा प्रकट होता है। आत्म स्वरूप का दर्शन करने के लिये जिन कारणों से संकल्प-विकल्प उपजते हैं, उन कारणों को विराम दो। जब तक हम विराम नहीं देगें, तब तक आत्मा परमात्म रूप में प्रकट नहीं होगा। प्रश्न हुआ साधु ने इतना सब कुछ क्यों त्याग किया? मात्र संकल्प-विकल्प होने के कारण से घर छोड़ा जाता है, क्योंकि गृहस्थी में रहते हुये संकल्प-विकल्पों की झड़ी लगी रहती है, कि कहीं न कहीं यह मेरा है।

अभी आपके जेब की चाबी नीचे गिर जाये, तो आप कहोगे यह मेरी है, यह संकल्प आयेगा, मैं यह हूँ, यह संकल्प-विकल्प चलते हैं, आचार्यो ने कहा, जहाँ संकल्प, विकल्प रुक जाये कि, अब कोई संकल्प-विकल्प नहीं रहा। ज्ञानी ! ध्यान देना- जब तक पानी में हिलोरें चलती रहेगी, तब तक नीचे पड़ी हुयी वस्तु दिखायी नहीं देती है, और जब वही पानी ठहर जाता है, शांत हो जाता है, तो दिखाई दे जाती है। एक रानी की अँगूठी सरोवर में नहाते समय पानी में गिर गयी, काफी खोज की, नहीं मिली। ज्योतिषी से कहा-ज्योतिषी ने कहा यह अंगूठी तुम्हें, सुबह-सुबह जब आप जाओगी, तो मिल जायेगी। बोली! कैसे मिले? आप सरोवर में जाकर के खोजना मत, सरोवर के बाहर खड़े हो जाना और देखना, आपको अंगूठी दिखाई दे जायेगी। कारण क्या है? कारण यह है, कि उस पानी को हिलाना डुलाना मत, यदि हिलाओगे डुलाओगे तो फिर दिखाई नहीं देगी। ध्यान देना-आपके पास रिमोट है, बटन बारंबार दबाओगे, तो कोई चैनल नहीं चलेगा और एक बटन दबाकर, छोड़ दोगे, तो चैनल चलने लगेगा। उसी तरह जहाँ मन के संकल्प विकल्प उत्पन्न ही नहीं हो रहे, किसी तरह का विचार किसी तरह की कोई चिंता ही नहीं है। संपूर्ण विकल्पों का जब परित्याग करके, जब निज में लीन होते हैं, कोई भी तरह का विचार नहीं है। न किसी के भले का, न किसी के बुरे का।

प्रिय आत्मन्!

ध्यान देना-शब्द नहीं कहता, तुम मुझे सुनने आओ, लेकिन हम ही उछलकूद करते हैं। एक बात याद रखना, मन के विकल्पों के रुक जाने पर और इंद्रियों के विषयों के व्यापार के रुक जाने पर, जिसने इनको वश में कर लिया, उसने सारे जग को वश में कर लिया। फिर ब्रह्मस्वरुप प्रकट हो जाता है। जैसे-पानी के शांत हो जाने पर, लहरों के शांत हो जाने पर, जल में हीरे की अंगूठी दिखायी देने लगती है, उसी तरह से निज में पड़ा हुआ मेरा परमात्मा मन के और इंद्रियों के शांत हो जाने पर, दिखाई देने लगता है।

चौबीस घंटे में से चौबीस मिनिट न सही, तो चौबीस सेकेंड का तो समय निकालो, यह हो सकता है, असंभव कुछ भी नहीं है, रूप रेखा बनाने में समय लगेगा, अड़तालीस मिनिट के समय में, यदि बीस मिनट पहले के मात्र, धीरे-धीरे आप प्रयास करेंगे, कुछ सेकेंड के लिये, कि मुझे आज कुछ भी नहीं सोचना। कुछ भी नहीं विचारना, किसी इंद्रिय की कोई प्रवृत्ति नहीं करना। अनुभव करके देखें, जब नाभि कमल के सामने-दोनों हाथ रख लो और जीभ के लिये-मध्य में रख लो, न नीचे न ऊपर न दोनों पाँवों का स्पर्श करें, न ऊपर का स्पर्श करें। एक मिनिट में आप पायेंगे, कि कुछ नयी अनुभूति कर रहे हैं।

प्रिय आत्मन्!

भरत चक्रवर्ती ने पहले बहुत साधना की थी, तभी तो जाकर मुनि बने थे, तो घर में इतनी साधना कर लो, कि कल के दिन मुनि बनो, तो लंबे समय तक, मुनि बनकर रहना न पड़े। भैया घर में इतनी साधना तो करके देखो, जब घर में आनंद आयेगा, तो मुनि बनने में आनंद आयेगा। ध्यान देना-मैं यहाँ यदि साधु बना बैठा हूँ, धर्म से जुड़ा हूँ, तो ग्यारह साल की उम्र से मैंने धर्म के ग्रंथों को पढ़ा है। यह मत सोचना, कि गृहस्थों से कुछ नहीं होता, तुम तो भरसक प्रयत्न करो, जितना होता होगा, उतना तो होगा। मैं यह थोड़ी कह रहा हूँ, तुम सौ में से सौ अंक लाओ नव्वे आते, तो नव्वे लाओ, जितने आ सकें, उतने तो लाओ।

ध्यान देना-सुदर्शन सेठ श्मशान में सामायिक करता था, कितना अचल योगी था, रानी ने उठवा लिया, तीन दिन तक बैठा रहा, ज्यों का त्यों। एक बार वेश्या ने उठवा लिया, ज्यों का त्यों बैठा रहा। आखिर क्या नहीं बनता? हमें कमजोरी नहीं देखना है, हमें अपने अंदर की आत्म शक्ति को प्रकट करने का अवसर देना है। गृहस्थ है तो क्या-अपनी आत्मा की शक्ति को प्रकट नहीं कर सकता है? कर सकता है। ध्यान देना-बाहुबली ने वन में जाकर साधना कर ली, एक साल की। क्या इकट्ठी एक दिन में कर ली? नहीं। ध्यान देना-युद्ध में कोई अचानक जाकर के विजय नहीं पा लेता है।

प्रिय आत्मन्!

मैं आपके सामने प्रवचन कर रहा हूँ, तो क्या सीधा आपके पास आकर मंच पर बैठ गया? बीस साल के अभ्यास के बाद हमने यह पाया है। और एक घंटे का प्रवचन करने की कुशलता आयी है। उसी तरह से भरत चक्रवर्ती ने, पूरे जीवन काल ध्यान किया है, उधर युद्ध भी चल रहा है, फिर भी भरत चक्रवर्ती ने सामायिक नहीं छोड़ी। आप देखिये भरतेश वैभव को उठाकर। एक दिन भरत चक्रवर्ती रो रहा था, उनके मंत्री ने देखा महाराज ! आपकी आँखों में आँसू। क्या बात है? मंत्रीवर आज मेरे जीवन का पहला दिन है, जबकि मैं किसी दिगम्बर मुनि को आहार नहीं दे पाया। वह सामान्य ग्रहस्थ नहीं था जो पूर्व कई भवों से मुनि बनता चला आ रहा हो, वह गृहस्थ था। पूर्व भव में जिसने मुनि अवस्था में साधना की है। अगले भव में गृहस्थ अवस्था में, साधना के संस्कार, आत्मा के आत्म प्रदेश, वैसे ही हो जाते हैं।

एक बच्चा जन्म लेता है। तुम्हारे बचपन की फोटो निकालो, तो ऐसी दिखेगी कि जैसे गद्दी पर चिपक कर बैठे हो, और यदि आप आचार्य विद्यासागर की बचपन की फोटो को देखोगे, तो ऐसे दिखेंगें कि मंदिर में जैसे जाप कर रहे हों। ध्यान देना-जैसे-आत्मा के संस्कार होते हैं, वह संस्कार आगे जाते हैं,

तो भरत चक्रवर्ती ने अपनी गृहस्थ दशा में अपने आपको इतनी साधना में ढाल लिया था। कि मुनि बना और सीधा केवलज्ञान अन्तमुर्हुर्त हो गया। यदि आपकी गाड़ी यू0पी0 से एम0पी0 जा रही है, तो पास यहाँ पर बनवा लेते हो और आपने तो बेरियर पर दिखाया, और सीधा आगे चले जाते हो, यदि पास नहीं बनवाया, तो आगे नहीं जा पाओगे। उसी तरह मैं तो यह कहता हूँ, प्रत्येक गृहस्थ को अपनी गृहस्थ दशा में इतनी अच्छी साधना कर लेना चाहिये, कि मुनि बनके थोड़े ही काल में सीधे मोक्ष जा सको।

यह मत सोचो कि मुनि नहीं बन पाये, भाई-मुनि नहीं बन पाये, लेकिन मुनि बनने की तैयारी तो पूरी है कि नहीं? नहीं बन पाये, यह महत्वपूर्ण नहीं है, पूरी तैयारी है, मुझे जिस समय भी अवसर मिलेगा, मैं तत्काल आत्मा की साधना इतने उत्कृष्ट तरीके से करूँगा। चौबीस घंटे में से तेईस घंटे व्यापार को दे दो, और अगर एक घंटा न मिले, तो चौबीस मिनिट, चौबीस मिनिट न मिले, तो दस मिनिट मैं, किसी के अच्छे बुरे के विषय में कुछ नही सोचूँगा।

प्रिय आत्मन्!

हमारे यहाँ का देशव्रती सर्वार्थ सिद्धि के देव से श्रेष्ठ है, जो ध्यान सर्वार्थसिद्धि का देव नहीं कर सकता है, उससे उत्कृष्ट ध्यान हमारे यहाँ का देशव्रती कर सकता है। इसलिये आप अपने घर को कुछ भी कहो, लेकिन मैं आपके घर को सर्वार्थ सिद्धि से श्रेष्ठ मानता हूँ। सर्वार्थ सिद्धि के देवता भी जो नियम संयम नहीं पाल सकते हैं, वह नियम और संयम हम अपने घर में रहकर पाल सकते हैं, इसलिये कभी स्वर्ग जाने की जल्दी मत करना स्वर्ग जाना, घाटे का सौदा है। वह तो ऐसा है कि जाना ही पड़ेगा, उस रास्ते से, इसलिये यदि कोई शॉर्टकट नहीं है, तो वहाँ से जाना पड़ेगा, लेकिन जल्दी जाने की कोशिश मत करना, जितनी मनुष्य भव में साधना कर सको, उत्कृष्ट से उत्कृष्ट साधना करो, ताकि अगले भव में पुन: साधना करके निर्वाण प्राप्त कर सको।

जह-जह मणसंचारा, इंदियविसया वि उवसमं जंति।
तह तह पयडइ अप्पा, अप्पाणं जह णहे सूरो ॥ 30 ॥

अर्थ-

जैसे-जैसे मन का संचार और इंद्रियों के विषय भी उपशमभाव को प्राप्त होते हैं, वैसे-वैसे ही आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को प्रकट करती है। जैसे-आकाश में सूर्य।

मण-वयण-कायजोया, जइणो जइ जंति णिव्वियारत्तं।
तो पयडइ अप्पाणं, अप्पा परमप्पय सरूवं ।। 31 ।।

अर्थ-

योगी के यदि मन, वचन और काय योग निर्विकारता को प्राप्त हो जाते हैं तो आत्मा अपने परमात्मस्वरुप को प्रकट करती है।

मण-वयण-काय रोहे, रुज्झइ कम्माण आसवो णूणं।
चिर-बद्धं गलइ सयं, फलरहियं जाइ जोईणं ।।32।।

अर्थ-

मन, वचन, काय की चंचलता रुकने पर कर्मो का आस्रव निश्चय से रुक जाता है। तब चिरकालीन बंधा हुआ कर्म योगियों के स्वयं गल जाता है और फल-रहित हो जाता है।

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

तत्त्वसार शास्त्र-सार तत्त्व को प्रदान कर रहा है। जैसे-जैसे मन संचार और इंद्रिय के विषय उपशमन को प्राप्त हो जाते हैं, शांत हो जाते हैं, जैसे-जैसे, जितनी-जितनी मात्रा में मन का संचार रुक जाता है, जितनी-जितनी मात्रा में इंद्रियों के विषयों का व्यापार रुक जाता है वैसे-वैसे आत्मा का स्वरूप प्रकट होने लगता है।

यथा यथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।
तथा तथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ।।38 ।। इष्टोपदेश ।।

जैसे-जैसे पंचेन्द्रिय के सुलभ विषय भी रुचिकर नहीं होते हैं, वैसे-वैसे आत्म तत्त्व की संवेदना वृद्धि को प्राप्त होती है। यह है आत्म शांति और आत्मानुभूति का मार्ग, जैसे-जैसे सुलभ विषय भी रूचिकर नहीं होते हैं वैसे-वैसे आत्मा अन्तर्मुखी होता है।

''स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसाय:''।। 6 ।। परीक्षामुख ।।

जब आत्मा का उपयोग (ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी परिणति) विषयोन्मुख न होकर के, स्वोन्मुख हो जाता है स्वोन्मुख होने पर निज की अनुभूति होती है। ज्ञान का पदार्थ में झलकना-संसार है और पदार्थ का ज्ञान में झलकना-कैवल्य दशा है। ज्ञान पदार्थ की ओर नहीं जाये, ज्ञान मन के विकल्पों में न उलझे, ज्ञान इंद्रियों के विषयों में न उलझे, अपितु विश्व के समस्त पदार्थ ज्ञान में झलक आयें, यह विशेषता है।

नाव पानी पर तेरे, लेकिन नाव में पानी न चला जाये। ध्यान देना- नाव में पानी चला गया, तो नाव डूब जायेगी और ज्ञान पदार्थ में चला गया, पदार्थ की ओर चला गया, तो ज्ञान स्वभाव चला गया। जिस ज्ञान से हम, पर पदार्थ को लक्ष्य बना रहे हैं, उसी ज्ञान से निज को लक्ष्य बनाया जाता है। ध्यान देना-ज्ञानी! जिस काँटे से दूसरे का काँटा निकाल रहे हो, उसी काँटे से अपना काँटा भी निकाला जा सकता है। जिस दीपक से दूसरे को प्रकाश दिखा रहे हो, उससे स्वयं को भी देखा जा सकता है।

प्रिय आत्मन्!

अभी तो मुझे, और धीमे चलना है, अभी तो चलने की, आवाज आती है। आचार्य कहते हैं- तन का संचार रोकिये, वचन के संचार को रोकिए, और मन के संचार को भी रोकिए, जब तीनों का संचार रुकेगा, तब इंद्रिय के विषय स्वयं शांत हो पायेंगे। चूल्हे पर से वर्तन को उठाकर के नीचे रख दोगे, तो बर्तन की सामग्री अपने आप ठंडी हो जायेगी, उसी तरह से अपने चित्त को पदार्थों से दूर हटा लोगे, तो धीरे-धीरे चित्त शांत हो जाता है। गृहस्थ दशा ऐसी दशा है, जैसे चूल्हे पर रखा वर्तन है। चूल्हे पर रखे हुये वर्तन की स्थिति क्या होगी ? आग नीचे से जल रही है, ऊपर वर्तन गरम हो रहा है, अब तो कितना भी पानी डालते जाओ। दूध ऊफान लेता है, तो व्यक्ति पानी डालता है, लेकिन जब तक नीचे का ईंधन नहीं हटायेगा, तब तक आग बुझेगी नहीं और दूध का ऊफान बंद नहीं होगा।

आचार्यो ने कहा-जैसे दूध को उफान से बचाने के लिये तत्काल पानी डालते हो। दूसरा उपाय यह है, कि आग को हटा देते हैं, शांत कर देते हैं, इसी तरह श्रावक की दशा और मुनि की दशा में एक अंतर है, जो गृहस्थ जीवन है चूल्हे पर रखे हुये बर्तन की तरह तप रहा है, वहाँ पंचेन्द्रिय विषयों की सामग्री-ईधन है, वह हैं मन के अंदर उपस्थित विषय कषाय। और साधु के साथ उस ईंधन से परे-चूल्हे पर से उतरी हुयी बटलोई की तरह, कब तक गरम रहेगी? वह धीरे-धीरे जैसी ठंडी होती जाती है, उसी तरह से जिसने गृह का परित्याग कर दिया है, धीरे-धीरे उसके विषय कषाय स्वयं शांत होने लगते हैं, क्योंकि पंचेन्द्रिय के विषय कषाय की सामग्री का ईंधन उसे नहीं मिलेगा।

आचार्य देव कहते हैं-जैसे-जैसे मन का संचार रुकता है और इंद्रिय के विषय अरुचि को प्राप्त होते हैं, तो आत्मा प्रकट होता है, आज का मौसम कुहासा छाया है, जैसे-जैसे कुहासा शांत होगा, वैसे-वैसे सूर्य दमकने लगेगा। सूर्य का उदय हुआ कि नहीं हुआ? उदय तो हो गया है, किंतु हमें दिखाई नहीं दे रहा है, उसी तरह से मेरा प्रभु मेरे भीतर है, किंतु आवरण के कारण दिखाई नहीं पड़ रहा यदि सूर्य आज दिखाई न दे, तो क्या यह मानोगे, कि सूर्य अभी उदयाचल पर ही नहीं आया? नहीं, आ तो गया है। लेकिन कुहासे का आवरण, मेघों का आवरण, इतना है कि प्रकट नहीं हो पा रहा है, लेकिन वह अपनी ताकत पूरी लगाये है, जल्दी से जल्दी प्रकट होने के लिये तैयार है। वैसे ही मेरी आत्मा भी परमात्मा बनने के लिये पूरी तैयारी में है, लेकिन कर्मो का आवरण जो है, वह जैसे-जैसे हटे, जैसे-जैसे मन का संचार, मन की चंचलता, मन की व्यग्रता शांत हो, मन एकाग्र हो। आचार्य भगवन् कहते हैं-जैसे जल में कल्लोलें शांत हो जाने पर, निर्मल जल की सतह में पड़ा हुआ, माणिक मोती हीरा दिखाई देने लगता है, वैसे ही आत्मा पर से, मन की चंचलता समाप्त हो जाये, तो तेरा ब्रह्मस्वरुप परमात्मा प्रकट हो जायेगा। जैसा आकाश में सूर्य प्रकट हो जाता है, वैसे ही आत्मा में परमात्मा प्रकट हो जाता है।

आत्माराम को पाने के लिये, इंद्रिय के विषयों को विराम ही तो देना है। मन का संचार ही तो रोकना है, स्वरूपाचार के लिये। तीन शक्ति हैं-तन की,वचन की और मन की, तन के संचार से ज्यादा वचन का संचार, वचन के संचार से ज्यादा मन का संचार होता है। तन से आप एक मिनिट में कितने चल पाओगे? सौ मीटर चल लोगे। लेकिन वचन की गति तन से बहुत अधिक है, पर मन से तीन लोक की यात्रा, बैठे-बैठे जीव कर लेता है। तो सबसे ज्यादा संचार क्षेत्र किसका है, तन का ? कि वचन का ? कि मन का है ? मन का है।

आचार्य देव कहते हैं, मन के संचार को रोकिये, मन चलता है दिखाई देता नही। तन चलता है, दिखाई देता है, तो तन को रोक लेते हैं। बोलने लगे तो कह देते हैं, चुप हो जाओ लेकिन मन को कैसे रोकें? आचार्य कहते हैं।

''श्रुतमनिन्द्रयस्य'' ॥ तत्त्वार्थसूत्र ॥

मन को श्रुत के चिंतन में लगा देने से मन अशुभ नहीं होता और जब शुभ का उत्कर्ष प्राप्त करता है तो शुद्ध स्पर्श भी संभव हो जाता है इसलिये जब तुम्हारा मन, वचन, काय तीनों योग निर्विकार हो जायेंगे, तो आत्मा में परमात्मा प्रकट हो जायेगा। ध्यान देना-या तो जल उबल रहा हो, या जल मलिन हो तो दोनों में प्रतिबिम्ब झलकता नहीं है, उसी तरह मन में विकल्प होने पर आत्म स्वरूप झलकता नहीं है।

''काय-वाङ्.मनः कर्म योगः''।। तत्त्वार्थसूत्र ।।

तीन योगों में सबसे ज्यादा शक्ति मनोयोग की है, काययोग-तो इस जीवन को अनादि से मिला है, और जो वचन योग मिला है-वह दो इंद्रिय की पर्याय से मिला है, भाषा वर्गणा-दो इंद्रिय की पर्याय से मिली है और मन-संज्ञी पंचेन्द्रिय में मिला है। काय का आकार बड़ा है, औदारिक शरीर-स्थूल शरीर है, वचन-उससे सूक्ष्म है, मन-उससे भी सूक्ष्म है, आकार- प्रकार की दृष्टि से देखते हैं, तो तन से वचन सूक्ष्म है और वचन से मन सूक्ष्म है, लेकिन शक्ति की अपेक्षा देखें तो तन की शक्ति की अपेक्षा-वचन की शक्ति असंख्यात गुणी है, और वचन की शक्ति से-मन की शक्ति असंख्यात गुणी है, तन को वश में करने के लिये जितनी शक्ति लगेगी, वचन को जीतने के लिये असंख्यात गुणी ताकत लगाना पड़ेगी।

ध्यान देना-एक जगह बैठना आसान है, पर मौन बैठे रहना, उससे भी कठिन है। यद्यपि काय योग को वश में करने के लिये, कथंचित बैठना आसान है लेकिन बैंठे और बोले न, यह बहुत कठिन है। ज्ञानियो ! काय योग की शक्ति कम है, तो उसको जीतने में भी शक्ति कम लगती है। वचन योग उससे असंख्यात गुणा शक्तिशाली है। वचन योग से, काय योग के द्वारा कितने कार्य सम्पन्न कर सकते हो ? असंख्यात गुणा और असंख्यात गुणा कर्म का आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा भी हो सकती है। जितने काम तुम दिन में शरीर से करते हो, उससे असंख्यात गुणे काम तुम वचन से करते हो, और जितने कार्य वचन से करते हो उससे ज्यादा कार्य मन से करते हो।

आचार्य भगवन् कहते हैं। रोकने का क्रम क्या है? मन को रोकने के लिये-मन को नहीं रोक सकते तुम, सबसे पहले तन को रोका जा सकता है, फिर वचन को रोका जाता है। फिर मन को रोका जाता है। यह स्थिति क्रम है, काय योग, वचन योग, मन योग। योग क्या है? आत्म प्रदेशों में होने वाला परिस्पन्दन योग है। बल को नहीं रोको, योग को रोको। बल हानि कारक नहीं है, योग हानि कारक है। यह त्यागीव्रती बल को घटाते हैं, जबकि इन्हें बल नहीं घटाना चाहिये, योग घटाना चाहिये।

ध्यान देना-सर्वार्थ सिद्धि का देव क्या बलशाली नहीं है? जम्बूद्वीप को पलट सकता है इतना बलशाली है, लेकिन योग रोक रहा है। मन बल, वचन बल, काय बल, बल तो तीनों होना चाहिये, लेकिन योग नहीं होना चाहिये, बिना बल के कल्याण नहीं होगा, लेकिन योगों को रोकेगा नहीं तो कल्याण नहीं होगा। साधना के लिये बल की आवश्यकता है और विराधना के लिये भी योगों की आवश्यकता है। पुण्य के लिये बल की आवश्यकता है, और पाप के लिये भी योग की आवश्यकता है। धर्मध्यान-

शुक्लध्यान के लिये बल की आवश्यकता है, आर्त-रौद्र ध्यान के लिये भी योग की आवश्यकता है। बल में आत्म प्रदेशों का परिस्पन्दन नहीं है। बल आस्रव बंध नहीं कराता है। आस्रव, बंध, योगों से होता है, इसीलिये बल को घटाने की बात नहीं कही, योगों को रोकने की बात कही है। अधिकांशत: यह होता है, जो नये-नये त्यागी बने, उन्होंने बल को घटाना कम कर दिया। ज्ञानी! उन्होंने जैनागम का अभ्यास नहीं किया है, जब जैनागम का अभ्यास करेंगे, तो यह पायेंगे, कि जैनागम कहता है-कि बल को नहीं घटाओ, बल को तो प्रकट करना है, लेकिन योगों की चंचलता को रोको।

प्रिय आत्मन्!

बल के द्वारा तो साधना करना है। यदि बल ही नहीं होगा, तो तुम कैसे बैठोगे सामायिक में तीन-चार घंटे? इसीलिये बली तो बनो, यदि बली नहीं बन सकते, तो बाहुबली बनो। बाहुबली बनोगे, तो कर्म दली बनोगे। और बली नहीं बन पाये, बाहुबली नहीं बन पाये, तो फिर दल-दली बन जाओगे। जिसमें बल नहीं होता है, वह दल-दल में फंस जाता है, इसलिये ज्ञानी जीवो! आचार्य देव कहते हैं-निर्बल नहीं सबल बनो, पर योगों की चंचलता को रोको। आप देखिये-वज्र वृषभ नाराच संहनन से मुक्ति होती है। वह सर्वोत्कृष्ट बल होता है, तो भैया मुक्ति पाने के लिये बल की आवश्यकता है, लेकिन योगों की चंचलता होगी, तो शुक्लध्यान नहीं बनेगा।

हमने साधना का लक्ष्य बनाया और अनेक उपवास व्रत करना प्रारंभ किया, शरीर की शक्ति को नहीं पहचाना और शरीर में प्रतिरोधक क्षमता कम हो गयी और साधक बीमार पड़ने लगा। यह जैनागम के विषय को न समझने के कारण, जबकि जैनागम कहता है कि बल नहीं घटाओ, योगों की चेष्टाओं को रोको। हमने उपवास भी कर लिया और दिन भर परिश्रम भी कर रहे है। पर जैन दर्शन तो कहता है, उपवास के दिन मंदिर में रहो, स्वाध्याय में रहो, दिनभर सामायिक करो, अर्थात योगों की चेष्टा को रोकिये ! चित्त को एकाग्र करिये, यह फायदे हैं उसके।

उपवास बल को घटाने के लिये नहीं, आत्म-बल को प्रकटाने के लिये किया जाता है। जैसे-जैसे मन, वचन, काय योग निर्विकारता को प्राप्त होते हैं, मन, तन, वचन को समाप्त नहीं कर सकते आप। आचार्य देव कहते हैं-लेकिन मन निर्विकार तो हो, अपने यहाँ तन को दण्डित, मण्डित नहीं किया जाता है, मात्र पण्डित किया जाता है। पण्डित का तात्पर्य होता है-मुनि दशा, छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि को पण्डित कहते हैं। निर्विकार तन, मन, वचन पण्डित दशा है। पण्डित- पण्डित अरहंत को कहते है।

तन को दण्डित नहीं करना है, बाँध के नही रखना है। अन्नपान निरोध करना, तो अतिचार बताया है लेकिन ज्ञानी जीव ! साधना के लिये क्रम है, उस क्रम से आगे बढ़ो।

वह काम करो-जो गुरु को दिखा सको। वह बात कहो-जो शास्त्रों में लिखा सको। वह काम करो-जो दुनियाँ का दिखा सको। वह बात कहो-जो इतिहास में लिखा सको। काम करने के पहले सोच लो, कि यह काम मैं अपने गुरु को दिखा सकता हूँ-कि नहीं। बात कहने के पहले सोच लो, क्या यह बात में शास्त्र में लिखा सकता हूँ-कि नहीं। जो बात शास्त्र में न लिख सके उस बात को मत कहना। और जो बात गुरुजनों को, पूज्यजनों के सामने न कही जा सके उस बात को मत करना।

प्रिय आत्मन्!

मन में राग द्वेष जागृत नहीं होना यह मन की निर्विकारता है। वचन में असत्य भाषण और विकथा का उच्चारण न हो, यह वचन की निर्विकारता है। और तन में जम्हाई, आलस, निद्रा और हिंसादि पाँच पाप तन से न हो, यह तन की निर्विकारता है। नियमसार जी में आचार्य कुंदकुंद देव ने ऐसा कहा है।

जब आप पूड़ी को कड़ाई में डालते हो और डालने के बाद उसको दबा देते हो तो वह फुलती है। उसी तरह जैसे-जैसे आप इंद्रियों के विषयों को दबा देंगें, तो निर्विकार दशा प्रकट होगी। जैसे- आप कुकर लगाते हो, ऊपर से ढक्कन बंद कर देते हो, तो पदार्थ जल्दी गरम हो जाता है। उसी तरह आचार्य कहते हैं-मौन ले लिया, शक्ति व्यय नहीं होगी, उतनी शक्ति आत्म ध्यान में लगेगी। आत्मा एक है, उसके उपयोग को नाना जगह भटकाते हैं काय योग, वचन योग और मन योग के माध्यम से। कमाने वाला एक और खर्च करने वाले तीन। और जितना तन खर्च कर रहा है, उससे असंख्यात गुणा वचन कर रहा है क्यों? दस किलोमीटर चल लो या एक घंटे बोल लो, बराबर मेहनत है। और एक घंटे बोल लो या एक मिनिट सोच लो, एक मिनिट के गुस्सा करने में इतनी ताकत है। क्योंकि दस किलोमीटर चलने की ताकत एक घंटे के बोलने में और एक घंटे बोलने की ताकत एक मिनिट के सोचने में अब सोचिये कितनी शक्ति हम योग के माध्यम से नष्ट करते हैं।

आचार्य देव कहते हैं-बल को योगों के माध्यम से तुम दुरूपयोग करते हो। बल का सदुपयोग करना साधना है, और बल का दुरूपयोग करना विराधना है। गुरुदेव कहते हैं ''योगी ही नहीं, उपयोगी भी बनो''। योग है तो योग को सम्हालना उपयोग है। महाराज ! मन जाता है, तो क्या करें? ज्ञानी ! मन जाता है, तो पहले वचन को नियंत्रण करो। और वचन के पहले तन को नियंत्रण करो।

आचार्य श्री के पास रक्षाबंधन पर बहनें पहुँची-तो आचार्य श्री ने यह कहा कि सबसे पहला रक्षाबंधन काय योग से प्रारंभ होता है। फिर दूसरा रक्षाबंधन वचन योग को वश में करने से होता है। तीसरा रक्षाबंधन मन योग को वश में करने से होता है। आचार्य श्री कहते हैं- इस तत्त्व को समझो। हम रक्षा की बात करते हैं, जब तक हमारा काय योग ही हमारे वश में नहीं है, तो दूसरे से रक्षा की क्या बात करेगें? वचन योग-रक्षा का दूसरा कवच है और मन योग-को वश में करना यह तीसरा रक्षा कवच है।

जैसे मंदिर के भगवान के तीन दरवाजे-बाहर का गेट, दूसरा गेट, फिर तीसरा गेट और चौथे पर बाहुबली। ऐसे ही काय का दरवाजा, फिर वचन का और फिर मन का। जब इन तीनों के बाद दर्शन मिलता है जैसे-यदि कोई स्वर्णकार है और उसे अपने हीरे जवाहरात निकालना है, तो क्या करेगा? पहले तो बाहर का दरवाजा बंद करके आयेगा, फिर दूसरा दरवाजा बंद करेगा, फिर तीसरा दरवाजा भी बंद करता है, फिर तिजोरी का दरवाजा खोलता है, तिजोरी का दरवाजा खोलना है, तो पहले बाहर के सब गेट बंद कर देता है। उसी तरह से मन, वचन, काय के योगों के तीनों दरवाजे बंद करने के बाद, अपने भीतर का परमात्मा रूपी द्वार का उद्घाटन होता है। जहाँ तुम्हारे ज्ञान का खजाना है, जहाँ तुम्हारे चारित्र का खजाना है, उसे देखने के लिये एकांत चाहिये।

भैया जब तुम अपनी तिजोरी खोलते हो, तो कहते कि छोटे बच्चों को सो जाने दो पहले, और सब दरवाजे बंद हैं, कि नहीं हैं, नीचे का दरवाजा पहले बंद, फिर उसके बाद दूसरा दरवाजा बंद, फिर उसके बाद तीसरा दरवाजा बंद, उसके बाद सब सो गये, कि नहीं सो गये, फिर देखते है। मात्र जिम्मेदार व्यक्ति ही तिजोरी तक जाते हैं, जो उसकी सुरक्षा कर सके उसी तरह आत्मा के दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी धन के पास कौन पहुँच पाते है? क्या सब पहुँचते हैं? नहीं पहुँचते।

ज्ञानी जीव ! बहुत बिरला ही समय निकालता है कभी-कभी तो घर में भी सोचते हैं कि मुख्य तिजोरी किस दिन खोली जाये। ध्यान देना-सबके बीच में मुख्य तिजोरी नहीं खुलती। बोलो! क्या घर में जब भीड़ हो, उस दिन तुम खोलते हो? नहीं। उसी तरह भीड़ में नही खुलती, तिजोरी। तिजोरी तो एकांत में खुलती है, उसी तरह निजआत्मा के परमात्म स्वरूप कि जो दशा है, वह कब प्रकट होती है? क्या चंचलता में? नहीं। जब योग निश्चल हो जाते हैं, मन शांत हो जाता है, तब कहीं आत्मा के अनंत गुणों के, धन रूपी तिजोरी, यह आत्मा खोल पाता है। उठाने की तो बात अलग है, देखने के लिये भी शांति चाहिये। ध्यान देना-अन्यथा कोई दूसरा देख भी न पाये। जैसी उस तिजोरी की विशेषता है, उसी तरह इस आत्म तिजोरी की विशेषता है।

सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र जिसमें यह तीन जोड़ के रखे हैं, वह तिजोरी है। इन तीनों की जोड़ी जहाँ हो, वह है तिजोरी। उस तिजोरी को देखो, उस तिजोरी को खोलो, जो तिजोरी आज तक नहीं खोली है। उसे तिजोरी क्यों कहते हो? ध्यान देना-वह तुम्हारे लोहे की तिजोरी की बात नहीं, अपने भीतर जो तिजोरी है, जिसमें सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को जोड़कर रखा जाये, वही सच्ची तिजोरी है। व्यवहार, निश्चय रत्नत्रय रूपी अपने भीतर के खजाने को देखना ही, सच्चा दर्शन है।

आचार्य देव कहते हैं। मन, वचन काय तीनों दरवाजों को तुम बंद कर आओ, उसके बाद भीतर में आओ, तब फिर तुम तिजोरी खोल पाओगे। एकाग्रता की चाबी लगाओ, शुद्धोपयोग यही तो है। जब तक तुम्हारा दरवाजा खुला है, काय का, वचन का, मन का, तो कहाँ तुम भीतर प्रवेश करोगे, तिजोरी वाले कक्ष में? नहीं प्रवेश कर सकते। आत्मा का जो परम उत्कृष्ट स्वरूप है, कहीं अन्य जगह से प्रकट नहीं होता है। ध्यान देना-तेरा माल तो तेरी ही तिजोरी में रखा है, मात्र खोलने की आवश्यकता है। वस्तु स्थिति यह है, कि एक परिवार में सेठ जी का निधन हो गया, इकलौता बालक, सम्पत्ति का मालिक, तो सरकार ने सम्पत्ति अपने पास जमा कर ली। बालक को निश्ंचित कर दिया, कि इसकी शिक्षा का जो खर्च है, वह सरकार देगी। कब तक? जब तक यह बालक नाबालिक रहेगा, तब तक। छोटा सा बच्चा भी यही जान रहा है, कि मेरी न माँ है, न मेरे पिता है और मैं सरकार के आश्रित हूँ, लेकिन बड़ा होने के बाद, पड़ोसी से मिला, कि मुझे शिक्षा के लिये छात्रवृत्ति चाहिये। पड़ौसी बोला-आप अठारह वर्ष के हो गये हो और तुम्हारे पिता की सम्पत्ति इतनी है सरकार के पास, कि तुम्हें किसी से लेने की आवश्यकता नहीं है। तुम अदालत में एक प्रपत्र लगाओ, निवेदन करो-कि मेरी सम्पत्ति का हकदार मैं हो चुका हूँ। तो वह सम्पत्ति उसे मिल गयी, उसी तरह अभी तक मैंने अपनी आत्म सम्पत्ति को नहीं पहचाना और मैं दूसरे से सुख माँगता रहा, स्पर्शन इंद्रिय तू मुझे सुख दे जा। रसना इंद्रिय तू मुझे सुख दे जा। घ्राण इंद्रिय तू मुझे सुख दे जा।

जैसे वह छोटा सा बालक कभी किसी से रुपये माँगता है कभी किसी से माँगता है, ऐसे में, मैं उस दीन हीन के सदृश इंद्रियों से सुख माँग रहा हूँ, लेकिन ज्यों ही ज्ञानी आचार्य की संगति मिली, कि भो ज्ञानी! तू क्या दीन दरिद्र बना बैठा है, तेरे पास तो अनंत सुख का भण्डार है तू अपने आत्मस्वरुप के अंदर प्रवेश कर, तुझे अनंत सुख का दर्शन मिलेगा।

प्रिय आत्मन्!

यही स्थिति है, कि आप बहुत सम्पत्तिवान् हैं, आत्मा का सुख अनंत सुख है, लेकिन इंद्रियों से

हम माँग रहे हैं, क्योंकि मेरा सुख, मेरा खजाना, मेरी निधि बताने वाला कोई है ही नहीं। मिलता ही नहीं। कौन बताये कि मेरे पास क्या है? जैसे उस शिशु को कोई बताने वाला नहीं, उसी तरह मुझे अब तक किसी ने नहीं बताया। लेकिन जब मैं संज्ञी पंचेन्द्रिय भव्य जीव, उत्तम कुल, उत्तम देश, उत्तम धर्म में आया और साधु संगति में आया, तब मुझे गुरुदेव ने बताया, कि हे आत्मन्! तेरे पास स्वयं अनंत सुख का भण्डार है। तू किससे माँग रहा है? गुरू क्या सुख देंगें? नहीं देंगें? तू अपने भीतर से सुख को प्रकट कर ले, क्या-तू एक लौटा पानी यहाँ से माँगता वहाँ से माँगता है। तू अपने अंदर आत्मा के आँगन में देख, तेरे आँगन में स्वयं कुआँ तैयार है।

सुख शांति अपने भीतर में है-लेकिन हम खोजते बाहर में है। जब मन, वचन, काय यह तीनों रुक जाते हैं, तो कर्मो का आस्रव भी रुक जाता है। मन, वचन, काय की प्रवृत्ति आस्रव का द्वार है और इसको बंद कर दिया, तो आस्रव भी नहीं होगा। तो पूर्वकृत कर्म जो हैं, वे छूट जायेगें। और नवीन आयेगें नहीं।

प्रिय आत्मन्!

क्षुल्लक गणेश प्रसाद वर्णी जी बहुत अच्छी बात कहते थे। जैसी भूमि होती है, वैसा जल होता है, भूमि बदलती है, तो जल बदल जाता है। और राजा बदलता है, तो प्रजा बदल जाती है। और भाषा बदलती है, तो भाव बदल जाते हैं। ज्ञानी जीव! ध्यान देना-हमारे आचार्यो ने जो हमें सम्पदा प्राप्त कराई है वह निरंतर दो हजार वर्षो से, हमारे उपयोग में आ रही है। साहित्य सम्पत्ति होती है, विश्व की सबसे बड़ी सम्पदा जैनों के पास है वह है, सन्त साहित्य, पुरातत्त्व सम्पदा। यह सम्पत्ति ही विश्व की सर्वोत्तम सम्पत्ति है और इस सम्पत्ति को यदि सुरक्षित रख लिया, तो तुमने सब कुछ सुरक्षित रख लिया और यह सम्पत्ति खो दी, तो सब कुछ खो दिया।

(चतुर्थ पर्व)

ण लहइ भव्वो मोक्खं, जावय परदव्ववावडो चित्तो।
उग्गतवं पि कुणंतो, सुद्धे भावे लहुं लहइ ॥ 33 ॥

अर्थ-

जब तक मन पर द्रव्यों में व्यापृत (व्यापार युक्त) है तब तक उग्र तप को भी करता हुआ भव्य जीव मोक्ष को नहीं पाता है। किंतु शुद्ध भाव में लीन होने पर शीघ्र ही पा लेता है।

परदव्वं देहाई, कुणइ ममत्तिं च जाय तेसुवरिं ।
परसमयरदो तावं, बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं ॥34॥

अर्थ-

देहादिक पर द्रव्य है, और जब तक जीव उनके ऊपर ममत्व भाव करता है, तबअ तक वह पर समय में रत है, अतएव नाना प्रकार के कर्मो से बंधता है।

रूसइ तूसइ णिच्चं, इंदियविसएहि वसगओ मूढो ।
सकसाओ अण्णाणी, णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥35॥

अर्थ-

इन्द्रियों के विषयों में आसक्त मूढ़ कषाययुक्त अज्ञानी पुरुष नित्य किसी में रूष्ट होता है और किसी में संतुष्ट होता है। किन्तु ज्ञानी पुरुष इससे विपरीत स्वभाव वाला होता है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

तत्त्वसार का सार तत्त्व हम प्राप्त कर रहे हैं। आचार्य देवसेन स्वामी की मंगलमयी वाणी, अध्यात्म की मंगलमयी देशना, भारतीय-संस्कृति-अध्यात्म की शिरोमणि संस्कृति है, अखिल विश्व में अध्यात्म की पराकाष्ठा यदि कहीं है, तो एक मात्र भारत देश में है, जहाँ अध्यात्म होगा-वहाँ शांति होगी। यदि भारत देश में शांति है, तो इस शांति का मूल कारण-अध्यात्म है, यदि अध्यात्म मजबूत है तो शांतिमयी जीवन जी सकते हैं। विश्व के अन्य देशों में शांति की मात्रा कम है, भारत आत्मशांति का परम स्थान है। आत्म शांति के आवश्यक तत्त्वों में सर्व प्रथम तत्त्व है-अध्यात्म। उस अध्यात्मिक तत्त्व का मूल है, इंद्रिय दमन, कषाय जय, विषय विजय। यह भारतीय संस्कृति के प्राण तत्त्व हैं, यही कारण है भारत और भारतीय दोनों शांतिमय जीवन जीते हैं, जीवन का लक्ष्य और सिर्फ अंतिम लक्ष्य शांति है।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य भगवन् कहते हैं-कि भव्य जीव मोक्ष पाता है, अभव्य जीव मोक्ष नहीं पाता है किंतु हे भव्य ! मोक्ष पाने के लिये साधन नहीं जुटाना, साधना में जुट जाना, यदि तू साधन जुटायेगा-तो साधना नहीं जुटा पायेगा, साधना में नहीं जुट पायेगा और साधना में जुटेगा तो साधन नहीं जुटा पायेगा, दोनों पूरब पश्चिम हैं, या तो साधन जुटा ले, या साधना में जुट जा, जब तक हम साधनों को जुटाने में जुटे रहेंगे, तब तक साधना में नही जुट पायेंगे।

आचार्य कहते हैं-भव्य जीव मोक्ष नहीं पाता है। कब तक नहीं पाता है? पूरा सुनना अधूरा मत सुनना। कम पानी और कम ज्ञान दोनों कीचड़ पैदा करते हैं, इसलिये पूरा सुनना। भव्य जीव मोक्ष नहीं पाता है, महाराज ! मोक्ष तो भव्य जीव ही जाता है, अभव्य को मोक्ष होता ही नहीं है, शास्त्र में लिखा है। हे ज्ञानी! भव्य जीव तो मोक्ष जाता है, लेकिन भव्य जीव भी कब तक नहीं जाता है, जब तक परद्रव्य में व्याकुल चित्त रहता है। पर पदार्थ में पर वस्तुओं में पर द्रव्य में परिग्रह में परिणाम बनायेगा-तब तक वह परद्रव्य के आधीन होगा। और जब तक पराश्रित है, तब तक मोक्ष की कल्पना नहीं है। जब यह जीव स्वाश्रित हो जाता है, आत्माश्रित होता है, तब मुक्ति का मार्ग प्रारंभ होता है।

प्रिय आत्मन्!

मोक्ष तो भव्य ही जायेगा लेकिन कौन सा भव्य? यदि परद्रव्य में व्याकुल-आसक्त, मोही, रागी, द्वेषी हो रहा है, ऐसे परद्रव्य के अधीन पराधीन रहने वाला, कर्माधीन रहने वाला, वह आत्मा निश्चय मुक्ति

मार्ग में प्रवेश ही नहीं कर पाता है। वह तपस्या तो करता है? तपस्या तो करेगा क्योंकि, तपस्या करने में हानि नहीं है, लेकिन अध्यात्म की उस भूमिका में प्रवेश नहीं कर पायेगा क्योंकि, व्यवहार में रहते हुये परद्रव्य के संबंध में रहेगा। यह चेला, यह चेली, यह समाज यह संघ, यह विकास कार्य। आचार्य कहते हैं-यह सब चित्त को व्याकुल बना देते हैं, यह कोई महानता नहीं है, पर को सम्हालना कोई महानता नहीं है, यह भी एक प्रकार का पागलपन है। जिस क्षण तू निज में ठहरेगा तब तुझे यह पागलपन नजर आयेगा, कि मैं इतने आत्मा के आनंद को छोड़कर के पर में लग जाता हूँ।

ज्ञानी ! ध्यान देना-यह कोई महानता नहीं है इनको सम्हालना, उनको सम्हालना। अपने आप में सम्हलना साधना है। जिस दिन तू सम्हल जायेगा, उस दिन सब हल हो जायेगा अथवा यह कहो समभावों में हल है और विषम भावों में समस्या है। सम्हलो और सम्हालो। यह है स्थितिकरण और हम स्वयं परद्रव्य में लीन हो जायें, पर पदार्थों में लीन हो जायें, पर पर्यायों में चले गये। आचार्य कहते हैं-

"पज्जय मूढा पर समय:"

ज्ञानी! पर्याय में मूढ मत हो जाना-यह पुत्र बालक, युवा, स्त्री, पुरुष मात्र पर्याय है। ध्यान देना-ज्ञानी ! पता नहीं पड़ता, कब पर्याय का नाश हो जायेगा, द्रव्य तो शाश्वत है, रहेगा, लेकिन पर्याय की चकाचौंध में तू अपने स्वभाव को मत भुला देना। मोह से ढका हुआ ज्ञान-स्वभाव को नहीं पाने देता है। और मोही जीव पर्याय में लीन हो जाता है। ध्यान देना-चारुदत्त पर्याय में ही तो लीन हो गया। तू पर पर्यायों में लीन हो जायेगा और एक क्षण वह आयेगा, कि जब राख में विलीन हो जायेगा। जिस पर्याय में तू राग कर रहा है, वह पर्याय राख हो जायेगी। लेकिन तू सदा क लिये परिभ्रमण करने वाला हो जायेगा। पर्याय को देखकर परिणाम मत बिगाड़ना, पर्याय को देखकर परिणाम सुधार सको, तो पर्याय को देखना। जिस पर्याय को देखकर परिणाम बिगड़े, उस पर्याय को मत देखना। जिस पर्याय को देखकर परिणाम सम्हले, उस पर्याय को देखना।

प्रिय आत्मन्!

अपनी भावी सिद्ध पर्याय को निहारो, क्या भूत को निहारते हो? स्त्री में ईश्वर को निहारो, परिणाम शुद्ध हो जायेगें। कल्पना ही तो है जैसी कल्पना होगी वैसी भावना होगी। बिना सत्य के कल्पना होती नहीं है। ज्ञानी ! आचार्य महावीरकीर्ति महाराज कहते थे एक कायोत्सर्ग के काल तक तू भावना अच्छी बनायेगा, तो तेरे मन के विकार पलायन कर जायेंगे। तपस्या तो उग्र कर रहा है, लेकिन आसक्ति पर में है तो आचार्य कहते हैं-इससे कल्याण होने वाला नहीं है।

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण।
पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं ।।2।। समयसार।।

जो पौद्गलिक कर्म प्रदेशों में और उनके फलों में आसक्त है-वह परसमय है। आचार्य कहते हैं- शरीर क्या है? पौद्गलिक कर्म की परिणति है, या नो कर्म है और कर्म में तू आसक्त है, किसको चमका रहा है? नोकर्म को ही तो चमका रहा है।

प्रिय आत्मन्!

शरीर, कर्म, अज्ञान, मोह, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया और लोभ भी पर द्रव्य है, जितने भी विभाव परिणाम हैं वह स्वद्रव्य नहीं है। जो तुमसे छूट जाये वह तुम्हारा नहीं है जो तुमसे न छूटे वह तुम्हारा मानो इसी तरह जो-जो परिणाम किसी भी क्षण छूट जाते हों-वह तुम्हारे नहीं हैं, पर द्रव्य है और पर द्रव्य में चित्त पागल हो जाता है। क्यों इतने वावले हो रहे हो, क्यों धैर्य खो रहे हो।

जब चित्त पर द्रव्य में चला जाता है, तब आचार्य भगवन् कहते हैं।

यत्रैवाहितधीः पुंसः, श्रद्धा तत्रैव जायते।
यत्रैव जायते श्रद्धा, चित्तं तत्रैव लीयते ।।95।। समाधितंत्र ।।

जहाँ व्यक्ति की बुद्धि जाती है, वहाँ उसकी श्रद्धा जाती है, पहले बुद्धि जाती है फिर श्रद्धा जाती है और जहाँ श्रद्धा जाती है चित्त वही पर लीन हो जाता है। अब प्रश्न आता है माला में मन नहीं लगता, स्वाध्याय में मन नहीं लगता, यह प्रश्न बाद में है, पहले माला की महिमा या स्वाध्याय की महिमा ही मालूम नहीं है आचार्य समंतभद्र लिखते है।

अधिगत-मुनि-सुव्रत-स्थिति, र्मुनि-वृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः।
मुनि- परिषदि निर्बभौ भवा, नुडु-परिषत्यपरिवीत-सोमवत् ।।111।। स्वयंभू स्त्रोत ।।

हे मुनिसुव्रत भगवान आपने व्रतों को अपने में स्थित करके व्रतों की महिमा को जाना है। हे मुनिसुव्रत ! भगवान आपने पहले अपने हृदय में व्रतों को स्थित किया, आत्मा के भीतर व्रतों को आरोपित किया, आत्मा में व्रतों को समाहित किया, फिर जाना है इतने काल तक व्रतों में रहे, कि प्रत्येक व्रत की स्थिति आपको समझ में आ गयी और आप निर्दोष मुनि हुये, तो मुनियों की सभा में आप शोभा को प्राप्त हुये, जैसे-नक्षत्रों के बीच में चन्द्रमा शोभा को प्राप्त होता है।

प्रिय आत्मन्!

यह है जिनेन्द्र की महिमा, व्रतों की महिमा व्रतों को जानने के लिये है वावले नहीं होना, पर द्रव्य अनंतों बार मिले हैं, पर पदार्थ अनंतों बार मिले हैं, यह संतान, परिवार, वस्तु, परद्रव्य अनंतों बार इस जीव ने पाये हैं, लेकिन उन अनंतों बार पाने के बाद भी एक बार भी निजद्रव्य पर दृष्टि नहीं गयी, पर द्रव्य में जीव इतना आशक्त हो जाता है, कि निज पर दृष्टि ही नहीं जाती है।

परमात्म प्रकाश में आचार्य योगेन्द्र देव ने संसार का वर्णन किया है, यह संसार है। जिनवाणी माँ आचार्य परमेष्ठी से कहती है-हे आचार्य! हे उपाध्याय देव ! आप जाओ-वह जीव संसार में भटक रहा है, उसे उपदेश दो, तो आचार्य भगवन् कहते हैं-हे जिनवाणी ! माँ, हे श्रुतदेवी ! माँ, हे सरस्वती देवी !, वो जीव इतनी आसानी से नहीं सुनेगा, यह आप जानती हैं माँ ! जिनवाणी करुणावश फिर बोलती हैं-जाओ प्रवचन देकर आओ, उपदेश दो। आचार्य, उपाध्याय परमेष्ठी आपके बीच में आते हैं। आपसे पूँछते हैं-हे भव्य ! आप कैसे हैं? इस संसार रूपी वन में जीवन रूपी वृक्ष की आयु रूपी डाली पर क्यों लटके हो? हे ज्ञानी ! मृत्यु रूपी काला हाथी आपके पीछे दौड़के आ रहा है, आप जीवन रूपी वृक्ष की डाली पर लटके हुये हो। उस मृत्यु रूपी काले हाथी की ओर देखो, जो तेरे जीवन रूप वृक्ष को पकड़े हुये है, हिला रहा है।

बाल सफेद हो गये, प्राणी ! जीवन रूपी वृक्ष तुम्हारा हिलने लगा है। कानों से कम सुनाई देने लगा है। आँखों से कम दिखायी देने लगा है। प्रति समय बुढ़ापा आ रहा है, यह मत समझना कि बुढ़ापा एक दिन में आयेगा। ध्यान देना-प्रति समय बुढ़ापा आता है, प्रति समय जनम हो रहा है, तो बुढ़ापा क्या एक क्षण में आयेगा ? इस जीवन रूपी वृक्ष की, आयु रूपी डाली पर, जीव लटका हुआ है, कृष्णपक्ष और शुक्ल पक्ष रूपी दो चूहे, उस आयु रूपी डाली को अपने दाँत से काट रहे हैं, पर प्रतिपल उसे ज्ञात है, कि मेरी आयु भी बीतती जा रही है, आयु गलती है पर तृष्णा नहीं गलती है। व्यक्ति ऊपर निहार रहा है, कि ऊपर छत्ता लगा है और शहद टपक रही है।

ज्ञानी ! वह अज्ञानी जीव, ऐसे क्षणों में नीचे क्या देखता है? एक कुँआ है, कुँआ में चार गति के चार साँप हैं और बीच में एक निगोद का अजगर है, और यह चतुर्गति रूपी चार साँप तुझे काटने के लिये तैयार बैठे है और निगोद का अजगर भी है, यदि डाली टूटती है, तो तू नीचे कुँए में गिरेगा। ओहो! आकाश मार्ग से निकलती हुयी देवी ने देव से कहा, हे देव ! देखो तो एक व्यक्ति वृक्ष पर लटका है। ओहो स्वामी ! नीचे कुँआ है, उसमें चार साँप हैं, एक और बड़ा अजगर भी है, इतने पर भी एक हाथी वृक्ष को

उखाड़ रहा है और जरा पास में देखो उस डाली को चूहे काट रहे हैं, एक ही कष्ट नहीं है, उसे अकेला हाथी ही वृक्ष को नहीं उखाड़ रहा है, किन्तु डाली को दो चूहे भी काट रहे हैं, और स्वामी ! इतना हीं कष्ट नहीं हैं, एक और कष्ट है गिरेगा-तो कुँये में गिरेगा, इतना ही कष्ट नहीं है। कुँये में चतुर्गति रूपी चार साँप हैं। साँप ही नहीं, और एक भयंकर अजगर महापाप रूप निगोद का है।

देवी की दया काम आती है वह आचार्य परमेष्ठी रूपी देव को भेजती है-जाओ अपने धर्म रुपी विमान में बिठा लो। आचार्य भगवन् जाते हैं और सम्बोधन देते हैं। हे भव्य जीव ! आ जाओ-आ जाओ मेरे विमान में बैठ जाओ। वह व्यक्ति कहता है-महाराज! बस थोड़ा सा और बाकी है बस चार महीने में घर में एक बहु आ जाये, बस फिर तो आपके ही साथ चलना है। फिर तो हमें दीक्षा ही लेना है और कोई काम ही नहीं है बस इतना ही इंतजार कर रहे हैं कि घर में बहु आ जाये। इसी प्रकार वह व्यक्ति भी उन आचार्य महाराज से कहता है।

ज्ञानी ! वह छत्ते में से एक शहद की बूँद का इंतजार कर रहा है, महाराज ! बस एक बूँद और मुँह में टपक आबे, फिर तो हम विमान में आपके साथ बैठ ही जायेंगे और वह बूँद टपकती है, तब वह कहता है, महाराज उसका स्वाद तो ले लूँ, कैसी है? जब तक उस बूँद का स्वाद लेके तैयार होता है, तब तक दूसरी बूँद वहाँ तैयार हो जाती है। अरे महाराज ! अभी तो नयी बहु आयी, कोई क्या कहेगा? कि दो दिन ही नहीं हुये और छोड़कर चले गये, ऐसी कैसी बहु निकली, कि उसने दो दिन तक नहीं रख पाओ घर में, तो कम से कम महाराज, कुछ दिन तो और रुक जाओ। फिर महाराज ! छह महीना तो हो ही गये, अब तीन महीना और हो जाने दो, महाराज ! अब कम से कम पहले पोता का मुख तो देख लेने दो उसके बाद फिर निकल ही जायेंगे। उसी व्यक्ति के समान आप लोग बहाने बनाते हो।

ज्ञानी जीव ! जैसे-वह अज्ञानी शहद की बूँद के लिये प्रयास करता है, ऐसा यह जीव हम और आप पर द्रव्यों में लीन होकर के परिवार रूपी छत्ते से टपकने वाले राग रूपी रस को पीते रहते हैं। आचार्य कहते हैं ज्ञानी ! तू मंदिर पर लगे मधुमक्खी के छत्ते को तो देखता है लेकिन तेरा परिवार रूपी मधुमक्खी रूप जो छत्ता है। वह कैसा छत्ता है? पुत्र, पुत्रियों को मधुमक्खी की उपमा दे रहे हैं। जैसे वह मधुमक्खियाँ शहद को उत्पन्न करती हैं, तो अज्ञानी जीव शहद को मधुर मानकर रसपान करता है और तू उसी अज्ञानी के समान अपने पुत्र-पुत्रियों में राग करके उस राग रस का पान करता है। यह राग रस भी तो एक रस है।

शहद को खाने वाले की शहद का छूटना तो आसान है, लेकिन यह राग रस छूटना उससे भी कठिन है अनादि से इस जीव ने इस राग रूपी रस की बस एक बूँद-एक बूँद अब पहले पोता का मुँह देख लें। महाराज! अब कोई खिलाने वाला नहीं है, बहु को सर्विस पर जाना पड़ता है, हम ही तो हैं अकेले घर

में। अब महाराज ! आपने इतने अच्छे प्रवचन दिये कि ऐसा लगता है, कि आज ही घर छोड़ देवें। हमने कहा भाई शुभ काम में देरी किस बात की ज्यों ही यह बात कही जाती है। महाराज ! बस तनक सी देरी है, साल, दो साल और रूक जाओ। फिर तो आपके साथ चलना ही है।

प्रिय आत्मन्!

ध्यान देना-मोह से मोह बढ़ता जाता है। आचार्य भगवन् कहते हैं-जब तक तू घर में रहेगा-और सोचे कि घर छूट जाये तो घर कभी छूटने वाला नहीं है, तू सत्संगति में आ जा, अपने आप छूटेगा तेरा घर। जैसे- वह व्यक्ति शहद की बूँद में आसक्त होकर के अपने जीवन को, बार-बार समझाने पर भी नहीं मानता है। बेचारा विद्याधर अपनी देवी के साथ विमान से लौट जाता है। ऐसे अनेकों साधु संत आते हैं और जिनवाणी माँ की प्रेरणा से समझाते हैं। आओ भइया, सुनो, समझो लेकिन हम परिवार रूपी शहद के छत्ते का रसपान में लीन रहते हैं, और कहते हैं कि इतना सुख मिल रहा परिवार में कि कुछ पूँछो मत।

ज्ञानी जीव! ध्यान देना-यह राग रूपी रस उस शहद से भी ज्यादा हानि कारक है।

दिग्देशेभ्य: खगा एत्य, संवसन्ति नगे - नगे।
स्व-स्व कार्य वशाद्यान्ति, देशे दिक्षु प्रगे-प्रगे ।।9।। इष्टोपदेश ।।

जैसे-संध्या की बेला में वृक्ष पर नाना दिशाओं में पक्षी आते हैं और ठहर जाते हैं रात्रि में विश्राम करते हैं और सुबह अपनी-अपनी दिशा को चले जाते हैं, उसी तरह परिवार में कोई किसी गति से आया है, कोई किसी गति से आया है यदि आपके परिवार में पाँच सदस्य हैं तो यह भी पता नहीं है कि कौन किस गति से आया है ध्यान देना-आज माँ कहती है, यह मेरा बेटा है, लेकिन सच में माँ को तो पता ही नहीं था कि तू बेटा भी है या बेटी भी है, जिस समय तेरा जन्म हो रहा था, उस समय तेरी जननी प्रसव की पीड़ा से तड़फड़ा रही थी, उस समय तुझसे उसे कोई प्रयोजन नहीं था, वह तो इतना बस चाह रही थी, कि इस पीड़ा से कब मुक्त हो जाऊँ, उसे यह भी पता नहीं था कि पुत्र है कि पुत्री या तू कौन है, मात्र एक ही चिंता थी, इस पीड़ा से कैसे मुक्त हो जाऊँ। जब तू बाहर आ गया तब कहीं तेरी जननी उस प्रसव की पीड़ा से मुक्त हो पायी, तब कहीं उसने सुख की चैन पायी और जब सुख की चैन पायी तब बाद में ख्याल आया, कि कोई संतान का जन्म हुआ है, जब संतान का जन्म हुआ तो फिर देखा कि पुत्र है कि पुत्री है चेहरा कैसा है उसके पहले तक कोई पता ही नहीं था, कि आने वाला है कौन? कहाँ से आया है? यह मोह के कारण हमने अपना लिया है कि कौन है? कैसा है? मेरा है कि तेरा है।

ज्ञानी! यह सब मोह-ममता की निशानी है और कुछ भी नहीं है। तेरी माँ को भी यह ज्ञात नहीं था कि तू आने वाला है कौन? लेकिन आ गया तो पर द्रव्य में इतनी बावली हो गयी ओहो ज्ञानी ! कि अपने ही स्वरूप को भूल गयी आचार्य कहते हैं दिशाओं-दिशाओं से पँछी आये हैं, वृक्ष पर ठहरे हैं और सुबह होगा तो पँक्षी जैसे उड़ जाते हैं, वैसे अपना-अपना आयु कर्म पूरा करेंगे और चले जायेंगे। कोई किसी का नहीं है किंचित मात्र भी नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

अज्ञान और मोह कहता है-सब अपने हैं, ज्ञान और वैराग्य कहता है सब अपने-अपने हैं। मोह कहता है सब अपने हैं और बोध कहता है सब अपने-अपने हैं। ज्ञानी जीव ! सब अपना-अपना आयु कर्म पूरा करेंगे फिर एक पल ठहरने वाले नहीं हैं चले जायेंगे, तुम तो हमसे समझ लेना, जब तक आहार नहीं हुआ सो तुम्हारे चौके में, और आहार हो गया सो चौके से बाहर। उसी तरह से अपने परिवार में जो सदस्य हैं जब तक उनका आयु कर्म है सो वे ठहरे हैं और आयु कर्म पूरा होगा तो चल देंगे।

ज्ञानियो! किस गति में जायेंगे, वहाँ कौन मिलेगा यह मत सोचना कि तुमसे अच्छा कोई नहीं मिलेगा। वहाँ जाकर के तुमको तो पल भर में भूल जायेंगे, तुम जिनके लिये रो रहे हो वो तुम्हारे लिये खो रहे हैं।

प्रिय आत्मन्!

उन्हें तो याद भी नहीं है जिनके लिये तुम रो रहे हो ध्यान देना-कभी-कभी व्यक्ति अपने वालों के प्रति रोता है, जो गया वह तो स्वर्ग चला गया। स्वर्ग से समवशरण चला गया। समवशरण में देखना वह दिव्यध्वनि सुन रहा है, लेकिन जो रो रहा है वह संक्लेश कर रहा है। संक्लेश करके तिर्यंच गति का बंध कर रहा है। इसलिये जैन दर्शन के तत्त्व ज्ञान को अच्छी तरह समझना यदि जैन दर्शन नहीं समझोगे तो आत्मा का कल्याण त्रिकाल में नहीं होगा। रोने से तुम वहाँ नहीं पहुँच जाओंगे, जहाँ वह गये हैं। वह अच्छे थे वह स्वर्ग गये हैं, तुम रोओंगे तो तुम स्वर्ग नहीं जा पाओगे। इसलिये जैन दर्शन कहता है रोना नहीं, णमोकार को जपो, धर्म ध्यान करो, बारह अनुप्रेक्षा का चिंतन करो, इससे कल्याण होगा।

ध्यान देना-शोक करने से गयी चीज वापिस आने वाली नहीं है, लेकिन अपनी आत्मा का भव बिगड़ जायेगा। जाने वाले का भव सुधरा है सो सुधरा है, बिगड़ा है सो बिगड़ा है। तेरी आत्मा का भव बिगड़ जायेगा। तुम्हें अपना भव बिगाड़ना हो तो रोओ, अपनी पर्याय बिगाड़ना हो तो रोओ, इसलिये बहुत सावधानी रखना जैन दर्शन का तत्त्व ज्ञान बहुत अच्छा तत्त्व ज्ञान है।

प्रिय आत्मन्!

कोई भी द्रव्य मिटता नहीं है, परिणमन शील है, पर्याय का परिणमन है, द्रव्य अमर है पर्याय के पीछे तू रो रहा है। अरे ज्ञानी! आचार्य कहते हैं-इतना विचार कर ले अभी यह नोट मेरे पास आया था अब दूसरे के जेब में चला गया और कुछ भी नहीं हुआ है, सौ का नोट सौ का ही रहेगा आत्मा-आत्मा ही रहेगी। ज्ञान-ज्ञान ही रहेगा। आज तेरे जेब में सौ का नोट है कल उस बालक के जेब में पहुँचेगा। जैसे नोट का परिवर्तन हुआ है, उसी तरह एक घर का सदस्य मनुष्य लोक में था उस मनुष्य लोक से देवलोक में पहुँच गया।

यदि तत्त्व ज्ञान है तो दु:ख नाम की कोई चीज नहीं है और तत्त्व ज्ञान नहीं है तो दुख को कोई मिटा नहीं सकता। मात्र स्थानान्तरण है और कुछ भी नहीं है इसलिये पर द्रव्य में कभी आकुल-व्याकुल नहीं होना। जीव परिवार में इतना जकड़ जाता है, जब स्वतंत्र रहता है तो दो पैर का रहता है और शादी हुयी तो चार पाँव का हो गया और बच्चे हुये तो मकड़ी की तरह हो गया आठ पाँव वाला। और अब जाल बुनता रह, ध्यान देना-ज्ञानी जीव ! गृहस्थी में प्रवेश करना मकड़ी के जाल में प्रवेश करने के समान है, वस्तुत: कितना भी अच्छा कह लो, मकड़ी का जाल सुंदर तो हो सकता है, लेकिन सुख कारक नहीं हो सकता है। मकड़ी के जाल पर मक्खियाँ बैठती तो जरुर हैं, लेकिन वे मक्खियाँ उसमें फँस जाती हैं, उसी तरह गृहस्थी में प्रवेश करना मकड़ी के जाल में प्रवेश करने के समान है।

ज्ञानी जीवो ! यदि भाव शुद्ध बनायेगा, तो थोड़े काल में जीव मोक्ष को पा लेता है, आचार्य भगवन् कहते हैं-यह शरीर आदि पर द्रव्य है, इनमें जो ममत्व करता है, किससे ममत्व कर रहे हो ? कुंदकुंद भगवान लिखते है समयसार में।

अहमेदं एदमहं अहमेदस्सेव होमि मम एदं ।
अण्णं जं परदव्वं सचित्ताचित्तमिस्सं वा ।। 20 ।।
आसि मम पुव्वमेदं अहमेदं चावि पुव्वकालम्हि।
होहिदि पुणोवि मज्झं अहमेदं चावि होस्सामि ।।2।। समयसार ।।

यह मैं हूँ, यह मेरा है, मैं यह था, यह मेरा था, मैं यह होऊगा, यह मेरा होयेगा ऐसे-ऐसे जीव कल्पनाओं के जाल बुनते हैं, यह मेरा था, मैं इसका था, यह मेरा है, मैं इसका हूँ, यह मकान मेरा है, मैं मकान वाला हूँ, यह दुकान मेरी है, मैं दुकान वाला हूँ। ज्ञानी जीव! आचार्य देव कहते हैं-एक द्रव्य दूसरे

द्रव्य का कर्ता धरता नहीं है ध्यान देना-प्रत्येक वस्तु स्वतंत्र-स्वतंत्र है जब मैंने कहा, कि यह मेरा हैं-तो मैंने उसकी स्वतंत्रता का हनन कर दिया, और मैंने उसकी स्वतंत्रता छीन ली क्योंकि वह स्वतंत्र द्रव्य है।

यदि अमेरिका कहे-कि भारत देश मेरे अन्तर्गत है, तो भारत की स्वतंत्रता तो समाप्त हुयी? जैसे-भारत अलग देश है, अमेरिका अलग स्वतंत्र देश है, उसी तरह पुत्र की आत्मा स्वतंत्र है और पिता की आत्मा स्वतंत्र है। दो आत्मा मिलके कभी एक हो नहीं सकती। पुत्र कभी पिता का हो नहीं सकता, पिता कभी पुत्र का हो नहीं सकता। ज्ञानी जीव ! पिता का द्रव्य अलग है, पुत्र का द्रव्य अलग है, पिता धन, मकान, दुकान दे सकता है लेकिन पिता तू अपनी आत्मा का एक प्रदेश अपने पुत्र को नहीं दे सकता। हे पुत्र! तू पिता के पाँव दबा सकता है, सेवा कर सकता है लेकिन पिता के लिये सुख नहीं दे सकता। सुख पिता के ज्ञान पर निर्भर है यदि पिता की आत्मा में ज्ञान है-तो पुत्र से सुख मिलेगा और नहीं है तो नहीं मिलेगा। ध्यान देना-सुख न पुत्र देता है, न पिता देता है, पिता के पास ज्ञान होता है तो पिता सुख भोग लेता है और नहीं है तो कितना भी पुत्र देने का प्रयास करेगा सुख नहीं मिलेगा।

हे पिताजी! अपनी ज्ञान चेतना को जागृत रखना, पुत्र को सब कुछ दे देना लेकिन अपने पास ज्ञान बचा के रखना। आज का ज्ञान, आज का प्रवचन, मात्र आज के लिये नहीं जीवन के उन क्षणों काम आयेगा, कि महाराज ने सत्य कहा था कि मेरा ज्ञान ही मुझे सुख देगा।

प्रिय आत्मन्!

ज्ञानी जीव ज्ञान का उपयोग करके सुख भोग लेता है और अज्ञानी अज्ञान का उपयोग करके दुख भोग लेता है। रास्ता एक है-चल दो रहे हैं उसी रास्ते से ज्ञानी चला जा रहा है, उसी रास्ते से अज्ञानी चला जा रहा है। ज्ञानी-कर्म का नाश करता चला जा रहा है। और अज्ञानी-का कर्म का बंध करता चला जा रहा है, अंतर कुछ भी नहीं है, पथ एक ही रहता है लेकिन अज्ञानी कर्म को बाँधता है और ज्ञानी कर्म को छोड़ता है। शरीर, मकान, दुकान यह सब पर द्रव्य हैं, उनमें जब तक ममत्व करता है, तब तक यह जीव पर समय में रत है और कर्मों को बाँध रहा है। घर में रहकर के जितने कर्मों को बाँधना हो सो बाँध लो, साथ में कुछ भी नहीं जाना है, कर्म बंध के सिवा। जितने भी बंधु बाँधव हैं-यह बंध के कारण हैं।

ध्यान देना-बहुत सावधानी से जीना, परिवार में रहना-चारों ओर से वार जहाँ होता है, वह परिवार होता है। ज्ञानी ! साधु के तो बाईस परीषह होते हैं, लेकिन श्रावक के तो बाईस सौ नहीं बाईस हजार से भी ज्यादा परीषह होते हैं, लेकिन जय एक भी नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

जिसने कुमार अवस्था में ब्रह्मचर्य व्रत को धारण कर लिया है, उसके लिये मेरा नमस्कार हो, जिसने बिना भोगों को भोगे ही वमन के समान छोड़ दिया है। ध्यान देना-कीचड़ में पैर डालकर धोने की अपेक्षा कीचड़ में पैर न डालना सबसे महानता है। यदि कीचड़ में पैर डल भी गया है, तो पैर निकाल ले, तो भी महान है, लेकिन एक वह है कि अब तो पैर डल ही गया है, तो अब डले रहने दो। ध्यान देना-यदि गाय का पैर कीचड़ में चला जाये, तो गाय जल्दी बाहर निकालती है और भैंस दूर से देख लेती है, कि कीचड़ है-तो भैंस उसी में प्रवेश कर जाती है।

ज्ञानी जीवो! इसलिये दो विशेषताऐं हैं, गाय की तरह बनना। यदि कीचड़ में पाँव पड़ भी जाये, तो जल्दी से बाहर निकलो। गाय के पानी पीने की आदत देखना और भैंस के पानी पीने की आदत देखना, गाय पानी पियेगी, तो किनारे से खड़े होकर पीयेगी पानी को मचायेगी नहीं, और भैंस पानी पियेगी, तो भीतर जाकर पहले मचायेगी और बाद में पियेगी।

प्रिय आत्मन्!

अज्ञानी जीव मचा लेता है जीवन को, पर्यायों में लीन हो जाता है, तो कर्मों को बाँध लेता है। और ज्ञानी जीव पर्यायों में लीन नहीं होता है, परिणामों में लीन होता है। निज परिणति को निहारना साधना है। आचार्य कहते हैं-प्रशंसा सुनने के लिये एक शब्द याद रखना ऊसइ-ऊसइ। ज्ञानी-श्रावकों की प्रशंसा को साँची मत मान लेना, ऊसइ-ऊसइ।

चेयणरहिओ दीसइ, ण य दीसइ इत्थ चेयणासहिओ।
तम्हा मज्झत्थो हं, रूसेमि य कस्स तूसेमि ।।36।।

अर्थ-

इस संसार में चेतना-रहित पदार्थ दिखाई देता है, और चेतना-सहित पदार्थ नहीं दिखाई देता है, इस कारण मध्यस्थ मैं किससे रुष्ट होऊँ और किससे सन्तुष्ट होऊँ ?

अप्पसमाणा दिट्ठा, जीवा सव्वे वि तिहुयणत्था वि।
सो मज्झत्थो जोई, ण य रुसइ णेय तूसेइ ।।37।।

अर्थ-

तीन भुवन में स्थित सभी जीव अपने समान दिखाई देते हैं, इसलिए वह मध्यस्थ योगी न तो किसी से रुष्ट होता है और न ही किसी से सन्तुष्ट होता है।

जम्मण-मरणविमुक्का, अप्पपएसेहिं सव्वसामण्णा।
सगुणेहिं सव्वसरिसा, णाणमया णिच्छयणएण।।38।।

अर्थ-

निश्चयनय से सभी जीव जन्म-मरण से विमुक्त, आत्म प्रदेशों की अपेक्षा सभी समान, आत्मीय गुणों से सभी सदृश और ज्ञानमयी हैं।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

सर्वज्ञदेव ने दिव्य-ध्वनि द्वारा जो धर्म-कर्म का स्वरूप प्रस्तुत किया है। वह सर्वज्ञ भाषित जैन आगम तत्त्व-संसार के विच्छेद का कारण है। सर्वज्ञ का उपदेश-मिथ्यात्व, कषाय, आस्रव, बंध का नाशक है। इसलिये वह विद्या जो सर्वज्ञ के द्वारा दी गयी है-ऐसी विद्या सेवन करना चाहिये। जो कि मोक्षमार्ग-को प्रकाशित करने वाली है।

जिनवाणी-मुक्तिमार्ग प्रकाशिका है, इसलिये अन्य वाणी को त्यागकर के जिनवाणी की उपासना करना चाहिये। यदि मुक्ति मार्ग प्रकाशित करना है, तो एक ही उपाय है कि जिनवाणी का निरंतर श्रवण, अध्ययन, मनन, चिंतन करो। ज्ञानी! शास्त्र जोड़ना चाहिये-कि छोड़ना चाहिये? आचार्य सोमसेनाचार्य त्रैविद्य लिखते हैं, कि हे भव्य जीव! जैसे किसान गेहूँ को निकाल लेता है, और भूसे को छोड़ देता है, उसी तरह शास्त्र हाथ में आते ही, तत्काल उसके तत्त्व ज्ञान को निकालकर रख लो और शास्त्र को छोड़ दो।

वह सोमसेन त्रैविद्य इस पक्ष में नहीं हैं, कि शास्त्र एकत्रित करते जाओ। वह यह कहते हैं कि हृदय को ही शास्त्र बनाओ और शास्त्र ही नहीं शास्त्रालय बनाओ।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य देव कहते हैं-कामना को संतुष्ट मत करिये, कामना का नाश करिये। हम कहते हैं-कि मेरे मन की इच्छा है। ज्ञानी ! यह आँखे अचेतन हैं, इसलिये अचेतन को देख पाती हैं, अचेतन आँखे चेतन को नहीं देख पाती हैं। देखने की सबकी आँखे अलग-अलग होती हैं।

''आगमचक्खू साहू, इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि ।
देवा य ओहिचक्खू, सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू ।।234।। प्रवचनसार ।।

जो साधु होता है-वह आगम दृष्टि से देखता है। साधु की आँख शास्त्र होती है। शास्त्र में क्या लिखा? साधु, शास्त्रीय दृष्टि से देखता है। शेष जो जीव हैं-संज्ञी-असंज्ञी पंचेन्द्रिय चौइन्द्री, चक्षुइंद्रिय से देखते हैं। देव अवधिदर्शन से-देखा करते हैं, अवधिज्ञान-से जानते हैं, यही उनका देखना जानना है, अवधि ज्ञान ही उनका चक्षु है। सिद्ध भगवान का चक्षु क्या है? केवलज्ञान। केवलज्ञान ही उनका नेत्र है, उनकी संपूर्ण आत्मा ही चक्षु है। आत्मा का प्रदेश-प्रदेश जान रहा है, देख रहा है, इसलिये वह संपूर्ण आत्म प्रदेशी है।

हम अचेतन से देखते हैं-अचेतन दिखता है और सिद्ध भगवान चेतन से देखते हैं- चेतन दिखता है। ज्ञानी जीव ! आँख साधन है, तो आँख का विषय क्या है? स्पर्श, रस, रूप, रंग, पुद्गल के हैं और जो पुद्गल है, वह अचेतन है, अजीव है इसलिये कौन दिखा? मैंने तुमको देखा है, तुमने मुझे देखा है, न तुमने मुझे देखा है, न मैंने तुम्हें देखा है। क्योंकि, तुमने मेरे रूप रंग को देखा है, न तुमने मेरे चेतन को देखा है, न मैंने तुम्हारे जीव द्रव्य को देखा है, तो बोलो, किसने किसको देखा है? ध्यान देना-रूप रंग को देखकर के जीव का निर्णय नहीं कर आचार्य देव कहते हैं-जो चेतना रहित है वह दिखता है, जो चेतना सहित है, वह इस आँख से नहीं दिखता है। उसके लिये आगम नेत्र चाहिये, उसके लिये अनुभव नेत्र चाहिये, स्वसंवेदन नेत्र चाहिये।

प्रिय आत्मन्!

पर को देखने के लिये नयन पर्याप्त हैं। लेकिन निज को देखने के लिये, नयन नहीं नय चाहिये। निज का दर्श, नयन से नहीं होता है, अजीव को देखने के लिये नयन पर्याप्त हैं, लेकिन जीवतत्व को देखने के लिये जीवतत्व चाहिये।

आचर्य देव कहते हैं-मैं गुस्सा किस पर करूँ? गुस्से का कारण तो बताओ? कोई न कोई जिसने काम बिगाड़ा हो, वही होगा न। तो काम अजीव ने तो बिगाड़ा नहीं है, किसी जीव ने बिगाड़ा होगा और जीव मुझे दिखाई देता नही है। और जो दिखाई दे रहा, वह जीव नही है इसलिये मैं किस पर गुस्सा हो जाऊँ? यदि आपने आकार, प्रकार, तस्वीर, रूप, रंग, कान्ति, सुंदरता को देखा तो वह भी पुद्गल की ही है। हम जो निर्णय कर रहे हैं, वह रूप रंग से निर्णय कर रहे हैं, किंतु यह निर्णय हमारा उचित नहीं है, इसलिये प्रभाव को नहीं स्वभाव को देखो। रंग को नहीं अंतरंग को देखो।

यदि राग और द्वेष से बचना हो तो दो ही बाते हैं-मैं किस पर राग करूँ, किस पर द्वेष करूँ? मैं चेतन होकर के अचेतन पर राग करूँ ? यह तो शोभा ही नहीं देता, और चेतन पर करूँ ? तो चेतन मुझे दिखाई नहीं देता। मैं तुम्हें बहुत चाहता हूँ, लेकिन तू मुझे दिखाई नहीं देता? मैं तो यह बैठा हूँ ज्ञानी! यह तू नहीं बैठा, यह जो बैठा है, वह तो शरीर दिख रहा है। चेतन तो तेरे भीतर बैठा है।

ज्ञानी ! जैसे कोई व्यक्ति मकान के अंदर बैठा हो और देखने वाला मात्र मकान को मालिक समझ ले, तो जैसे मकान को मालिक समझ लेना, एक भूल है। उसी तरह शरीर को आत्मा मान लेना भी एक भूल है। हम शरीर को देखकर के निर्णय कर रहे हैं। भो ज्ञानी ! पानी वर्षा, मकान ऊपर से गीला हो गया, तो क्या मकान के भीतर वाला सामान भी गीला हो गया ? उसी तरह जैसे शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है, कैसे भिन्न है? जैसे मकान और मालिक भिन्न है।

मकान-मालिक नहीं है। मालिक-मकान नहीं है। वैसे ही शरीर-आत्मा नहीं है। जैसे-पेन के अंदर पेंसिल है, उसी तरह मेरे शरीर के अंदर भी मेरा आत्मा है। हम पेन के रंग को पेंसिल का रंग मान सकते क्या? नहीं। पेन का रंग भिन्न हो सकता है। उसी तरह शरीर का रंग भिन्न है और आत्मा का तो रंग ही नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

यह है भेद-विज्ञान की धारा, राग-द्वेष को कैसे कम करें? कोई वस्तु टूट गयी, हम रुष्ट हो रहे हैं। अरे ज्ञानी ! वस्तु टूट गयी तो क्या हुआ ?

''उत्पादव्ययध्रोव्य युक्तं सत्''।। तत्त्वार्थसूत्र ।।

द्रव्य का लक्षण सत् है। माँ, तूने खिचड़ी बनाई और बनाते समय खिचड़ी जल गयी, अब सास बहु को डाँट रही है। अरे! बहु तूने खिचड़ी जला दी? सासू माँ, क्यों डाँट रही हो? जली पर्याय का उत्पाद

हो गया और पक्व पर्याय का व्यय हो गया। खिचड़ी ध्रौव्य है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य वस्तु का स्वरूप है। हम जब तक उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य को नहीं समझेंगे, तब तक जितना लड़ना झगड़ना हो, सो झगड़ लो।

घर में एक गिलास रखा है, बच्चे का पैर लगा टूट गया। माँ ने डाँट दिया, वस्तुत: माँ तुम यह विचार करो। क्या डाँटने से गिलास वापिस जुड़ जायेगा? नहीं जुड़ेगा। गिलास की परिणति गिलास में है, क्योंकि उसके अंदर उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य गुण हैं। यदि उसमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य गुण न होता तो, गिलास फूटने के बाद किसी अवस्था में नहीं रहता।

प्रिय आत्मन्!

हम जितने बार भी गुस्सा होते हैं-या जितने बार भी संतुष्ट होते हैं, हमारी संतुष्टि में राग होता है और हमारी असंतुष्टि में द्वेष हाता है। जब उत्पाद हमारे मन के अनुकूल हो जाता है, तो हम संतुष्ट हो जाते हैं। जब वही उत्पादन हमारे मन के प्रतिकूल हो जाता है तो हम असंतुष्ट हो जाते है, लेकिन जिसमें उत्पादन हुआ हैं। जो उत्पादन हुआ है, जिसमें व्यय हुआ है, जो व्यय हुआ है। न वह संतुष्ट हो रहा है, न वह असंतुष्ट हो रहा है।

एक घर में चोरी हो गयी-रो कौन रहा हैं? जो वस्तु चोरी में गयी-वह वस्तु नहीं रो रही है। जिसने यह मान लिया था-कि वह मेरा है, वह रो रहा है। और जो रो रहा है, उसकी चोरी नहीं हुयी। और जिसकी चोरी हुयी है, वह रो नहीं रहा है। यह पेन है और पेन चोरी चला गया। वस्तुत: चोरी किसकी हुयी? पेन की। क्या पेन रो रहा है? नहीं। तो जिस वस्तु की चोरी हुयी, वह वस्तु नहीं रो रही है। फिर कौन रो रहा है। जीव, रो रहा। जीव की चोरी हुयी क्या ? नहीं। जीव का ज्ञान, जीव का दर्शन, चुराया किसी ने क्या ? नहीं। हम कहते हैं मेरी चोरी हो गयी। बोलो ज्ञानी ! तेरा ज्ञान-धन, तेरा दर्शन-धन किसने चुरा लिया?

ज्ञानी जीव ! सच में जब चोरी हुयी थी-तब तो चोरी नहीं मानी। जब नहीं हुयी-तब तूने चोरी मान ली। जब पेन चुराया-तब चोरी नहीं हुयी थी। लेकिन जिस समय तू-रोया उस समय तूने अपने स्वभाव की चोरी की है, इसलिये सबसे बड़ा चोर तू है। यही तत्त्व है, यही समझना है, कि मैं पर पदार्थ, पर वस्तु, पर द्रव्य, पर शब्द नहीं है। शब्द पर है, पर के कारण संतुष्ट होता हूँ, या पर के कारण रूष्ट होता हूँ।

भो ज्ञानियो ! पुद्गल के दो वचन सुनकर के प्रसन्न हो गये और पुद्गल के दो वचन सुनकर खिन्न हो गये, क्या यह पुद्गल के प्रति आशक्ति नहीं है? आचार्य देव कहते हैं। पुद्गल द्रव्य का तूने त्याग कहाँ किया? यदि त्याग ही कर दिया था, तो फिर ऐसा ग्रहण क्यों कर लिया? ज्ञानी जीव ! दो शब्दों को नहीं त्याग पाये, किसी ने दो शब्द कह दिये और तूने अपने भीतर रख लिये। ज्ञानी! तेरे क्षोभ नहीं था, तो त्याग

कर देता। शक्कर का त्याग, घी का त्याग और षट् रस का त्याग और आज तो उपवास है, तो कुछ भी नहीं, लेगें इतना सब त्याग करने के बाद भी मेरे कहे गये दो अशुभ शब्दों का त्याग नहीं कर पाये। परिणति को निहारो। ध्यान देना-ज्ञानी यह तत्त्व ज्ञान ही भला करेगा और कोई भला करने नहीं आयेगा। न परिवार भला करेगा, न समाज भला करेगी, न साधु भला करेगें, न संघ भला करेगा, समाधि संस्तर पर देखिये, स्वयं का ज्ञान होगा तो, वह भला कर पायेगा अन्यथा कोई भला नहीं करेगा।

लोग कहते हैं-बुढ़ापे में कोई काम नहीं आता, लेकिन ज्ञानी मैं कहता हूँ बुढ़ापे में तेरा ज्ञान ही तेरे काम आयेगा। इसलिये जीवन भर कमाया हुआ धन बुढ़ापे में काम नहीं आयेगा। जीवन भर लाड़ प्यार से पाला गया बेटा, पोता, पुत्री तेरे काम में नहीं आयेंगे। लेकिन जीवन के किसी भी पल में पाया हुआ सम्यक्ज्ञान, तेरे अंत समय में भी काम आयेगा। इसलिये इस ज्ञान को अंत समय तक क लिये रखो। समाधि के समय यही ज्ञान काम आयेगा।

प्रिय आत्मन्!

महाराज कहते हैं, समता भाव रखो। लेकिन महाराज ! कहते हैं मुझे समझ में नहीं आता है, तो हीनता महसूस होती है, और महाराज! गरीब को दीनता और अज्ञानी को हीनता, दोंनों महसूस होती हैं। तो यह भी अज्ञान है। दोंनों को समता रखना चाहिये, समता तपस्या है और दीनता-हीनता तपस्या नहीं है। मैं किस पर रोऊँ और किस पर हसूँ? हँसने का विषय क्या है? रोने का विषय क्या है?।

ज्ञानी ! सदा पर को पाकर मैं हँस रहा हूँ और पर को खोकर रो रहा हूँ निज को पाकर न मैं हँसा हूँ निज को खोकर न मैं रोया हूँ और सच यह है, कि जब तक निज को खोया है, तभी तक यह जीव रोया है और जिस दिन निज को पायेगा, उस दिन से कभी न रोयेगा। ध्यान देना- जब तक निज को खोना है, तब तक रोना-रोना है और जिस दिन निज को पाना है, उस दिन समाप्त रोना है।

प्रिय आत्मन्!

पुद्गल में ही संतुष्ट होते रहोगे, तो कभी जीव तक नहीं पहुँच पाओगे। जैसे- प्रारंभ में तुम्हारा छोटा व्यापार था, यदि तुम उस में ही संतुष्ट हो जाते, तो तुम्हारा व्यापार कभी भी नहीं बढ़ पाता। उसी तरह यदि तुम पौद्गलिक पदार्थो में संतुष्टि मान लोगे, तो आत्मसंतोष तक कैसे पहुँचोगे। यदि पुद्गल में ही आनंद मान लोगे, तो आत्मा के आनंद को कैसे छओगे।

हमारा आनंद और हमारा संतोष कहीं पुद्गल पर तो निर्भर नहीं है? सच है कि पुद्गल पर ही निर्भर

है। तभी तो जिस दिन मैं घर में आया था, कुछ बच्चे खुश हुये थे। और जिस दिन मेरे घर में गाड़ी आयी थी, तब तो पूरा घर खुश हुआ था। हम अपने परिवार को संतुष्ट करने के लिये पुद्गल के आकर्षण देते हैं। परिवार के सदस्यों ने संतुष्टि का रास्ता क्या अपनाया ? यदि गृहणी को संतुष्ट करना है तो अलंकार, आभूषण, वस्त्र। बच्चों को संतुष्ट करना है तो मिठाई, और खिलौने। पुरूष वर्ग को संतुष्ट करना है तो धन, पैसा, व्यापार, यह सब क्या है? हमारी आशक्ति पुद्गल पर संतुष्ट है, कि आत्मा पर, यह प्रश्न आज का प्रमुख है।

हम अध्यात्म में जीने की पात्रता पा चुके कि नहीं? यदि मेरी संतुष्टि ही पुद्गल पर है, तो यह निश्चित है कि पुद्गल में सुख नहीं है। जैसे-लोहे की छड़ को घिसकर के गन्ने का रस नहीं निकाल सकते, वैसे ही पुद्गल में से तीन काल में सुख नहीं निकाल सकते, यह वास्तविकता है मानो। ध्यान देना-पुदग्ल में से सुख नहीं निकलेगा, स्त्री का शरीर पुरूष को सुख नही देगा, और पुरूष का शरीर स्त्री को सुख नहीं देगा मान्यता मात्र ही है, भ्रम मात्र ही है। आचार्य देव कहते हैं-यह तेरी संतुष्टि आत्माश्रित नहीं है, पुद्गलाश्रित है और जब तक पुद्गलाश्रित तू बना रहेगा, तब तक जीव को देह गिनने वाली स्थिति बनी रहेगी।

प्रिय आत्मन्!

जितनी दृष्टि पुद्गल पर टिकी है, यदि उसका लाखवाँ अंश निज पर चला जाये तो आत्मा का कल्याण होगा। संतुष्टि पुद्गल से नहीं-निज में से निकालने का प्रयास करो। संतोष पुद्गल में नही है पर पुद्गल से संतुष्टि करना चाहते हो, तो करो। इच्छा पूर्ति करते-करते हम एक दिन अंजन चोर बन जायेंगे, लेकिन संतुष्टि नहीं कर पायेंगे। कामना को संतुष्ट मत करिये, कामना समापन का उपाय खोजिये। पुद्गल से संतुष्टि नहीं मिलेगी, चौबीस घंटे में से कुछ मिनिट मेरे पास ऐसे भी हैं, जिस समय मैं पुद्गल से संतुष्टि नहीं पाऊँगा, मात्र आत्म ज्ञान से ही संतुष्टि पाऊँगा, ऐसा सोचा कभी ?

आचार्य देव कहते हैं-जिनके पास आत्मीय आनंद है, उनके पास कुछ भी न हो, तो भी संतुष्ट रहेंगें और जिनके पास आत्म ज्ञान नहीं है, उन्हें तीन लोक की भी सम्पत्ति रख दो, तो भी संतुष्ट होने वाले नहीं हैं। ध्यान देना-(ब्याज स्तुति) यह कमाते हैं, यानी कम+ आते हैं क्योंकि कमाते हैं ?

प्रिय आत्मन्!

हम पुद्गल धन को कमाते हैं-तो आत्मा के पास कम आते है। हम धन को कमाते हैं-ध्यान के पास कम आते हैं। एक को कमाते हैं-तो दूसरे के पास कम आते हैं। आप बहुत कमाते हैं और

आपका बेटा आज कल आपसे भी ज्यादा कमाता है, बहुत ज्यादा कमाता है, आपका बेटा- इसलिये आपसे बहुत ज्यादा कम आता है।

ध्यान देना- आज व्यापार में घाटा हो गया। ओहो! माल समय पर नहीं आया। किस पर रूष्ट होओगे आचार्य कहते हैं, निज स्वभाव को निहारता जा, यदि व्यापार में घाटा भी लगा है, तो मेरी आत्मा का कौन सा गुण घट गया। तुम कितने भी बड़े व्यापारी बने रहो, धन घट गया (नुकसान हो गया) कुछ नहीं घटा लेकिन आगम ज्ञानरूपी गुण घट गया तो सब बेकार। आगम रूपी गुण को किसी भी दुकान पर मत बेचना, वह अपने पास रखना, जैन के पास व्यापार की सफलता इसलिये नहीं है, कि उसका दिमाग ज्यादा चलता है इसलिये है, कि उसके पास आगम का ज्ञान है, कहीं न कहीं, जन्म काल से मुनियों के उपदेश, आगम के विचार उसके पास हैं।

यदि व्यापार में घाटा भी लग गया तो मेरे आत्मा का क्या घट गया, किसी ने मेरा ले भी लिया तो मेरी बुद्धि थोड़ी ले ली, इसलिये संतुष्टि है। रूष्ट नहीं होना, रूष्ट होने से आत्मा की शक्तियाँ घटती हैं, तो फिर पर में संतुष्ट भी नहीं होना, पर में संतुष्ट होने से हम परसमय बन जायेंगे और परसमय बन जायेंगे, तो पर्याय में लीन हो जायेंगे और पर्याय में लीन हो जायेंगें, तो पर्याय मूढ़ हो जायेंगे और पर्याय मूढ़ हो जायेंगे, तो परम मूर्ख हो जायेंगे।

प्रिय आत्मन्!

एक-एक शब्द गंगा की धारा में भरे हुये अनमोल वस्तु के समान बह जायेंगे। ज्ञानी! मुख गर्भालय है-शब्द प्रतिमा है, ब्रह्म है, परमात्मा है, शब्द ब्रह्म को मुख रूपी गर्भालय से जिन प्रतिमा के समान निकालो, जितने आदर से बेदी से प्रतिमा निकालते हो, उतने ही आदर, विनय, सम्मान के साथ अपने मुख से शब्द निकालो, तो तुम्हारा शब्द वैसा ही पूजा जायेगा, जैसी तुम्हारे द्वारा स्थापित की गयी पाण्डुक शिला पर, जिन प्रतिमा को लोग पूजते हैं।

यदि महावीर के मुख से निकली, मंगल वाणी को नमस्कार किया जा सकता है, तो फिर आपके, हमारे मुख से, निकली हुयी वाणी को भी, नमस्कार किया जा सकता है, बस ध्यान इतना रखना है, कि वह शब्द जिन प्रतिमा की तरह पूरी आदर, विनय, सम्मान के साथ निकले। ध्यान देना-गर्भालय (वेदी) को चौबीस घंटे खोलकर नहीं रखते हैं, मात्र अभिषेक पूजन के समय खोलते हैं और भगवान को लाते हैं, उसी तरह से, जिस तरह तुम गर्भालय को बंद करके रखते हो, उसी तरह से यदि मुख को बंद करना सीख गये, तो आपका शब्द प्रतिमा की तरह ही पूजा जायेगा।

प्रिय आत्मन्!

तीर्थंकर का शब्द तार देता है और हिटलर का शब्द संहार देता है। अपने मुख से वह शब्द निकालो, जिस शब्द को अर्घ्य चढ़ाया जा सके। प्रवचन हुआ-प्रवचन के बाद आप जिनवाणी स्तुति करते हैं, क्योंकि, प्रवचन में वह शब्द बोला गया है, जिस शब्द को अर्घ्य चढ़ाया जा सके। तो प्रवचन में वही शब्द बोलो-प्रवचन आँखों से भी होता है और प्रवचन क्या है? वह तो कदम-कदम पर और समय-समय पर, सर्वत्र होता है। यही प्रसन्नता के साथ आगम की सीमा में जो वचन निकल गये, वो प्रवचन हो गये।

ज्ञानी! मेरे अंदर मेरा परमात्मा है, वह शब्द के द्वारा बाहर निकलता है। ध्यान देना-गुलाब के अंदर खुशबू है तो वह बाहर निकलती ही है। ऊपर की टंकी में पानी डाला है और नल की टोटी से निकलता है। उसी तरह मेरे हृदय का परमात्मा मेरे मुख से निकलता है और कानों से दूसरों के अंदर प्रवेश करता है। स्याद्वाद मुद्रा से मुद्रित, शब्दब्रह्म की उपासना से जन्मे हुये, एकत्व-विभक्त आत्मा के स्वरूप को मैं आपको दिखलाता हूँ, ऐसे प्रतिज्ञा करने वाले आचार्य अमृत चंद्र देव है। कहते हैं-शब्द ब्रह्म है।

ज्ञानी! शब्द में शक्ति है। पुद्गल में शक्ति है, यदि वैद्य की दवाई में शक्ति है, तो आचार्य समंतभद्र के स्वयंभू स्त्रोत में शक्ति है। शब्द की शक्ति बहुत महान होती है, जो शक्ति अमृत और विष में है, वही शक्ति शब्द में भी है। शब्द औषधि से जल्दी फायदा करते हैं, जितनी जल्दी दवा फायदा नहीं करती है, उससे जल्दी शब्द फायदा करते हैं।

डाक्टर दवा बाद में देता है, पहले दो शब्द कहता है। डाक्टर ने दो शब्द कह दिये, आप बिल्कुल चिंता न करें, बिल्कुल स्वस्थ हैं। आप आ गये और स्वस्थ हो गये। तात्पर्य क्या है? शब्द से बड़ी मलहम और कोई हो ही नहीं सकती है।

जैसे आपके मोबाइल का प्रत्येक मैसेज कम्पनी तक पहुँचता है, उसी तरह आपका प्रत्येक शब्द आपके परमात्मा तक पहुँच रहा है, तुमने जो कुछ मुझे बुरा कहा है, तुमने जो कुछ मुझे अच्छा कहा है, वह मेरे लिये नहीं, तुमने अपने परमात्मा को अपना संदेश भिजवाया है। मेरा हर चिंतन और मेरा हर वचन और मेरा हर आचरण, केवलज्ञानी के ज्ञान में झलक रहा है, इसीलिये कैमरा तस्वीर खींच पाये, या न खींच पाये, पर केवलज्ञान में तेरी तस्वीर खिंच ही रही है। किसी ने दो शब्द कह दिये-तो कभी भी बुरा मत मानना और दो भले शब्द मिल जायें-तो कल्याण कर लेना।

इय एवं जो बुज्झइ, वत्थुसहावं णएहिं दोहिं पि ।
तस्स मणो डहुलिज्जइ, ण राय-दोसेहिं मोहेहिं ।।39।।

अर्थ-

जो ज्ञानी दोनों ही नयों से यह इस प्रकार का वस्तु-स्वभाव जानता है, उसका मन रागद्वेष से और मोह से डाँवाडोल नहीं होता है।

रायद्दोसादीहि य, डहु लिज्जइ णेव जस्स मणसलिलं ।
सो णियतच्चं पिच्छइ, ण हु पिच्छइ तस्स विवरीओ ।।40।।

अर्थ-

जिसका मनरूपी जल रागद्वेष आदि के द्वारा डाँवाडोल नहीं होता है, वह निजतत्त्व को देखता है। इससे विपरीत पुरूष निश्चय में नही देखता है।

सर-सलिले थिरभूए, दीसइ णिरू णिवडियं पि जह रयणं ।
मण - सलिले थिरभूए, दीसइ अप्पा तहा विमले ।।41।।

अर्थ-

जैसे सरोवर के जल के स्थिर होने पर सरोवर में गिरा हुआ रत्न भी नियम से दिखायी देता है, उसी प्रकार मनरूपी जल के स्थिर होने पर निर्मल भाव में आत्मा दिखायी देता है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

जो वहाँ है-वह यहाँ है, जैसा वहाँ है-वैसा यहाँ है। जो उनके पास है-वह अपने पास है, प्रत्येक आत्मा अपने समान है, यदि शुद्ध दृष्टि से देखा जाये तो, प्रत्येक आत्मा समान है। ध्यान देना- ज्ञानी ! गेहूँ

का आकार छोटा बड़ा है, लेकिन वही गेहूँ यदि पिस गया, तो आटा समान है। यहाँ हम भेद कर रहे हैं, लेकिन निश्चय दृष्टि से देखें, शुद्ध तत्त्व की दृष्टि से देंखे, तो प्रत्येक आत्मा अपने समान है। यही जैन दर्शन है। न कोई नीचा है, न कोई ऊँचा है, न कोई छोटा है, न कोई बड़ा है। विवक्षा है, निश्चय की पर व्यवहार में भेद है।

प्रिय आत्मन्!

जन्म और मरण के चक्र से मुक्त मेरा आत्मा ही, शक्ति रूप से सिद्धात्मा है। ऐसा श्रद्धान हो और श्रद्धान के बाद पुरूषार्थ हो, श्रद्धा सिद्धत्व की करना और पुरूषार्थ श्रावकत्व का करना। श्रद्धा में सिद्धत्व रहे-पुरूषार्थ में श्रावकत्व भी आ गया, तो सिद्धत्व की श्रद्धा सार्थक हो जायेगी। जितना शक्र है उतना करो, यदि शक्र नहीं है, तो श्रद्धा करो। श्रद्धा करने वालो का भी कल्याण होता है। सम्यक् दर्शन के साथ मोक्ष मार्ग का द्वार तो खुल ही जाता है।

बताइये, यहाँ जितने जीव बैठे हैं प्रत्येक जीव के कितने-कितने आत्म-प्रदेश हैं? असंख्यात प्रदेश है। आप छह फीट के हो, आपके आत्मा के प्रदेश कितने फीट के हैं? असंख्यात प्रदेश हैं। यह छोटा सा बालक कुल तीन साल का, इसके आत्म प्रदेश कितने हैं? असंख्यात हैं। आत्मा प्रदेशों की विवक्षा में सब समान हैं, प्रश्न पत्र तो सबको समान ही आते हैं, उत्तर भले ही सबके भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। पूर्णांक तो सबके समान हैं, लेकिन प्राप्तांक में अंतर हो तो बात अलग हैं। शक्ति रूप से सभी सिद्ध हैं, अभिव्यक्ति में अंतर है, जैसे आपकी परीक्षा में पेपर आता है, प्रश्न पत्र आता है, तो पूर्णांक तो सबके समान होते हैं, लेकिन प्राप्तांक अपनी-अपनी योग्यता पर निर्भर होते हैं। उसी तरह शक्ति रूप में सिद्धत्व सबके पास है-लेकिन अभिव्यक्ति करना, निज पौरूष की बात है। असंख्यात प्रदेशी निज आत्मा के प्रदेश असंख्य हैं-चाहे वह एकेन्द्रिय पानी की बूँद हो, चाहे वह दो इंद्रिय जीव, तीन इंद्रिय चींटी, चार इंद्रिय भौरा हो, पंचेन्द्रिय हाथी घोड़ा, प्रत्येक का शरीर विशाल और लघु हो सकता है लेकिन आत्मा के प्रदेश समान हैं।

प्रिय आत्मन्!

अपने गुणों की अपेक्षा सब समान हैं-जीव द्रव्य के जो गुण हैं, जितने गुण सिद्धों में हैं उतने ही गुण आप में हैं। आपके गुणों से सिद्धों का एक भी गुण अधिक नहीं हो सकता और आपके गुणों से एक गुण कम नहीं हो सकता। जितने गुण आप में शक्ति रूप से हैं, उतने ही गुण सिद्धों में अभिव्यक्ति रूप से हैं। दूध में जितना घी शक्ति रूप में है, उतना ही दूसरे दूध में अभिव्यक्ति रूप में है।

सिद्धों में अभिव्यक्त-गुण समान हैं। पाव भर सरसों से प्रमाण पा लिया-कि इस सरसों में इतना तेल है, तो बाकी सरसों में इसी मात्रा के अनुरुप तेल होगा। उसी तरह एक सिद्ध में इतने गुण हैं-तो वर्तमान के सिद्धों में जो गुण हैं, वही गुण तो भावी सिद्धों में होंगे। वर्तमान के सिद्ध-सिद्धालय में विराजमान हैं, उन सिद्धों के पास जो गुण हैं, वही गुण भावी सिद्धों में हैं। ज्ञानी ! सिद्ध-भूतपूर्व नहीं हैं, सिद्ध अभूतपूर्व होते हैं। भूत वह होता है-जिसका छूट जाता है, लेकिन सिद्ध भगवान का सिद्धत्व कभी छूटता नहीं है, इसलिये सिद्ध अभूतपूर्व होते हैं। जो पहले कभी नहीं हुये-ऐसी अवस्था को पाना अभूतपूर्व अवस्था है, वह सिद्धों की होती हैं।

आचार्य भगवन् कह रहे हैं-जीवन जीने की एक नयी शैली दे रहे हैं, कि इस तरह देखने का प्रयास तो करो, सामने वाले को सिद्ध के रूप में देखो, सामने वाले को शुद्ध के रूप में देख लो, वैसा अपने को देख लो, जब तुम उस समान हो, तो फिर विवाद कहाँ? धन्य है दोनों में राग नहीं। जैसे-समवशरण में विराजे एक केवली को, दूसरे केवली से राग नहीं हैं, वैसा ही यहाँ पर विराजित-एक आत्मा को दूसरी आत्मा से राग नहीं। क्यों? वहाँ अभिव्यक्ति में राग नहीं, तो यहाँ शक्ति रूप में राग नहीं।

आचार्य देवसेन वहाँ तक ले जा रहे हैं-जैसे समवशरण में एक केवली के समीप में अन्य केवली विराजते हैं। और किसी को राग नहीं होता, किसी को द्वेष नहीं होता है, वैसी दशा में आ जाने का नाम है-अध्यात्म। यह निश्चय नय की विवक्षा है। जैन दर्शन एकाक्षी दर्शन नहीं है, और दोनों नयों का होना आवश्यक है। आनन की शोभा-दोनों नयन से होती है और आगम की शोभा-दो नयों से होती है।

यदि कोई मात्र निश्चय को अपनाये-तो काम नहीं बनेगा और मात्र व्यवहार को अपनाये-तो भी काम नहीं बनेगा। आचार्य देव कहते हैं-जो दोनों नयों से वस्तु का स्वभाव जानता है, कि तुम निश्चय नय की विवक्षा में सिद्ध हो और व्यवहार नय की विवक्षा में मनुष्य हो, तो मनुष्य के नाते मुझे श्रावक धर्म का पालन करना, नितान्त अनिवार्य है। माँ अपने बेटे को राजा कहकर बुलाती है-लेकिन बुलाती भले है राजा बेटा, लेकिन अपने बेटे को डाँटती भी है और सुलाती भी है सभी आवश्यक कर्तव्य पूर्ण करती है।

निश्चय नय से देखा जा सकता है, लेकिन व्यवहार नय से वहाँ तक जाया जा सकता है। आँखों से शिखर की चोटी दिखती है, लेकिन पाँवों के बिना शिखर तक चढ़ा नहीं जा सकता है। यदि पर्वत को देखना है, तो आँखे ही काफी हैं और पर्वत पर चढ़ना है, तो पाँव चाहिये। यदि तुम्हें इतने में ही संतुष्टि है, कि मैं शक्ति रूप से शुद्ध हूँ, तो मात्र निश्चय ही काफी है, लेकिन लगता है जो मैं देख रहा हूँ, वह सिद्धत्व मेरे अंदर है, उस सिद्धत्व को प्रकट करने की भावना है, तो फिर चारित्र की आवश्यकता है।

चारित्रं सर्व-जिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्व-शिष्येभ्य: ।
प्रणमामि पंच-भेदं पंचम-चारित्र-लाभाय ।। 6 ।। वीरभक्ति ।।

आचार्य पूज्यवाद देव लिखते हैं-सभी तीर्थकरों ने चारित्र की बात कही है। जिन तीर्थंकर के लिये निर्वाण होना नियामक था, उन तीर्थकरों ने भी दीक्षा को अंगीकार किया है, ऐसा नहीं, कि जब भाग्य में होगा ? नहीं। ज्ञानी ! भाग्य के भरोसे बैठोगे तो भाग्य तुमसे दूर भाग जायेगा। और पुरूषार्थ करने लगोगे, तो भाग्य भाग कर के तुम्हारे पास आ जायेगा। पुरूषार्थ भाग्य को भगाकर ले आता है और भाग्य-भाग्य को भगाकर ले जाता है।

प्रिय आत्मन्!

हमारे आचार्यों ने मात्र एक को स्वीकार नहीं किया है। आचार्य देव कहते हैं-भाग्य से कार्य की सिद्धि होती है या पुरूषार्थ से कार्य की सिद्धि होती है? पुरूषार्थ से कार्य की सिद्धि होती है। ओहो! ध्यान देना ज्ञानी! आचार्य कहते हैं यदि मात्र पुरूषार्थ से ही कार्य सिद्धि होती है, तो फिर संयम लेते ही सभी को मोक्ष होना चाहिये।

ज्ञानी जीव ! किसी भी कार्य की सिद्धि न तो मात्र भाग्य से होती है, न मात्र पुरूषार्थ से होती है, जैन दर्शन में एक का कोई स्थान नहीं है, जैन दर्शन कहता है-

पुरूषार्थ+भाग्य=सफलता

सफलता का श्रेय मात्र पुरूषार्थ को नहीं है, सफलता का श्रेय मात्र भाग्य को नहीं है। भाग्य के साथ पुरूषार्थ, आज का सम्यक् पुरूषार्थ, ही कल का भाग्य बन जाता है। इस प्रकार से जो जानता है वस्तु के स्वभाव को वह सम्यक् पुरुषार्थ के द्वारा निज कार्य की सिद्धि कर लेते हैं। समझो, विभाव में रहते-रहते अनंत काल बीत गये, लेकिन स्वभाव को अभी तक नहीं समझा है।

आचार्य देव कहते हैं-वस्तु का स्वभाव ही धर्म है आत्मा का स्वभाव ज्ञान और दर्शन है। आत्मा के स्वभाव को जानो, और मेरी आत्मा का जो स्वभाव है, वही दूसरी आत्मा का स्वभाव है। एक खेत में बहुत से गन्ना लगे हैं, पहला वाला गन्ना मीठा है, दूसरा वाला कैसा है ? मीठा है। जैसे खेत के सभी गन्ने मीठे हैं, क्योंकि गन्ना का स्वभाव मिठास है। उसी तरह प्रत्येक जीवात्मा का स्वभाव ज्ञानदर्शनमय है। दोनों नय से वस्तु के स्वभाव का विचार करो। जिसके पास निर्णय नहीं है, स्थिरता नहीं है, तत्त्व का निर्णय होगा तो डाँवाडोल नहीं होगा।

जिस विद्यार्थी को मालूम है, प्रश्न का उत्तर यही सही है। वह चार विकल्प में से एक उत्तर को चुन लेता है, लेकिन जिसको ज्ञात नहीं है, तो कभी एक में टिक लगायेगा, कभी दूसरे में, कभी तीसरे में और तीन में टिक लगाने के बाद मालूम चला कि सही वाले में टिक ही नहीं लगा पाया।

प्रिय आत्मन्!

ध्यान देना-वस्तु विवक्षा में यह डाँवाडोल पना कहाँ है? जहाँ तत्त्व का निर्णय नहीं है, वहाँ जीव डाँवाडोल होता है, चलायमान होता है। जब तत्त्व का निर्णय पक्का हो जाता है, तो मन, राग-द्वेष-मोह में नहीं जाता है। मन तीनों से परे है। आचार्य देव कहते हैं। ज्ञानी! वह है, जो न राग में, न द्वेष में और न मोह में जाये, दोनों नयों को जानने का फल क्या है? राग-द्वेष-मोह, इन तीनों का अभाव ही फल है। यह ज्ञान का फल है, यदि दोंनों नय के ज्ञाता हो, तो फिर रागी क्यों? ज्ञानी हो तो रागी क्यों? रागी है तो ज्ञानी कैसे?

आचार्य देव कहते हैं-उभय नय का ज्ञाता, फिर कैसे घर से नाता। यदि उभय नय का ज्ञाता है, तो उसका नाता तो सिद्धत्व दशा से होता है। राग का, द्वेष का, मोह का अभाव, यह ज्ञान के फल हैं। जब तक तत्त्व का निर्णय सही नहीं हुआ है, तब तक राग-द्वेष-मोह है। और ज्यों ही निर्णय हो गया रागादि चले जाते हैं।

प्रिय आत्मन्!

पल भर में राग टूटता है, जानकारी लगते ही राग चला जाता है और जब तक जानकारी नहीं होती है, तब तक राग बढ़ता जाता है। जिसका मन रूपी जल, राग-द्वेष की लहरों के द्वारा, चंचल हो रहा है। जैसे, जल में लहरें उठती है, पवन के द्वारा। वायु चलती है, तालाब में लहरे उठती हैं, उसी तरह राग-द्वेष की लहरें मन रूपी जल में दिखायी देती हैं, तो फिर वह मनुष्य भी निज प्रभु को नहीं देख पाता है। और जल में जब लहरें शांत हो जाती हैं, तो जल में पड़ी हुयी वस्तु दिखाई देने लगती है। उसी प्रकार से राग-द्वेष-मोह रूपी लहरों के शांत होने पर आत्माओं में-आत्मा से-आत्म रत्न दिखाई देने लगता है।

प्रिय आत्मन्!

जल में से वस्तु बाहर नहीं गयी है। लेकिन लहर के उठने से वस्तु दिखायी नहीं दे रही है। उसी तरह मेरा प्रभु मुझसे बाहर नहीं गया है। ध्यान देना- इस पंखे पर नाम लिखा है यदि पंखे की गति चालू कर देते हैं, तो फिर गतिशील पंखे पर लिखा हुआ नाम भी दिखायी नहीं देता, फिर तो यह भी पता नहीं पड़ता, कि तीन पंखुड़ी हैं, कि एक पंखुड़ी है?

जैसे गतिशील होने पर पंखे पर लिखा हुआ नाम आपको पढ़ने में नहीं आता, उसी तरह राग-द्वेष की गति जब मंद होती है, तो निज स्वभाव पकड़ने में आता है। जब गाड़ी की गति गतिशील होती है, तो हमें जितने भी पदार्थ होते हैं, वे भी गतिशील नजर आते हैं, उसी तरह जब हमारे अंदर राग-द्वेष होता है, तो हमें दूसरे व्यक्ति भी रागी-द्वेषी नजर आते हैं।

चाल, राग-द्वेष की न हो, चाल, ज्ञान-दर्शन की हो। ज्ञान-दर्शन, अचल बना देता है, और राग-द्वेष, चंचल बना देता है। ज्ञान दर्शन टिकाऊ है, खरा है, परखा है, लेकिन राग-द्वेष खोटा है। निज तत्त्व को वही पहचान पाता है, देख पाता है, जिसका मन रूपी जल शांत हो गया है, स्थिर हो गया है। यदि जल में मलिनता हो, जल में उबाल हो, और जल में चंचलता हो। यह तीन स्थिति होने पर जल में अपना प्रतिबिम्ब नहीं झलकता है, उसी तरह राग-द्वेष मोह यह तीन स्थिति होने पर निज में निज आत्मा नहीं झलकता है।

प्रिय आत्मन्!

दर्पण में प्रतिबिम्ब झलकाने की क्षमता है, लेकिन दर्पण पर धूली लगी हो। तो उसी तरह, यदि अपने साथ यह राग-द्वेष की धूली चिपकी है, तो मेरा परमात्मा मेरे मन रूपी घर में नहीं ठहरेगा। इसलिये इस बात को अच्छी तरह देखें, जैसे सरोवर के जल के स्थिर होने पर गिरा हुआ रत्न भी नियम से उसी में दिखाई दे जाता है। उसी तरह मन रूपी जल के स्थिर होने पर, निर्मल आत्मा दिखाई देता है। प्रतिमा का दर्शन मंदिर में होता है, परमात्मा का दर्शन अंदर में होता है।

ध्यान देना-प्रतिमा के दर्शन करने वालों को अब परमात्मा का दर्शन करना चाहिये। प्रतिमा के दर्शन बहुत आसान हैं, हम कहीं भी जाके कर लेते हैं। बारम्बार कर लेते हैं, लेकिन प्रतिमा मात्र के दर्शन के लिये नहीं है, दर्शन तो मात्र संकेत है। जैसे-रास्ते में चलते समय तीर का चिन्ह मिल जाता है, उसे देखकर के हम मुड़ जाते हैं, उसी तरह प्रतिमा को चक्षु देखती है, और ज्ञान चक्षु देखता है, परमात्मा को।

ज्ञानी ! जब आँखें दर्शन को खुलती हैं-तो प्रतिमा दिख जाती है और ज्ञान की आँख खुलती हैं-तो परमात्मा दिख जाता है, प्रतिमा के साथ-साथ परमात्मा का दर्शन करना। आचार्य देव कहते हैं-इनके पास आकर के राग-द्वेष कम करो और राग-द्वेष कम करोगे तो निज का परमात्मा भी दिखाई देगा।

दिट्ठे विमलसहावे, णियतच्चे इंदियत्थपरिचत्ते।
जायइ जोइस्स फुडं, अमाणुसत्तं खणद्धेण ।।42।।

अर्थ-

निर्मल स्वभाव वाले, इन्द्रियों के विषयों से रहित निज आत्मतत्त्व के दिखाई देने पर, आधे क्षण में योगी के अमानुषपना स्पष्ट प्रकट हो जाता है।

णाणमयं णियतच्चं, मेल्लिय सव्वे वि परगया भावा।
ते छंडिय भावेज्जो, सुद्धसहावं णियप्पाणं ।।43।।

अर्थ-

ज्ञानमयी निजतत्त्व को छोड़कर सभी भाव परगत हैं, उन्हें छोड़कर शुद्ध स्वभाव वाले निज आत्मा की ही भावना करनी चाहिये।

जो अप्पाणं झायदि, संवेयण चेयणाइ उवजुत्तो ।
सो हवइ वीयराओ, णिम्मल रयणत्तओ साहू ।।44।।

अर्थ-

जो स्व संवेदन चेतनादि से उपयुक्त साधु आत्मा को ध्याता है वह निर्मल रत्नत्रय का धारक वीतराग हो जाता है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

मिथ्यात्व रूपी अंधकार को मिटाने के लिये जो प्रज्ज्वलित दीप ज्योति के समान है ऐसा जिनेन्द्र भगवान वीतराग स्वामी का वह वचन जयवंत हो। जिसे प्रवचन कहा जाता है।

मिथ्याज्ञान-तमोवृत-लोकैक-ज्योति-रमित-गमयोगि।
सांगोपांग - मजेयं जैनं वचनं सदा वन्दे ।।7।। चैत्यभक्ति ।।

मैं जिन वचन की वंदना करता हूँ। मैं प्रवचन के लिये नमस्कार करता हूँ। हे प्रभु ! आपके वीतरागी वचन विश्व के समस्त प्राणियों का कल्याण करने वाले हैं, इसलिये आपके वचन रूपी अमृत को अपने कर्णांजुली से पान करता हुआ, भक्ति भाव के साथ हृदय में धारण करता हुआ, मैं आपके प्रवचन को ही नहीं, आपके एक-एक वचन को नमस्कार करता हूँ क्योंकि आपके वचन, आपके चरण, आपकी चर्चा, आपकी चर्या, आप हैं। आपके वचनों को, आपके चरणों को नमन।

हे जिनेन्द्र ! वचन में आप हैं, आपके वचन आप हैं। आपकी चर्चा में आप हैं। आपके चरण में आप हैं। इसलिये आप वंदनीय हैं-आपके वचन और प्रवचन दोंनों वंदनीय हैं। मैं आपकी वंदना बाद में करूँगा, पहले आपके प्रवचन की वंदना करता हूँ। हे प्रभु! मुझे, आप नहीं मिले मुझे तो सिर्फ आपके प्रवचन ही मिले। आचार्य कुंदकुंद का दर्शन आचार्य देवसेन का दर्शन हमें नहीं हुआ, आपके वचनों ने आपका परिचय कराया है। आचार्य कुंदकुंद की महानता को, इन नयनों ने नहीं निहारा। आचार्य कुंदकुंद के शब्दामृत को इन कर्णो ने नहीं पिया है। आचार्य कुंदकुंद की जीवन चर्या को इन नयनों ने कभी नहीं देखा है। और आचार्य कुंदकुंद की अनुभव शैली इस चेतन ने कभी नहीं देखी है। किंतु फिर भी उनके वचनामृत आज भी प्रमाणिक बने हुये हैं। उसी प्रमाणिक आधार शिला पर अध्यात्मिक प्रसाद खड़ा है। जो भी इस प्रसाद में आया, वह प्रसाद का पात्र बना है।

न विषाद अवसाद जहाँ है, एक मात्र प्रासाद वहाँ है।
कुंदकुंद के इस चिंतन में, आगम का ही निनाद यहाँ है।
ऐसी जिनकी चिंतन शैली, जिनवाणी का गान वही है।
इसीलिये तो आज बहुश्रुत, दान वही है, दान वही है ।।1।।

कुंदकुंद के वचन शास्त्र में, उनकी आत्मा का दर्शन है।
कुंदकुंद की मंगलगाथा, उनकी गाथा का सृजन है।
कुंदकुंद के भाव अमर हैं, आज उन्हीं की गाथा में।
इसीलिये तो कुंदकुंद के, चरण झुकाता माथा मैं ।।2।।

देवसेन की देववाणी में, कुदकुंद का दर्शन है।
जिस वाणी से उद्घाटित हो, निज में सम्यग्दर्शन है।

आज उन्हीं का ज्ञान अमर बन, सम्यग्दर्श कहाता है।
उसी ज्ञान को पाने वाला, सम्यग्चारित पाता है॥ 3॥

ऐसे आचार्य कुंदकुंद के चरणों, आचार्य देवसेन स्वामी के चरणों, में प्रणाम करते हुये आज हम तत्त्वसार के सार तत्त्व को प्रकट करते हैं।

प्रिय आत्मन्!

जब इंद्रियों की प्रवृत्ति रुक जाती है, मन स्थिर हो जाता है, आत्मा का स्वभाव दिखायी देता है, तब उस निर्मल आत्म स्वभाव में, निज तत्त्व में, इंद्रियों के पदार्थो का परिपूर्ण त्याग करके, निज तत्त्व में जब लीनता आती है। आचार्य देव कहते हैं-वह योगी के अमानुषत्व दशा को प्रकट कर देती है। यह अमानुषपना क्या है? मनुष्यों के बीच में रहने पर भी-मनुष्य जैसे नहीं हैं, वे मानव के तिलक हैं, इसी जगत में हैं, पर जग के जैसे नहीं हैं, जग का प्रभाव उन पर नहीं है उनका प्रभाव जग पर है। जग उनको जान नहीं रहा, वे जग को जान रहे हैं, हम उनको नहीं जानते, जिस तरह वह हमें जानते हैं।

हम तो इतना ही जानते हैं, जितना शास्त्रों में पढ़ा है, लेकिन वे हमारे अतीत, अनागत और वर्तमान काल को भी जानते हैं। उन्हें जानो-जो तुम्हें अनादि से जानते हैं और अनंत काल तक के लिये जानेंगें। आत्मा के स्वभाव के दिख जाने पर, अमानुषत्वपना आ जाता है। चेष्टायें थक जाती हैं। विकल्प रुक जाते हैं। क्रियायें विराम हो जाती हैं। नेत्रों में अलौकिक ज्योति प्रकट हो जाती है। क्या हो गया ? ज्ञानी जीव ! यह अमानुषत्व तो है, कि सभी मनुष्य तो धरती पर हैं, पर वह इस भूमण्डल से भी पाँच हजार धनुष ऊपर समवशरण में विराजमान हैं। पाँच हजार धनुष ऊपर आकाश में बिहार कर रहे हैं, यही अमानुषत्व है।

जो लक्षण मनुष्य में पाये नहीं जाते, उनसे विलक्षण अवस्था को प्राप्त कर लिया है, यह अमानुषत्व है। सबके औदारिक शरीर हैं। मनुष्य गति नाम कर्म का उदय है, तो नाम कर्म की विवक्षा में मनुष्य हैं, आयु कर्म की विवक्षा में, मनुष्य हैं, लेकिन चेष्टायें देवों से भी श्रेष्ठ हैं।

अमूल्य किसे कहते हैं? जिसका मूल्य न हो-वह अमूल्य है या जिसका मूल्य न आँका जा सके-वह अमूल्य है। वैसे ही-जो मनुष्यों से परे है, श्रेष्ठ है, उत्कृष्ट है, जो मनुष्यों के लक्षण को पार कर चुका है, जो मूल्य की दशा से उत्कृष्ट हो चुका है, वह अमूल्य है। उसी तरह मनुष्यों में जो उत्कृष्ट हो चुका है-वह अमानुष हो गया है।

प्रिय आत्मन्!

आत्म स्वभाव के दर्शन पर, शुक्ल ध्यान के बल पर, जब यही आत्मा अरहंत बनता है, तो अमानुष होता है। देवसेन स्वामी को शब्द दिखा कि महामूल्य कहने में और अमूल्य कहने में कुछ अंतर तो है, इसीलिये महामानुष और अमानुष में बहुत अंतर है। आपकी दशा मनुष्यों की कल्पना से परे हो गयी है। मनुष्यो की चिंतना से परे हो गयी है। मनुष्यों की चेष्टाओं से परे हो गयी है। मनुष्यों की चर्चाओं से परे हो गयी है। मनुष्यों की क्रियाओं से परे हो गयी है। इसलिये हे प्रभु ! आप तो एक क्षण मात्र के शुक्ल ध्यान से अद्‌भुत हो गये हैं, अर्थात मोहनीय कर्म से रहित आत्मा के निज तत्त्व में रमने पर, जीव की यह दशा होती है, कि वह जीव अरहंत दशा को प्रकट कर लेता है।

प्रिय आत्मन्!

यह है निज स्वभाव में आने की दशा। यदि एक साधु सामायिक में लीन है और उसकी सामायिक में ही ऐसी दशा प्रकट होती है। साधारण मनुष्यों से हटकर जो असाधारण क्रिया, असाधारण चर्या जो सब में न पायी जाये, किसी विशेष में पायी जाये, उसको यहाँ पर अमानुष कहा है।

मानुषीं प्रकृति-मभ्यतीतवान्, देवतास्वपि च देवता यत:।
तेन नाथ! परमाऽसि देवता, श्रेयसे जिनवृष! प्रसीद न: ।।75।। स्वयंभू स्त्रोत ।।

हे जिनेन्द्र देव! जो चेष्टायें मनुष्य में पायी जाती हैं, वे चेष्टायें आपसे परे हैं। मनुष्यों में पायी जाने वाली प्रवृत्तियों से आप परे हो चुके हैं। और देवताओं में भी आप उत्कृष्ट वीतराग देव हैं। देवाधि देव हैं। इसलिये हे जिनेन्द्र देव ! आप परम देवता हो, मनुष्य की प्रवृत्तियों में आप उत्कृष्ट हैं। मान ही प्रवृत्ति है, मान ही चेष्टायें हैं, उन मानवी चेष्टाओं से (आहार, भय मैथुन, परिग्रह) जो संज्ञायें, मानवी चेष्टायें हैं, इन सबसे आप परे हैं। इसलिये आप अमानुष हो गये हैं।

आपके मन, वचन और काय की प्रवृत्तियाँ सम्यक् रुप से रुक गयी हैं, बिना इच्छा के। फिर भी आपकी इच्छा, अविवेक पूर्वक नहीं हैं, क्योंकि आप केवलज्ञानी हैं, इसलिये प्रत्येक क्रिया विवेक पूर्वक ही हो रही है, लेकिन मनुष्यों जैसी चेष्टायें आपमें नहीं पायी जाती हैं। हे जिनेन्द्र भगवान ! आप मुझ पर प्रसन्न हों। प्राय: देखा जाता है, हम मनुष्य हैं जरा सा परिग्रह हमारे पास आ जाये, तो हम प्रफुल्लचित्त हो जाते हैं, लेकिन तीर्थंकर देव समवशरण में विराजे हैं तीन लोक का वैभव उनके सामने है, लेकिन किसी भी प्रकार का राग-द्वेष नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

व्यवहार में लीन रहने वाला योगी-जब आत्म स्वभाव की दशा को निहारता है, तो शुद्धोपयोग की दशा में वह प्रवेश करता है, तो वह चेष्टायें कैसी हो जाती हैं।

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरी-कृतात्म-तत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति ।।41।। इष्टोपदेश ।।

एक साधारण मनुष्य जब बोलता है-तो बोलता है। जब चलता है-तो चलता है। जब देखता है-तो देखता है। लेकिन अध्यात्म में परायण योगी पुरुष, बोल तो रहा है, लेकिन लक्ष्य भीतर है। आहार कर रहे हैं, फिर भी लक्ष्य भीतर में है।

आचार्य देव कहते हैं यदि प्रयोजन पड़ता है, तो थोड़ा सा बोल लेते हैं और प्रयोजन नहीं, तो उसको भी बोलकर के भूल जाते हैं। उस को याद नहीं रखते हैं, कि क्या बोला था। योगी की दशा यही है, कि वह इस संसार को जान चुका है, यह संसार इन्द्र जाल की तरह है, इसलिये अपने स्वभाव को उसने समेट लिया है। यदि निज कार्य के वश कुछ बोलना भी पड़े, तो बोला और शीघ्रता से उसको भूल जाता है। क्योंकि हम पर को याद रखेंगे, तो परम को याद नहीं कर पायेंगे। गाना को याद रखोगे तो गाथा को याद नहीं कर पाओगे। ध्यान देना- गाना बहुत जल्दी याद हो जाता है, कौन सी फिल्म में कौन सा गाना आया है? लेकिन गाथा कौन से शास्त्र में कौन सी आयी है। यह भूल जाते हैं।

ज्ञानी जीव ! जब पर से प्रवृत्ति हटकर के निज में आ गयी है, तो बोलते पर भी नहीं बोल रहे है। लेकिन जितना तुम से बोला है, उतना पहले मैंने अपने आप से बोला है। पर प्रमुख नहीं है, प्रमुख तो आत्म तत्त्व ही है, इस आत्म तत्त्व के साथ ही पर प्रमुख है। ध्यान देना- ज्ञानी ! प्रमुख पर नहीं है, प्रधान पर नहीं है, क्योंकि ऐसा उनने जान लिया है।

परोपकृति मुत्सृज्य, स्वोपकारपरो भव ।
उपकुर्वन् परस्याज्ञो, दृश्य मानस्य लोकवत् ।।32।। इष्टोपदेश ।।

परोपकार को छोड़ो-निज उपकार में लीन रहो, लेकिन परोपकार किये बिना रहा नहीं जा सकता, उस पथ पर चला नहीं जा सकता, इसलिये मात्र सामान्य दृष्टि से उपकार करते रहो। लेकिन प्रधानता किसको देना है ? मान के चलिये-आज के प्रवचन में कोई महानुभाव नहीं आये, या कोई आये, तो उससे कोई अंतर नहीं है, क्योंकि प्रवचन में प्रधानता श्रोता की नहीं है प्रवचन में सबसे पहली प्रधानता वक्ता के

स्वयं की है, क्योंकि पहला श्रोता स्वयं वही है। सबसे पहले जब प्रवचन हो तो पहला श्रोता कौन बने? पहला श्रोता है, मेरी अंतर आत्मा, जो मैंने बोला है सबसे पहले मैंने ही सुना है, जब मेरे शब्द मुख से बाहर निकलने को तैयार थे, उसके पहले भाव, और फिर भाव वचन को मैंने सुना, मैंने जाना, मैंने समझा, इतना होने के बाद फिर द्रव्य वचन आपसे कहे गये।

पहले भाव वचन तैयार हुये, भाव वचन मेरी आत्मा ने सुने, आत्मा ने जाने, आत्मा ने समझे, उसके पश्चात मेरे मुख से परोपकार के लिये द्रव्य वचन निकले, इसलिये पहला श्रोता वक्ता ही होता है। इसलिये मैं जो भी बोलता हूँ उसको सबसे पहले सुनने वाला मैं हूँ, यदि जय बोली है, तो जय को सबसे पहले मैंने सुना है।

ष्ळववक पद हववक वनजष

जब हम भीतर में अच्छा डालते हैं, तो अच्छा निकालते हैं, जैसा डालते हैं, वैसा निकालते है। कम्प्यूटर, लेपटॉप का जो की-बोर्ड होता है, उस की-बोर्ड पर जो अक्षर टाइप करते हैं, वह की-बोर्ड पर आप देखें, न देखें, आपका अभ्यास हो गया है। इसलिये आपको देखना नहीं पड़ रहा हैं। आप स्क्रीन पर भी नहीं देख रहे हैं, लेकिन जो टाइप हुआ हैं, स्क्रीन पर सामने आ रहा है। उसी तरह से मेरे प्रत्येक क्रिया का फल, जैसे की-बोर्ड पर टाइप किया गया, स्क्रीन पर आता है। वैसे काय पर की हुई क्रिया चेहरे पर आ जाती है।

प्रिय आत्मन्!

जड़ में पानी दोगे, तो छुप के नहीं रहेगा, फूल फूलेंगे ही। पत्ते हरे होंगे ही। फल फलेंगे ही। उसी तरह से जो भीतर में भावनायें होंगी, वे भावनायें प्रकट होती हैं। चाहे उनका माध्यम काय हो, चाहे वचन हो, चाहे मन हो। ध्यान देना-माध्यम कुछ भी हो सकता है, चाहे पौधे में दिया हुआ पानी, फूलों के माध्यम से बाहर आये। चाहे फल के माध्यम से बाहर आये। चाहे पत्तों के रस के माध्यम से बाहर आये। चाहे लकड़ी के माध्यम से बाहर आये, लेकिन जो पानी जड़ों में गया है, वह किसी न किसी प्रकार से बाहर आता है। उसी तरह जो तत्त्वज्ञान आपने पाया है, वह तत्त्वज्ञान ही आपके द्वारा बाहर निकलता है। इसलिये यह जो प्रवचन है, ऐसा मानकर चलना, कि जड़ में दिया जा रहा पानी है। किंतु आप जड़ नहीं, चेतन है और चेतन में दिया गया पानी ऐसा है, कि यह अनंत गुना फलीभूत होने वाला है।

जो भी हम सुनते हैं और सुनाते हैं, वही अपनी हृदय भूमि में बोते हैं और वही फुलता है। मैंने जो भी सुनाया है, पहले वह ज्ञान पर्याय मेरे में प्रकट हुयी है, आप स्क्रीन पर जाकर चित्र देख रहे हैं, पहले उसने रिकार्ड किया है। रिकार्डिंग के बिना स्क्रीन पर दिखेगा क्या? और जो स्क्रीन पर दिख रहा है, वह रिकार्ड हुआ है। उसी तरह से मैंने अपने जीवन में जो पाया है, वह चाहे वचन के माध्यम से हो, चाहे चर्या के माध्यम से हो, चाहे मौन के माध्यम से हो, झलकता वही है।

एक फिल्म के निर्माण में तीन साल का समय लगा और फिल्म कुल तीन घंटे की, और तीन घंटे में भी यदि आप गतिशील करके देख लें, या मुख्य अंशों को देख लें, तो तीन मिनिट में और नाम मात्र तीन सैकेंड में भी देख सकते है लेकिन तीन सैकेंड में भी जो चित्र देख रहे हैं, उसके निर्माण में भी तो तीन साल ही लगे हैं न। उसी तरह से वृक्ष के एक फल को तोड़ने में कितना समय लगा ? नारियल को तोड़ने में, फोड़ने में और स्वाद लेने में ज्यादा समय नहीं लगा, लेकिन नारियल बनने में, नारियल का वृक्ष बनने में, नारियल में पानी प्रवेश कैसे हुआ ?

ध्यान देना- ज्ञानी ! नारियल में से पानी निकालना है, तो ज्यादा उपाय नहीं करना है। लेकिन नारियल में पानी कैसे पहुँचा, उसकी साधना से पूछो, कितनी कठोर साधना करने के बाद, नारियल में पानी पहुँचता है।

प्रिय आत्मन्!

वैसे ही निरंतर तत्त्वाभ्यास के माध्यम से आत्मा में निर्मलता पहुँचती है। आत्मा में विशुद्धि प्रवेश करती है। यह विशेषता है। जैसे नारियल में जल का पहुँचना, बाहर के उपायों से नहीं है, सहज रुप से साधना करते-करते वह पानी नीचे से ऊपर तक पहुँचा है। बाहर से देखो कहाँ से जा रहा है तो नहीं दिखेगा, लेकिन भीतर ही भीतर जड़ से लेकर ऊपर तक पानी पहुँचा है, और वह पानी प्रत्येक नारियल को मिला है। जड़ ने जो पानी लिया है, प्रत्येक नारियल को दिया है।

यदि इस नारियल में पानी है, उस नारियल में पानी है, तो उसी जड़ का दिया हुआ है, उसी तरह चाहे पत्ते के माध्यम से हो, चाहे फुल के माध्यम से हो, चाहे फल के माध्यम से हो, उसी जड़ का पानी उसी तरह काय मन, वचन की चेष्टा में भी मूलाचार, मन, वचन, काय की चेष्टा में समयसार, तीनों योगों में मूलाचार और समयसार समाहित हो गया है। ऐसी चर्या हो गयी है, कि उस चर्या के माध्यम से ऐसा लगता है, कि यह तो मनुष्य में पाया ही नहीं जाता, जब कोई असाधारण व्यक्तित्व पैदा हो जाता है, तो हम यह कहते हैं, आप तो हम जैसे कहाँ रहे ?

प्रिय आत्मन्!

यह एक शैली है-प्रकट करने का सिद्धांत भिन्न होता है और शैली भिन्न होती हैं। यह सिद्धांत का अमानुष नहीं है, शैली का अमानुष है। साहित्य भिन्न होता है और सिद्धांत भिन्न होता है। तत्त्व दो प्रकार का होता है। 1. निज तत्त्व, 2. पर तत्त्व। जो निज तत्त्व होता है, वह ज्ञानमय होता है। यद्यपि चेतना तीन प्रकार की होती है। 1. कर्म चेतना 2. ज्ञान चेतना 3. कर्मफल चेतना। यदि कर्म चेतना अशुद्ध है, ज्ञान चेतना शुद्ध है, जो निज तत्त्व है, वह ज्ञानमय ही है और शेष सभी जो भाव हैं, वे परगत भाव है। इसलिये पर भावों को छोड़कर मात्र शुद्ध स्वभाव को पाना चाहिये।

जीव तत्त्व हेय है, कि उपादेय है? ज्ञानी जीव! मैं आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा की चर्चा नहीं कर रहा हूँ। आस्रव, बंध तो नियम से हेय ही है। संवर, निर्जरा, उपादेय ही है, लेकिन मैं प्रमुख तत्त्व, सब तत्त्वों का राज तत्त्व, जो जीव तत्त्व है, उस तत्त्व के विषय में पूँछ रहा हूँ, कि जीव तत्त्व हेय है कि उपादेय है।

जीवादि बहित्तच्चं हेयमुवादेय मप्पणो अप्पा।
कम्मोपाधि समुब्भवं, गुणपज्जायेहिं वदिरित्तो ।।38।। नियमसार।।

आचार्य कुंदकुंद भगवान नियमसार में कह रहे हैं, जीवादि बाह्य तत्त्व हेय है। ध्यान देना-एक आत्मा जब सामायिक में लीन-है तो सामायिक की दशा में उसे अन्य आत्मा भी हेय है। अभी आप अपने आत्मा के कल्याण के लिये बैठे हैं, प्रवचन सुन रहे हैं, इस प्रवचन की बेला में, अपना आत्म तत्त्व ही मुख्य रूप से उपादेय है, कौन आ रहा, कौन जा रहा यह सब हेय है।

आचार्य देव कह रहे हैं-यदि तुम सभी जीवों को उपादेय मान लोगे, तो सबके विकल्पों में उलझ कर के अपना कल्याण नहीं कर पाओगे, इसलिये आत्म तत्त्व उपादेय है, लेकिन अन्य आत्मायें भी जीव तत्त्व हैं, किंतु वे आत्म कल्याण के समय उपादेय नहीं हैं। पर कल्याण के समय तो उपादेय हैं, अभी संपूर्ण समुदाय मेरे लिये उपादेय है, लेकिन सामायिक में विराजे तो भैया सब अपने स्थान पर जाओ, हम अपनी सामायिक करेंगे। सामायिक का काल ध्यान का काल है।

प्रिय आत्मन्!

अन्य जीवों के कारण भी यदि तुम्हें राग-द्वेष-मोह उत्पन्न करके, आस्रव-बंध हो रहा है, तो वे भी तुम्हारे लिये हेय हैं, वहाँ से अपना उपयोग हटाकर के निज में ले आना ही उनका छोड़ना है। किसी को छोड़ने नहीं जाना है, किसी को भगाना नहीं है, कहीं से भागना नहीं है अपने उपयोग को निज में समेट लेना। उसी तरह से पर को नहीं हटाना है, निज को निज में समेट लेना साधना हैं।

ज्ञानियो ! यही तत्त्व है, कि आपने अपने को कितना समेटा है, कछुआ की भाँति साधु का जीवन होता है, जैसे-कछुआ को यदि हाथ पाँव बाहर निकालना हो, तो कितना समय लगेगा? कभी किसी ने देखा, कछुआ को हाथ पाँव बाहर निकालते हुये? अभी ठंडी का मौसम है, रात भर ठंडी में रहा है, अब जब धूप निकलकर आ रही है कुनकुनी, इस गुलाबी धूप में आना है, तो रेती के पास आयेगा। धीरे-धीरे पहले एक हाथ निकालेगा, फिर दूसरा हाथ निकालेगा, फिर एक पाँव निकालेगा, फिर दूसरा पाँव निकालेगा, इस प्रक्रिया में उसे कम से कम दस से पन्द्रह मिनिट लगेंगे, इतनी सावधानी से कछुआ अपने हाथ पाँव को निकालता है। सबसे कोमल होते हैं, उसके हाथ पाँव और पीठ बहुत मजबूत होती है जो कछुआ कुँयें की सतह से ऊपर आ गया है, यदि एक चावल का दाना भी उसके पाँव को स्पर्श कर जाये, तो तत्काल वह भीतर हाथ पाँव को समेट लेगा।

प्रिय आत्मन्!

उसी तरह योगी पुरुष संसार की किसी वस्तु को नहीं हटाते हैं, पर पदार्थो को नहीं हटाते हैं, अपने आपको अपने में समेट लेने का नाम है साधना। किसी को कुछ नहीं कहना है, अपने में आके रहना हैं। पर पदार्थ को नहीं छोड़ा है, पर भाव को छोड़ दिया हैं। परम भाव को पाना है, तो पर भाव को छोड़ना है। परम भाव से जुड़ना है तो पर भाव को छोड़ना पड़ेगा। परमेष्ठी से जुड़ना है तो फिर पर द्रव्य को छोड़ना पड़ेगा। एक समय में उपयोग, एक जगह रहेगा। चाहे जिससे जुड़ लो, एक साधु के पास गुरुकुल का विद्यार्थी गया गुरुदेव ! आशीर्वाद दीजिये, क्यों बेटा? गुरुदेव आपका अन्नय भक्त हूँ। आपकी कृपा से ही मेरा सब कुछ मंगल होता आया है और आपकी कृपा ही मेरे जीवन का सब कुछ है। बेटा! कुछ कहना चाहते हो, हाँ गुरुदेव ! आशीर्वाद दें मैं आपका ही हूँ और आपकी कृपा से अब मैं गृहस्थ धर्म में प्रवेश कर रहा हूँ।

गुरुदेव! ने कहाँ बेटे, अब तुम मेरे नहीं रहे अपनी श्रीमती के हो गये। और गुरुदेव ने दोंनों को आशीर्वाद दे दिया, लेकिन उसको बता दिया अब तुम मेरे नहीं रहे। शिष्य को लगा-कि आज तक गुरुदेव अपना मानते थे, लेकिन आज गुरु ने ऐसा क्यों कह दिया? कि अब तुम मेरे नहीं रहे। एक साल के बाद शिष्य फिर पहुँचा, गुरुदेव आपकी कृपा का फल, (पुत्र की ओर इशारा) आशीर्वाद दो। गुरुदेव ने आशीर्वाद दिया और बोले-अब तुम अपनी श्रीमती के भी नहीं रहे।

प्रिय आत्मन्!

व्यक्ति जब पर से जुड़ जाता हैं, तो निज से छूट जाता हैं। जिस क्षण पर से जुड़ा है, उस क्षण तो निज से छूटा ही छूटा है। आचार्य देव कहते हैं-एक समय में एक उपयोग। जिस समय मैंने पूरब की ओर

चेहरा करके देखा है, उस समय मैंने पश्चिम की ओर नहीं देखा। उसी तरह जिस समय मेरा उपयोग, णमोकार मंत्र के अरहंत पद में लगा हैं। उस समय सिद्ध में नहीं लगा और जिस समय सिद्ध में लगा है। उस समय आचार्य में नही लगा। पाँच पदों के स्मरण में भी भिन्न-भिन्नता है।

आचार्य देव कहते हैं-यह उपयोग की दशा है। एक जगह उपयोग होता है, एक में उपयोग होता है, तो अनंत का त्याग हो जाता है। जिस समय आप पूजा कर रहे थे, उस समय क्या आपकी दुकान में माल नहीं था ? था। कितनी वस्तुयें थीं दुकान में, एक हजार वस्तुयें आपकी दुकान में हैं, लेकिन पूजा में उपयोग लग गया, तो एक हजार वस्तुओं का त्याग हो गया। हजार ग्राहकों का त्याग हो गया। क्यों? उपयोग एक में लगा है, तो हजारों का त्याग हो गया। उसी तरह इस आत्मा ने जब अपना उपयोग विभाव में लगा दिया, तो अनंत गुण स्वभाव का त्याग हो गया।

ध्यान देना-जब तक एक में उपयोग जाता है, तो अनंत से उपयोग हटता है। पर भावों को छोड़कर के, निज शुद्ध स्वभाव ही निज आत्मा है। शुद्ध स्वभाव को आत्मा कहते हैं और जो आत्मा का ध्यान करता है पर द्रव्यों का, पर भावों का, परिपूर्ण त्याग हो गया। यह क्या है? पर भावों का किसी भी प्रकार कोई संकल्प नहीं, न मन, न वचन, न काय का तब कहीं निज में प्रतीति, रमण व श्रद्धा होती है, ऐसी अलौकिक दृढ़ श्रद्धा चाहिये, कि यही मेरा आत्म तत्त्व है, यह आत्म तत्त्व ही कल्याणकारी है। पर पदार्थ मेरे लिये कल्याणकारी नहीं हैं। जो मात्र अपनी आत्मा को ध्याता है, इस आत्मा में पर का प्रवेश वर्जित है।

हम लिखते हैं-सावधान, बिना अनुमति प्रवेश निषेध। यदि यह दो शब्द हम अपने आत्मा के साथ लिख लें, कि सावधान, किससे? पर भावों से सावधान, बिना अनुमति प्रवेश निषेध। पर द्रव्य का, पर क्षेत्र का, पर काल का और पर भावों का प्रवेश निषेध।

ज्ञानी! जिस दिन यह स्वीकार कर लेगा, कि न हम तुमाय इते जैहें न तुम हमाय इते आइयो। हे पर भाव! न मैं तेरे पास आऊँगा, न तू मेरे पास आना। मैं अपना उपयोग तुम्हारे पास नहीं ले जाऊँगा। एक बार अपनी आत्मा स्वीकार कर ले, कि हे क्रोध! न मैं तेरे पास आऊँगा, न तू मेरे पास आना। हे मान! हे माया! हे लोभ! न में तेरा उपयोग करूँगा, न तू मेरा उपयोग करना।

यदि मेरे घर में कोई अचानक प्रवेश कर जाये, तो हम पूँछते हैं, किससे पूँछ के आये हैं, आप? कौन हैं आप? अरे ! ज्ञानी ! जिस समय क्रोध आया, उस समय क्रोध से पूछ लेते? किससे पूँछ के आये आप? एक बार लोभ से पूँछ लेते, किससे पूँछ के आये आप? और कौन हो आप? ज्ञानी ! बात तो यह है, कि जो घर में पालतू हैं न, वह बिना पूँछे ही आते हैं। जो विभाव परिणाम हैं, वे पालतू हैं। उनको हम कुछ नहीं बोलते हैं, और वे बिना पूँछे आ जाते हैं। कोई अतिथि बाहर का आयेगा, तो पूँछेगा, घंटी बजायेगा, लेकिन आपके घर में यदि कोई पालतू है, जानवर भी है, तो वह बिना पूँछे ही आायेगा।

प्रिय आत्मन्!

यह विकल्प-यह विषाय कषाय-हमने अनादि से पाल रखे हैं। इसलिये वे हमारे पास आ जाते हैं। लेकिन शुद्ध स्वभाव क्यों नहीं आता है? क्योंकि हमने उसको प्रवेश ही नहीं दिया हैं। इसलिये महान पुरुषों को तो बुलाना पड़ता है। जैसे-मुनिराज बिना पड़गाहन के श्रावक के घर नहीं जाते हैं, उसी तरह शुद्ध स्वभाव बिना शुभोपयोग के नहीं आता है। और जैसे- आपके घर में कुछ जीव जंतु अपने आप ही आ जाते हैं, उसी तरह ये विभाव परिणाम अपने आप आ जाते हैं उनको निकालने में पुरुषार्थ करना पड़ता है और स्वभाव को मुनिराज की तरह बुलाने का प्रयास करना पड़ता है।

विभाव का हटना, ही स्वभाव का प्रकटना है और स्वभाव का प्रकट होना ही, विभाव का हटना है। प्रकाश हुआ अंधकार हटा, लेकिन कारण प्रकाश बनेगा, अंधकार का घटना कार्य है और प्रकाश का होना कारण है। जैसे-जैसे स्वभाव की वृद्धि करोगे, वैसे-वैसे विभाव हटता जायेगा। हम अच्छे के लिये प्रयत्न करें, अपने आप बुरा हटता जाायेगा। स्वभाव को लाने से विभाव हटेगा। इसलिये पुरुषार्थ अच्छाई में करना है, बुराई तो अपने आप हट जायेगी। कुसंस्कार को हटाने का प्रयत्न मत करो, अच्छे संस्कार को लाने का प्रयत्न करो। कुसंस्कार तो अपने आप चला जायेगा।

दंसण-णाण चरित्तं, जोई तस्सेह णिच्छयं भणइ।
जो झायइ अप्पाणं, सचेयणं सुद्धभावट्ठं ।।45।।

अर्थ-

जो योगी सचेतन और शुद्ध भाव में स्थित आत्मा को ध्याता है, उसको इस लोक में निश्च से दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहते हैं।

(पच्चमं पर्व)

झाणट्ठिओ हु जोई, जइ णो संवेइ णियय-अप्पाणं।
तो ण लहइ तं सुद्धं, भग्गविहीणो जहा रयणं ।।46।।

अर्थ-

ध्यान में स्थित योगी यदि निश्चय से अपने आत्मा को नहीं अनुभव करता है तो वह उस शुद्ध आत्मा को नहीं प्राप्त कर पाता है। जैसे भाग्यहीन मनुष्य रत्न को प्राप्त नहीं कर पाता है।

देहसुहे पडिबद्धो, जेण य सो तेण लहइ ण हु सुद्धं।
तच्चं वियाररहियं, णिच्चं चिय झायमाणो हु ।।47।।

अर्थ-

विचार-रहित तत्त्व को नित्य ही निश्चय से ध्यान करता हुआ भी वह शरीर के सुख में अनुरक्त है इसलिये वह शुद्ध आत्मस्वरूप को नहीं प्राप्त कर पाता है।

मुक्खो विणासरूवो, चेयणपरिवज्जिओ सया देहो।
तस्स ममत्ति कुणंतो, बहिरप्पा होइ सो जीवो ।।48।।

अर्थ-

शरीर सदाकाल मूर्ख है, विनाशरूप है, चेतना से रहित है, जो उसकी ममता करता है, वह बहिरात्मा है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी ! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

अध्यात्म अमृत की पावन मंदाकिनी में अवगाहन करते हुये, चेतना के कषााय मन का प्रक्षालन करते हुये, अंतर आत्मा से परमात्मा की यात्रा का समग्र वृतान्त श्रवण करते हुये, चेतना की प्रयोगशाला में चैतन्य चमत्कार से चमत्कृत, चिंदानंदमयी, निजानंदी, ध्रुव आत्मा का परिचय और अनुभव दोनों की साधना में संलग्न प्रवचन के नीर से प्रक्षालित, हम सभी के चित्त निरंतर तत्त्वसार के सार तत्त्व को आत्मसाध करते हैं।

प्रश्न उत्पन्न होता है-तो उत्तर भी मिलता है। समस्या उत्पन्न होती है-तो समाधान भी मिलता है। जानने की जिज्ञासा है-तो जिज्ञासा का समाधान भी है। तत्त्वसार में यह जानने की इच्छा है-कि सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र, यह है क्या? आचार्य भगवन् कहते हैं- अभी ध्यान का स्वरुप चल रहा है, तो ध्याता ही इनका स्वामी है।

प्रिय आत्मन्!

गुण कभी गुणी को नहीं छोड़ता है। जैसे-आग क्या है ? तो आप एक अंगारा उठाके बताते हैं कि यह है आग। उसी तरह सम्यक्त्व क्या हैं? श्रद्धावान् आत्मा ही सम्यक् दर्शन हैं। ज्ञान क्या है?। तत्त्व वेदी आत्मा ही सम्यक् ज्ञान हैं। चारित्र क्या है? आगम और आत्मा के अनुसार चर्या करना ही चारित्र है। सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र इनका आधार आत्मा है।

आचार्य भगवन् कहते हैं- जो योगी शुद्ध भाव में स्थित आत्मा को जानता है, अनुभव करता है, ध्यान करता है, उसको इस लोक में निश्चय से दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहा हैं। दर्शन और दर्शनीय यह दो भिन्न-भिन्न नहीं है। ज्ञान और ज्ञानी यह भिन्न-भिन्न नहीं हैं। चारित्र और चारित्री भिन्न-भिन्न नहीं हैं।

जैसे-धन और धनी यह भिन्न-भिन्न हैं। दुकान और दुकानवाला भिन्न-भिन्न हैं। वैसे सम्यक्दर्शन और सम्यक्दृष्टि भिन्न-भिन्न नहीं है। क्योंकि धन और धनी में संयोग लक्षण है लेकिन सम्यक् दर्शन ज्ञान और चारित्र आत्मा का कौन सा लक्षण है? दर्शन, आत्मा का तादात्म्य संबंध हैं। ज्ञान, आत्मा का तादात्म्य संबंध है। चारित्र, आत्मा का तादात्म्य संबंध है। जैसे अग्नि को छोड़कर ऊष्णता नहीं है, वैसे ही आत्मा को त्यागकर के सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र अलग से कोई वस्तु नहीं हैं। इसलिये धर्मात्मा के बिना धर्म नहीं होता है। धर्मात्मा में धर्म होता है।

हम सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र की पूजा करते हैं। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र

पूज्य है। जिसमें सम्यक् दर्शन है, उसी में सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र है। यह तीनों आत्मा में ही हैं, इसलिये यह तीनों जिस आत्मा में हैं, वह आत्मा पूज्यनीय है। शुद्ध नय की दृष्टि से आत्मा में दर्शन, ज्ञान और चारित्र भी नहीं है। मात्र आत्मा ज्ञायक शुद्ध है। क्योंकि निश्चय में भेद नहीं है, भेद में निश्चय नहीं है। व्यवहार में भेद हैं, भेद में व्यवहार है।

प्रिय आत्मन्!

यदि हम कहें तीनों पृथक-पृथक, तो फिर व्यवहार हो गया और हमने कहा एकत्व विभक्तत्व आत्मा, निश्चय हो गया। आत्मा शब्द ही निश्चय का प्रतीक है और दर्शन-ज्ञान-चारित्र व्यवहार के प्रतीक हैं। आत्मा ही दर्शन है। गुण, गुणी को नहीं छोड़ता इसलिये आत्मा में दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। अथवा, जो सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीन गुणों में परिणमन करता है वह आत्मा है। तो सम्यक् दर्शन कोई वस्तु है? सम्यक् दर्शन ऐसी वस्तु नहीं है, जो मैं तुम्हें उठाकर दे दूँ। सम्यक् दर्शन, आत्मा के श्रद्धा गुण का नाम है। और यह श्रद्धा गुण, अपनी आत्मा में ही उत्पन्न हो सकता है।

''सः सम्यक् दर्शनं भवति''

वह सम्यक् दर्शन होता है। वर्तमान काल में भी होता है। भव्य जीव को होने की पात्रता है और तत्त्व ज्ञान के सुनने से और श्रद्धान करने से सम्यक् दर्शन होता है।

यह उपदेशादि, सम्यक् ज्ञान है, उसके अनुरुप जो आचरण है, संसार के कारणों से निवृत्ति के लिये है। संसार के कारण कौन-कौन से हैं? मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र इन कारणों की निवृत्ति के लिये उद्यत हुआ जो जीव है, वह चारित्र है। जीव ही सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र है।

''आत्मा एव दर्शनं, आत्मा एव ज्ञानं, आत्मा एव चारित्रं''

यह तीनों कहीं बाहर से लेने नहीं जाना है। यह तो निज आत्मा में ही हैं। श्रद्धा का प्रकटीकरण सम्यक् दर्शन है, ज्ञान भी आत्मा ही है, और चारित्र भी आत्मा ही है। आत्मा में अनंत गुण हैं, जिनमें सम्यक्दर्शन-श्रद्धा गुण है, सम्यक्ज्ञान-ज्ञान गुण है और सम्यक्- चारित्र-चारित्र गुण है, इस तरह तीन गुणों की चर्चा की है ! ऐसे, हैं तो अनंत गुण।

प्रिय आत्मन्!

आत्मा ही सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र है। जिस आत्मा में सम्यग्दर्शन है, उसी में सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र है। तीनों गुण चीज एक ही आत्मा में हैं। अलग कुछ भी नहीं हैं। इन्हें लेने कहीं नहीं जाना है, आत्मा में है, आत्मा में ही प्रकट होंगें।

एक साधु ध्यान में हैं, यदि वह ध्यान कर रहा है, आसन लगा के बैठ गया है। आचार्य देव कहते हैं- आसन लगाना मात्र ध्यान नहीं है। मात्र सामायिक का संकल्प करके बैठ जाना भी ध्यान नहीं है। आचार्य कहते हैं- जिस उद्देश्य से आपने आसन लगाया है, उस उद्देश्य को पाया, कि नहीं ? आत्मा का अनुभव हुआ, कि नहीं ? मुख्य बात पर आइये, जैसे-एक धनुर्धारी निशाना साधता है, निशाना साधना उसकी विशेषता है। एक बंदूक धारी निशाना साधता है। निशाना साधना ही उसकी कला है। एक क्रिकेट का खिलाड़ी, यदि स्टम्प तक अपनी बॉल का निशाना साध लेता है, तो उसकी सफलता है। उसी तरह ध्यान में तन को बिठाना आसान है। तन को बिठाना, फिर मन को बिठाना। ज्ञानी जीवो ! उसके बाद फिर निज के अनुभव में जाना ही ध्यान है।

आचार्य देव कहते हैं- तूने भोजन पानी एक समय किया, पर्यूषण के उपवास कर रहे हो। श्रावक हो, तो दो टाइम भोजन कर रहे हो, लेकिन सबका मूल उद्देश्य क्या है ? चाहे पूजा हो, चाहे स्वाध्याय हो, चाहे प्रतिक्रमण हो इन सब में संतुष्ट नहीं होना है, उस लक्ष्य को देखो, यह पूजादि उस लक्ष्य के बाहर ही हैं। जैसे-बाड़ी के बीचों बीच फसल होती है, उसी तरह इन सब कर्तव्यों के बीच, में आत्मा को देखो। पूजा करने के मध्य आत्मा का अनुभव हुआ, कि नहीं ? पूजा इसलिये थी, कि जो अरहंत भगवान को उनके द्रव्य, गुण, पर्यायों से जानता है वह अपनी आत्मा को जान सके।

अरहंतो की पूजा, अरहंतों के लिये नहीं। निर्ग्रंथों की पूजा, निर्ग्रंथों के लिये नहीं। तीर्थों की वंदना, तीर्थों के लिये नहीं। अपितु अरहंतो की पूजा अपने गुणों को पहचानने के लिये है। निर्ग्रंथों की अर्चा, अपने गुणों को जानने के लिये करो और तीर्थों की वंदना जीवन को तीर्थमय बनाने के लिये करो।

प्रिय आत्मन्!

हमने पूजा की, पूजा के बाद कुछ ध्यान किया-कि नहीं, पूजा में आत्मा तक पहुँचे, कि नहीं, पूजा, धर्म ध्यान है। उस धर्म-ध्यान में गाते समय जिनवाणी के अर्थ तक पहुँचे, कि नहीं अर्थ से आत्मा का अनुभव किया, कि नहीं? जो हम पूजा कर रहे हैं, जिनकी पूजा, जिनके समान होने के लिये कर रहे हैं, तो जिनके अनुभव को निज के अनुभव में अंतर डाला कि नहीं ?

ज्ञानी! दर्पण तक जाना है, लेकिन दर्पण देख कर नहीं लौटना है। दर्पण में अपना चेहरा देखकर आना है। भगवान की पूजा करना है, लेकिन भगवान को पूजने के लिये, पूजा नहीं, भगवान में अपने आपको निहारने के लिये पूजा करना है। ध्यान करता हुआ योगी भी, यदि शुद्ध आत्मा को नहीं पाता है, जैसे-ध्यान में तो बैठे हैं, एक दिन हो गया, लेकिन बाह्य विकल्पों को लेकर बैठ गये, बाह्य उलझनों को

लेकर बैठ गये। प्राय: लोग कहते हैं, महाराज ! सामायिक में चित्त इधर-उधर भटकता है। किंतु कब भटकता है ? प्रारंभ की दशा में।

जब तक दुर्लभता और महानता का बोध नहीं होता है, तब तक किसी वस्तु को पाने की इच्छा नहीं होती है। मुझे मेरा अनुभव करना है और उसी के लिये देव पूजा है, गुरू उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान हैं, मात्र आत्मा की अनुभूति के लिये संपूर्ण कर्तव्य एक परिधि के समान हैं और केन्द्र है, आत्मा का अनुभव। जैसे-पीछे का दरवाजा है, एक और दरवाजा है, सामने का दरवाजा है यह तीनों दरवाजे बाहुबली के पास तक आने के लिये हैं, लेकिन कोई व्यक्ति पीछे के दरवाजे से आये और सीधा निकल जाये, दूसरा सामने से आये और पीछे के दरवाजे से निकल जाये, तो उसका मंदिर आना सार्थक नहीं है। उसी तरह से ध्यान तो लगाया, लेकिन शरीर तक ही सीमित रह गये, तो आचार्य कहते हैं-वह सार्थक नहीं है। आपने परिग्रह का भी त्याग किया, दीक्षा को भी ग्रहण किया, भोजन भी एक समय, पानी भी एक समय, सामायिक भी कर रहे हो लेकिन सामायिक के काल में आत्मा में प्रवेश हुआ कि नहीं हुआ? भेद-विज्ञान दशा में प्रवेश पाने के लिये सब कुछ किया है लेकिन वहाँ तक पहुँच पा रहे, कि नहीं? यदि पहुँच गये तो सफलता है।

प्रिय आत्मन्!

जैसे-फुटबाल के ग्राउण्ड में बच्चे फुटबाल खेल रहे हैं, लेकिन दो पाली हैं एक पाली वाले वॉल को दूसरी पाली तक ले जा रहे हैं, उसमें भी एक निश्चित स्थान है, यदि यहाँ से तुम बाहर निकाल दोगे, तो विजयी माने जाओगे। उसी तरह से हमारी दिनभर की क्रियाओं का एक ही लक्ष्य है, कि हम आत्मा तक पहुँच जाये। आचार्य कहते हैं- जैसे भाग्यहीन व्यक्ति रत्न को नहीं पाता है, उसी तरह से हम जैन कुल में आने के बाद भी, देव शास्त्र गुरु की सन्निधि पाने के बाद भी, उत्तम साधु या उत्तम श्रावक बनने के बाद भी, यदि हम आत्मा के अनुभव में नहीं आ पाये, तो फिर हम भाग्यशाली कैसे ?

सौभाग्यशाली वह है, जो आत्मानुभूति कर रहा हैं, ज्ञानियो! संसार के सभी पर पदार्थो का अनुभव जहाँ फीके पड़ जाते हैं, वह है आत्मानुभूति। इसलिये अरहंतों की पूजा, अरहंतो के गुण देखकर निज को पहचानने में है। ज्ञानी ! यह दृष्टि है। यह हैं तुम्हारे भगवान, तुम अपने भगवान को पहचान लो। आचार्य देव कहते हैं-जैसे, भाग्यहीन व्यक्ति रत्न को नहीं पाता है, उसी तरह से निरंतर साधना करने के बाद भी, पथ से भ्रमित हो जाते हैं साधक, अन्य प्रयोजन एवं आकर्षण बीच में आ जाते हैं, आकर्षण के टापू हमें अपनी नापाक गति से रोक लेते हैं।

आचार्य कहते हैं-आकर्षण-अपकर्षण की ओर ले जाते हैं। इसलिये आकर्षण में आकर्षित नहीं होना, यही साधक की साधना की प्रगति है। जब तक आत्मा का अनुभव नहीं होगा तब तक शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि नहीं होगी। भाग्यहीन संसार में उसे कहा जाता है, जो कि वस्तु पाने के बाद उसका लाभ न उठा पाये।

आचार्य कहते हैं-तुमने यह मनुष्य की देह पायी जैन कुल पाया, उत्तम श्रावककुल पर्याय पायी। देव शास्त्र, गुरु का समागम, कठोर व्रत नियम संयम पाने के बाद, शरीर को लाखों कष्ट देने के बाद भी, यदि तुमने अपनी आत्मा का अनुभव नहीं कर पाया, तो फिर तुम विधवा स्त्री के समान हो।

सौभाग्यशाली स्त्री और सौभाग्यशाली पति कौन कहलाता है? ध्यान देना-शादी होने के बाद, जिसके सास ससुर भी हों, पति, पुत्र, माता, पिता जिसके जीवित हों वह स्त्री सौभाग्यवती कहलाती है, यह संसार की दशा है। लेकिन आचार्य कहते हैं-सौभाग्यशाली पति कौन कहलाता है? जो ध्यान में बैठकर के निज आत्मा का अनुभव कर लेता है, वह सौभाग्यशाली पति कहलाता हैं।

प्रिय आत्मन्!

सौभाग्यशाली श्रावक, पति, और व्रती कौन हैं? जो निज आत्मा का अनुभव कर ले। ध्यान देना-ज्ञानियो पर पदार्थो का अनुभव तो श्रावक करा देगा। हे साधु ! श्रावक छप्पन प्रकार के व्यंजनों का स्वादानुभव श्रावक दिला देगा, लेकिन निजात्मा का अनुभव श्रावक नहीं करा पायेगा, निजात्मा का अनुभव तो तुम्हें स्वयं ही करना पड़ेगा। साधना श्रावक नहीं करायेगा, साधना के साधन जुटा देगा। वस्तुत: पर पदार्थ का अनुभव, तो पर के द्वारा हो जायेगा। लेकिन निजात्मा का अनुभव तो निज को ही करना पड़ेगा।

ध्यानस्थित योगी-निश्चय से आत्मा का अनुभव नहीं करता है तो आत्मा का अनुभव नहीं पाता है। जिसको पाना चाहिये था। यदि तुम वह करते हो, जो तुम्हें नहिं करना चाहिये। तो तुम्हें वह मिलेगा जो मिलना न चाहिये। यदि तुम वह करते हो, जो तुम्हें करना चाहिये, तो तुम्हें वह मिलेगा जो तुम्हें मिलना चाहिये।

प्रिय आत्मन्!

वह करो जो तुम्हें करना चाहिये, तो वह मिलेगा जो मिलना चाहिये। आप कहते हैं, मुझे तो नरक नहीं मिलना चाहिये था। तो ज्ञानी ! मिलता कैसे नहीं ! यदि तुम वह करते हो तो।

बहवारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्याऽयुषा:''।। तत्त्वार्थसूत्र ।।

''माया तैर्यग्योनस्य'' ।। तत्त्वार्थसूत्र ।।

यदि बहुत आंरभ परिग्रह करते हो तो-नरक मिलेगा ही मिलेगा। मायाचारी करते हो तो-तिर्यंच गति मिलेगी ही मिलेगी। कौन टाल सकता है। करनी के अनुसार फल मिलता है। यदि तुम वह करते हो, जो तुम्हें करना न चाहिये तो तुम्हें वह मिलेगा जो मिलना न चाहिये। यह पंक्ति, सेन्ट्रल जेल जबलपुर में जब स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलन में-एक कवि सेन्ट्रल जेल जबलपुर में बंद थे, उस समय उन्होंने अपने खून से वहाँ की दीवाल पर लिखी थी, यह उन्होंने अंग्रेजों के विरोध में लिखी थी। यह पंक्ति आज भी जबलपुर के जेल में लिखी है। तात्पर्य यह है, कि भारत देश में ऐसे-ऐसे कवि हो चुके है। उन कवियों ने भी इस आजादी के मिशन में अपना उच्च कोटि का योगदान दिया। सोचिये, उनके शरीर में कैसा-कैसा संचार था, वह पंक्ति शरीर के रक्त से लिखी गयी, कल्पना करो, स्याही जेल में नहीं थी इसलिये रक्त से लिख दी।

प्रिय आत्मन्!

यह भारत देश है, यहाँ पर कोई जेल में बैठता है, तो भक्तामर स्तोत्र लिखता है, तो कोई गीता का रहस्य लिखता है। जब तक आत्मा का अनुभव नहीं हुआ, कितना भी कुछ क्यों न हो? लेकिन भाग्यवान नहीं है आत्मा का अनुभव करने वाला जीव ही, भाग्यवान है। इसलिये कम से कम पाँच मिनिट का समय ध्यान के लिये दो। यदि उस पाँच मिनिट में, पाँच सेंकेड भी तुम ध्यान कर पाते हो, तो तुम सौभाग्यशाली हो। ध्यान देना-दान देने से भाग्यवान कहला सकते हो, हो नहीं सकते। लेकिन भाग्यवान होने के लिये आत्मा का ध्यान ही करना पड़ेगा। आत्मा के ध्यान को समय दोगे, तो पाँच मिनिट के समय में यदि पाँच सेकेंड मन लग गया, तो भी कार्य सफल हो जायेगा।

जैसे-अमावस्या की रात में बरसते हुये काले-काले मेघों के बीच में जंगल में फंसे हुये, पथ को भूले हुये, भ्रमित राही के समक्ष, यदि अचानक आकाश से एक बार बिजली चमक जाती है, तो वह राही राजमार्ग पर आ जाता है और अपनी मंजिल का रास्ता पकड़ लेता है। उसी तरह यदि जीवन में एक बार भी निज आत्मा का अनुभव हो गया, तो मोक्ष मार्ग की राह पर हम आ जाते हैं और हमारा जीवन सफल हो जाता है। जीवन की सफलता निज के अनुभव में है।

शांतिसागर महाराज कहते थे-भैया बाबा लो, भिय् नका, संयम धारण करा, संयम धारण के सिवा मुक्ति नाहीं होय, कपड़ा लथे मुक्ति होय नाहीं। पाँच मिनिट पर्यंत आत्मा का ध्यान करो। हे भइया!

डरो मत संयम धारण करो। संयम धारण के बिना मोक्ष नहीं होगा। कपड़ा पहने-पहने मोक्ष नहीं होगा, इसलिये प्रतिदिन आत्मा का ध्यान करो। आत्मा का ध्यान करने से आत्मा के गुण प्राप्त होंगे। जिसका ध्यान करोगे, उसके गुण प्राप्त होने लगते हैं, यह विशेषता है।

माँ जब अपने बेटे को याद करती है, तो बेटे को याद करते ही बेटे की सकल सूरत सामने आ जाती है। अरे ! जो बेटा दस साल पहले कहीं गया है, वह बेटा भी, ओहो ज्ञानी ! प्रद्युम्न कुमार सोलह साल हो गये, लेकिन ज्यों ही प्रद्युम्न कुमार सामने आया, सोलह साल के बाद भी माँ को याद आया, कि मेरा बेटा ! ऐसा ही था। ज्ञानी ! तत्काल वैसा ही आकार प्रकार नजर आने लगा। ध्यान देना-ऐसा होता है बालक की पर्याय को निहारा, कि ऐसा चिन्ह मेरे बेटे के शरीर पर भी, था विरक्त हो गई। ओ हो ! मैं तो पूर्व भव के अपने बेटे का ही भक्षण कर रही हूँ।

प्रिय आत्मन्!

जिसको याद करते हैं, उसकी छवि सामने आती है, इसलिये आचार्य कहते हैं-यदि परमेष्ठी के अक्षर रुप ही ध्यान करोगे। पिण्डस्थ, पदस्थ, रुपस्थ, रूपातीत ध्यान। जैसा-जैसा चिंतन बनाओगे, वैसा-वैसा आकार बनने लगेगा।

ध्यान देना-शिल्पकार चिंतन से ही आकार बनाता है। इंजीनियर चिंतन से ही रेखाचित्र बनाता है। ज्ञानी जीवो ! अपने चिंतन को परमात्मा के ध्यान में लगाओगे, तो आत्मा शुद्ध होने लगती है। स्वर्णकार की दुकान पर सोना मिलता है और लौहकार की दुकान पर लोहा मिलता है। ज्ञानी ! ज्ञानमय विचार बनाता है और अज्ञानी अज्ञान-मय विचार बनाता है। कुछ नहीं बनाना है, अच्छे विचारों को बनाना ही साधना है। भाग्यशाली संत पुरुषों के मिलन, प्रवचन आदि-इतने को ही सौभाग्य मत मान लेना, कि मैं उनके सामने हूँ तो सौभाग्यशाली हूँ। सौभाग्य तब मानना, जिस दिन तुम्हें अपनी आत्मा का अनुभव हो जाये। आँखों के सामने, आँख खोलने पर, यदि तुम्हें भगवान दिखें, तो क्या दिखा ? आँख बंद करने पर यदि भगवान दिखें, तो सच है आत्मा दिखे।

मंदिर में आकर के भगवान को देखा-तो क्या देखा ? अंदर में आकर भगवान को देखो, तो सब कुछ देखा, जहाँ झाँकोंगे, वहाँ दिखेगा। ज्ञानी ! निज में झाँकों। हम देखते हैं कि कूप में झाँकने से अपनी परछाई ही दिखती है। ज्ञानी ! भीतर झाँकोगे तो तुम्हें अपना स्वरुप दिखाई देगा। निर्मल जल में झाँककर देखो, अपना रूप झलक आयेगा। निर्मल मन में झाँक कर देखो, अपना स्वरुप झलक आयेगा। जल में झलकाने की क्षमता है, तो निज में झलकाने की क्षमता है। जिनके ज्ञान में तीन लोक झलक सकते हैं और

मेरे ज्ञान में मैं ही, न झलक पाऊँ ? जिनके ज्ञान मैं, मेरा शत्रु। मेरा परिवार, मेरा संसार, मेरा देश, मेरा विश्व। सब कुछ झलक रहा हैं। और मेरे चित्त में, मैं ही नहीं झलका? तो निर्मलता कैसी ?

प्रिय आत्मन्!

अपने ज्ञान में इतनी निर्मलता तो आना चाहिये। कि कोई झलके, न झलके, पर मेरा स्वरूप तो मुझमें झलक ही आये। ध्यान देना-बाजार से दर्पण खरीदने जाते हैं, तो एक बार देख लेते हैं, कि हमारा चेहरा सही झलक रहा कि नहीं। ज्ञानी जीवो ! यह दर्पण भी अपना स्वरुप झलकाने के लिये है। शास्त्र में देखो, कि मेरा स्वरुप झलक रहा कि नहीं ? भगवान एक दर्पण हैं, उनमें देखो, शास्त्र एक दर्पण है उसमें देखो।

हम प्रज्ञाशील पुरुष हैं, ज्ञानवान् आत्मा हैं, हम शास्त्रों में स्वरुप को निहारते हैं। जानना है शास्त्र से, अनुभव करना है निज में। शास्त्र में जान सकते हैं, लेकिन अनुभव निज में ही होगा। प्रयोग अपने भीतर होता है, विधि शास्त्रों से सीखते हैं, महाराज भेद-विज्ञान की विधि सिखायेंगें। चतुर्थ काल में भी साक्षात् तीर्थंकर के समवशरण लगते थे, केवलि भगवान् उपदेश देते थे, गौतम गणधर ने उपदेश दिया है। किंतु किसी ने भी आत्मा को हथेली पर रखकर नहीं बताया है, कि यह आत्मा है। उन्होंने स्वयं अनुभव किया है और कहा है, तुम भी अनुभव करके देखो।

मैंने जैसा अनुभव पाया, वैसा मैंने गाया है।
तुम भी निज में अनुभव करलो, तुममें सौख्य समाया है ।।

जिस करनी से हम बनें, महावीर भगवान ।
वैसी करनी तुम करो, हम तुम एक समान ।।2।।

ज्ञानी जीवो! जो मुझमें है-वह तुममें हैं। कहाँ है अंतर? अंतर हैं तो उस अंतर को मिटाने का नाम साधना है। भक्त और भगवान के बीच में जो अंतर है, उस अंतर को मिटाने का नाम है साधना। मैं उस अंतर को मिटाना चाहता हूँ। हे प्रभु! दिगम्बर मुद्रा में आकर के जो वस्त्रों का अंतर था, वह तो मिट गया। अंबर का अंतर मिट गया, अब अंदर का अंतर और मिटाना है। प्रभु मुझमें और आप में जो अंबर का अंतर था, वह तो मिट गया है। अब अंदर का जो अंतर है, उस अंतर को मिटाना है।

आचार्य कहते हैं-उस अंतर को मिटाने के लिये, अंतरंग के चौदह मिटाना पड़ते हैं। वे क्या है? चौदह प्रकार का परिग्रह उस परिग्रह को मिटाने की शुरूआत छठवें गुणस्थान से होती है। और पूर्णता तेरहवें गुणस्थान में होती है। लोभ दसवें में समाप्त हुआ, बारहवें में क्षीण हुआ, तो तेरहवें गुणस्थान में पूर्णता हो गयी।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य कहते हैं-यदि शरीर के सुख में ही लीन हो गया, तो फिर आत्मा को नहीं पायेगा। ध्यान तो कर रहा है, लेकिन सुख शरीर का चाहिये। यदि शरीर के सुख में रागी हो गया तो कौन कहेगा, तू बड़भागी हो गया। बड़भागी तो वह है, जो आत्मा में अनुरागी है, सदा शरीर से विरागी है, ऐसा योगी इस संसार में बड़भागी है।

प्रिय आत्मन्!

यदि शरीर के सुख में ही लीन हो जाओगे-तो फिर आत्मा तक नहीं पहुँच पाओगे। यदि एक स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हो जायेगी-तो आगे कैसे चल पायेगी। ज्ञानियो ! शरीर के स्टेशन पर खड़े नहीं होना है, आत्मा के पुर तक जाना है। यह मोक्षमार्ग एक्सप्रेस है, इस मोक्षमार्ग एक्सप्रेस को शरीर के स्टेशन पर खड़ा नहीं करना है, निरंतर शरीर से श्रम लो, यह देह एक यंत्र है, आत्मा उसका चालक हैं।

अजंगमं जंगम - नेय यंत्रं, यथा तथा जीव-धृतं शरीरम्।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च, स्नेहो वृथाऽत्रेति हितं त्वमाख्याः ॥32॥ स्वयंभूस्तोत्र ॥

इस शरीर से प्रेम करना व्यर्थ, हैं यह शरीर अचेतन यंत्र है, जिसे आत्मा रूपी चेतन ड्राईवर चलाता है, उसी तरह से जीव ने शरीर को धारण किया है। यह शरीर ग्लानि वाला है, अपवित्र है, नाशवान है, इसमें राग करना व्यर्थ है। आचार्य कहते हैं-यदि शरीर के सुख में लीन हो जायेगा तो, यही कहना पड़ेगा।

''जौ लो तन में ममता हैं, तौ लो ही तन बनता है''

यह तन कब तक बनता रहेगा ? जब तक तन से ममता बनी रहेगी, तब तक तेरा तन बनता रहेगा। ध्यान रखना-जिसके शरीर में राग करोगे, उस शरीर वाले बन जाओगे। इसलिये शरीर में भी राग मत कर लेना। पल-पल सम्हलने की आवश्यकता है। राग करने वाले जीव शरीर में जाकर के संमूर्च्छन हो गये। तेरे शरीर में वह जीव पैदा हो गये, जो तुझसे राग करने वाले थे, पुण्य तीव्र नहीं था, कि महान बन पाते, लेकिन परिणाम खोटे थे, तो शरीर में पैदा हो गये। क्या बन गये? मल में कृमि बन गये। शरीर से राग था, सिर में जुँआ बन गये, काँख में, नाभि में जीव बन गये, संज्ञी पंचेन्द्रिय संमूर्च्छन मनुष्य बन रहे हैं, और पल-पल में मरण को प्राप्त हो रहे हैं। यह है राग की परिणति, इसलिये आचार्य कहते हैं-शरीर के सुखों में लीन मत हो जाना।

जिस सुख को भोगने से पाप लगता हो-उस सुख को मत भोगना। जिस सुख के भोगने से सातिशय पुण्य बढ़ता हो-उस सुख को भोगना। जो शरीर के सुख में लीन हो गया है, उसने आत्मा को नहीं पाया, वह शुद्धात्मा के सुख को पा ही नहीं सकता है।

रोयं सडणं पडणं, देहस्स य पिक्खिऊण जर-मरणं।
जो अप्पाणं झायदि, सो मुच्चइ पंचदेहेहिं ॥49॥

अर्थ-

देह के रोग सड़न (सड़न, गलन) और पतन को तथा जरा और मरण को देखकर जो भव्य आत्मा को ध्याता है, वह पाँच प्रकार के शरीरों से मुक्त हो जाता है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

तत्त्वसार का सार तत्त्व प्रस्तुत करते हुये आचार्य भगवन् देवसेन स्वामी कहते हैं-शरीर में रहते हुये आत्मा को अनंत काल बीत गया है। जिस किराये के मकान में हम रह रहे हैं उस किराये के मकान को भी देख लेते हैं, कि कहीं से टूटा, फुटा, दरारा तो नहीं है कि मकान हानिकारक हो। यदि मकान हानिकारक है, यदि मकान से नुकसान होने की संभावना है, तो उस मकान को कम मूल्य में भी दे देते हैं और जल्दी से जल्दी चेंज भी कर देते हैं।

यह तन भी एक किराये का मकान है। आप जब मकान बनाते हैं तो कम से कम सौ साल की गारंटी का तो बनाते ही हैं। क्योंकि आपको रहना है जिसमें पचास साल वाले को रहना है........तो वह कितने काल वाला मकान बनायेगा? वह कम से कम पचास साल का तो बनायेगा। लेकिन अनंत काल रहने वाला आत्मा यह कितने किराये के मकान बदलेगा? यह तन कभी एकेन्द्रिय का मिला, कभी दो इंद्रिय का मिला, कभी तीन इंद्रिय का मिला।

आप लोग गृहस्थ हो, कुछ भी देखो चाहे न देखो पर दो बातें देखते हो। मकान निजी होना चाहिये और दुकान होना चाहिये। कम से कम रहने वाला सुख से तो रह सके। आप रहने के लिये बहुत अच्छा मकान देखते हैं और अच्छा नहीं होता है, तो अपने मन पसंद का मकान बनवा लेते हैं। तो आचार्य भगवन् कह रहे हैं-भो ज्ञानी ! यह तो बता तू किस मकान में रह रहा है? तेरा मकान कौन सा है? ओहो! मैं इस काया के मकान में रह रहा हूँ। क्या यह मकान तेरा है? नहीं मेरा नहीं है मैंने किराये पर लिया है। अच्छा! क्या किराये के मकान की कोई गारंटी है, कि मुझे कितने वर्ष तक खाली नहीं करना पड़ेगा? तो इसमें यह भी गारंटी नहीं है कि किस क्षण कब कहाँ कैसे कोठरी खाली करा ली जायेगी। यह भी पता नहीं है।

'छोटा सात कितने बड़े अरमान हे तेरे।
'मिट्टी का तू, सोने के सब सामान है तेरे''

काया कैसी है? काया को समझने का हम प्रयत्न करें तो काया में सबसे पहले रोग होते हैं। यह मकान जो है, यह मकान कैसा है? आचार्य कहते हैं-जितने मेडीकल पर गोली नहीं होगी उससे ज्यादा रोग इस शरीर में होते हैं। इस काया में कितने रोग होते है? पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानवें हजार पाँच सौ चौरासी रोग होते हैं। कैसे होते हैं? एक अंगुल में छियानवे रोग होते हैं, पूरा शरीर चौरासी अंगुल होता है, तो चौरासी अंगुल के घनांगुल करने पर 84½84½84Ì592704 अंगुल होते हैं। इसमें 96 का गुणा करने पर 592704½96Ì 5E68E99E584 रोग होते हैं।

निज शुद्धात्मा के दर्शन के लिये आचार्य कहते हैं-

''जगत्कायस्वभावौ वा संवेग-वैराग्यार्थम् ।।12।। तत्त्वार्थसूत्र ।।

यदि तुम्हें वैराग्य लाना हो तो मात्र अपने शरीर का विचार करो, जितना जितना काया के प्रति विचार करोगे, चिंतन करोगे इस काया में क्या है? कितनी पवित्रता, कितनी अपवित्रता, कितनी स्थिरता, कितनी विनाशीकता, कितने कर्म की निर्जरा-संवर, कितने कर्म का आस्रव बंध।

प्रिय आत्मन्!

जब तक यह जीव काया से ममता रखता है, तब तक शरीर बनता-बनता रहता है। और शरीर में उक्त रोग पाये जाते हैं, इस शरीर के रोगों का तुम कितना उपचार कराओगे? सनतकुमार चक्रवर्ती जिनके सौंदर्य को निहारने के लिये स्वर्ग के देव आये, जिनके सौंदर्य की प्रशंसा स्वर्ग में हुआ करती थी ऐसे देवों को अपने सौंदर्य से लज्जित करने वाले सनतकुमार को कई हजार वर्ष तक कुष्ठ रोग रहा।

ज्ञानी जीवो ! इसलिये इस काया पर विश्वास मत करना, काया में जो रह रहा है-उस चेतना पर विश्वास करना। यह काया कभी भी, कहीं भी, किसी को भी दगा दे सकती है। प्रति समय सड़न, गलन स्वभाव है। इसका। ओहो ! जो सौंदर्य पहले देखा था वह सौंदर्य अब नहीं है। चक्री सनत सोच रहे हैं कि देव हमारे सौंदर्य की प्रशंसा करेगें लेकिन देवों ने माथा नीचे झुका लिया। ओहो! चक्रवर्ती सनत इंतजार में हैं कि देवों के द्वारा प्रशंसा के वचन मिलेंगे, आज मेरे रूप की प्रशंसा स्वर्ग के देवता इस धरती पर करेंगें।

ज्ञानी जीवो! इंतजार की घड़ियाँ प्रतिक्षण बढ़ती जा रही हैं। आखिर चक्री को कहना पड़ा-हे कुमार! आप कौन हैं? कहिये। यह सभा आपका इंतजार कर रही है यह विद्वत सभा आपके दो शब्द सुनना चाहती है। देव कुमारों ने कहा-जो पहले था वह अब नहीं। सनत चक्रवर्ती सोचता है पहले कब था? ओहो! हे चक्रेश! जब तू व्यायाम शाला में कसरत कर रहा था उस समय तेरी कंचन देह पर जो मोती तुल्य श्वेत बिंदु चमक रही थी तब जो सौंदर्य की छटा विखर थी वह अनुपमेय निराली थी। अब वह नहीं रही। क्यों? जो पहले था वह अब नहीं रहा। नहीं-नहीं आप भूल रहे हैं-मैं उस समय तो ड्रेस भी नहीं पहने था, उस समय तो श्रृंगार भी नहीं किया था, उस समय तो मेरे तन पर धूल के कण पसीना के कण विद्यमान थे। महाराज! आपका सब कुछ कहना ठीक है, लेकिन जो पहले था अब नहीं है।

चक्रवर्ती बोले-में कैसे विश्वास करूँ, कि जो पहले था वह अब नहीं हूँ। तत्काल देव कुमार एक जल का गिलास मंगाता है, उसमें घास का एक तिनका डालता है और गिलास लौटा देता है। महाराज! यह गिलास आपका वापिस लो। चक्रवर्ती कहता है इससे क्या होगा ? महाराज ! कुछ नहीं हुआ-आपका जो गिलास लिया था वह वापिस किया। तो क्या देखने के लिये था? हाँ देखने के लिये और आपको दिखाने के लिये था। क्या दिखाना चाहते हो? यदि समुद्र में से पानी की एक बूँद घट जाये तो क्या समुद्र घटा हुआ माना जाता है ? नहीं। महाराज ! प्रज्ञ पुरुषों के लिये तो यदि जितना बड़ा प्रबुद्ध चेता पुरुष होगा। जैसे-अरब पति के लिये यदि एक अंक कम हो जाये तो वह सीधा करोड़पति बनता है और करोड़पति का यदि एक अंक कम हो जाये तो वह सीधा लखपति बनता है और लखपति का एक अंक कम हो जाये तो वह सहस्रपति बन जाता है, उसी तरह आप इस गिलास में से एक बूँद कम हुयी है तो इसका तात्पर्य है, कि धीरे-धीरे पूरी बूँदे भी कम हो सकती है। इसलिये जैसे इस गिलास में से तिनके ने पानी की बूँद सोख ली है, उसी तरह काल चक्र ने आपकी सुंदरता को सोख लिया है।

प्रिय आत्मन्!

चक्रवर्ती सोच रहा था सौंदर्य सदा रहेगा, लेकिन ज्ञानियो! सुंदरता भी सदा नहीं रहती है,

लक्ष्मीपति रूप के अहंकार में डूबा हुआ था। ज्ञानियो! और पल भर में कुष्ठ रोग में परिवर्तित हो गया। आचार्य कहते हैं- जैसे आपके घर में कोई मशीनरी सिस्टम है तो उसको आप चलाकर के उससे आप डबल इनकम कर लेते हैं और दो साल में फिर नयी मशीन खरीद लेते हैं, उसी तरह से इस शरीर से साधना करोगे तो शरीर औदारिक से परमौदारिक बन जायेगा और यदि साधना नहीं की तो यह शरीर हमें पामर बना देगा। यह शरीर परमात्मा बनने के लिये है, न कि पामर बनने के लिये। इसी शरीर से पाप होते हैं इसी शरीर से जाप होते हैं।

प्रिय आत्मन्!

''पूरण गलन स्वभावः इति पुद्गलः''

पुद्गल-जिसका बनना, मिटना, सड़ना, गलना स्वभाव है जो प्रति समय क्षीणता को प्राप्त होते हैं वे शरीर कहे जाते हैं। इस तरह से प्रेक्षा करके, विचार करके, चिंतन करके इस शरीर के भी बुढ़ापे का विचार कर लो।

राजा दशरथ की चार रानियाँ थी। राजा दशरथ ने जिनेन्द्र देव के अभिषेक के बाद श्रीमंदिर जी से गंधोदक भिजवाया-तीन रानियों के लिये तो युवती दासियाँ गंधोदक लेके गयी और जल्दी लेकर पहुँच गयी और एक जो प्रमुख रानी थी उसके लिये एक वृद्ध कंचुकी लेकर गया। रानी विचार करती है-कि मुझे आज गंधोदक नहीं आया, राजा मुझे नही चाहता है। दशरथ जी मुझे नहीं चाहते हैं। यदि मुझे चाहते तो सबसे पहले मुझे गंधोदक भेजते और रानी के अंदर नाना प्रकार के भाव जागते हैं। स्त्रियों का क्या ठिकाना पल भर में क्या से क्या विचार ले, इनका कुछ भी पता नहीं है।

रानी ने विचार किया, कि जब राजा मुझे चाहता ही नहीं है, तो मेरा जीना बेकार है। मुझे जीने की आवश्यकता क्या हैं, मैं जिसके लिये जी रही हूँ? वह ही मुझे नहीं चाहता है, तो मैं क्यों जीऊँ? ज्ञानियो! उसने दूसरी दासी से कहा मेरे लिये जहर लेके आओ, दासी विचार करती है।

छोटा बड़ा कि कुछ काम कीजे, किंतु पूर्वापर सोच लीजे।
यदि बिन विचारे यदि जो कुछ काम होगा, कभी न अच्छा परिणाम होगा।।

वह दासी सामग्री शाला में जाकर खोज करती है जहर का। और जहाँ जहर रखा था, वहाँ तक जाती ही नहीं है। समय पास करते-करते तीन-चार घंटे उसके व्यतीत हो गये-रानी कोप भवन में पड़ी हुयी है, जब तक राजा दशरथ को समाचार मिलता है, कि प्रमुख रानी कोप भवन में है। दशरथ जी आते

हैं, समाचार लेते हैं। हे देवी ! क्या बात है? यह अवस्था? अभी तुम्हारे लिये किसने क्या कह दिया? किसी के कहने से आप कभी इस तरह की चेष्टा नहीं करती थीं, आज क्या हो गया? रानी कहती है- मुझे नहीं जीना है।

यदि जीना अच्छा होगा-तो जाना अच्छा होगा और जीना अच्छा नहीं होगा-तो जाना अच्छा नहीं होगा। हम आये ही हैं जीने के लिये, ताकि जी कर के जी सके। जी मिला है-तो जी लें। किंतु रानी कहती है-मुझे नहीं जीना है, मेरे जीने का कोई औचित्य भी तो नहीं हैं। क्या हो गया? जब तुम ही मुझे नहीं चाहते, तो फिर मैं किसके लिये जीऊँ? मैं नहीं चाहता? हाँ तुमने शेष रानियों के लिये तो गंधोदक भेजा है, मेरे लिये ख्याल भी नहीं है। मैंने आपके लिये गंधोदक भेजा था। आप झूठ बोलते हैं, आपने नहीं भेजा। मैं, और झूठ बोलूँ और वह भी गंधोदक जैसी पवित्र वस्तु के लिये। गंधोदक आपके पास अभी तक नहीं आया? आपने भेजा होता तो जरूर आता, आपने भेजा ही नहीं है। नहीं-नहीं। तब तक सामने से वृद्ध कंचुकी आता है-बोलता है महाराज ! अपराध क्षमा हो। हे कंचुकी ! इतना बिलम्ब क्यों हुआ? महाराज! मैं बिना रुके अबाधगति से चला आ रहा हूँ, लेकिन आप देख रहे हैं, मेरी जर-जर अवस्था को, मैं वृद्ध हो चुका हूँ जब मैं युवा था, तब मेरी जंघाओ में इतना बल था, कि इन जंघाओं से यदि हाथी को बाँध दिया जाता, तो हाथी भी छूट कर नहीं जा सकता था। इन हाथों में ये बल था, कि हाथी की सूड़ को पकड़कर एक तरफ कर सकते थे। लेकिन महाराज! अब मेरा शरीर काँपने लगा है, नजर कहीं डालता हूँ और पड़ती हैं कहीं, पाँव कहीं रखना चाहता हूँ, गिरता है कहीं। बिना लाठी के चल नहीं पाता हूँ, करने का साहस नहीं है, लेकिन सबसे पुराना राज सेवक हूँ, तो किये बिना रहा भी नहीं जाता है।

महाराज! आपका विश्वास पात्र हूँ, आप देख रहे हैं, मेरी कमर सिकुड़ गयी है। पीठ का भाग ऊपर आ गया है, पेट और सीना दोनों एक हो चुके हैं। दाँत निकल चुके हैं। आँखों से कम दिखने लगा है। कानों से सुनायी कम देने लगा है। बाल सफेद हो गये हैं। तन पर झुरियाँ छा गयी हैं। मेरे लिये तो महाराज! कुछ ही दिन में यमराज के घर का न्यौता आने वाला हैं। हे महाराज! मैं आपका उत्तम सेवक, महाराज अपराध क्षमा हो। लेकिन आप जानते हैं कि आपके न आने से रानी की क्या दशा हुयी है? महाराज! रानी की दशा तो रानी ने की है, लेकिन मेरी दशा भी तो आप देखिये, यही दशा आपकी भी होगी। महाराज मैं तो दर्पण हूँ, सो देख लो। एक वृद्ध व्यक्ति प्रत्येक युवा के लिये दर्पण होता है। हे युवक! यदि कहीं घमण्ड आने लगे तो उस वृद्ध दर्पण को देख लेना कि तेरा भविष्य भी यही है।

राजा दशरथ कहता है-कि रानी बताओ, उस वृद्ध को क्या सजा दी जाये। रानी कहती है-क्या पिता वृद्ध हो जाते हैं और उनसे चला नहीं जाता है तो क्या? वह सजा के पात्र होते हैं? नहीं ! सजा के पात्र नहीं होते हैं, यह हमारी समझदारी की कमी थी। सजा का पात्र तो मैं हूँ कि मैंने इस तरह विचार किया।

रविषेण आचार्य कहते हैं- जब तक इस तन की कुटिया में आग नहीं लग जाती है, उसके पहले-पहले तक जब-तक रोग घेर नहीं लेते हैं और तन की कुटिया, तन की झोपड़ी में आग नहीं लग जाती है, उसके पहले-पहले तक हे जीव! तू अपना कल्याण कर ले। जलने से पहले जाग जा, जाग जायेगा तो अपने स्वरूप को पा लेगा। ओहो ज्ञानियों! यदि अपना-अपना बचपन याद आ जाये तो कल्याण करने में देर नहीं लगेगी।

प्रिय आत्मन्!

जहाँ खान-पान और रहन-सहन का विवेक न हो वह जीवन ही क्या है? खान-पान और रहन-सहन का नाम जीवन है। बाल्यावस्था अज्ञानमयी अवस्था होने से अत्यंत दुखमयी अवस्था होती है। सहता तो है, कह नहीं पाता। बाल्यावस्था में सहे जाते कहे नहीं जाते हैं। युवा अवस्था में कह लेते हैं और कुछ सह लेते हैं। वृद्ध अवस्था में पुन: बचपन लौट के आ जाता है।

ज्ञानी जीवो! इसलिये ध्यान रखना- गुब्बारे में हवा भरते हैं और फिर जैसे गुब्बारे से हवा निकलती है तो ज्यों का त्यों गुब्बारा अपने रूप में आ जाता है उसी तरह से बचपन से युवापना तक हवा भरी जाती है युवा अवस्था से हवा निकलना शुरु हो जाती है और फिर से गुब्बारे की तरह स्थिति हो जाती है।

मरण को भी जानना आवश्यक है। क्योंकि विश्व के किसी भी दर्शन में मरण की कला नहीं है, जैन दर्शन में मरण की कला है, इस जीव ने अनंतों बार मरण किया है। और इस मरण की परम्परा को कब छोड़ेगा इसलिये आचार्य कहते हैं-मरण दु:ख रुप है। जन्म के समान कोई दुख नहीं है और मरण के समान कोई भय नहीं है। मौसम को बदलने में देर लगती है लेकिन पर्याय को बदलने में देर नहीं लगती है।

ध्यान देना-माना कि सूर्य गतिशील है। माना कि चन्द्रमा गतिशील है। माना कि सूर्य का प्रकाश गतिशील है। माना कि सूरज की किरणें भी गतिशील है। माना, यदि इन सबसे भी ज्यादा गतिशील कोई है तो वह-पर्याय गतिशील है। सूरज की किरणों को आकाश से धरती पर आने में समय लग सकता है, लेकिन पर्याय के बदलने में समय नहीं लगता है एक समय में पर्याय बदलती है।

ज्ञानी जीवो! समय को समझे बिना समयसार को नहीं समझ पाओगे। समय बड़ा अमूल्य है। समय ही सोना है। आचार्य कहते हैं-मरण को समझो यह मरण कब तक करते रहोगे, यदि मरण नहीं सुधारोगे तो मरण होता रहेगा। इसलिये आचार्य कहते हैं- जो आत्मा का ध्यान करता है, वह पाँचों शरीर को छोड़ देता है। पाँच शरीर कौन-कौन से हैं? औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्माण, यह पाँच शरीर हैं। पाँच में से दो शरीर तो अनादि से हैं।

''अनादि संबधे च'' (तत्त्वार्थ सूत्र)

तैजस और कार्माण शरीर अनादि से है। और अभी औदारिक शरीर आपके पास में है। कार्माण काय योग विग्रहगति में होता है लेकिन कार्माण शरीर यहाँ पर भी होता है। योग भिन्न है और शरीर भिन्न है। योग-परिस्पन्दनात्मक है और कायबल-परिस्पन्दनात्मक नहीं है इस अपेक्षा से कायबल है पर काय योग नहीं है।

आचार्य कहते हैं-इन पाँचों शरीरों को यह जीव बार-बार प्राप्त करता रहा और आहारक शरीर को आज तक पाया नहीं है। तो चार ही शरीर पाये। औदारिक, वैक्रियिक, तैजस, कार्माण। तैजस कार्माण अनादि से है लेकिन बदलाव दो में होता है, औदारिक या वैक्रियिक। इन दोनों में बदलाहट चलती है। वैक्रियिक शरीर से साधना होती नहीं है तो वैक्रियिक शरीर कुछ काम का नहीं है।

आत्म कल्याण के क्षेत्र में वैक्रियिक शरीर का कोई मूल्य नहीं है। त्याग तपस्या के क्षेत्र में वैक्रियिक शरीर निर्बल है। औदारिक शरीर ही महत्वपूर्ण है इसलिये औदारिक शरीर ही धर्म का साधन है। इसलिये इस शरीर से कभी विदाई लेने की सोचना नहीं। और इस शरीर पर विश्वास करके टिकना नहीं।

प्रिय आत्मन्!

इस शरीर को टिकाऊ मत मान लेना। न तो यह खरा है। न परखा है, न जाँचा है, न ही किसी कसौटी पर साँचा है। इस शरीर जैसा दगाबाज कोई नहीं है। मैं तुम पर विश्वास कर सकता हूँ लेकिन तुम्हारे शरीर पर नहीं। ध्यान देना- मुझे तुम पर पूरा भरोसा है लेकिन तुम्हारे तन पर भरोसा नहीं है।

ज्ञानी जीवो! पुण्य के परमाणु कब बढ़ जायें, और कब उड़ जायें। इस शरीर में, क्या परिणमन हो जाये कोई पता नहीं चलता है। जब तक पुण्य का कलश भरा हुआ है, तब तक शरीर तेरा साथ दे रहा है। महाराज! मेरा पुण्य कभी खाली नहीं होगा। ज्ञानी! खाली नहीं होगा, लेकिन अक्षय पुण्य पुरुष तीर्थंकर को भी शरीर त्यागना पड़ता है, उनका भी पुण्य खाली हो जाता है।

जब अक्षय पुण्य पुरुष तीर्थंकर भगवान का भी पुण्य क्षीण होता है, तो समवशरण का विघटन होता है तो ज्ञानी! तेरा शरीर और तेरा पुण्य कितना है? चक्रवर्तियों का भी पुण्य क्षीण हो जाता है। ज्ञानी जीव! ध्यान रखना-वैभव के साथ पुण्य को सुरक्षित रखना। दशानन के पास सोने की लंका तो थी, लेकिन पुण्य की कमी पड़ गयी। ध्यान देना-ज्ञानी जीवो! वैभव भले ही कम हो, लेकिन पुण्य अपनी झोली में ज्यादा होना चाहिये। और पुण्य का तात्पर्य कुछ दूसरा नहीं है, पुण्य का तात्पर्य है।

''आत्मानं पुनाति इति पुण्यं''

जो परिणाम आत्मा को पवित्र कर दे, वही पुण्य है। यह मत समझ लेना कि बोली लेने से पुण्य होता है। यह मत समझ लेना कि किसी के पास कार, मोटर, बंगला है तो वह पुण्यात्मा है। इन सबसे पुण्यात्मा का कोई ताल्लुक नहीं है, भूतकाल के पुण्यात्मा से मुझे कुछ भी नहीं है। मुझे वर्तमान का पुण्यात्मा चाहिये और वर्तमान का पुण्यात्मा वह है, जो णमोकार की जाप कर रहा है। वर्तमान का पुण्यात्मा वह है, जो वर्तमान में शुभ परिणाम बना रहा है। इसीलिये ज्ञानियो! भूत के पुण्य का उपयोग वर्तमान के पुण्य के सृजन में लगाना। पाप के सृजन में मत लगाना।

ध्यान देना-पुण्य को पाकर के पुण्य को बढ़ा लेना, घटा मत लेना। क्योंकि, कथंचित यह पुण्य आपके लिये मुनि दशा की सामग्री दे सके, इस भव में मुनि बनना है तो आगे तक आपकी इंद्रिय काम आ सके। बिना पुण्य के मनुष्य गति भी नहीं मिलती है, यह पुण्य प्रकृतियों का क्षण चल रहा है, कि आप जिनवाणी की देशना सुन रहे हैं।

ज्ञानी जीवो! सातिशय पुण्य चाहिये, पाप को भी पाप समझने के लिये प्रचण्ड पुण्य चाहिये, पुण्य तो सबकी समझ में आ जाता है। जब सातिशय पुण्य उदय में आता है, तब पाप समझ में आता है कि मैंने अब तक कितने पाप किये।

अरे! आज तक मैं कहाँ खोया था। कहाँ सोया था। मुझे कोई जगाने वाला क्यों नहीं मिला? यह चल रहा है, सातिशय पुण्य वह है, जिस दिन उपदेश सुनते-सुनते तुम्हें लगने लगे ओहो! मैंने आज तक इसका त्याग क्यों नहीं किया, यह वस्तु का त्याग तो मुझे पहले ही कर देना चाहिये था। ज्ञानी जीवों! सीता माता के मन में विचार आता है और सीता माता केशलोंच कर लेती हैं, तब राम जी कहते हैं-कि सीते चलो घर के लिये, तब सीता माँ कहती हैं-कि हे प्रभो ! आज मेरा प्रचण्ड पुण्य जागा है, कि आज मैं सत्य तथ्य को समझ सकी, मुझे तो उसी दिन घर त्याग कर देना चाहिये था, जिस समय मेरे कारण स्वयंवर मण्डप में युद्ध शुरु हो गया था। काश में उसी दिन दीक्षा ले लेती, तो मैं कितनी महान होती।

यदि उस दिन नहीं त्याग पायी, तो जिस दिन आप जंगल जा रहे थे और आप मुझे जंगल में साथ ले जाने के लिये तैयार नहीं थे, तब भी मोह की परिधि में घिरी आपके पीछे-पीछे चली आयी, लेकिन वीतराग भगवान के पीछे न चल सकी। मुझे उस दिन कम से कम वीतराग प्रभु के पीछे चल देना चाहिये था। यदि इतने पर भी मैं न समझी तो अशोक वाटिका में मैं नौ दिन तक भूखी-प्यासी रही आयी, लेकिन मेरे मन में यह नहीं आया, कि किसी आर्यिका माँ के पास जाकर मैं जैनेश्वरी दीक्षा ले लूँ, काश मैं उस दिन दीक्षा ले लेती तो इतना बड़ा युद्ध नहीं होता।

चौथा अवसर मुझे तब आया था, जब आपने मेरा किसी के कहने पर परित्याग कर दिया था, लेकिन तब भी मैं सचेत नहीं हुयी और अब मेरे लिये पाँचवा अवसर है, अब मैं पाँचवा अवसर नहीं खोना चाहती हूँ, इसलिये आपने जिस माँग में सिंदूर भरा था, अब वह माँग ही न रहे। अब मैं केशों का लुंचन करके आपके हाथों में देती हूँ। और मैं पृथ्वीमति आर्यिका माँ के पास दीक्षा लेती हूँ।

प्रिय आत्मन्!

यह है तत्त्व, इस तरह से तत्त्व को पाने वाले जीव विचार करते हैं। धन्य हैं उन सीता माँ के कितने उज्जवल विचार थे, इतने कष्टों के बीच में भी कुछ नहीं कहा। राम ने तो कृतांतवक्र के हाथों सीता को जंगल में छुड़वा दिया, लेकिन सीता माँ ने कृतांतवक्र को राम के लिये क्या संदेश दिया ?

हाय सीता रोय-हाय सीता रोय,
अवधपुरी में जाकर मेरे, प्रियवर से कहना।
मुझे छोड़कर मेरे स्वामी, आप सुखी रहना।।
हाय सीता रोय..........................
पिछले किसी जनम में मैंने, हिंसा की होगी।
विरह कराया होगा, या गुरु निंदा की होगी।।
हाय सीता रोय..........................
पर निंदा के कारण तुमने, मुझे निकाला है।
सम्यक्दर्शन छोड़ न देना, जो रखवाला है।।
हाय सीता रोय............................

एक पत्नि गुरु के तुल्य हुआ करती है, जब वह शिक्षा देती है। इस तरह से वह सीता आत्म-ध्यान करती है और जंगल में रहती है। कहने का औचित्य यह है जो इस तन को जान लेता है वह तन से विरक्त होकर के, तन को आत्म साधना का साधन बना लेता है। इस तन का उपयोग कैसे करना है, यह तुम्हारे ऊपर निर्भर है चाहे तो चतुर्गति का साधन बना लो, जैसा कि आज तक बनाते आये हो, या फिर मोक्ष का साधना बना लो।

जं होइ भुंजियव्वं, कम्मं उदयस्स आणियं तवसा।
सयमागयं च तं जइ, सो लाहो णत्थि संदेहो।।50।।

अर्थ-

जो कर्म तप के द्वारा उदय में लाकर भोगने के योग्य होता है वह यदि स्वयं उदय में आ गया है तो बड़ा भारी लाभ है। इसमें कोई संदेह नहीं हैं।

भुंजंतो कम्मफलं, कुणइ ण रायं तह य दोसं च।
सो संचियं विणासइ, अहिणवकम्मं ण बंधेइ।।51।।

अर्थ-

जो भव्य जीव कर्मों के फल को भोगता हुआ राग और द्वेष नहीं करता है वह पूर्व संचित कर्म को विनष्ट करता है और नवीन कर्म को नहीं बाँधता है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

तत्त्वसार की वाचना चल रही है। वाचना का क्रम आज एक माह पूर्णता को प्राप्त हो रहा है। आचार्य कहते हैं-तत्त्वसार का सार तत्त्व यह है कि कर्म के उदय में ज्ञान का उदय बना रहे, तो कभी कर्म का आस्रव बंध नहीं होगा। समयसार जी में कहा है ज्ञानी ! को कर्म बंध नहीं होता, अज्ञानी को कर्म बंध होता है। तात्पर्य यह है कि अज्ञानी-जितनी कर्म प्रकृतियों का बंध करता है ज्ञानी-उतनी कर्म प्रकृतियों का बंध नहीं करता। अज्ञानी जिस राग-द्वेष की तीव्रता के साथ बंध करता है ज्ञानी में मंदता पायी जाती है। तो जिस तरह से हमें किसी से यदि पचपन हजार पाँच सौ पचपन रुपये उधार लेना है यदि उसने पचास हजार चुका दिये तो उसका एक प्रकार से हम यही मानते हैं कि कर्ज चुक गया लेकिन कर्ज चुका नहीं है लेकिन लोक भाषा, कथन श्रुति की अपेक्षा है। उसी तरह से सम्यक्दृष्टि जो ज्ञानी जीव है यद्यपि वह लगभग चौहत्तर कर्म प्रकृतियों का बंध कर रहा है लेकिन फिर भी आचार्य कहते हैं-कि वह कर्म बंध नहीं कर रहा। हाँ! ज्ञानी! क्योंकि अज्ञानी एक प्रकृति को बाँधे और ज्ञानी पूरी चौहत्तर प्रकृतियों को बाँधे, तब भी ज्ञानी की चौहत्तर प्रकृतियाँ उतनी बलशाली नहीं हैं, जितनी अज्ञानी की एक प्रकृति बलशाली है।

ध्यान देना-तू दिन भर में कितना भी पी लेना, लेकिन उतना नहीं पी पायेगा जितना एक सभ्य व्यक्ति पी लेता है। तू दिन भर में दूध पीयेगा दो लीटर पीयेगा। जैसे-एक सदाचारी पुरुष दूध पीयेगा, रस पीयेगा, जल पीयेगा लेकिन एक शराबी व्यक्ति शराब पीयेगा। जिस तरह से दूध का पीने वाला दो-दो लीटर पीता है, फिर भी नहीं पीता है और एक व्यक्ति ऐसा है कि सात दिन में एक बार पीता है, तो लोग कहते हैं, यह पीता है। यही स्थिति अज्ञानी के साथ है, कि अज्ञानी तो होश में ही नहीं है इसलिये वह नाना प्रकार के कर्मो को बाँधता है और ज्ञानी प्रत्येक क्रिया और चर्या के साथ ज्ञान का उपयोग करता है। इसीलिये उन्हीं कर्म प्रकृतियों को अति मंदता के साथ बाँधता है।

आचार्य पूज्यपाद देव कहते हैं-साधु देखता हुआ, पर भी नहीं देखता है, बोलते हुये, पर भी नहीं बोलता है और चलते हुये, पर भी नहीं चलता है यह कैसा विरोधाभ्यास है यही तत्त्व का सार है कि ज्ञानी कर्म का बंध नहीं करता है। करता तो है फिर भी नही करता।

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरी-कृतात्म-तत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति ।।41।।

जैसे-जो आत्म तत्त्व में स्थित जीव चलते हुये भी नहीं चलता है। देखता हुआ भी नहीं देखता है। उसी तरह से ज्ञानी कर्म का बंध करते हुये भी कर्म का बंध नहीं करता है। प्रयोजन यह है कि जिस तरह से, जिस मात्रा में, अज्ञानी कर्म का बंध करता है, उस तरह से उस मात्रा में ज्ञानी कर्म का बंध नहीं करता है, इस अपेक्षा ज्ञानी निरास्रव है। किस अपेक्षा निरास्रव है? प्रथम, द्वितीय, तृतीय गुणस्थान में बँधने वाली समस्त प्रकृतियों से ज्ञानी निरास्रव है।

प्रथम गुणस्थान की सोलह प्रकृतियाँ व्युच्छति की हैं। द्वितीय गुणस्थान में पच्चीस प्रकृतियाँ व्युच्छति की हैं। इस प्रकार से इकतालीस प्रकृतियों को व्युच्छति हो गयी है। इतनी कर्म प्रकृतियों को छोड़ चुका है तो वह उतने का त्यागी हो गया। सम्यक्दृष्टि ज्ञानी जिसका त्यागी है? आस्रव बंध का त्यागी है, जिसका त्याग कर दिया है उसके विषय में निरास्रव हो गया। लेकिन संपूर्ण का त्याग नहीं है। ज्ञानी और अज्ञानी में यही अंतर है।

प्रिय आत्मन्!

कर्म का उदय में आना अच्छा है-कि बुरा है? लाभदायक है कि-हानिकारक है? कर्म जब उदय में आ जाये तो लाभ मानना चाहिये-कि हानि मानना चाहिये? और कर्म का बंध लाभदायक है-कि

हानिकारक है?। संसारी प्राणी यदि पाप कर्म का बंध करता है, तो हानिकारक है। और संसारी प्राणी पुण्य कर्म का बंध करता है, तो लाभदायक है। शुभ प्रकृतियों का बंध लाभदायक है और अशुभ प्रकृतियों का बंध हानिकारक है।

''शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य''6 ॥ तत्त्वार्थसूत्र ॥

ज्ञानी पुरुष-शुभ परिणाम करता है। शुद्ध परिणाम करता है। तो शुभ और शुद्ध परिणामों के बल पर पुण्य कर्म का बंध करता है और अज्ञानी अशुभ परिणाम करता है पाप का बंध होता है। पाप से नरकायु बँधती है, तो वह उसके लिये हानिकारक ही है। लेकिन ज्ञानी पुरुष ! तत्त्व देशना में विराजमान है, तत्त्व देशना से बंध नहीं होता है। प्रवचन से बंध नहीं होता है। प्रवचन के काल में जो जिनवाणी के प्रति गुणानुराग है, जो जिनवाणी के प्रति भक्ति अनुराग है, वह प्रशस्त अनुराग के कारण बंध हो रहा है। क्योंकि प्रवचन तो सम्यक् ज्ञान है। सम्यक् ज्ञान से बंध नहीं होता है और जितने क्षणों में आप प्रवचन सुनेंगे उतने अंशों में, उतने क्षणों में, कर्म का बंध नहीं होगा। आत्मा के जितने अंशों में प्रवचन है उतने अंशों में कर्म का बंध नहीं है।

प्रवचन से कर्म बंध नही होना चाहिये यदि प्रवचन सुनते-सुनते कर्म का बंध हो रहा है तो वह प्रवचन ही नहीं है, प्रवचन के समय में जो भक्ति जागे, विशुद्धि जागे उस विशुद्धि और भक्ति के बल पर जो शुभ परिणाम हो रहे हैं, उन परिणामों से कर्म का बंध होगा प्रवचन से बंध नहीं होगा।

ध्यान देना-ज्ञानियो! प्रवचन सुनकर के सम्यक्त्व होता है, यह लिखा है शास्त्रों में। प्रवचन से सम्यक्ज्ञान होता है यह लिखा है जिनवाणी में और प्रवचन सुनकर सम्यक्चारित्र होता है यह लिखा है जिनवाणी में। महाराज श्री! प्रवचन का विषय क्या है?

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपद-सहितं जीव-षट्काय-लेश्याः।
पंचान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति ज्ञान-चारित्र-भेदाः॥

काल 3, द्रव्य 6, पदार्थ 9, जीव 1, काय 6, लेश्या 6, अस्तिकाय 5, व्रत 5, समिति 5, गति 4, ज्ञान 5, चारित्र 5 = 60

आचार्य देव लिखते हैं- कि इन साठ बातों पर प्रवचन करो। यह मोक्ष के मूल हैं। यह मोक्ष के हेतु हैं। यह मोक्ष के साधन हैं। जिनवाणी में साठ विषयों पर चर्चा की जा सकती है। नरक की चर्चा भी मोक्ष का मूल हो सकती है।

प्रिय आत्मन्!

जाना नहीं है, जानना है। जाना मोक्ष का मूल नहीं है, जानना मोक्ष का मूल है, तो नरक जाना नहीं है, नरक को जानना है। चारों गतियों को जानना है, षट्कायों में जाना नहीं है। षट्काय को जानना है। षट्लेश्या के परिणाम नहीं बनाना है, षट्लेश्या को जानना है। ज्ञानियो! जानना भिन्न है और जाना भिन्न है। जाना मोक्ष है और जानना शेष उनसठ को भी है।

जैसा जानोगे-वैसा जाओगे क्या? मोक्ष के मूल को जानो-तो मोक्ष को जाओगे। नरक को जानोगे-तो नरक नहीं जाना पड़ेगा। यह मोक्ष का मूल है।

प्रिय आत्मन्!

मोक्ष के लिये बोलूँ-कि मोह के लिये बोलूँ? ध्यान देना- विद्वान, साधु मोक्ष के लिये बोलते हैं। रागी गृहस्थ मोह के लिये बोलते हैं। बोलो-मोक्ष के लिये। चलो-मोक्ष के लिये। सुनो-मोक्ष के लिये। ज्ञानी! तुम कहते हो आहार के लिये चलो, हम कहते हैं आहार मोक्ष के लिये चल। आहार-भी मोक्ष के लिये। विचार-मोक्ष के लिये। आचार मोक्ष के लिये। साधु की क्रिया और साधु की चर्या-मोक्ष मार्ग है। प्रत्यक्ष मोक्ष मार्ग कहा है-साधु को। जीवंत मोक्ष मार्ग, चलता, फिरता मोक्ष मार्ग है-साधु।

ज्ञानी! दिगम्बर साधु जहाँ से निकल जाये, कहा जाता है कि मोक्ष-मार्ग निकल गया। ''मोक्ष के लिये बोलो, मोह के लिये नहीं''। जो कर्म भोगने योग्य है, वह यदि स्वयं उदय में आ जाता है तो आचार्य कहते हैं-जो कर्म तपस्वी तपस्या के द्वारा उदय में लाते हैं और खिराते हैं यदि वह कर्म स्वयं ही उदय में आ जाये, तो तू कर्म के उदय में मत आ जाना, ज्ञानी ! गाड़ी तेरे द्वार पर आ जाये लेकिन तू गाड़ी के नीचे मत आ जाना। कर्म उदय में आना, तो लाभदायक है लेकिन आत्मा का कर्म में आ जाना हानिकारक है। कर्म के उदय में अपनी परिणति राग-द्वेष रूप कर लेना यह कर्म के उदय में कुचल जाना है।

जैसे-गाड़ी तो यात्री को बिठाने के लिये आयी थी लेकिन यात्री बैठे तो नहीं उसके नीचे पहुँच गये तो हानि हो गयी। उसी तरह से कर्म का उदय कर्म की निर्जरा के लिये आया था। कर्म का उदय में आना ही निर्जरा है। आना ही-जाना है। जो आया है-सो जायेगा। जो आ रहा है-वह जा भी रहा है, इसी तरह दूसरे का कर्म मेरे उदय में नहीं आता। मेरा कर्म ही मेरे उदय में आता है। कर्म जब तक सत्ता में है, तब तक चेंज हो सकता है गाड़ी बीना जंक्सन पर है, तो गाड़ी को कहीं भी भेज सकते हो, यदि स्टेशन से छूट चुकी है, तो वह अपने स्थान तक आयेगी ही आयेगी उसी प्रकार जो कर्म आ गया है, उसमें चेंजिंग नहीं कर सकते, स्टेशन पर खड़े थे चेंज कर सकते थे।

प्रिय आत्मन्!

जैसे-रेलगाड़ी देखने का आनंद बच्चे दूर से लेते हैं। समुद्र देखने का आनंद दूर से लिया जाता है, उसी तरह से कर्म का उदय आता रहे, जाता रहे और तुम तटस्थ भाव से देखते रहो। ध्यान देना-ज्ञानी ! समुद्र बहुत अच्छा होता है लेकिन दूर से देखना। तुम नर्मदा को मैया मानते हो मानो। तुम अग्नि को देवता मानते हो, मानो। किंतु इनकी गोद में मत जाओ, क्योंकि एक की गोद में जाओगे डूब जाओगे और दूसरे की गोद में जाओगे, तो जल जाओगे।

ध्यान देना-नर्मदा मैया को दूर से देख लेना और अग्नि देवता को भी दूर से देख लेना इसी तरह से कर्म के उदय में आप दूर से खड़े होकर के देखते रहो। हे ज्ञानी ! तटस्थ भाव के साथ देखते रहो कि यह कर्म आ रहा है, यह कर्म आ रहा है लेकिन तू उसमें लीन मत हो जाना। जैसे बहती हुयी गंगा की धार को दूर से देख लेते हो। यमुना के प्रवाह को दूर से देख लेते हो उसी तरह से कर्म के उदय को देख लो और जाने दो।

''देखो-जानो-जाने दो''

जो कर्म उदय में लाकर के भोगने योग्य है। उसी तरह ज्ञानी पुरुष! जैसे कार्यक्रम में आपकी उपस्थिति से सब कार्य हो जायेगा। उसी तरह ज्ञानी पुरुष कर्म के उदय आने पर सोचता है, कि अच्छा रहा-जिसे बुलाने जाना था, लेने जाना था, वह अपने आप आ गया। ज्ञानी पुरुष कर्म के उदय में विषाद नहीं करता है। शोक नहीं करता है।

आचार्य कहते हैं- शोक करने से कर्म घट नहीं जाता है। जिंदगी चार दिन की है चाहे हंस के गुजार ले, चाहे रो के गुजार ले। गुजरना तो है ही यह जीवन चाहे, हंस के गुजार लो, चाहे रो करके गुजार लो। वहाँ का बाँधकर यहाँ छोड़ने आये थे और यहाँ बाँधोगे तो कहाँ छोड़ोगे ?

ज्ञानी जीवो! वहाँ बाँधा था यहाँ काटने आये हो और यहाँ बाँधोगे तो कहाँ काटोगे? चौरासी लाख योनियों में बाँधा था एक मनुष्य योनी में काटने आये हो। मनुष्य योनि में बाँधोगे तो किस योनि में जाकर काटोगे? अन्य क्षेत्रों में बाँधा था, धर्म क्षेत्र में काटने आये हो और धर्म क्षेत्र में बाँधेगें तो कहाँ काटोगे। अन्य कुल में बाँधा था जैन कुल में काटने आये हैं और जैन कुल में कर्म बाँधेगें तो कब वे कर्म काटेगें।

ज्ञानी जीवो! अनंत भवों के कर्म को काटने के लिये यह मनुष्य भव मिला हैं और इसी भव में यदि

कर्म बाँधेगें तो कहाँ काँटेंगे? जो ज्ञानी पुरुष होता है, वह कर्म के उदय में तटस्थ-तट पर खड़े हुये की तरह दृश्य देखता है। समुद्र में कूदना नहीं, देखना मना नहीं है, लेकिन समुद्र में कूदना मना है।

''डूबो नहीं लगाओ डुबकी''

जम्बू स्वामी कुमार ने डुबकी लगायी-डूबे नहीं। पिता की आज्ञा थी, विवाह करना पड़ेगा, आज्ञा पालन की लेकिन दूसरे दिन मोक्ष के लिये चला गया। डुबकी तो लगायी लेकिन डूबा नहीं।

''सम्यक् द्रस्टे: भवति नियतं ज्ञान वैराग्य शक्ति''

सम्यक्दृष्टि जीव के भीतर नियम से ज्ञान वैराग्य की शक्ति होती है और वह विषयों में डुबकी तो लगाता है, किंतु डूबता नहीं है। भरत चक्रवर्ती के पास छियानवें हजार रमायें थी डुबकी तो लगाता था, लेकिन डूबता नहीं था। षट्खण्ड के वैभव में डुबकी लगायी है, डूबा नहीं है। और अज्ञानी जीव डूब जाता है।

वारिषेण बत्तीस को त्याग देता है और पुष्पडाल एक बटन बंद को भी नहीं त्याग पाता है। ज्ञानी जीवो ! जब वारिषेण बोलता है, कि राजमहल चलना है और पुष्पडाल भी बोलता है कि हाँ चलो-चलना है। ज्ञानी जीवो ! दोनों एक ही शब्द बोल रहे हैं, लेकिन वारिषेण के बोलने में मोक्ष बोलता है और पुष्पडाल के बोलने में मोह बोलता है। शब्द एक होते हैं और अर्थ दो निकलते हैं। स्वयं आगतं स्वागतम्। जो कर्म स्वयं आ गया है, उसका भी स्वागत करना। राग-द्वेष मत करना ?

प्रिय आत्मन्!

कर्म के उदय में रोने बिलखने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य वादिराज गद्य चिंतामणि में खिलते हैं:-

''गते शोको न कर्तव्य':'

बीते पर शोक नहीं करना चाहिये। आपदा का परिहार रोने से नहीं होता है। आपदा का परिहार धीरज रखने से होता है। यदि विषाद करने से ही आपत्ति दूर होती तो फिर सभी जन विषाद करते। ज्ञानी जीवो ! सत्यंधर कुमार को मालूम है कि मेरी मृत्यु निकट आ रही है, रानी ने कहा महाराज ! आज मैंने स्वप्न देखा है? बोलो देवी क्या स्वप्न देखा है? हे स्वामिन् ! मैंने एक वृक्ष को नीचे गिरते हुये देखा है, सूर्य को उगते हुये देखा है, देवी इस स्वप्न का फल यह है, कि आप केवलज्ञान साम्राज्य के अधिनायक पुत्र को

जन्म दोगी, किंतु दूसरे स्वप्न का फल कहने के योग्य नहीं है।

रानी इतना सुनकर ही बेहोश हो गयी। राजा ने सचेत किया, सचेत करने के बाद राजा सत्यंधर समझाता है, कि देखो देवी जो तुमने स्वप्न देखा है, वह स्वप्न बोलता है, कि निकट भविष्य में......। लेकिन तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। क्योंकि शोक करने से आपदा का परिहार नहीं होता है, अब हम और आपके लिये निरंतर धर्म-ध्यान करना चाहिये। जितने क्षण शेष हैं उन क्षणों को उत्कृष्ट धर्म-ध्यान के साथ व्यतीत कर लें।

ध्यान देना-ज्ञानियो ! स्वर्ग में दो तरह के देवता होते हैं ? एक सम्यक् दृष्टि देव होते हैं, दूसरे मिथ्यादृष्टि देव होते हैं। सम्यक्दृष्टि की भी छह महीने पहले माला मुरझाती है और मिथ्यादृष्टि की भी छह महीने पहले माला मुरझाती है। माला दोनों की मुरझाती है मिथ्यादृष्टि रोने लगते हैं और सम्यक्दृष्टि सम्हलने लगते हैं। मिथ्यादृष्टि बिलखने लगते हैं और सम्यक्दृष्टि सम्हलने लगते हैं। वे मिथ्यादृष्टि देवियों की गोद में लिपट-लिपट कर रोते हैं। और सम्यक्दृष्टि जिनेन्द्र देव की शरण में जाकर के पूजा अर्चा और जाप करने लगते हैं।

दोनों को पता है, कि छह महीने के बाद मृत्यु होने वाली है। मिथ्यादृष्टि को भी समाचार मिल गया माला मुरझाने से, लेकिन सम्यक्दृष्टि जिनेन्द्र देव की शरण लेता है और मिथ्यादृष्टि अपनी देवी की गोद में आँसू बहाता है, कि यह देवियाँ मुझे फिर नहीं मिलेगी। यह स्वर्ग का वैभव मुझे नहीं मिलेगा। लेकिन सम्यक्दृष्टि कहता है- हे जिनेन्द्र देव! आपकी पूजा इस बार करूँगा तो अगले बार में देवेन्द्र नहीं जिनेन्द्र बनूगाँ।

प्रिय आत्मन्!

कर्म के फलों में जो राग-द्वेष को नहीं करता है, वह पुराने कर्मो को नष्ट करता है और नवीन कर्मो को बाँधता नहीं है। इसलिये आचार्य भगवन् कहते हैं-जो जीव कर्मो के फलों को भोगता हुआ यदि मोह के वश में शुभ-अशुभ भाव को करता है, तो फिर वह कर्मो से छूटता नहीं हैं। भोगने के बाद वस्तु समाप्त होना चाहिये। थाली में चार रोटी परोसी हैं, तो रोटी खाने के बाद रोटी समाप्त होना चाहिये। कर्मो से छूटने के लिये कर्म के उदय काल में राग-द्वेष नहीं करना। कर्म का उदय कैसा भी आये लेकिन कर्म के उदय में शांति रखना। यही कर्म की विजय है।

शव दाह क्या रात्रि में करना चाहिये ? भगवति आराधना आदि ग्रंथों में स्पष्ट है कि सूर्योदय के पहले और सूर्यास्त के बाद कभी भी शव दाह नहीं होता है। शव दाह सूर्यास्त के पहले-पहले तक हो जाना

चाहिये। ध्यान रखो ? यदि किसी भी तीर्थंकर का निर्वाण भी रात्रि में होता है तो नख और केश का संस्कार भी सूर्योदय के साथ हुआ है। यह विशुद्ध रीति-परम्परा बराबर विशुद्ध चलती रहना चाहिये। जैनों के घर में चूल्हे भी रात्रि में नहीं जलते। जैनों के बराबर अहिंसा का पालन किसी धर्म में नहीं होता है। इसलिये कम से कम मकान में हिंसा हो तो हो, लेकिन कम से कम शमशान में जाके हिंसा तो न हो। खुले आम हिंसा तो न हो। जैसे-रात्रि के भोज में आप नहीं जाते हैं उसी प्रकार रात्रि में होने वाले दाह संस्कार में आप लोगों को नहीं होना चाहिये।

भुंजंतो कम्मफलं, भावं मोहेण कुणइ सुहमसुहं।
जइ तो पुणो वि बंधइ, णाणावरणादि अट्ठविहं।।52।।

अर्थ-

कर्मों के फलों को भोगता हुआ अज्ञानी पुरुष यदि मोह से शुभ और अशुभ भाव को करता है, तब फिर भी वह ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्म को बाँधता है।

परमाणुमित्तरायं जाम ण छंडेइ जोइ समणम्मि।
सो कम्मेण ण मुच्चइ परमट्ठ वियाणओ समणो।।53।।

अर्थ-

जब तक योगी अपने मन से परमाणु मात्र भी राग को नहीं छोड़ता है, तब तक परमार्थ का ज्ञायक भी वह श्रमण कर्म से नहीं छूटता है।

सुहदुक्खं पि सहंतो, णाणी झाणम्मि होइ दिढचित्तो।
हेऊ कम्मस्स तओ, णिज्जरणट्ठं इमो भणिओ।।54।।

अर्थ-

सुख-दु:ख को भी सहता हुआ ज्ञानी पुरुष जब ध्यान में दृढ़ चित्त होता है, तब उसका तप कर्म की निर्जरा के लिये हेतु होता है, ऐसा कहा गया है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी ! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-

विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

दिव्य ध्वनि प्रदान करने वाले, विश्व तत्त्व के ज्ञाता, कर्म रूपी पर्वतों को भेदन करने वाले, मोक्ष मार्ग के नेता, देवाधि देव सर्वज्ञ प्रभु, हितोपदेशी, जिन ! सर्वज्ञ ! तीर्थंकर ! महानुभाव, आप्त परमात्मा तीर्थंकर, वीर-अतिवीर-सन्मति-वर्धमान महावीर स्वामी के पावन पुनीत गुण स्मरण करते हुये कोटि-कोटि नमन करते हैं।

हे देवाधि देव ! प्रभो आपकी वाणी सदा-सदा जयवंत हो, जयवंत हो। हे देवाधि देव ! चैतन्य चमत्कार का जो स्वरूप आपने प्रकाशित किया है, वह अखिल विश्व के लिये मंगलकारी है। वही स्वरूप पूर्वाचार्यों ने जिनवाणी में लिपिबद्ध किया है। फलस्वरूप सम्प्रति कालीन आचार्यगण आपकी वाणी को श्रवण करने के पूर्व आपको प्रणाम करते हैं। हे जिनवाणी माँ ! आपको नमस्कार हो।

जिन आचार्यों की लेखनी से गुम्फित होकर के ग्रंथों का जनम हुआ है, ऐसे उन धर्माचार्यों को प्रणाम करते हुये दीक्षाचार्य गुरुदेव विरागसागर जी महाराज को बारम्बार प्रणाम करते हैं। हे गुरुदेव ! आप सदा जयवंत हो।

प्रिय आत्मन्!

आत्मा और कर्म का अनादि से संबंध है, आत्मा का निकटतम यदि कोई है, तो वह कर्म ही है। कर्म से निकट और विकट कोई भी नहीं है।

भव विकट वन में कर्म बैरी, ज्ञान धन मेरो हरयो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिरयो।।

इस संसार रूपी वन में कर्म बैरी ने मेरे ज्ञान रूपी धन को हर लिया है और मैं इस इष्ट को भूलकर के अनिष्ट गतियों में दु:ख को पा रहा हूँ।

प्रिय आत्मन्!

कर्मफल चेतना कर्म चेतना और ज्ञान चेतना के भेद से चेतना तीन प्रकार की है। कर्म फल चेतना-एकेन्द्रिय जीवों में पायी जाती है। कर्म फल चेतना से तात्पर्य है, कि जो आत्मा मात्र कर्मों के फल

को तो भोग सके, लेकिन कुछ परिवर्तन न कर सके, वह कहलाती है-कर्म फल चेतना। दूसरा वह है जो कर्मो को भोगते हुये भी, कर्मो से बचने का उपाय कर सके वह है-कर्म चेतना। जो दो इंद्रिय से पंचेन्द्रिय तक पायी जाती है, यह दो चेतनायें तो सब में पायी जाती हैं। लेकिन तीसरी चेतना जो है, वह महामंगलकारी चेतना है-ज्ञान चेतना। जिस चेतना के बल पर आत्मा स्व-पर के भेद-विज्ञान को जानता हुआ ज्ञान चेतना के उत्कर्ष को पाता है वह कैवल्य रश्मियों के प्रकाश से विश्व को प्रकाशित कर देता है और संपूर्ण दु:खों का अंत कर लेता है।

यदि कर्म फल चेतना वाला अनंत दु:खी है, तो ज्ञान चेतना वाला अनंत सुखी है। सुखी कौन है? जिसके पास ज्ञान है वह सुखी है और जिसके पास कर्म है वह दुखी है। कर्मफल चेतना वाला जीव दुखी है और ज्ञान चेतना वाला जीव सुखी है।

प्रिय आत्मन्!

ज्ञान-आत्मा का गुण है। जो आत्मा का ही है, उसको ही पाने की बात क्यों कहते हैं? आचार्य कहते हैं-ज्ञान आत्मा का गुण तो है, किंतु आत्मा अपने उपयोग को उस ज्ञान गुण पर ले ही नहीं जाता है, इसलिये दुखी होता है। जैसे-आपके घर में मिठाई का डिब्बा रखा है, लेकिन जब तक अपने उपयोग को उस पर नहीं ले जाओगे, उसका उपयोग नहीं करोगे, तब तक भूख नहीं मिटती है। उसी तरह से यह आत्मा अपने ज्ञान गुण पर जब तक दृष्टि नहीं डालता है, तब तक दु:ख नहीं मिटता है और ज्यों ही ज्ञान का उपयोग किया, कि दु:ख की वेदना गयी।

कर्म के फलों को भोगता हुआ जीव मोह के वश होकर यदि शुभ-अशुभ भावों को करता है, तो पुन: नाना प्रकार के कर्मो से बँध जाता है। जिस तरह से वृक्ष के फलों को तोड़ता हुआ जीव यदि वृक्षों में पानी सींचता जाता है, तो उसके फल कभी समाप्त नहीं होते हैं। उसी तरह से जब तक यह जीव राग-द्वेष-मोह को नहीं त्यागता है, तब तक नाना प्रकार के कर्म बंधन को प्राप्त होते रहते हैं। इसलिये हे जीवो! आचार्य कहते हैं-कर्म को भोगते समय न शुभ भाव होना चाहिये न अशुभ भाव होना चाहिये। यदि मुक्त होना है तो शुद्ध भाव होना चाहिये।

अशुभ भाव से दुर्गति होती है। शुभ भाव से सद्गति होती हैं। और शुद्ध भाव से शिवगति होती हैं। पाप से नरक और तिर्यंच आयु होती है। पुण्य से मनुष्य और देव आयु होती है। और जहाँ पुण्य पाप नहीं हैं वहाँ दोनों के क्षय हो जाने पर आयु रहित परमगति होती है। शिवगति होती है।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य कहते हैं-राग जीव के लिये आग की तरह जलाता है कर्म का बँध कराता है।

बध्यते मुच्यते जीवः, सममो निर्ममः क्रमात्।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन, निर्ममत्वं विचिन्तयेत्।।26।। इष्टोपदेश।।

ममता सहित जीव कर्म से बँधता है, ममता रहित जीव कर्म से छूटता है, इसलिये जीव के लिये ममत्व भाव का त्याग करना चाहिये। जब तक योगी अपने मन से परमाणु मात्र भी राग को नहीं शेष रखता है, तब तक परमार्थ का ज्ञायक-वह श्रमण कर्म से नहीं छूटता है। जितना-जितना राग छूटता है, उतना-उतना कर्म बंध कम होता जाता है।

अनंतानुबंधी संबंधी राग छूटा तो उतना कर्म बंध कम होने लगा। अप्रत्याख्यान संबंधी राग छूटा तो उतना और कर्म बंध कम हो गया। फिर प्रत्याख्यान संबंधी राग छूटा तो और कर्म बंध कम हो गया। जब संज्वलन संबंधी राग छूट जाता है तो फिर कर्म बँधना ही बंद हो जाता है। क्यों? जितना-जितना राग छूटेगा उतना-उतना कर्म बंध कम होता जायेगा।

राग-द्वेष-मोह जीव के अकल्याणकारी कार्य हैं। यदि, हे श्रमण ! तू कर्मों से छूटना चाहता है, तो राग को छोड़ दे। जब तक राग नहीं छूटेगा, तब तक कर्म बंधन नहीं छूटेगा सबसे महत्वपूर्ण चीज है, वस्तु के त्याग के बाद भी, जैसे- एक वर्तन से दूसरे वर्तन में दाल या सब्जी को पलटने के बाद भी उसमें लगार लगी रहती है, उसी तरह से वस्तु के त्याग के बाद भी यदि राग लगा है, तो फिर उसमें जो नवीन वस्तु डालोगे, वह भी वैसी ही हो जायेगी, जैसे दही के वर्तन में यदि नवीन दूध भी डालोगे, तो वह भी जल्दी फट जायेगा। इसलिये पहले वर्तन को माँजते हैं बाद में दूध भरते हैं उसी तरह राग को साफ कर लेना फिर बाद में व्रत संयम डालना।

आचार्य भगवन् कहते हैं-यदि परमाणु मात्र भी राग है, तो वह थोड़ा सा भी राग पूरी साधना को घटायेगा। नकुल और सहदेव के राग ने सवार्थसिद्धि में अटका दिया। कहाँ तो सिद्धशिला जाने वाले थे और कहाँ सर्वार्थ सिद्धि में अटक के रह गये। ज्ञानी ! नकुल सहदेव की चेतना से पूछो, जो सर्वार्थ सिद्धि में हैं। ओहो ! मैंने व्यर्थ में क्यों भाई का मोह किया था? यदि मैं भाई के प्रति मोही न होता, तो आज मोक्ष में होता।

लोग कहते हैं-महाराज हमें मोह नहीं है, हम वैसे ही रह रहे हैं घर में। ज्ञानियो ! जिनको मोह नहीं होता है वह इस पृथ्वी पर नहीं रहता है। वह इस धरती से पाँच हजार धनुष ऊपर उठ जाता है, अरहंत

परमात्मा बन जाता है, इसलिये ध्यान देना-यह मत सोच लेना कि हमें मोह नहीं है हम तो वैसे ही रह रहे हैं घर में।

यदि मोह न होता तो यहाँ बैठकर प्रवचन न देता, साक्षात् तीर्थकर केवली बनकर गंधकुटी में उपदेश दे रहा होता। उस दिन मानूगाँ, कि तुझे मोह नहीं है। ज्ञानी ! संसार में भरत के बाद अनंतानंत जीव हो चुके, लेकिन कोई दूसरा जीव भरत के जैसा वैरागी नहीं हो पाया। मात्र एक ही व्यक्ति का नाम आता है, कि भरत ने दीक्षा उपरांत एक मुहूत में केवलज्ञान पाया, इनके सिवा कोई दूसरे का नाम ही नहीं आता है। चौबीस तीर्थकर उनके बीच में मोक्ष चले गये और उनके पहले भी कई मोक्ष चले गये होंगे, लेकिन किसी दूसरे का नाम नहीं आता।

राग को छोड़ने के बाद सुख को भी सहन करो, दुख को भी सहन करो और ध्यान में लीन रहो, तभी तुम निर्जरा कर पाओगे। ज्ञानी पुरुष-वह भी सुख और दुख सहता है। ध्यान देना-ज्ञानी ! उसे ठण्डी, गर्मी, वर्षा भी लगती है, शरीर तो जिन परमाणुओं से तुम्हारा बना है, उसी तरह के परमाणुओं से उनका भी बना है, किंतु जिसने जितना राग घटा लिया, उसको उतनी कम वेदना। तीर्थंकर को भी भूख लगती है, लेकिन भूख सताती नहीं है। क्योंकि मोहनीय कर्म नहीं है।

ध्यान देना- चोट तो सबको लगती है लेकिन मोह जिसका ज्यादा होता है उसको दर्द जयादा होता है मोह ज्यादा नहीं होता है तो नहीं रोता है। चोट लगने से व्यक्ति नहीं रोता है, मोह जागने पर व्यक्ति रोता है। किसी की मृत्यु होने से कोई नहीं रोता है, मृत्यु के समाचार मिलने के बाद, जैसे-जैसे मोह जागता है वैसा-वैसा रोता है।

जिसकी मृत्यु हुयी उस पर कोई नहीं रो रहा, मात्र उसके क्रिया कलापों से मोह की पूर्ति हो रही थी, उस स्वार्थ पूर्ति के कारणों को याद करके रोते हैं। जीव के ज्ञान, दर्शन, गुण को याद करके कौन रोता है? एक छोटे से बालक का इतना पुण्य हो सकता है, कि वह नरक में भी शांति दे सकता है और एक बहत्तर साल वाले का भी पुण्य इतना हो सकता है, कि तीन लोक में चमत्कार पैदा करने वाला निर्वाण कल्याणक करा सकता है। इसलिये ध्यान देना- न बालक के पास कमी है, न वृद्ध के पास कमी है, दोनों के पास पुण्य का अथाह भण्डार हो सकता है।

ध्यान देना-जो वृद्ध है, वह स्वर्ग का द्वार खोलने की ताकत कर रहा है, भले ही उसके पास तुम्हारे घर की खिड़की खोलने की ताकत न हो। जिसमें अपनी आँख खोलने की ताकत नहीं है, उसके पास भी स्वर्ग का द्वार खोलने की ताकत है। क्योंकि पुण्य की क्षमता उसके पास है। उसी तरह कोई शिशु है, तो उसके पास भी है।

प्रिय आत्मन्!

सेवा पैसे वाले की नहीं होती है, सेवा पुण्य वाले की होती है। जब तक हमारे जीवन में जैन दर्शन का सत्य निर्णय नहीं आयेगा, पुण्य संचित नहीं होगा। इसलिये विशुद्धि को बढ़ाते रहना। णमोकार, स्वाध्याय आदि को बढ़ाके रखना, क्योंकि अंत समय में ज्ञान ही कम आयेगा।

प्रत्येक गृहस्थ को बच्चों की शादी के बाद सन्यासी की तरह रहना चाहिये। यह भारतीय संस्कृति का सिद्धांत और नियम है कि (वाण-प्रस्थ आश्रम) आत्मा में ठहर जाओ अब घर में रहना भूल जाओ। घर में रहते हुये भी घर बालों के बीच में ऐसे रहो, जैसे-जल के बीच में कमल रहता है। हम जितने-जितने आसक्त होंगे, उतने-उतने दुखी होंगे।

वृद्धों को एक ही दुख होता है, मान सम्मान न मिलने का और कोई दुख नहीं होता है उन्होंने जीवन भर मान सम्मान दिया है और जब उन्हें वह मान सम्मान नहीं मिलता है तो दुख होता है। एक सज्जन बोले, मैंने इस देह को चंदन चूर्ण बना लिया लेकिन आज मेरी कोई नहीं सुनता। भैया यदि तू चारित्र चूड़ामणि बन जाता, तो तेरी सारी जगत सुनता।

ध्यान देना-ज्ञानियों! तुम्हारे घर के बच्चे जो पिता और माँ की सेवा नहीं कर रहें हैं, वही बच्चे यहाँ पर आकर वृद्ध साधु की सेवा क्यों करते हैं? महाराज का यह सातिशय पुण्य है और इन्हें सेवा की भूख नहीं है।

त्वमसि सुराऽसुर-महितो ग्रन्थिक-सत्त्वाऽऽशय-प्रणामाऽऽमहितः।
लोकत्रय - परम - हितोऽनावरणज्योतिरुज्जलद्धाम -हितः ।।139।। स्वयंभू स्त्रोत।।

हे देव! आप देवों के द्वारा, असुरों के द्वारा, पूज्यनीय है। बारह सभाओं में आपकी पूजा हो रही है लेकिन फिर भी कुछ परिग्रही जीव आपके प्रति भक्ति नहीं रखते हैं ऐसे अभव्य जीव आपको प्रणाम नहीं करते हैं, फिर भी आप त्रैलोक्य पूज्य हैं, क्योंकि पूज्यता आत्मा की विशुद्धि से आती है, दूसरे की पूजा से नहीं। सेवा दूसरे के करने से नहीं होती है सेवा तो स्वयं के अंतरंग के सातिशय पुण्य के योग से होती है।

ध्यान देना-सेवा करने वाले का भी तो पुण्य होना चाहिये और कराने वाले का भी पुण्य होना चाहिये। दोनों के पुण्य जब प्रखरता को प्राप्त होते हैं तब कहीं सेवा होती है। ज्ञानी ! पूरी सभा के जीव बैठे हैं, एक पुण्यशाली के अभाव में छियासठ् दिन तक महावीर बैठे रहे लेकिन देशना नहीं खिरी, उसी तरह ध्यान देना-ज्ञानी ! यह मत सोच लेना कि हम नहीं जायेगें क्या प्रवचन नहीं होंगें? ज्ञानी ! प्रवचन तो होंगे

लेकिन, जैसे-बिना नमक की रोटी-रोनी-रोनी लगत है, उसी तरह बिना विद्वान के प्रवचन में रस नहीं आता है। जैसे भोजन का राजा रसगुल्ला नहीं है, भोजन का राजा तो नमक ही है। उसी तरह विद्वान ही तो सभा का राजा होता है।

प्रिय आत्मन्!

ज्ञानी सुख को भी सहता है। कैसे?

होकर सुख में मग्न न फुले, दुख में कभी न घबरावे।
वैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे॥

वस्तु स्वभाव विचार खुशी से।
सब दु:ख संकट सहा करें॥

मेरी भावना वस्तु का स्वरूप कथन ही है, ऐसा मैं कह सकता हूँ। ज्ञानी! ओहो! हे फुल! तू कितना सुंदर है, काश तुझमें काँटे न होते तो कितना अच्छा होता। राही थोड़ी और आगे बढ़ा देखा समुद्र की ओर, हे सागर ! तू कितना गहरा है, कितना सुंदर है, काश तुझमें खारापन न होता तो कितना अच्छा होता। हे वृक्ष ! तू कितना फलदार है, काश तू ऊँचा न होता, तो कितना अच्छा होता। इन सब की भाषा को सुनने के बाद उत्तर मिला, तीनों ने यह कह दिया, रे मनुष्य! यदि तुझमें दोष देखने की आदत न होती, तो तू सबसे अच्छा होता।

दु:खी मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है वह वस्तु स्वरुप का चयन नहीं करता है यदि वस्तु स्वरूप का विचार करें तो दुख नाम की कोई चीज ही नहीं है। ज्ञानी वह है जो वस्तु स्वरूप का विचार करता है, जानता है। जिसका जितना आयु कर्म था, वह कर्म चला गया। घटने के बाद नहीं रोना बचाने का हर संभव प्रयास करना।

जो सुख, दुख को समता के साथ सहता है, वह ध्यान में दृढ़चित्त होता है। आचार्य कुंदकुंद स्वामी कहते हैं-जिसने पदार्थो और सूत्रों को अच्छी तरह से जान लिया है वह श्रमण होता है।

सिद्धों की श्रेणी में आने, वाला जिनका नाम है।
जग के उन सब मुनिराजों को, मेरा नम्र प्रणाम हैं॥
जिन्हें प्रतीति एक सम होती, संस्तुतियाँ या गालियाँ।
गिरने वाली सुमनावलियाँ, चलती हुंईं दुनालियाँ॥

चाहे कोई निंदा करे। चाहे प्रशंसा करे। चाहे कोई फुल गिरा दे। चाहे कोई बंदूक चला दे जिनके लिये सदा समान चित्त रहता है, ऐसे उन मुनिराजों की यहाँ पर चर्चा है। धन्य हैं वे मुनिराज, ज्ञानी जीवों! इसलिये ध्यान देना-एक पल की चर्या को देखकर के त्रिकाल का निर्णय मत कर लेना। क्योंकि पल भर में परिणाम कितनी ऊँचाई पा लें और कितनी नीचाई पा लें इसका कोई पता नहीं चलता है।

ज्ञानी जीवो! जो परिणामों को जितनी गिराने की शक्ति रखते हैं। वह उतनी ही उठाने की शक्ति रखते हैं, जिस क्रेन की क्षमता वजन को ऊपर उठाने की है, वही क्रेन तो वजन को नीचे रख पाती है। उसी तरह परिणामों को ऊँचा उठाने की ताकत भी उनके पास होती है। मुनिराज का तप निर्जरा के लिये है।

''तपसा निर्जरा च'' तत्त्वार्थसूत्र ।।

तप से संवर भी होता है और निर्जरा भी होती है। इसलिये आचार्य भगवन् कहते हैं- जब ध्यानी पुरुष ध्यान में लीन हो जाता है, तो सुख को भी सहता है दुख को भी सहता है।

ध्यान देना-जो निज में रहता है वह पर को सहता है और जो निज में नहीं रहता है वह पर से कहता है। यदि निज में रहते तो कहने का अवसर ही नहीं आता। पार्श्वनाथ भगवान निज में लीन थे, सात दिन तक उपसर्ग चला, लेकिन भीतर में निज का ही वेदन करते रहे, ऊपर के पत्थर, बिजली, ओले अनुभव में नहीं आये।

ज्ञानी जीवो ! पर का अनुभव करते तो परम पद को न पाते निज का अनुभव किया तो निजपद को पा लिया। इसलिये ज्ञानी सुख दुख को सहन करता है।

ण मुएइ सगं भावं, ण परं परिणमइ मुणइ अप्पाणं।
जो जीवो संवरणं, णिज्जरणं सो फुडं भणिओ ।।55।।

अर्थ-

जो जीव अपने भाव को नहीं छोड़ता है और पर पदार्थ रुप परिणत नहीं होता है, किंतु अपने आत्मा का मनन, चिन्तवन और अनुभव करता है, वह जीव निश्चय नय में संवर और निर्जरा रूप कहा गया है।

ससहावं वेदंतो, णिच्चलचित्तो विमुक्कपरभावो।
सो जीवो णायव्वो, दंसण-णाणं चरित्तं च ।।56।।

अर्थ-

अपने आत्म स्वभाव को अनुभव करता हुआ जो जीव परभाव को छोड़कर निश्चल चित्त होता है, वही जीव सम्यक्दर्शन है, सम्यक्ज्ञान है और सम्यक् चारित्र है, ऐसा जानना चाहिये।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

जीव अपने निज स्वभाव को नहीं छोड़ता है। वस्तु अपने स्वभाव को नहीं छोड़ती है। नीम कड़वापन नहीं छोड़ती है। अग्नि दाहक स्वभाव को छोड़ेगी क्या? यह तो मेरे घर की अग्नि है क्या ऐसा कहने से वह अग्नि जलाना छोड़ देगी? नहीं छोड़ेगी। आचार्य कहते हैं- जैसे-अग्नि ऊष्णता को नहीं छोड़ती। जैसे-जल शीतलता को नहीं छोड़ता। जैसे-चंदन सुगंधी को नहीं त्यागता उसी तरह से आत्मा, ज्ञान-दर्शन मय निज स्वभाव का त्याग नहीं करता। जो त्यागने योग्य है, वह बाहर से अपनाया है, उसी का त्याग हो सकता है और जो भीतर में है, उसका त्याग नहीं होता। स्वभाव का त्याग नहीं होता है। त्याग होता है विभाव का।

महावीर भगवान अनंतबलि हैं, अनंत ज्ञानी हैं, अनंत शक्तिशाली हैं लेकिन साक्षात् वे भी आ जायें तो वे भी मेरे स्वभाव को मुझसे नहीं छुड़ा सकते। किसी भी वस्तु का स्वभाव छुड़वाने की क्षमता किसी में नहीं हैं। जो छूटा है, जो टूटा है, जो फुटा है, वह खोटा है। जो चोखा है, वह नहीं छूटेगा। तात्पर्य यह है जो स्वभाव है, वह नहीं छूटेगा। छूटता विभाव है और प्रकट होता स्वभाव है। इसलिये इस बात से मत डरना, कि महाराज छुड़ा देंगें। मत डरो, छुड़ायेंगे क्या मेरा? मुझसे मेरा कोई छुड़ा ही नहीं सकता है।

अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसणणाणमइयो सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि, अण्णं परमाणुमित्तं पि ।।38।। समयसार ।।

मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन और ज्ञान मेरा स्वभाव है इसलिये मेरे निज स्वभाव को छुड़ाने की क्षमता न किसी चोर में है, न किसी राजा में है, न किसी ईश्वर में है। राजा भी नहीं छुड़ा सकता, शासन भी नहीं छुड़ा सकता। क्यों? स्वभाव छूटने के योग्य हैं ही नहीं। तीन लोक में, तीन कालमें निज स्वभाव को त्यागने की क्षमता किसी वस्तु में नहीं है। किसी व्यक्ति में नहीं है इसलिये त्याग के बाद अहंकार पैदा मत करना, क्योंकि तुमने क्या त्यागा ? वही तो त्यागा है जो तेरा नहीं था।

ज्ञानी ! तूने वह त्यागा है जिसको अनंतकाल पहले अनंतों ने त्याग दिया, उसे आज तूने त्यागा है, इतनी देर लगायी त्यागने में और फिर भी अहंकार पाले हुये है, कि मैंने यह त्याग दिया अरे!। तुझ से पहले अनंतानंत त्याग गये और तूने उनको समेट लिया था, आज अच्छा हुआ कि मुझे उसके त्यागने की बुद्धि जागृत हो गयी।

जीव अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है और पर पदार्थ रूप परिणमन नहीं करता है पदार्थ तो ज्ञान में आता है, लेकिन ज्ञान पदार्थ रूप नहीं होता है। ज्ञान पदार्थ रूप न हो जाये, ज्ञान में पदार्थ झलक आये, लेकिन पदार्थ में ज्ञान न पहुँच जाये। संवर-निर्जरा कौन कर सकता है ? मुक्ति मार्ग के दो ही आवश्यक तत्त्व है एक संवर और निर्जरा।

महाराज आप आवश्यक क्यों कह रहो हो? इसलिये कह रहा हूँ, कि मैं जीव हूँ, अनादि से हूँ, यह शरीर पुद्गल है, यह भी अनादि से है, इन दोंनों के माध्यम से आस्रव हो रहा है, आस्रव होने पर बंध भी होता है। बंध होने के बाद संसार चल रहा है, यह चार तत्त्व तो अनादि से लगे हैं। मोक्ष इस काल में होना नहीं है, अब दो ही तत्त्व हैं, जिनमें तुम पुरुषार्थ करके मानव जीवन को सफल कर सकते हो, वह दो तत्त्व हैं संवर और निर्जरा।

जीव अनादि से है। पुद्गल अनादि से है। आस्रव अनादि से किया। बंध अनादि से किया, लेकिन संवर और निर्जरा करने का पुरुषार्थ जीव में मात्र आज पैदा हुआ है। इसलिये संवर और निर्जरा कौन करता है? जो निज स्वभाव को नहीं छोड़ता परिस्थितियाँ कैसी भी हो प्रतिकूलतायें कितनी भी हों, लेकिन अपने स्वभाव को जो नहीं छोड़ता है, वह ज्ञानी है।

यदि मौसम के अनुसार कहीं तुम भी बदल गये, तो फिर तुम भी गल गये। इसलिये मौसम के अनुसार नहीं बदला जाता है, अपने स्वभाव को नहीं छोड़ा जाता है, ज्ञान-दर्शन स्वभाव है उस स्वभाव को छोड़कर के यदि राग, द्वेष, मोह में चला गया, तो तेरी कोई कीमत नहीं है।

ज्ञानी जीवो! निज स्वभाव का परित्याग किये बिना क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं आता है यदि मैंने क्रोध, मान, माया, लोभ को प्राप्त किया है, तो निज स्वभाव को उस समय त्यागा है। ज्ञानी वह है, मोक्षमार्गी वह है, जो स्वभाव न त्यागे। जितने समय आटे की लोई बना रही हो, उतने समय बेल नहीं रही हो और जितने समय बेल रही हो, उतने समय सेक नहीं रही हो, और जितने समय सेक रही हो, उतने समय चुपड़ नहीं रही हो, जितने समय चुपड़ रही हो, उतने समय परोस नहीं रही हो, जितने समय परोस रही हो, उतने समय खा नहीं रही हो, जितने समय खा रही हो, उतने समय चबा नहीं रही हो, और जितने समय चबा रही हो, उतने समय पचा नहीं रही हो, सब क्रियायों के काल भिन्न-भिन्न है। क्रियायें भिन्न-भिन्न हो रही है, तो काल भी भिन्न-भिन्न होता है। एक ही काल में यद्यपि अनेक क्रियायें चलती हैं, लेकिन एक समय में एक उपयोग होगा।

जिस समय जिसमें उपयोग है, वही क्रिया मान्य है। निज स्वभाव छोड़ना नहीं और पर रूप होना नहीं। निज को खोना नहीं और पर रूप होना नहीं। अपना छोड़ना नहीं, दूसरे का लेना नहीं। मात्र अपना स्वभाव नहीं छोड़ना और दूसरे के भाव लेना नहीं। हम दूसरे के भाव उधार लेते हैं।

ध्यान देना-कभी-कभी ऐसी बात होती है, कि जिसके विषय में हवा भी इतनी अच्छी चलती है। कोतमा में चातुर्मास चल रहा था, ऋषभ कुमार जी चंदेरिया मेरे पास आये, महाराज श्री मैं शिखर जी जाना चाहता हूँ, मैंने कहा ठीक है। मैंने कहा, कब जा रहे हो? आचार्य श्री दो दिसम्बर को जायेंगे। और पीछे से जो महिला निकल रही थी, उनके कान में शब्द पहुँचे, तो वह कहने लगी ऋषभ भैया बोल रहे हैं, कि आचार्य श्री दो दिसम्बर को जायेंगे, और उस महिला ने जाकर के बात फैला दी, कि आचार्य श्री दो दिसम्बर को जायेंगे। और तब तक ऋषभ भैया निकल गये थे, शिखर जी के लिये और उसके बाद नगर में खबर और दिन भर में चर्चा चलते-चलते घरों में चर्चा होते-होते रात में एक दो व्यक्ति हमारे पास में आये, बोले-महाराज श्री क्या बात है? इतना अच्छा चातुर्मास हो गया और अभी पिच्छी परिवर्तन नहीं हो पाया। क्या बात आप विहार कर रहे हैं? कुछ कारण हुआ क्या? आपकी सेवा में कोई कमी, किसी भी तरह से हम से त्रुटि हो गयी हो, तो गुरुदेव हमको क्षमा करें। मैंने कहा क्या बात है? आचार्य श्री यदि आपको कोई कष्ट हुआ हो तो आप बतायें? मैंने कहा कोई कष्ट नहीं। आप पिच्छी परिवर्तन कब करोगे? मैंने कहा जब आप बताओगे तब कर लेंगे, लेकिन आचार्य श्री हमने तो सुना है कि आप दो दिसम्बर को जा रहे हैं। मैंने कहा-नहीं। महाराज श्री चर्चा तो सारे शहर में है। मैंने कहा-भैया मैं अभी तो नहीं बता सकता, मैं भूल गया हूँ। कि मुझसे कौन क्या कह के गया है ?

व्यक्ति ने आशीर्वाद लिया और मैंने दे दिया, मुझे याद नहीं आया, फिर मैंने कहा यह बात कहाँ से आयी मुझे तो पता ही नहीं। चलते-चलते फिर बात पूछी यह क्या है? यह बात कहाँ से आयी? कौन व्यक्ति इस तरह नगर में समाचार फैला रहा है? आचार्य श्री को कौन भगाना भेजना चाहता है? क्या करना चाहता है? तो बात चलते-चलते आयी, कि हमने तो आचार्य श्री के कमरा में से यह बात सुनी और दूर की बात नहीं है, कमरा की बात है और समाज के चातुर्मास कमेटी के अध्यक्ष ऋषभ चंदेरिया जी अपने मुख से कह रहे थे, कि आचार्य श्री दो दिसम्बर को जायेंगे।

अब मुझे याद आया, मैंने कहा राजेश भैया तुम दुखी मत होओ, बात ऐसी है, कि ऋषभ चंदेरिया जी हमको यह बोल के गये थे, कि आचार्य श्री हम दो दिसम्बर को सम्मेद शिखर जी जा रहे हैं तो वे आशीर्वाद लेने आये थे, तो मैंने उनको आशीर्वाद दिया है, कि आपकी यात्रा अच्छी हो। उनने यह कहा था, कि आचार्य श्री जब तक हम न आ जायें, तब तक नगर में रुकना, ताकि हमारे समागम में पिच्छी परिवर्तन हो जाये हम देखना चाहते हैं। तब उनको समझ में आया, कि किस तरह की बातें फैलती हैं, इसलिये मैं कह रहा हूँ, कि वस्तु स्थिति यह है, कि व्यक्ति पररूप परिणमन कर जाता है, और जो पर रुप परिणमन करता है, तो वह दुखी हो जाता है। और जो अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है वह सुखी होता है।

जो ज्यादा परद्रव्य की सोचेगा-वह दुखी होगा। आचार्य भगवन् कहते हैं-दूसरे का लोटा छानने की आवश्यकता नहीं है अपना लोटा छानो। निज स्वभाव को निहारो, उसी को देखो। जग में कहाँ-कहाँ क्या-क्या हो रहा है उसकी जिम्मेदारी मेरी नहीं है। मेरे द्वारा कहीं कोई जीव हिंसा नहीं होना चाहिये। मेरे द्वारा कहीं झूठ नहीं बोला जाना चाहिये। मेरे द्वारा कहीं कोई चोरी नहीं होना चाहिये। मेरे द्वारा कहीं कोई अब्रह्म नहीं होना चाहिये। मेरे द्वारा परिग्रह का संचय नहीं होना चाहिये। यदि हम परद्रव्य रूप कब, कहाँ, कैसा, क्या हो रहा है? उसकी चिंता करेंगे तो आचार्य कहते हैं-परद्रव्य रूप परिणमन हो जायेगा तेरा।

आत्म द्रव्य में परद्रव्य का विचार आना भी तो स्वभाव का घात है। आचार्य कहते हैं-शुद्धोपयोगी श्रमण के लिये तो पंच परमेष्ठी भी परद्रव्य हैं। फिर परद्रव्य, परपदार्थों में चित्त उलझ जाये तो कल्याण कैसे हो? इसलिये परद्रव्य रूप परिणमन नहीं करना।

जैसे-सीरा को साँचे में ढाल देते हैं, तो उस आकार रूप हो जाता है। जैसे-मोम को साँचे में ढाल देते हैं, तो वह उस आकार रूप हो जाता है। उसी तरह हम अज्ञानी, मोही जीव जिनकी बातें सुन लेते हैं, उसी रूप हो जाते हैं। ज्ञानी! जिस चाहे के साँचे में न ढलो, महावीर के साँचे में ढलो, वीतरागता के साँचे में ढलो, जो साँचा ही नहीं है उसमें क्यों ढलते हो ?

साँचा-साँचा कौन है? वीतराग जिनवाणी का साँचा, साँचा-साँचा हैं। जो साँचा है, उसमें ढाला जाता है मूर्ति साँचे में ढलती है, प्रतिमा साँचे में ढलती है पर आदमी ही एक ऐसा है, जो झूठ में ढलता है। महाराज ! पीतल की मूर्ति साँचे में ढलके बनती है, मिट्टी की मूर्ति साँचे में ढलके बनती है। अनेकों वस्तुयें जो साँचे में ढलती हैं, जब पुद्गल-पदार्थ साँचे में ढलता है, तो फिर जीव क्यों झूठे स्वभाव में ढलता है।

हे जीव ! तू भी साँचे में ढल। हे आत्मन् ! तू भी साँचे में ढल। जो-जो साँचा हो उसमें ढल, जो साँचा न हो उसमें मत ढल। महावीर के साँचे में ढल। वीतराग के साँचे में ढल। जिनवाणी के साँचे में ढल। जो साँचा है उसमें ढल, जो झूठा है उसमें मत ढल। राग साँचा नहीं है। क्रोध साँचा नहीं है। मान साँचा नहीं है। वह साँचा नहीं है जो साँचा नहीं है, उसमें मत ढल। स्वभाव के साँचे में ढलो विभाव के ढाचे में नहीं।

ज्ञानी जीव ! विभाव ढाचा है और स्वभाव साँचा है, जो अपने आत्मा का मनन, चिंतन, अनुभवन करता है, वह निज स्वभाव को छोड़ता नहीं, परभाव रूप परिणमन नहीं करता और अपने स्वभाव का अनुभव करता है, यह तीन बातें जिसके पास होती हैं, वह संवर और निर्जरा करता है।

निज स्वभाव का संवेदक, निश्चल चित्त और परभावों से रहित जो जीव है वह जीव ही सम्यक् दर्शन है। वह जीव ही सम्यक्ज्ञान है। वह जीव ही सम्यक्चारित्र है। इसलिये बोलते हैं-रत्नत्रय मूर्ति। आप ही दर्शन, ज्ञान, चारित्र हो। आपके लिये कोई शास्त्र की आवश्यकता नहीं है। स्वयं दर्शन, ज्ञान, चारित्र हो। निश्चय मोक्ष मार्ग और व्यवहार मार्ग आप ही हैं। आप ही व्यवहार सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, यह तीनों आप हैं। जो जीव निज स्वभाव का वेदन करता है, निश्चल चित्त होकर के परभावों से मुक्त होता है, उस जीव को ही सम्यक् दर्शन जानो।

''आत्मा एव सम्यक् दर्शन''

आत्मा ही सम्यक् दर्शन है। आत्मा ही सम्यक् ज्ञान है। और आत्मा ही सम्यक् चारित्र है। निज ज्ञान का अनुभव ही आत्मा का अनुभव है, यह ज्ञान का अनुभव चल रहा है और ज्ञान का अनुभव ही तो आत्मा का अनुभव है। क्योंकि गुण का अनुभव ही गुणी का अनुभव है।

जैसे-मिठास का अनुभव ही गन्ना का अनुभव है। क्योंकि यह गुण है, गुण-गुणी को छोड़कर नहीं पाया जाता है, इसलिये गन्ना ही मीठा है। उसी तरह ज्ञान का अनुभव ही आत्मा का अनुभव है।

चारित्र क्या है? अशुभ से निवृत्ति होना और शुभ में प्रवृत्ति होना, यही तो चारित्र है। चित्त का पंचेन्द्रिय के विषयों में नहीं उलझना निश्चल चित्त है। पंच महाव्रत और पंच समिति में जिसका चित्त लगा

हो, वह क्या पंच पाप में लगेगा। वह तो निश्चल चित्त है, यही चित्त की निश्चलता है।

चंचल चित्त न होना ही निश्चल चित्त है। आँखे जिनवाणी और गुरु को देखने में लगी हैं, कान वाणी सुनने में लगे हैं। इसी एकाग्रता का नाम है निश्चल चित्त, परभावों का त्याग कर बैठे हैं। पर पदार्थो का त्याग कर बैठे हैं। क्योंकि मुझे अपने निज स्वभाव को निहारना है, यह उपदेश ही कल्याण करेगा और कोई कल्याण करने वाला नहीं है।

मैं ही सम्यक् दर्शन हूँ। मैं ही सम्यक् ज्ञान। मैं ही सम्यक् चारित्र। ध्यान रखना- यह जिनवाणी सम्यक्ज्ञान नहीं है, जिनवाणी से जो ज्ञान आत्मा में आयेगा वह आत्मा सम्यक् ज्ञानी है। प्रतिमा सम्यक् दर्शन नहीं है प्रतिमा से जो श्रद्धा आयेगी वह श्रद्धा सम्यक् दर्शन है। सम्यक् दर्शन की आधार भूमि क्या है? आत्मा। सम्यक् ज्ञान की उपजाऊ भूमि आत्मा है। सम्यक् चारित्र की उपजाऊ भूमि आत्मा है। रत्नत्रय की उपजाऊ भूमि आत्मा है।

''मोक्खस्स कारणं आदा''

मोक्ष का कारण तो आत्मा है, तो वह जीव ही सम्यक् दर्शन है, जीव ही सम्यक् ज्ञान है और जीव ही सम्यक् चारित्र है। यह तीनों आत्मा के सिवा कहीं नहीं हैं, बस प्रकट करना है और वह हमारे तुम्हारे भीतर ही प्रकट होगी।

प्रिय आत्मन्!

निज स्वभाव में ही प्रकट होना है। मेरा आत्मा ही, सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। जो आत्मा है वही ज्ञान है, जो आत्मा है वही दर्शन है, जो आत्मा है वही चारित्र है, वही शुद्ध चेतना है यह जानना चाहिये।

जो अप्पा तं णाणं, जं णाणं तं च दंसणं चरणं।
सा सुद्धचेयणा वि जं, णिच्छयणयमस्सिए जीवे॥57॥

अर्थ-

निश्चय नय के आश्रित जीव में जो आत्मा है, वही ज्ञान है, वही दर्शन है, वही चारित्र है और वही शुद्ध चेतना भी है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

तत्त्वसार के सार तत्त्व, को तुम्हें सुनाऊ मैं ।
ज्ञानामृत के निजानुभव, का रस प्रकटाऊँ मैं ।
जो आतम है, वही ज्ञान है, कहती वाणी माँ ।
बार-बार हम शीश, झुकाऐं, हे जिनवाणी माँ।।1।।

प्रिय आत्मन्!

''जो अप्पा तं णाणं'' जो आत्मा है, वही ज्ञान है। द्रव्य की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा, काल की अपेक्षा भेद नहीं है। मात्र गुण की अपेक्षा भेद है। आत्म द्रव्य, आत्म क्षेत्र, आत्म काल और आत्मा के भाव में, ही ज्ञान है। आत्मा गुणी होने से, अनंत गुणों का पुंज है। उन समस्त गुणों में ज्ञान एक प्रधान गुण है। ज्ञान गुण के बिना, शेष गुणों को जाना नहीं जा सकता ।

इसलिए ज्ञान गुण संपूर्ण गुणों का प्रधान गुण है। आचार्य भगवन् कहते हैं-जो आत्मा है, वही ज्ञान है। निश्चय नय से, आत्मा का आश्रय लेने पर, आत्मा ही दर्शन-ज्ञान-चारित्र मय है। कथंचित्-ज्ञान आत्मा से भिन्न नही है ।

ज्ञानादि्भिन्नो न चाभिन्नो, भिन्नाभिन्न कथंचन ।
ज्ञानं पूर्वापरी भूतं, सोऽयमात्मेति कीर्तितः ।।4।। स्वरुप संवोधन ।।

आचार्य अकलंक भगवान्! श्री स्वरुप संबोधन ग्रंथराज में कहते हैं-आत्मा कथंचित् पर्यायार्थिक नय का अवलंबन लेने से-ज्ञान से भिन्न है। ज्ञान आत्मा से भिन्न है, आत्मा ज्ञान से भिन्न है। क्योंकि पर्याय एक समयवर्ती होती है। और आत्म द्रव्य त्रिकालवर्ती है। इस तरह इस अपेक्षा से, ज्ञान भिन्न है। लेकिन गुण, सहवर्ती होते हैं, सहभावी होते हैं। ज्ञान-गुण की अपेक्षा आत्मा से अभिन्न है। जब गुण दृष्टि से देखें तो, अभिन्न है, और पर्याय दृष्टि से देखें तो ज्ञान भिन्न है। द्रव्य दृष्टि से, द्रव्य से गुण कभी भिन्न नहीं होता है, लेकिन द्रव्य से पर्याय, गुण से पर्याय, भिन्न होती है ।

प्रिय आत्मन्!

जो पर्याय भिन्न है कथंचित्, वह पर्याय भी, उसी में है। उसी द्रव्य की पर्याय है, जैसे-समुद्र की लहर उत्पन्न होने के बाद समुद्र में विलीन हो गई, उसी तरह ज्ञान पर्याय में आदिनाथ, अजितनाथ आया, अजितनाथ के पहले, आदिनाथ की पर्याय मेरे ज्ञान में आई, वह आदिनाथ ज्ञान पर्याय मेरे में लीन हो गई तो कथंचित् भिन्न है, यदि भिन्न न होती तो अजितनाथ का उच्चारण नहीं होता, और अभिन्न न होती तो, याद नहीं रहता, कि अजितनाथ के पहले क्या बोला था?

ज्ञान कथंचित भिन्न भी है, और कथंचित् अभिन्न भी है। और कथंचित् गुण की अपेक्षा, अभिन्न है, और पर्याय की अपेक्षा भिन्न है। एक ही, क्षण में, भिन्न भी है, और अभिन्न भी है, **''जो अप्पा तं णाणं''** ज्ञान क्या है? आत्मा एव ज्ञानं।

आत्मा ''ज्ञानम् स्वयं ज्ञानम्'' ज्ञाना दन्यत् करोति किम्।

परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयम् व्यवहारिणाम्।

आत्मा ज्ञान ही है। स्वयंज्ञान ही है, ''आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं'' ज्ञान से भिन्न करता ही क्या है? आत्मा में ज्ञान होता है, भैया! आपने तो ज्ञानोपयोग चलाया है, क्रिया तो पुद्गल की पुद्गल में होती है, ईंट से सीमेंट जुड़ता गया, मकान बनता गया। लेकिन कार्य तो ज्ञानोपयोग में हुआ है। इसलिए आत्मा, योग, और उपयोग का कर्ता है। पर वस्तु का कर्ता नहीं है। लेकिन योग-उपयोग बनाने पर ही, पुण्य पाप लगता है। पर वस्तु में हेरा-फेरी बाद की बात है।

भो ज्ञानी ! ध्यान देना यदि पर वस्तु में हेरा-फेरी नहीं होती, तो ये माल इतनी सावधानी से नहीं भेजते। ज्ञानी! ध्यान देना-इसीलिए दो बातों को, इस धारणा को आप को समझना होगा, कि (होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम) ये बात सत्य है? कि असत्य है? कि सत्यासत्य है? ध्यान देना- ये द्रव्य दृष्टि की अपेक्षा सत्य है, किंतु पर्याय दृष्टि से असत्य है। नैसर्गिक परिणमन की अपेक्षा सत्य है, प्रायोगिक परिणमन की अपेक्षा असत्य है। अर्थ पर्याय की अपेक्षा सत्य है, लेकिन व्यंजन पर्याय की अपेक्षा असत्य है। ज्ञानियो! ध्यान देना-भैया, आज माँ पूँछेगी, बेटा ! भोजन बना दूँ, माँ ने आटा उसन लिया है। आटा उसनने के बाद-माँ ने पूँछा-बेटा क्या बनादें? तो एक बेटा बोलता है-मुझे पराठे, दूसरा बेटा बोलता है-मुझे पुड़ी, तीसरा बेटा बोलता है-मुझे तो रोटी, चौथा बेटा, बोलता है, माँ मुझे तो खुरमा चाहिए। देखिए, अब बताइये! वस्तु में हेर-फेर न होता, तो एक वस्तु से, सब सामग्री बनना चाहिए थी क्या?

लेकिन जैसे-जैसे माँ का उपयोग बदला, उसने योग बदला, उसी आटे से रोटी भी बनती है। पराठा भी बनता है। और पुड़ी भी बनती है। आटे में जो परिणमन हो रहा है, वो स्वाभाविक परिणमन है। लेकिन आटे से, जो पुड़ी, रोटी और पराठा बन रहा है। वह परकृत परिणमन है। प्रायोगिक परिणमन है। प्रयत्नकृत परिणमन है। इसलिए ध्यान देना है, प्रायोगिक परिणमन अच्छा भी होता है, और बुरा भी हो सकता है।

इसीलिए परिणमन जब अच्छा होता है, तो पुरस्कार प्रदान किया जाता है और परिणमन जब बुरा होता है, तो शिक्षा दी जाती है। प्रायोगिक परिणमन आप पर निर्भर है, कि आपको कैसा प्रयोग करना है। स्वयं की बुद्धि के अनुसार जो परिणमन हो रहा है, वो प्रायोगिक परिणमन है, और जो सहज रूप से वस्तु में परिणमन चल रहा है, वह नैसर्गिक परिणमन चल रहा है।

पानी में निर्मलता स्वंय आ रही है, ये नैसर्गिक है। फिटकरी डाल कर निर्मल कर रहे, ये प्रायोगिक परिणमन है। छानकर के निर्मल कर रहे, ये प्रायोगिक परिणमन है। ध्यान देना- चूल्हे पर रोटी तपा रहे, प्रायोगिक परिणमन है। इस प्रकार हम जीवन में जितनी, भी क्रिया करते हैं, वे प्रायोगिक परिणमन पर निर्भर हैं। हमारा हस्त, हस्ताक्षर और हस्तक्षेप है। वह परिणमन प्रायोगिक है, और उसका कर्ता मैं ही हूँ।

मेरे यदि हस्त, हस्ताक्षर, हस्तक्षेप से कार्य हुआ, तो आस्रव, बंध का स्वामी मैं हूँ। यदि मैं इसको न मानूँ, तो फिर आस्रव बंध किसे होगा, संवर निर्जरा तत्त्व किसे होगा? संसार और मोक्ष किसे होगा? इसीलिए मानना पड़ता है। ''होता जीव कृतं परिणाम'' मैं जग के करता सब काम। हाँ! जीव जग के, काम करता है। जब जीव जग के परिणाम करता है, तो जग के काम करता है। और, जब जीव स्वयं में परिणाम करता है, तो स्वयं में परिणमन होता है। ये तत्त्व देशना सुनना बहुत आवश्यक है। यदि, हम इतना ही मान बैठेंगे की परिणमन, वस्तु में स्वतंत्र होता है। ज्ञानी! वस्तु का परिणमन स्वतंत्र भी होता है, और परतंत्र भी होता है। बोलो! परिणमन स्वतंत्र भी होता है परतंत्र भी होता है। आटे में परिणमन चल रहा है, कि चार दिन के बाद आटा, मर्यादा से रहित हो गया, यह तो स्वतंत्र परिणमन था। लेकिन आटे की जो लोई बनाई वह परतंत्र परिणमन है। पुड़ी बनाई परतंत्र परिणमन है। एक, ही दिन आटा पीसा, और चार चौके में दे दिया, मार्यादा सबकी, चार दिन बाद समाप्त हो रही है। लेकिन प्रत्येक महिला, अपने-अपने अनुरूप उपयोग कर रही है।

ये परकृत परिणमन है। प्रिय आत्मन् वस्तु में रखे-रखे भी परिणमन हो रहा है। और उपयोग करने पर भी, परिणमन हो रहा है। जो अपने आप परिणमन हो रहा, वह स्वतंत्र है। जो उपयोग-योग से परिणमन हो रहा वह परतंत्र है। उपयोग और योग अच्छा बनाओगे, तो परिणमन अच्छा हो जायेगा। और योग, और उपयोग अच्छा नहीं बनाओगे तो, परिणमन बुरा हो जायेगा। इसीलिए परिणमन को सँभालने के लिए, परिणति को सँभालना आवश्यक है।

परिणति सँभालो, परिणमन सँभल जायेगा। इसीलिए ''जीव कृतम् परिणामं'' दूसरा तो निमित्त मात्र है। परिणमन तो जीव का ही किया हुआ है। ध्यान देना-जड़ की क्रिया जड़ में, तो होती है। लेकिन क्रिया का कर्ता, चेतन भी होता है। ''स: लिखति, स: वह लिखता है। स: धावति-वह दौड़ता है। स: गच्छति, वह जाता है।

स: पठति-वह पड़ता है। बोलिए! लिख कौन रहा ? पेन। लेकिन लिखने का स्वामी कौन है। बोलो ! चेतन्य आत्मा। लिखा पेन ने है, लेकिन हस्ताक्षर किसके माने जाते हैं? आपके कि पेन के। लिखने वाले के। समझ गये न। लेखन पेन कृत परिणमन है। और जो लिखा गया वह जीवकृत परिणमन है। इसलिए जीव है, स्पष्ट हो गया। कि, आपने हस्ताक्षर किये तो, उसके स्वामी आप हुये। तो जब बैंक में आपके हस्ताक्षर चलते हैं। तो हर समय मानो कि जहाँ मेरा योग और उपयोग है। वहाँ का स्वामी मैं हूँ।

जहाँ मेरा योग और उपयोग नहीं है, वहाँ का स्वामी मैं नहीं हूँ। जिस कागज पर मेरे हस्ताक्षर नहीं हैं। उसका लेन-देन वाला मैं नहीं हूँ। लेकिन जिस कागज पर मेरे हस्ताक्षर हैं। उसका लेन-देन वाला मैं हूँ। इसलिए, हस्ताक्षर (योग और उपयोग) है। ''जो अप्पा तं णाणं'' या आत्मा तं ज्ञानम्'' जो आत्मा है, वही ज्ञान है, जहाँ आत्मा है, वहीं ज्ञान है, ज्ञान को छोड़कर आत्मा नहीं होती। आत्मा को छोड़कर ज्ञान नहीं होता है।

जहाँ-जहाँ आत्मा, वहाँ-वहाँ ज्ञान है। जहाँ-जहाँ ज्ञान है, वहाँ-वहाँ आत्मा है। जिस-जिसमें आत्मा उस-उस में ज्ञान है। ये तादात्म्य संबंध है। इसलिए ''उपयोगो लक्षणम्'' उपयोग लक्षण है। और उपयोग क्या है? जीव के अनुकरणीय परिणाम को उपयोग कहते हैं। अभिनाभावी परिणाम हैं। उसके बिना जीव हो ही नहीं सकता है।

जीव के बिना उपयोग नहीं, और उपयोग के बिना जीव नहीं। जो ज्ञान है, वही दर्शन है, वही चारित्र है। क्योंकि तीनों अकेले-अकेले नहीं है। जब निश्चय नय से देखेंगे तो, जैसे-हमने शर्बत बनाया,

उस शर्बत में जो मिठास है, वही पानी है और जो पानी है, वही मिठास है। मिठास को छोड़कर पानी नहीं है पानी को छोड़कर मिठास नहीं है। मिठास को छोड़कर सुगंध नहीं है। सुगंध को छोड़कर के पानी नहीं है। आया ध्यान में, मैं एक बात पूछूँ आप से-सौ ग्राम आम है, पुद्गल है। पुद्गल में कितने गुण होते है? चार-स्पर्श, रस, गंध, और वर्ण। अब बताओ! सौ ग्राम आम में, कितने ग्राम आम-मुलायम है, कितने ग्राम आम-मीठा है। कितने ग्राम आम-पीला है। कितने ग्राम आम-सुगंधित है। भैया सो ग्राम आम है। सौ ग्राम ही पीला है, और सौ ग्राम मीठा है। सौ ग्राम मुलायम, सौ ग्राम सुगंधित, फिर चार सौ ग्राम आम हुआ न? नहीं हुआ। क्यों नहीं हुआ? क्योंकि मिठास पीले पन को छोड़कर नहीं है। और पीलापन मिठास को छोड़कर नहीं है।

जिस समय सौ ग्राम पीला है। उसी पीले पन के साथ, स्पर्श भी है। रस भी है। गंध भी है। इसलिए कितने, ग्राम हुये? सौ ग्राम ही। ध्यान देना-ज्ञानियो! इसलिए प्रत्येक वस्तु के कण-कण में चारों गुण है। ऐसी कोई जड़ वस्तु नहीं है, जिसमें स्पर्श रस, गंध, वर्ण ये चारों गुण न हों। प्रत्येक वस्तु में स्पर्श है, रस है, गंध है, वर्ण है। वस्तु पुद्गल होना चाहिये। हाँ, यदि जीव हुआ तो कुछ भी नहीं है। जीव का वजन कितने ग्राम है? आत्मा कितने प्रमाण है? शरीर के प्रमाण हैं। अपने शरीर के प्रमाण आत्मा है। बोलो! है हाँ, है। नेमीचन्द्र आचार्य ने द्रव्य संग्रह में लिखा है और प्रमाण क्या है ?

जीवो उवओगमओ, अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्स-सोऽढगई ।।2।।

प्रमाण दे दिया, तो उत्तर ये हुआ, कि आत्मा शरीर प्रमाण है। यदि शरीर सत्तर किलोग्राम का है। तो आत्मा कितने किलोग्राम की होगी ? बोलो। ज्ञानियो ! ध्यान देना-वजन उसका होता है, जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण हो, उसका वजन होता है। जिसमें स्पर्श, रस, गंध वर्ण नहीं, उसका वजन नहीं होता है। इसलिए आत्मा का कोई वजन नहीं है, वही सबसे ज्यादा बलवान है।

समझ गये न आत्मा का वजन नहीं है। क्यों नहीं है? क्योंकि आत्मा पुद्गल नहीं है। वजन पुद्गल का होता है। वजन जीव का नहीं होता। धर्म द्रव्य का वजन नहीं है। अधर्म द्रव्य का वजन नहीं है। आकाश द्रव्य का वजन नहीं है। काल द्रव्य का वजन नहीं है। वजन, भार बाला द्रव्य मात्र एक है-पुदगल। शेष द्रव्य भार रहित हैं।

छः द्रव्यों में एक द्रव्य ही भार वाला है। शेष द्रव्य भार वाले नहीं हैं। ''जो कहते हैं, आत्मा का विकास करो, आत्मा का विकास कैसे करें? तो ज्ञान गुण है, ज्ञान का विकास ही आत्मा का विकास है।

ईंधन का जलाना ही आग का जलाना है। आग नहीं जलाई जाती है ईंधन जलाया जाता है। जैसे ईंधन के जलाने पर आग उत्पन्न होती है। उसी तरह से, ज्ञान का विकास ही आत्मा का विकास है। बोलो! स्पष्ट है न। इसीलिए, जितना-जितना ज्ञान का, दर्शन, चारित्र का विकास किया है, उतना आत्मा का विकास हुआ है। ध्यान देना-जैसे आप अपने, व्यापार के क्षेत्र में कहते हैं, कि भैया, दुकान कितनी बढ़ गई, मकान कितना बढ़ गया, व्यापार कितना बढ़ गया, आदमी उतना बढ़ गया, लोक व्यवहार में जो प्रचलन है, दुकान बढ़ गई, मकान बढ़ा हो गया, व्यापार बढ़ा लिया, तो आदमी बढ़ा हो गया, उसी तरह इसको समझिये, ज्ञान कितना बढ़ा है।

दर्शन कितना बढ़ा है। चारित्र कितना विकसित हुआ है। श्रद्धा कितनी विकसित हुई है। संयम कितना, विकसित हुआ है। तप कितना विकसित हुआ है। आत्मा के गुण अनंत हैं। अनंत गुणों का जितना-जितना विकास होगा, उतना-उतना आत्मा का विकास होता जायेगा। फुल बाग में खिल रहे हैं, बीज खेत में, अकुंरित, पुष्पित फलित हो रहे हैं। विकास किसका माना जा रहा है? खेत का। कीमत किसकी बढ़ रही है? खेत की। फसल खेत में उग रही है, और कीमत किसकी बढ़ रही है? खेत की, उसी तरह जैसे, बीज पौधों के विकास से, खेत का विकास मानते हैं, उसी तरह, ज्ञानादि के विकास से, आत्मा का विकास मानते हैं। खेत में यदि पानी न रहे, बीज सूख जाये, पौधें मुरझा जाऐं, फसल सूख जाऐ, तो खेत की कीमत कम हो जाती है। उसी तरह से, आत्मा का उत्कर्ष और अपकर्ष यही है। गुणों का विकास, आत्मा का उत्कर्ष है। और गुणों का ह्रास आत्मा का अपकर्ष है। ध्यान देना- जैसे खेत में, बीज, खाद, पानी, प्रकाश के मिलने पर फसल उत्पन्न होती है, उसी तरह, सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के मिलने पर आत्मा में मोक्ष फल उत्पन्न होता है, खेत में जैसे-सेब फल, अंगूर फल, आम फल उत्पन्न होते हैं, उसी तरह आत्मा में, सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के समागम से मोक्ष फल उत्पन्न होता है।

प्रिय आत्मन्!

''जो अप्पा तं णाणं'' जो आत्मा है, वही दर्शनज्ञान-चारित्र है। एक में तीनों हैं। जैसे आम में पीलापन है, मीठापन, मुलायम पन और आम में सुगंध पना है। उसी तरह आत्मा में ही, दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है, उसी तरह आम यदि हरा है तो स्पर्श भी बदल गया, रस भी बदल गया। गंध भी बदल गई, और वर्ण भी बदल गया। भैया, आप बाजार में आम देख रहे थे, और दूर से देखा, आम पीला है। हाथ से देखा तो मुलायम है, उसके पश्चात जरा नाक तक ले गये तो क्या लगा ? सुगंधित है। और तीन बातें देख करके चौथी बात का निर्णय कर लिया कि आम मीठा है। उसी तरह आत्मा में जहाँ ज्ञान का निर्णय हुआ, कि ये ज्ञानवाला है, वहीं पर निर्णय हो गया कि ये दर्शन वाला, चारित्र वाला भी है। बोलो! यदि पूछा कि

आम कैसा है? देखा-पीला है, चखा-मीठा है। छुआ-कोमल है। देखो! छूने वाले की अपेक्षा कोमल है। ये बात सत्य है। देखने वाले की अपेक्षा आम पीला है, ये भी बात सत्य है। सूँघने वाले की अपेक्षा सुगंधित है। ये भी बात सत्य है। और चखने वाले की अपेक्षा, आम मीठा है। ये भी बात सत्य है। अरे! चार विकल्प चारों सही। यदि परीक्षा में ये विकल्प दिया जाये, आम कैसा होता है ? पीला होता है, कि सुगंधित होता है, कि मीठा होता है, कि मुलायम होता है। तो बताओ आप किस पर निशान लगायेंगे।

इतना पक्का है, कि कोई फेल नहीं होना चाहिए। सभी को पास होना चाहिए। तो इस तरह के प्रश्न बनाते हैं, कि तुम किसी भी विकल्प में टिक लगा दो, आप का उत्तर सही ही निकलेगा। आम कैसा होता है। पीला, सुगंधित, मीठा, मुलायम (चारो सही है) प्रिय आत्मन्! जैसे पके आम के साथ, चारों विशेषतायें हैं, उसी तरह निश्चय नय के साथ विशेषता है। व्यवहार नय में अलग-अलग हैं। निश्चय नय में सब एक हैं।

''जो अप्पा तं णाणं'' जो आत्मा है, वही ज्ञान है, जो ज्ञान है, वही दर्शन है। क्योंकि आत्मा के जितने प्रदेशों में ज्ञान है, उतने ही प्रदेशों में दर्शन है, और जितने प्रदेशों में दर्शन है, उतने ही प्रदेशों में चारित्र है। आत्मा के संपूर्ण प्रदेशों में ज्ञान है, आत्मा के संपूर्ण प्रदेशों में दर्शन है और संपूर्ण प्रदेशों में चारित्र है। यहाँ शुद्धोपयोगी की चर्चा है, यहाँ सम्यक्ज्ञान की चर्चा है, सम्यक्ज्ञानी चर्चा कर रहा है। सम्यक्ज्ञान के लिए कर रहा है।

सम्यग्ज्ञानी, सम्यग्ज्ञान को, सम्यक्ज्ञान द्वारा, सम्यक्ज्ञान में, सम्यग्ज्ञान से, सम्यक्ज्ञान के लिए चर्चा कर रहा है। बोलो! चर्चा सम्यग्ज्ञानी कर रहा है। सम्यग्ज्ञानी से कर रहा है। सम्यग्ज्ञान की कर रहा है। सम्यक्ज्ञान के लिए कर रहा है। सम्यक्ज्ञान के द्वारा कर रहा है। सम्यक्ज्ञान के लिए कर रहा है। सम्यक्ज्ञान से कर रहा है। सम्यक्ज्ञान की कर रहा है। और सम्यक्ज्ञान में कर रहा है। चर्चा कौन कर रहा है? सम्यक्ज्ञानी। ज्ञान में चर्चा कर रहा है, अज्ञान में, जाग्रत चेतना के साथ चर्चा कर रहा हूँ। जीवन में बोलते समय, पहला श्रोता मैं स्वयं होता हूँ। प्रत्येक बात को इस तरीके से बोलता हूँ, कि शास्त्र में लिख जाये। जो आज बोला, हजारों साल के लिए अमर हो जाये, तो पूरे विश्ववासी उनके विश्वासी हो जाते हैं। समंतभद्र स्वामी, स्वयंभू को काशी में बोलते हैं तो पूरे, विश्ववासी उनके विश्वासी हो जाते हैं। और वह काशी की रचना, पूरे विश्ववासी के लिए हो जाती है। उसी तरह यह ललितपुर का प्रवचन मात्र ललितपुर में ही नहीं अपितु ललितपुर से निकली हुई श्रुतज्ञान की धारा अखिल विश्व में प्रवाहित हो रही होगी।

यह जिनवाणी तीन लोक में जहाँ-जहाँ पहुँचेगी। वहाँ-वहाँ पर सम्यक्ज्ञान पहुँचेगा। प्रिय आत्मन्! ये मत सोचो कि कौन सुन रहा है? ये समझो कि, पूरे त्रसनाली तक के जीवों तक ये वर्गणायें पहुँच रही हैं। ध्यान देना-इसीलिए बहुत सावधानी से बोलना पड़ता है। इसीलिए मैं सौभाग्य मानता हूँ। कि मैंने कौन सा सातिशय पुण्य सँजोया था, कि आज मैं जिन मंदिर में बैठ करके श्री जिनवाणी माँ का गुणगान कर रहा हूँ।

अपने मुख से जिनवाणी का उच्चारण कर रहा हूँ। अन्यथा हे प्रभु, पाप कर्म का उदय होता तो न जाने किसी मिट्टी में बैठा होता, किसी मंदिर के द्वारे पर। देखो न वह भाजी बेच रहे हैं, लेलो सब्जी, भाजी। ज्ञानियो ! पूरा समय ऐसे ही निकल जाता है। ज्ञानी ! ये जन्म-जन्म के सातिशय पुण्य का उदय है, कि अपने मुख से जिनवाणी निकाल रहे हो, और सुन रहे हो।

मैंने-अनेक प्रोफेसर देखे हैं, जो उच्चस्तरीय छात्रों को पढ़ाते हैं, लेकिन बोलने के लिए, खड़ा कर देते हैं, तो दो शब्द नहीं बोल पाते हैं। ध्यान देना-आपका बेटा ! आपका बेटा एक करोड़ रुपये गिन सकता है, लेकिन उससे कहना जिनवाणी के पन्ने पलटो तो नहीं पलट पायेगा। एक-एक करोड़ रुपये की जांच कर लेगा कि पूरे नोट सही हैं कि नहीं हैं। लेकिन इस जिनवाणी की, एक गाथा की जाँच करके बतादे कि, सही है कि नहीं? इस श्लोक का क्या अर्थ है ?

ध्यान देना कि- ये जिनवाणी का एक-एक अक्षर सीखने और समझने के लिए, जन्म-जन्म का पुण्य चाहिए। साक्षात् जिनवाणी का एक अक्षर भी लिख लेना, सरस्वती की महान कृपा का फल है। गुरुजनों की महान कृपा का फल है। सातिशय पुण्य का प्रबल योग है। ध्यान देना-ये जैन तीर्थ जो है वह जिनवाणी से चले हैं। हमें बताइये कि, महावीर भगवान का तीर्थ कब से चला ? जिस दिन केवलज्ञान हुआ, उस दिन से चला है कि जिस दिन जन्म हुआ, उस दिन से चला है? कि जिस दिन दीक्षा ली उस दिन चला है? कि जिस दिन केवलज्ञान हुआ उस दिन से चला है? जन्मदिन से नहीं चला दीक्षा दिन से नहीं चला, केवलज्ञान होने से नहीं चला। ज्ञानी! ज्ञान-दान देने वाला तीर्थ चलाता है ध्यान देना-ज्ञानियों! महावीर को केवलज्ञान तो छियासठ दिन पहले हो गया था, लेकिन जिस दिन दिव्य ध्वनि खिरी, तभी से धर्मतीर्थ चला।

उस दिन से महावीर भगवान का शासन काल माना गया। ध्यान देना-शिवराज सिंह चौहान चुनकर आ गये, लेकिन पद ग्रहण नहीं किया मुख्यमंत्री का। भले ही तीन दिन पहले चुनकर आ गये, लेकिन जब तक मुख्यमंत्री की शपथ नहीं ली है, तब तक शासन काल नहीं। उसी तरह तीर्थंकर को केवलज्ञान क्यों न हो जाये, अनंत ज्ञान है, लेकिन अनंत ज्ञान की, कोई कीमत नहीं हैं, तीर्थ की प्रवृत्ति में। तीर्थंकर का ज्ञान-तीर्थंकर के पास है, जब तक तीर्थंकर भी, अपने ज्ञान का दान नहीं देते हैं, तब तक

उनके तीर्थ की प्रवृत्ति नहीं होती है। महावीर का तीर्थ प्रवर्तन महावीर के केवलज्ञान से नहीं हुआ। महावीर का तीर्थ महावीर के ज्ञान दान से हुआ है। इसीलिए इस बात का ध्यान रख लेना ज्ञान कितना है, तुम्हारा ज्ञान तुम्हारे पास। मेरे लिये तो वह दिन काम का है जिस दिन दिव्य ध्वनि खिरी। समवशरण शासन कब से चालू हुआ। श्रावण वदी एकम् को वीर शासन जयन्ती मानते हैं। वह छियासठ दिन बाद शुरू हुई, और केलवज्ञान छियासठ दिन पहले हो गया, समझ गये ना प्रवचन से तीर्थ की प्रवृत्ति होती है। यदि मैं आपके नगर में बैठा हूँ, तो अमृतचंद आचार्य कहते हैं-जिस नगर में व्यवहार और निश्चय के ज्ञाता, आचार्यगण मुनिगण विराजते हैं, उस नगर में धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति होती है। अकेले विराजमान ही नहीं होना तीर्थंकर आयें, और समवशरण में विराजमान हो जायें, कोई महिमा नहीं है। तीर्थ प्रवृत्ति नहीं कहलायेगी। जिस दिन देशना-खिरेगी उसी से जग का कल्याण होता है। उसी तरह नगर में साधु आये हैं, तो उनके द्वारा उपदेश की धारा बहना चाहिये। उससे कल्याण होता है। यद्यपि ये सत्य है कि-इन्द्रभूती गौतम को उपदेश नहीं मिला। तीर पाषाण खण्ड पर चला था। नेमीचंद्र आचार्य ने स्वप्न देखा, चामुण्डराय ने भी स्वप्न देखा, चामुण्डराय आचार्य नेमीचंद के चरणों में पहुँचे उन्होंने कहा? चामुण्डराय कहिये। मैं आपको सपना सुनाने आया हूँ। हाँ-हाँ। कहिये, जो आपने सपना देखा है, उस सपने का फल ये है, कि शुभ मुर्हुत, शुभ नक्षत्र में, आप स्वर्ण तीर से इस पर्वत पर संधान करेंगें, और जिस पर्वत पर वह तीर लगेगा, उस तीर को नाभी कमल मान करके, जिन बिंब का निर्माण होगा। वह जिन बिंब विख्यात गोमटेश्वर बाहुबलि की, प्रतिमा कहलायेगी। प्रिय आत्मन् गुरु की आज्ञा से यदि तीर भी चलाया जाये, तो वह भगवान बाहुबलि के जिन बिंब को उत्पन्न कर देता है। आचार्य कहते हैं-''जो अप्पा तं णाणं'' जो दर्शन है, वही ज्ञान है, ज्ञान है वही शुद्ध चेतना है। आज का सूत्र, वचन से तीर नहीं, तीर्थ निकालो।

उभयविणट्ठे भावे, णिय-उवलद्धे सुसुद्धससरूवे।
विलसइ परमाणंदो, जोईणं जोयसत्तीए ।।58।।

अर्थ-

राग और द्वेष रूप दोनों भावों के विनष्ट होने पर अत्यंत शुद्ध आत्मस्वरूप निज भाव के उपलब्ध होने पर योगशक्ति से योगियों के परम् आनंद विलसित (प्रकट) होता है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

तत्त्वसार के सार तत्त्व को, जिस-जिस ने जाना।
समता, संयम और समाधि, जीवन मैं पाना।
जो आतम है, वही ज्ञान है, कहती वाणी माँ।
बार-बार हम शीश, झुकाऐं, हे जिनवाणी माँ ॥1॥

प्रिय आत्मन्!

अध्यात्म रस में पगी हुई, देवसेन स्वामी की, आत्मानुभूति से निःसृत, चिदानुभूत चैतन्य, आनंदकारिणी, यह वीतराग वाणी, शुभ उपयोग करने में कुशल और शुद्धोपयोग की साधन, सामग्री रूप से प्रस्तुत है। णमोकार महामंत्र में, कितनी मात्राऐं होती हैं? पाँच वाक्य, पैंतीस अक्षर, अट्ठावन मात्राऐं हैं। गोमटेश्वर बाहुबलि की मूर्ति कितनी ऊँची है? सत्तावन फिट। कल सत्तावन गाथा क्रमांक पढ़ चुके। आज 58 क्रमांक की गाथा आ रही है।

प्रिय आत्मन्!

ज्ञानियो! सुनो, परमानंद विलसित होता है। परमानंद प्रगटित होता है। परमानंद उल्लसित होता है। परमानंद उत्पन्न होता है। किसको? योगियों को परमानंद उत्पन्न होता है। ध्यान देना-भैया ! जितना सुख कर्मभूमियाँ मनुष्य को होता है। जितना सुख कर्म भूमि के चक्रवर्ती को होता है। उससे अधिक सुख जघन्य भोगभूमि के जीव को होता है। जितना सुख जघन्य भूमि के जीव को होता है, उससे अधिक सुख मध्यम भोग भूमि वाले जीव को होता है। उससे अधिक सुख उत्तम भूमि वाले जीव को होता है। उससे अधिक सुख स्वर्ग के देव को होता है। उससे अधिक सुख सर्वार्थसिद्धि के देव को होता है, और सर्वार्थसिद्धि देव को जितना सुख होता है। उससे अधिक सुख, ध्यान में विराजमान योगी मुनिराज को होता है।

यों चिन्त्य निज में थिर भये, तब अकथ जो आनंद लह्यो।
सो इंद्र - नाग - नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो ॥ छहढाला॥

निज स्वरूप के ध्यान में लीन हुआ योगी, जिस आनंद का अनुभव करता है, वह आनंद न तो इंद्र को है, न अहमिन्द्र को है, न नागेन्द्र को है, न सुरेन्द्र को है, एक मात्र वह आनंद मुनीन्द्र को है। (मुनि को है) ध्यान देना-संसार में सर्वोत्कृष्ट आनंद सिद्धों को है। उसके बाद अरिहंतों को है। उसके बाद मुनीन्द्र को है। ध्यान देना-सिद्धों और अरिहंतों के आनंद में अंतर नहीं है। ज्ञानियो! वह आनंद सिद्धों के होता है, अरिहंतों के भी आनंद होता है। मुनीन्द्रों के भी आनंद होता है। अहमिन्द्रों के भी आनंद होता है। चक्रवर्तियों के भी

आनंद होता है। ज्ञानियो ! चक्रवर्ती के पास षट्खण्ड का वैभव है। उस वैभव की अपेक्षा, भोग भूमि के जीव के पास कुछ भी नहीं है। रहने को मकान नहीं। लेकिन फिर सुख चक्रवर्ती से ज्यादा है।

प्रिय आत्मन्! आओ आगम की छाँव में, निहारें, कि-सुख किन कारणों से उत्पन्न होता है। सुख उत्पत्ति के दो ही कारण हैं। ज्ञानियो ! जैसे-आग उत्पत्ति के दो ही कारण हैं। ईंधन, गीला नहीं होना चाहिए, पहला कारण, दूसरा सूखा ईंधन होना चाहिए। गीलेपन का अभाव, सूखेपन का सद्भाव, उसी तरह से राग-द्वेष का अभाव, पहला कारण है सुख का। और दूसरा कारण है-निज स्वरूप की उपलब्धि, ये दो कारण हैं सुख के।

जितनी-जितनी मात्रा में राग-द्वेष कम होता जाता है। उतनी-उतनी मात्रा में सुख प्रकट होता जाता है। इसीलिए सबसे पहले अनंतानुबंधी राग घटे, उतना सुख प्रकट हुआ। भैया, अभी विराजे हैं। आप ये जानते हैं, कि पर पदार्थ-पर है, निज पदार्थ निज है। जैनियों के पास यही तत्त्व है, इस ज्ञान तत्त्व के बल पर ही ये जीते हैं, कमाते हैं, कभी लाभ-हानि भी उठाते हैं, लेकिन फिर भी घबराते नहीं हैं, क्योंकि अनंतानुबंधी का राग चला गया। दूसरे व्यापारी व्यापार के क्षेत्र में टिक नहीं पाते हैं, और जैनी क्यों टिक जाते हैं? यही कारण है कि अनंतानुबंधी राग नहीं है उनके पास, यदि धन चला गया तो, भी कोई हानि नहीं, और लाभ हो गया तो फुल के कुप्पा नहीं हो जाएगा, जानता है इतना तो लाभ बार-बार हुआ है, और हानि, इतनी तो होती ही रहती है। तो दोनों परिस्थितियों में समभावी है। उभय विणट्ठे-दोनों के नष्ट होने पर अर्थात् राग-द्वेष में पच्चीस कषाय आ गई। राग-द्वेष दो शांत हो जाऐं, तो सब शांति है। अनंतानुबंधी राग-द्वेष गया, तो कुछ शांति आई। जितनी शांति आपको है, उससे कुछ अधिक शांति इन त्यागियों के लिये है। क्योंकि इनकी अप्रत्याख्यान भी चली गई, उससे ज्यादा इन मुनिराजों के लिये है। क्योंकि प्रत्याख्यान सम्बंधी राग भी चला गया।

भैया! एक जीव वह है, जिसका राग परमानेन्ट कलर की तरह है, एक बार रंग लगे तो छूटने वाला नहीं है। दूसरा जीव वह है, जिसका रंग ओंगन की तरह है, पुरुषार्थ पूर्वक छुटाओ तो छूट जाएगा। तीसरा जीव हमारे ये क्षुल्लक जी बैठे हैं। इनका राग कीचड़ की तरह है। धोऐंगे तो साफ हो जाएगा। चौथे जीव ये हैं, मुनिश्री! हल्दी के रंग की तरह धूप में ही रंग उड़ जाएगा, इस तरह का राग होता है। आचार्य कहते हैं-परिपूर्ण राग तो शांत हो नहीं रहा आपका। तो फिर उपदेश क्यों हैं? ये उपदेश इसलिये, कि सम्पूर्ण राग तो दसवें गुणस्थान में शांत होगा, लेकिन उसके पहले यात्रा कहाँ से शुरू हो गई। चौथे गुणस्थान का प्रवेश क्षण, और अनंतानुबंधी राग के समापन का क्षण एक है। प्रकाश का प्रवेश, और अंधकार का निकास एक क्षण में हुआ है, तो चौथे गुणस्थान में प्रवेश और अनंतानुबंधी का

निकास, ये अनंतानुबंधी संबंधी राग, घटा तो चौथे गुणस्थान का आनंद आया, कितना आनंद है। देव शास्त्र गुरु की भक्ति में लीन हैं। स्वाध्याय में लीन हैं। अनंत पदार्थो से अनंत काल के लिए जुड़ जाना, उसके प्रति तीव्र आशक्ति होना, ये अनंतानुबंधी की पहचान हैं। अनंतों से जुड़े हैं। अनंतकाल के लिए जुड़े हैं। तीव्र अशक्ति का भाव बनाए हैं। ये अनंतानुबंधी कषाय हैं। यदि अनंतानुबंधी घट जाती है तो व्यक्ति तीव्र राग-द्वेष परित्याग कर देता है। सुख से जीता है। प्रिय आत्मन् ! दुर्योधन के भीतर अनंतानुबंधी खेल रही है। मेरा-सो मेरा। तेरा-सो भी मेरा, अनंतानुबंधी खेल रही है। पाण्डवों के अंदर अनंतानुबंधी नहीं खेल रही, वह सम्यक्दृष्टि हैं। तेरा सो तेरा, मेरा सो मेरा। सम्यक्दृष्टि जानता है। जो तेरा है सो तू रखले, जो मेरा है सो मैं रखलूँ। भैया-जो तेरे रत्न हैं, वह तू रखलें। समुद्रदत्त के लिए बहुत सारे रत्न दिखाए किन्तु उसने कहा- ये मेरे रत्न नहीं हैं। मेरे तो पाँच ही रत्न हैं, ऐसा क्यों? अनंतानुबंधी नहीं थी उसके अंदर। राग जितना नष्ट हो जाएगा, दुख उतना कम हो जाएगा। दुख को नष्ट करने की दवाई का नाम है, राग को नष्ट करो। राग की धरती पर दुख के पौधे उत्पन्न होते हैं। राग-द्वेष की भूमि पर, दुख के पौधे उत्पन्न होते हैं। जब हम आत्मा की धरती में, राग-द्वेष के बीज बोते हैं, तो दुख के पौधे उत्पन्न होते हैं। यदि राग-द्वेष के बीज ही नहीं बोऐंगें, तो दुख उत्पन्न कहाँ से होगा? और फसल को कम करना हो, तो बीज बोना कम कर दो। दुख को कम करना हो, तो राग-द्वेष कम कर दो। राग-द्वेष के नष्ट हो जाने पर निज की उपलब्धि होती है।

जितना-जितना पर के राग-द्वेष से, हम दूर हटते चले जायेंगे। उतने-उतने निज के पास आते जायेंगे। राग-द्वेष हमें, हम से दूर ले जाते हैं। इसीलिए पास में आने क लिए, इन दोनों राग-द्वेष को छोड़ना आवश्यक है। राग-द्वेष, राग-द्वेष। सारा खेल इसी का है। वर्णी जी महाराज कहते थे-भैया ! संसार में जोड़ने के लाने, तो बहुत हैं, जिंदगी भर जोड़ो कभऊ पूरो न जोड़ पेओ, लेकिन छोड़ने के लाने, तीन चीज हैं। वह क्या? मोह-राग-द्वेष ज्यों ही ज्ञान पैदा हुआ कि मोह छूटा।

जीवोऽन्य: पुद्गलश्चान्य, इत्यसौ तत्त्व संग्रह: ।
यदन्य दुच्यते किंचित्सोऽस्तु तस्यैव विस्तर: ॥50॥ इष्टोपदेश ॥

जीव जुदा हैं, पुद्गल जुदा है, यह भान होते ही राग-द्वेष दोनों नष्ट हो जाते हैं। जीव अब चला जा रहा है। ये राग ही तो दुख दे रहा था। भैया, एक जगह एक्सीडेन्ट हो गया, ऐक्सीडेन्ट होने के बाद, पुलिस वाले ने कुछ पैसे लिए और ट्रक वाले को छोड़ दिया। शाम को घर पर आया, तो श्रीमति ने समाचार दिया कि-बेटा सुबह से गया था अभी तक नहीं आया, अब देखिए, यह सुनकर उसे चिंता हुई, और सीधा वहीं पहुँचा, जहाँ बालक का मरण हुआ था, उसको पता नहीं था, रिश्वत लेकर छोड़ दिया था।

ज्यों ही ये मालूम चला, कि मेरा बेटा घर पर नहीं आया। अब वह कहाँ चला गया? वहीं चला गया। पहले मुस्कराते आया था, कि-इतने पैसे जेब में आ गए। और अब, रोते-रोते देखने गया। प्रिय आत्मन्! बताइए, मुख्य चीज क्या है? जब राग उत्पन्न हुआ, तो दुख उत्पन्न हुआ। वस्तु तत्त्व निहारो-जहाँ जितने राग का अंश है, वहाँ उतने अंश में दुख ही दुख है। अगर राग है, तो कहीं न कहीं द्वेष भी है। एक से राग है तो निन्यानवे से द्वेष है। माँ! महसूस नहीं होता है, लेकिन जिस दिन तेरे बेटे के लिए, पड़ौसी का बेटा कष्ट दे दे, तो उस दिन महसूस होगा कि पड़ौसी के बेटे से कितना द्वेष है। तो द्वेष तो सत्ता में था, लेकिन प्रकट में नहीं था।

जैसे गैस की टंकी में गैस है, लेकिन जब जलाते हैं, तो पता पड़ती है। अन्य समय पता नहीं पड़ती, तो प्रिय आत्मन् ! सत्ता में राग भी है, सत्ता में द्वेष भी है। आचार्य कहते हैं-वह, राग-द्वेष कब प्रकट होकर दुख को दे जाए इसलिए कहते हैं-

मोह तिमिरायहरणे, दर्शन लाभादवाप्त संज्ञान।
रागद्वेष निवृत्यै, चरणं प्रतिपद्यते साधु ॥

दर्शन मोहनीय के शांत हो जाने पर, मिथ्यात्व के मिटने पर, ज्ञान और दर्शन का लाभ हो जाने पर भैया! अब राग-द्वेष को मिटाने के लिए, चारित्र के पथ पर बढ़ो। राग-द्वेष को मिटाने और घटाने के लिए, चारित्र के पथ पर आये हैं। और चारित्र के पथ पर आकर के, यदि राग-द्वेष नहीं मिटता है, तो चारित्र के पथ पर आने की सफलता नहीं है। मोह रूपी अंधकार के अपहरण हो जाने पर, अर्थात् मिथ्यात्व के नष्ट हो जाने पर, सम्यक् दर्शन-सम्यक्ज्ञान के उपलब्ध हो जाने पर, फिर क्या होता है ?

राग-द्वेष की निवृत्ति के लिए चारित्र को प्राप्त करते हैं। क्या राग-द्वेष घर में नहीं छूटता महाराज! हाँ छूटता है राग-द्वेष घर में भी छूटता है, तभी तो आचार्य समन्तभद्र तीसरे अधिकार की पहली गाथा में बोल रहे हैं, कि घर में भी देश चारित्र होता है, और देश चारित्रवान का राग छूटता है। फिर तभी तो, वह ''जलतें भिन्न कमल है'' जैसे रहता है। ऐसा वह सम्यग्दृष्टि श्रावक घर में तो रहता है, लेकिन राग-द्वेष नहीं करता है। घर में भी रह रहा है, लेकिन घर में रहकर भी, राग कम हो जाता है। जिनके पास ज्ञान है, जिनने जान लिया है, कि-कल्याण राग में नहीं है। मेरा कल्याण तत्त्वज्ञान की सिद्धि में है, और वो जीव राग को त्यागते हैं। जानते हैं, जब तक राग करते रहेंगे, तब तक हम जलते ही रहेंगें। कुछ भी नहीं होगा। दुखी होते रहेंगे। कर्म बंध करते रहेंगे। देखो-बेटा मुनि बन गया, माँ रो रही है। राग रो रहा है। बेटा मुनि बन गया, बेटा वन में तपस्या कर रहा है। माँ बेटे के राग में बिलख रही है। माँ ने पशु पर्याय का बंध

कर लिया, और बेटा-शुद्धोपयोग में रमण कर रहा है। माँ सिंहनी बन कर भक्षण कर रही है या शियालनी बनकर के भक्षण कर रही है। बेटा सर्वार्थसिद्धि के लिए जा रहा है। बोलो ज्ञानी ! माँ-राग करके पशु गति मैं चली गई और बेटा ! निज में रमकर के सर्वार्थसिद्धि चला गया।

ज्ञानी ! राग ही कर पाओगे-राख नही पाओगे राख हो जाओगे। इसलिए राख होने से पहले, इतना ध्यान रख लेना, कि राग मत करना। ''राग घटाओ'' छूटेगा नहीं, घट तो सकता है। मंद तो हो सकता है। एक पंडित जी थे, कहीं गए थे। उनसे पूँछा कहाँ गए थे? पंडित जी ने कहा- मेहमान आया था, छोड़ने गए थे।

वह थे गोपालदास जी बरैया। गोपालदास जी बरैया के जीवन की घटना है। कहाँ गए थे? मेहमान आया था छोड़ने गए थे। तात्पर्य क्या है? कल्पना करिए, पंडित जी से किसी ने पूँछा, आप लेट आए कहाँ गए थे? मेहमान आया था छोड़ने गए थे। बोलिए! कितना ज्ञान था, ये कहलाता है ज्ञान। घर में से एक सदस्य चला गया, चला गया जलाने और लौट के आए, पूँछा कहाँ गए थे? मेहमान आया था, छोड़ने गए थे। बताइए ज्ञानियो! ये तत्त्वज्ञान की धारा है। वह जानते हैं, जो आया है वह जाना है। लेकिन, आत्मा तो अजर-अमर है। मैंने किसी को कष्ट नहीं दिया, दुख तब होता, जब मैं कष्ट पहुँचाता। मैंने किसी को कष्ट नहीं दिया, वह अपनी आयु पूर्वक चला गया, तो उसमें कोई दु:ख की बात नहीं है। आ गया ध्यान में, उनकी ऐसी परिणति थी। प्रिय आत्मन्! राग और द्वेष ये दो चीजें नष्ट होगी, उतनी-उतनी आत्म उपलब्धि होगी, आत्मा क्या है? सम्यक्दर्शन, सम्यक् ज्ञान। दर्शन-श्रद्धा का लाभ होने से ज्ञान का लाभ हो जाता है। पहले श्रद्धा आती है, बाद में ज्ञान आता है। प्रिय आत्मन्! निज उपलब्धि-आत्मोपलब्धि क्या है? श्रद्धा-ज्ञान की उपलब्धि आत्मा की उपलब्धि है। चारित्र की उपलब्धि आत्मा की उपलब्धि है। आत्मा की उपलब्धि कहाँ होती है? निज स्वरूप में आत्मा उपलब्ध होती है। फिर परमानंद विलसित होता है।

परम दिगम्बर मुनिवर देखे, उर में आनंद होता है।
आनंद विलसित होता है। सम्यक् दर्शन होता है।

परमानन्द संयुक्तं, निर्विकारं निरामयम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निज देहे व्यवस्थितम्।।9।।

परमानंद जो है वह निज में ही है। लेकिन जब ध्यान नहीं लगाऐंगे-तो नहीं मिलेगा। जो परमानंद है वह अत्यन्त आनंदमयी है। निज में ही प्रकट होता है। कैसे प्रकट होता है ? किसको प्रकट होता है?

योगियों को प्रकट होता है। योग शक्ति से प्रकट होता है। ध्यान देना-दो शक्ति हैं। योग शक्ति और भोग शक्ति। ध्यान देना-यही शक्ति अगर योग में लग जाए, तो परमानंद प्रकट हो जाए, और भोग में लग जाए तो विषयानंद प्रकट हो जाए। ध्यान देना- व्यक्ति के पास शक्ति है। लेकिन शक्ति को योग से जोड़ते-तो योग शक्ति बन जाती, और योग शक्ति से परमानंद प्रकट हो जाता। उसी शक्ति को आप सब भोग से जोड़ते हो, तो परानंद प्रकट होता है। ज्ञानी ! मनुष्य ही योगी बनता है, मनुष्य ही भोगी बनता है। जब मनुष्य विवेक को जाग्रत करता है, तो योगी बन जाता है। और विवेक को सुप्त या लुप्त कर देता है तो भोगी बन जाता है।

जैसा आनंद चाहिए-वैसी शक्ति चाहिये। यदि भोग के लिए शक्ति चाहिए तो योग के लिए भी शक्ति चाहिए। शक्ति दोनों के लिए चाहिए। जितनी निर्जरा एक युवा साधु अपने ध्यान के द्वारा कर सकता है। उतनी निर्जरा हम कहें कि यह वृद्ध महाराज करलें, तो नहीं करे सकते। क्योंकि, युवा साधु यदि ध्यान में बैठेगा, तो दो-दो, तीन-तीन, चार-चार घण्टे ध्यान में निश्चल होकर बैठ जाएगा, अडिग होकर बैठ जाएगा, लवलीन हो जाएगा, लेकिन वृद्ध साधु-सम्भावना कम हो जाती है। जिसने पहले से अभ्यास किया है, वह तो कुशल है। लेकिन जिसने पहले से अभ्यास नहीं किया है, उससे यह सम्भावना नहीं की जा सकती है। क्योंकि शक्ति को तुम पहले ही भोग में खर्च कर आए। तो योग के लिए क्या बची? इसलिए शक्ति को योग के लिए बचाओगे, तो योग से परमानंद प्रकट होगा। इसलिए ज्ञानी जीवो! योग में शक्ति लगाओ। शक्ति को योग से जोड़ना है। पूजा एक योग है। भक्ति एक योग है। ध्यान एक योग है। अभी यह स्वाध्याय चल रहा है-यह एक योग चल रहा है। ध्यान देना-जहाँ तुम आँखों को निश्चल करना सीख रहे हो, जहाँ मन, वचन, काय-तीनों को सँभालना सीख रहे हो और आत्मा तक पहुँच रहे हो यह योग है। एक वह बाबा का योग है, जिसमें मात्र शरीर के संचालन को सीखते हैं। लेकिन यहाँ, आत्मा तक पहुँने की कला सीखते हैं। स्वाध्याय के माध्यम से, सामायिक के माध्यम से, योगियों को परमानंद प्रकट होता है। योग शक्ति कौन सी है? जो परमानंद को प्रकट करे। जो परमानंद को प्रकट न करे, मात्र शरीर तक सीमित रहे, वह योग नहीं है। योग (ध्यान) जैसे-जैसे हम ध्यान करते हैं, निज में लीन होते हैं। वैसे-वैसे, रोम-रोम पुलकित हो जाता है। ध्यान देना- ध्यान का काल रिचार्ज होने की बेला है। जैसे मोबाइल को चौबीस घंटे में एक घंटे चार्ज, के लिए लगा देते हो, उसी तरह सामायिक का काल चार्ज का काल है। मोबाइल में पहले बैलेन्स डलवाते हैं, बाद में उसको खर्च करते हैं। उसी तरह पहले सामायिक के काल में, तत्त्व ज्ञान को डालते और प्रवचन के काल में खर्च करते हैं।

जितना डालके आए, उतना खर्च कर दिया। सुबह एक ज्ञानी बोला ! आज तो रविवार है, आज कुछ विशेष होना चाहिए। मैंने कहा-अच्छी बात। ज्ञानी! वचन से तीर नहीं- तीर्थ निकलना चाहिए। अब क्या शेष रह गया? महावीर के वचन से तीर्थ निकला, आदिनाथ के वचन से तीर्थ निकला भो ज्ञानियो! राजा श्रेयांस के पास कितना धन था? लेकिन धन का तीर्थ नहीं चला। आज तक इतने-इतने धनी हो चुके, लेकिन धन तीर्थ नही चला। दान तीर्थ ही चला है, धर्म तीर्थ चला है। महावीर के पास-धर्म था। लेनिक जब तक उन्होंने धर्म को बाँटा नहीं-तब तक धर्म तीर्थ नहीं चला। और राजा श्रेयांस के पास धन था-लेकिन उन्होंने जब तक धन को दान में नहीं दिया, तब तक दान तीर्थ नहीं चला। धन को दान देने से, दान तीर्थ चला। और दान उसको दो-जिससे धर्म तीर्थ चले। राजा श्रेयांस ने आदिनाथ को आहार दान दिया-उससे धर्म तीर्थ चला।

अधिकांशत: लोग बोलते हैं-भूखे को दो, गरीब को दो, दरिद्र को दो, प्यासे को दो, लेकिन जैनाचार्य कहते हैं-यह हमें मान्य नहीं है। तुमने कमाया, कमाते समय-पाप कमाया, और बाद में ऐसे ही खर्च कर दिया। नहीं! यदि पाप से कमाया है, तो इतने पुण्यशाली के हाथ में दो, जिसके पुण्य के प्रताप से तुम्हारे सम्पूर्ण कमाई के पाप नष्ट हो जाऐं। कोई-कोई कहता है अरे! मंदिर में तो खूब है। किसी जिसके पास न हो-उसको दो। किंतु सुपात्र पहिचान कर ही देना चाहिए। ज्ञानी ! बात सत्य है-कि मंदिर में खूब है। लेकिन धन मंदिर में जाने से-धर्म, संस्कृति, समाज का संरक्षण होगा । किसका संरक्षण? यह आवश्यक है, हमारे द्वारा दान से-धर्म की स्थापना होना चाहिए। वही दान है, जो दान धर्म की स्थापना करे। इसलिए अपने यहाँ नहीं लिखा कि गौदान, कन्यादान या भूमि दान दो। अपने यहाँ नहीं लिखा।

अपने यहाँ, क्या लिखा है? वह दान-औषधि शास्त्र, अभय, आहार,'' जिससे, धर्म की स्थापना हो, जिनशासन की स्थापना हो। वह इसलिए, मंदिर, प्रतिमा, जीर्णोद्धार, इत्यादि का जो कार्य है हम सब करते हैं। विद्यालय, औषधालय, ग्रंथालय आदि में हम दान करते हैं। सुनो-ज्ञानी ! करूणा का अभाव होना धर्म है, कि करूणा का भाव होना धर्म है? सुनो ज्ञानी ! जिस दिन करूणा का अभाव हो जाएगा, उस दिन तू अरिहंत बन जाएगा।

ध्यान देना ! करूणा का भाव होना यह मोह का चिन्ह है, और करूणा का अभाव होना, यह मिथ्यात्व का चिन्ह है, या फिर सर्वज्ञ का चिन्ह है। सुनो ज्ञानी ! करूणा का अभाव होना, दया भाव का प्रतीक है। और दया का भाव होना मिथ्यात्व का प्रतीक है, एक बात। लेकिन-दूसरी बात, यही करूणा निज पर कर रहे हैं, तो पर की करूणा का अभाव होगा। और निज पर करूणा करते-करते, इतनी करूणा हो जाएगी, कि एक दिन मोहनीय कर्म नष्ट हो जाएगा। तो करूणा का पूर्णता अभाव हो जाएगा। हम पर-

पर करूणा तो कर रहे हैं, लेकिन एक बार-निज पर भी तो करूणा करें। लेकिन करूणा करते समय-यह ध्यान रखो कि, पर-पर करूणा करते-करते निज की करूणा न छूट जाए। ज्ञानी! पहले, मुझे अपने पर करूणा करना है। बाद में पर, पर करूणा करना है। क्योंकि, जिस गरीब को भोजन दिया है। उस गरीब ने उसका उपयोग क्या किया? इसलिए ध्यान देना-हमारे यहाँ यह बताया है। न्याय से कमाना और विवेक से खर्च करना, शुद्धि से बनाना, वात्सल्य से खिलाना, शोध कर सम्मान से परोसना। करूणा तो होना चाहिए, लेकिन करूणा के काल में ऐसा न हो, कि जीव अपने आप पर ही करुणा करना भूल जाये।

निज आत्मा पर भी-करूणा आवश्यक है। एक मुनिराज ध्यान में बैठे थे। एक हिरण को वाण लगा हुआ था, वह हिरण मुनिराज के सामने आया, तड़पता रहा। लेकिन मुनिराज जी, निज में इतने लवलीन थे। पर के प्रति कोई भाव ही नहीं है, भान ही नहीं है, (निज स्वरुप में लीन थे)। वर्णी जी महाराज कहते थे, करुणा अपने पर करना, ज्यादा करूणा दिखाऐंगे तो, स्वयं ही सुख से नहीं जी पायेंगे। इसलिए मंदिर में बैठकर यथा योग्य ध्यान करो। तात्पर्य यह है, करूणा भी दिखाना, लेकिन अपने ऊपर करूणा बनाके। ध्यान रखना-कि स्वयं पर भी करूणा करना है। तो सुनो-करुणा का भाव होना यह सम्यक्दृष्टि का चिन्ह है। लेकिन करूणा का अभाव होना, मिथ्यात्व का भी चिन्ह है। करूणा का नाश हो जाना, यह वीतराग का चिन्ह है। ज्ञानियो ! योग शक्ति से आनंद आता है, भोग शक्ति से नहीं। स्पर्शन इंद्रिय, रसना इंद्रिय, घ्राण इंद्रिय, चक्षु इंद्रिय, कर्ण इंद्रिय इन पंचेन्द्रियों से जो भोग कर रहे हैं।

स्पर्शन और रसना यह दो कार्य इंद्रिय हैं। और घ्राण, चक्षु, कर्ण, ये भोग इंद्रिय हैं। इनसे भोग ले रहे हैं, भोग का जो आनंद है, यह पराधीन आनंद है। ये आनंदाभास है, आनंद नहीं है। आनंद वह है, जो निरन्तर बहता जाए। लेकिन, इनका आनंद काल समाप्त होने पर, घट जाता है। इसलिए आचार्य कहते हैं।

आरंभे तापकान् - प्राप्ता - वतृप्ति-प्रति- पादकान्।
अंते सुदुस्त्य जान् कामान्, कामं क: सेवते सुधी: ।।17।। इष्टोपदेश ।।

इसलिए भोग तो दुख कारक ही हैं। भोग तो रोग के समान हैं। हे चेतन ! ये तो भोग, भुजंग के समान हैं। जैसे-सर्प के डंसने से जहर की लहर आती है। उसी तरह जब भोग डसते हैं, तो लालसा की लहर बढ़ती जाती है। घटती नहीं है, अंत में दुख ही आता है। प्रिय आत्मन् ! खाज, जिसको हो गई है, बिना खुजलाए मानता नहीं है। जानता भी है, कि जितना-जितना खुजलाऊँगा, उतना-उतना खून और निकलेगा। ज्ञानी जीवो! यही स्थिति अज्ञानी भोगी की है।

जैसे खाज के खुजाने वाला व्यक्ति खुजाने में ही आनंद मानता है। उसी तरह अज्ञानी, मोही, जीव भोगों में आनंद मानता है। लेकिन वैरागी, ज्ञानी, जीव उन भोगों से उदासीन हो जाता है।

''ततस्यं, दोष निरमुक्तै, र्निमोहो, रात सर्वथा''

भव, तन, भोग, संयोग, मनोहर, बैरी हैं, जग जी के'' ये सब आत्मा के बैरी हैं। यह भोग आत्मस्वरूप के बैरी हैं। ऐसा जानकर के योग में मुड़ जाता है। ध्यान देना-गाड़ी चाहे पूरब की ओर जाए, चाहे पश्चिम की ओर जाए, डीजल, पेट्रोल तो उतना ही खर्च होना है। चाहे तुम भोग के रास्ते पर चले जाओ चाहे योग के रास्ते पर चले जाओ। आत्मा का काल, आत्मा की शक्ति, इंद्रियों की शक्ति, वही खर्च हो रही है। लेकिन यदि तुम सम्यक् रास्ते पर जाते हो, तो फिर किसी तीर्थ यात्रा पर पहुँचने जैसा आनंद आता है। और नहीं, जाते हो तो अन्य जगह पहुँच जाते हैं। प्रिय आत्मन्! योग शक्ति से परमानंद प्रकट होता है। योग-क्या है? आत्मा का आत्मा से जुड़ना योग है। आत्मा का, आत्मा में जुड़ाव हो जाना, अपने उपयोग को अपने में लगा देना योग है। ये तन का हिलाना, डुलाना, हाथ पैर का चलाना, पेट फुलाना, पेट पुचकाना यह प्राणायाम बगैरह, आचार्य कहते हैं-यह तो सब विकल्पों के कारण है। र्निविकल्पता में जाने वाला योगी, तन के योग में लीन नहीं होता है। वह चेतना के योग में विलीन हो जाता है। परमानंद ऐसे प्रकट होता है। पूजा में आनंद आया-पहला योग है। अभिषेक में आनंद आया-अभिषेक, पूजा, जाप, योग क्रिया है। ध्यान सामायिक अपने यहाँ जो सामायिक बताई है। सबसे उत्तम योग क्रिया है। सर्वोत्तम योग क्रिया है। जिस योग क्रिया के बल पर, हमारे तीर्थंकरों ने मोक्ष कल्याणक को प्राप्त किया है। शुक्ल ध्यान को, प्राप्त किया है। परमयोग को प्राप्त किया है। ज्ञानी जीवो! यह योग है। अपने आप में योग करते हैं। आनंद भीतर से आता है। प्रत्येक मंत्र को ध्यान पूर्वक किया जाए।

णमोकार मंत्र है, ऊँ नमः, ऊँ ह्रीं नमः ऊँ मंत्र का, मस्तक पर ध्यान करते हैं। ललाट पर ऊँ की कल्पना करते हैं। इत्यादि चिंतन करते हैं तो आनंद आता है, यह योग है। तीन काल योग-प्रातः काल की सामायिक, पहला योग है। दोपहर की सामायिक, दूसरा योग है। सांयकाल की सामायिक, तीसरा योग है। तो आत्मा को योग से जोड़ें। मन को यदि भोगों से हटाना है, तो योग से जुड़ें। अष्टमी, चतुर्दशी को उपवास करो, मंदिर में रहो। क्यों रहो? ताकि योग से जुड़ सको। मंदिर योगालय है, योग का स्थान है। जिस भूमि पर मुनिराज के आहार हो चुके हो, वह भूमि तीर्थ है। आपके घर में किसी एक भी मुनिराज का आहार हो गया, वह भूमि किसी तीर्थ भूमि से कम नहीं है। सदा-सदा के लिए वंदनीय है, सदा-सदा के लिए पूज्यनीय हो गयी। जिस, भूमि में एक बार दिगम्बर मुनि ने चरण रख दिए। और आपने पाँव पखार लिये तो, समझ लेना वह घर सदा-सदा के लिए वंदनीय हो गया। ज्ञानी ! एक बार-भगवान का जन्म कल्याणक हो गया। वह भूमि आज तक वंदनीय है। जहाँ पर एक बार मुनिराज, आहार लेने के लिए

पहुँच जाते हैं, वह भोजनशाला वह कक्ष वह समय जिनालय रूप हो जाता है। यद्यपि मुनि आहार ले रहा है। लेकिन आहार लेते समय भी वह भोजनालय भी जिनालय का स्वरूप है।

जैसे-मंदिर में से गर्भालय से, प्रतिमा अभिषेक को बाहर निकाल लेते हैं। तो भी मंदिर कहलाता है। उसी तरह मुनि मंदिर से निकलकर तुम्हारे घर पर आहार करने गया है, आहार ले रहा है। मुनि चर्या का मूलगुण पल रहा है। इसलिए वह जिनालय है। एक मंदिर में आकर, के अभिषेक करने का जो फल है, आनंद है, वही आनंद श्रावक आहार कराकर ले लेता है एवं उससे भी ज्यादा आनंद ले लेता है। ज्ञानी जीवो! क्योंकि अभिषेक देखने का अवसर तो रोज-रोज मिल जाता है, लेकिन आहार दान देने का अवसर कम मिलता है। माँ! एक बात पर ध्यान देना। एक बेटे को दूर से देखकर आनंद कुछ होता है। लेकिन बेटा गोद में आ जाए, उसका आनंद कुछ और होता है। बोलो! तुम अपने बेटे की तस्वीर मोबाइल पर देख रहे हो, बेटा कहाँ है? बम्बई में। बात कर रहे हो तस्वीर भी दिख रही है। आनंद है क्या? नहीं है। लेकिन वही बेटा घर में आ जाए, साक्षात् आ जाए, आपकी गोदी में आ जाए तो, आनंद ही आनंद है।

उसी तरह से प्रवचन मंच पर आप सुन रहे हैं, दर्शन रोज करने आ रहे हैं, लेकिन आनंद में कमी है। आनंद तो तभी आता है, तभी परिपूर्ण आता है, जब गुरु नगर में आऐं और घर में आ जाऐं, (आहार के लिए) तभी आनंद आता है। बात यही है, परमसत्य है। ध्यान देना- राग-द्वेष के नष्ट हो जाने पर, निज स्वरूप की उपलब्धि हो जाने पर, योग शक्ति के द्वारा योग, योगता को जन्म देता है। योग्य सामग्री से योग्यता का परिचय होता है। अयोग्य सामग्री से अयोग्यता का परिचय होता है। इसलिए हम सब योग्यता को जन्म दें। प्रिय आत्मन्! आनंद योग से आना चाहिए। योग (ध्यान) ध्यान शक्ति से आनंद आता है। शक्ति को ध्यान से जोड़ो, तब आनंद आयेगा।

किं किज्जइ जोएणं, जस्स य ण हु अत्थि एरिसी सत्ती।
फुरइ ण परमाणंदो, सच्चेयणसंभवो सुहदो ।। 59 ।।

अर्थ-

उस योग से क्या करना है? जिसकी ऐसी शक्ति नहीं है कि उससे सत्-चेतन से उत्पन्न सुखद परमानन्द प्रकट न हो।

जा किंचि वि चलइ मणो, झाणे जोइस्स गहियजोयस्स।

ताम ण परमाणंदो, उप्पज्जइ परमसुक्खयरो ।।60।।

अर्थ-

जब तक योग के धारक योगी का मन ध्यान में कुछ भी चलायमान रहता है तब तक परम सुख-कारक परमानन्द नहीं उत्पन्न होता है।

सयलवियप्पे थक्के, उप्पज्जइ को वि सासओ भावो।
जो अप्पणो सहावो, मोक्खस्स य कारणं सो हु ॥61॥

अर्थ-

समस्त विकल्पों के रुक जाने पर कोई अद्वितीय शाश्वत-नित्य भाव उत्पन्न होता है जो आत्मा का स्वभाव है। वह निश्चय से मोक्ष का कारण है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी ! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

उस योग से क्या लाभ है? उस ध्यान से क्या लाभ है? जिस योग में ऐसी शक्ति न हो, कि आत्मीय आनंद को उत्पन्न कर सके, उस योग से कोई लाभ नहीं है। योग तो वही है जो आत्मा के आनंद को जन्म दे दे। योग वह है जो चेतन आनंद को जन्म दे। योग वह है जो ज्ञानानंद को जन्म दे। योग वह है जो स्वानुभूति रस से उत्पन्न निजानंद को जन्म दे।

आचार्य कहते हैं-जिस योग में ऐसी शक्ति न हो कि परमानंद को न दे सके। चेतन से उत्पन्न होने वाले आनंद को न दे सके, उस योग से मुझे कोई लाभ नहीं, तो वह योग ही नहीं है।

आचार्य कहते हैं-जब तक योग के धारक योगी का मन ध्यान में, चलायमान रहता है तब तक परम सुखकारक परमानंद प्रकट नहीं होता है। इसलिये ध्यान में चित्त की एकाग्रता, मन की निश्चलता अत्यंत अनिवार्य है। जैसे-जैसे मन में निश्चलता, एकाग्रता आती है, वैसे-वैसे परमानंद उत्पन्न होता है।

यदि ध्यान में चलायमान है तो सुख को उत्पन्न नहीं कर पायेगा, इसलिये ध्यान में मन का एकाग्र होना अनिवार्य है और मन की एकाग्रता ही ध्यान है। मन को एकाग्र करके धर्म-ध्यान में लीन होना ध्यान है। यूँ तो मन की व्यग्रता में आर्तध्यान, रौद्रध्यान इस जीव ने अनादि से किया है। व्यग्रता में आर्त रौद्र ध्यान होते हैं एकाग्रता में धर्म और शुक्ल ध्यान होते हैं।

अशुभ परिणामों में आर्त-रौद्र ध्यान होते हैं। शुभ परिणामों में धर्म ध्यान होता है। और शुद्ध परिणामों में शुक्ल ध्यान होता है। संपूर्ण विकल्पों के रुक जाने पर जहाँ किसी भी प्रकार का मन-वचन-काय संबंधी कोई विकल्प नहीं है, पर का कोई विकल्प नहीं है, समस्त विकल्प के रुक जाने पर, कोई भी अद्वितीय जिसको कहा नहीं जा सकता है, ऐसा कोई शाश्वत भाव उत्पन्न होता है। जिस भाव को हम कह नहीं सकते हैं, ऐसा आनंद, ऐसा ज्ञान, ऐसा चारित्र, ऐसी श्रद्धा उत्पन्न होती है।

विकल्प करते-करते यह जीव तो थका, लेकिन विकल्प नहीं थकता है। आचार्य कहते हैं-हे ज्ञानी ! तू थक रहा है लेकिन जिस दिन तू न थके, तेरा विकल्प थक जाये, तू न रुके, तेरा विकल्प रुक जाये। जिस दिन तेरा विकल्प रुक जायेगा, तेरा विकल्प थक जायेगा, तेरा विकल्प बंद हो जायेगा, उसी दिन परमानंद प्रकट हो जायेगा। आत्मा का शाश्वत भाव उत्पन्न हो जायेगा।

विकल्पों में लीन होकर आत्मा थकता है और आत्मा में लीन होकर के विकल्प थकते हैं। जो विकल्पों में लीन है, उसकी आत्मा थकती है, जो आत्मा में लीन है उसके विकल्प थकते हैं। जो विकल्पों में लीन है, उसकी आत्मा रुकती है और जो आत्मा में लीन हैं, उसके विकल्प रुकते हैं। विकल्पों को रोकने का उपााय निज में लीन हो जाना है।

जैसे-जैसे निज में लीन होगा, वैसे-वैसे विकल्पों को भूल जायेगा। हमें यह अच्छी तरह पाठ पढ़ाया जाता है, कि किसी के परिवार में विषाद का कारण हो, तो ऐसे समय में उसके चित्त को दूसरी ओर लगा देते हैं। यही तो विज्ञान है।

द्रव्य परिवर्तन, क्षेत्र परिवर्तन, काल परिवर्तन यह साधन हैं, अब है (सब्जेक्ट) परिवर्तन। यदि विषय परिवर्तन कर देते हैं, तो फिर भाव परिवर्तन हो जाता है। विकल्प करते-करते जीव थक रहा है, लेकिन विकल्प नहीं थक रहा है। और विकल्प थक जाये, तो जीव न थके। जिनके विकल्प थक गये हैं, जो निज में रम गये, सो उनके विकल्प थम गये। और जिनके विकल्प थम गये वे निज में रम गये और जो विकल्पों में रम गये तो वे निज में नहीं रम पाये।

आचार्य कहते हैं- एक दो विकल्प नहीं, कौन सा विकल्प है? किस बात का विकल्प है? किस वस्तु का विकल्प है? किस व्यक्ति का विकल्प है? किस द्रव्य का विकल्प है? किस क्षेत्र का विकल्प है? किस भाव का विकल्प है ?

यस्य मोक्षेऽपि नाकांक्षा स मोक्षमधिगच्छति ।
इत्युक्त्वाद्वितान्वेषी कांक्षा न क्वापि योजयेत् ॥22॥ स्वरुप संबोधन ॥

आचार्य कहते हैं-मोक्ष का भी विकल्प नहीं करना चाहिये। जब तक तू मोक्ष का विकल्प करेगा मोक्ष नहीं होगा। पहले अशुभ विकल्पों का त्याग कर, फिर शुभ विकल्प त्याग की बात करना। सबसे पहले जो चित्त पंचेन्द्रिय के विषय व्यापार में दौड़ रहा है उसे हटाओ। उसे कैसे हटाओगे? शुभ में लगाने से हट जायेगा।

प्रिय आत्मन्!

यदि अशुभ का कीचड़ लगा, तो कीचड़ भी अच्छा नहीं है, सूखने पर भी अच्छा नहीं है। उदयगत् भी अच्छा नहीं है। सत्तागत भी अच्छा नहीं है। आस्रव भी अच्छा नहीं है। बंध भी अच्छा नहीं है। सूख गया सत्ता में पड़ा है वह भी अच्छा नहीं है। गीला है तो वह भी अच्छा नहीं है। उसको तो बिल्कुल ही हटाना पड़ेगा और हटाने का फायदा क्या है? यदि गीले में हटा लो तो फायदा में हो, सूखने पर तो पानी और ज्यादा लगेगा।

यदि जो पाप हुआ, उसका तत्काल प्रतिक्रमण आलोचना कर लिया, तो ठीक है और नहीं कर पाये तो सूखे कीचड़ की तरह हो गया। कोई भी दोष-उस दोष को दूर करने का उपाय यही है। जैसे- कीचड़ में पैर गया और तत्काल साफ कर लिया, तो साफ हो गया अन्यथा सूखने पर तो कई गुना पानी लगेगा, उसी तरह तत्काल के दोष दूर करने में कम समय कम श्रम लगता है। और वही दोष कालान्तर में सूखे कीचड़ की तरह हो जाता है, उसको दूर करने के लिये एक तो चचेड़नपन से कष्ट होता है और कभी-कभी तो बाल तोड़ भी हो जाते हैं। इसलिये प्राकृतिक चिकित्सा बाले मिट्टी लगाते समय ध्यान रखते हैं, कि मिट्टी का लेप तो लगायें, लेकिन सूखे न।

प्रिय आत्मन्!

आत्मा का स्वभाव मोक्ष का कारण है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान-दर्शन, चारित्र है और वही मोक्ष का कारण है। मोक्ष का कारण विकल्प नहीं है। विकल्पों का रुकना है। विकल्प करना नहीं, विकल्प रुकना चाहिये।

ज्ञानी जीवो ! हम दूसरों को रोकते हैं, लेकिन विकल्पों को नहीं रोकते हैं। विकल्पों को रोकना ही तो साधना हैं। ध्यान देना- तुम्हारा चित्त चलनी नही है, तुम्हारा चित्त तो गागर की तरह है, जिसमें विकल्प भरे हों। यदि विकल्प आ सकता है तो जा भी सकता है, गागर में भरने की भी क्षमता है, तो निकालने की भी क्षमता है, जो गागर भरती है वह गागर खाली भी होती है। जो वर्तन भरता है वह वर्तन खाली भी होता है। पात्र तो वही है, जिसे भर कर खाली किया जा सके और खाली को भरा जा सके।

मैं विकल्प की कीलों पर,
मूर्च्छाओं के टीलों पर ।
चिंतातुर हो बैठा हूँ,
फिर भी मद में ऐंठा हूँ ।।
यह मैं हूँ यह मेरा है,
यह तू है यह तेरा है।।
करता हूँ संकल्प विकल्प,
झूठी माया झूठे जल्प ।।
जो शाश्वत वह मेरा है,
ज्ञान दर्श गुण डेरा है।

प्रिय आत्मन्!

आप कहाँ रुके, यह महत्वपूर्ण नहीं है। आपके विकल्प कितने रुके? यह महत्वपूर्ण है। मैं मंदिर में रुका कि घर में रुका, पर महत्वपूर्ण यह है कि विकल्प कितना रुका। वन में जाके भी विकल्प न रुके, तो वन में जाना बेकार है । और मंदिर में भी आके विकल्प न रुके, तो मंदिर आना बेकार है । भाई! विकल्पों को रोकने के लिये आचार्य कहते हैं- शुभ संकल्प की जरूरत है।

जैसे-जैसे शुभ संकल्प करते हैं, तो अशुभ विकल्प घटने लगते हैं। विकल्प क्या है? राग-द्वेष से होने वाले भाव विकल्प हैं।

''ममेदं इति विकल्पं''

यह मेरा है, यही विकल्प है। पहले अशुभ विकल्प हटाओ, फिर शुभ विकल्प हटाने की कोशिश करना। ज्ञानियो! ध्यान देना- घर में जब सफाई करते हो तो पहले जो अशुभ गंदगी होती है उसको हटाते

हो, कि पहले शुभ को हटा देते हो? पहले गंदगी हटाते हैं, तो शुभ के द्वारा अशुभ को दूर किया, पहले झाड़ू के द्वारा गंदगी को दूर किया और सफाई होने के बाद, झाड़ू भी अलग कर देते हो।

जो शाश्वत भाव है, सदा रहने वाला भाव है ऐसा जो आत्मा का स्वभाव है वही मोक्ष का कारण है। विकल्प मोक्ष का साधन नहीं है, विभाव परिणाम राग-द्वेषादिक परिणाम यह मोक्ष के कारण नहीं हैं।

आचार्य भगवन् कहते हैं-मोक्ष का कारण आत्मा का स्वभाव है। पदार्थ का भाव नहीं आत्मा का स्वभाव है। ध्यान देना-निज आत्मा का स्वभाव ही मेरी आत्मा का मोक्ष का कारण हैं। साधन रुप में देव, शास्त्र, गुरु हो सकते हैं। लेकिन उपादान कारण तो मेरी आत्मा का स्वभाव है। निमित्त कारण में देव, शास्त्र, गुरु, मंदिर अनेक हो सकते हैं। लेकिन उपादान कारण मेरी आत्मा का स्वभाव है। निमित्त-उपादान को सम्हालने के लिये होना चाहिये। स्वभाव की सम्हाल ही सबसे बड़ी सम्हाल है, हम कपड़े सम्हालते हैं, परिधान सम्हालते हैं, लेकिन परिणाम कितने सम्हाले। जितनी बार सिर पर से गिरने वाले पल्लू को सम्हालते हैं, उतनी बार आत्मा से गिरने वाले परिणाम को सम्हालें, तो आत्मा का कल्याण हो जाये। अपने बालों को सब सम्हालते हैं, लेकिन अपने परिणाम को सम्हालना बहुत दुर्लभ है।

ज्ञानी जीवो ! एक-दूसरे का हाथ पकड़कर चलना बहुत आसान है, लेकिन एक-दूसरे के परिणाम पकड़कर चलना बहुत कठिन है। ध्यान देना- परिणाम को पकड़कर चलना बहुत बड़ी साधना है। हम सोचते हैं कि कोई नीचे न गिर जाये, तो हाथ पकड़ लेते हैं लेकिन किसी के परिणाम नीचे न गिर जाये उसके लिये क्या उपाय किया? यदि परिणाम नीचे गिय गये तो क्या होगा ?

ज्ञानी जीवो ! इसलिये कभी किसी के परिणाम नीचे न गिर जाये। मेरे परिणाम नीचे न गिरें और मेरे निमित्त से दूसरे के परिणाम नीचे न गिरें। मैं निमित्त न बनूँ। वह अपनी बुद्धि से गिरता है, उसकी हमें परवाह नहीं, लेकिन मैं निमित्त न बनूँ। मेरे परिणाम सदा ऊपर की ओर जायें।

प्रिय आत्मन्!

यदि मैं किसी के परिणाम में निमित्त बन गया तो इसमें मेरा क्या दोष? उसके उपादान की कमजोरी है? इसमें अर्जुन के तीर का क्या दोष, वह तो कौरव की सेना की गर्दन कमजोर थी। यदि तुम कहते हो, कि मैं निमित्त बन गया, यदि तुम्हारा उपादान कमजोर न होता तो कुछ नहीं होता। ज्ञानी! यह तुम नहीं कह सकते हो। यदि हम कहते हैं, कि निमित्त का कोई दोष नहीं है उपादान को दोषी मान लेते हैं, तो भी यह दोष है। और यदि निमित्त को ही पूर्णता: दोषी मान लें उपादान को दोषी न माने तो भी दोष है।

प्रिय आत्मन्!

जैन दर्शन में एकांत नहीं, न निमित्त मात्र न उपादान मात्र जैन दर्शन तो उभय प्रधान है। निमित्त भी प्रधान है और उपादान भी प्रधान है। कहीं निमित्त प्रमुख होता है कहीं उपादान प्रमुख होता है। ध्यान देना- कहाँ निमित्त प्रधान है? कहाँ उपादान प्रधान है? जैसे आपका पैर चींटी पर पड़ा, आप निमित्त बन गये। यदि चींटी कमजोर न होती, तो नहीं मरती। इसका दोष हम चींटी को देना चाहते हैं, कि निज को देना चाहते हैं? निज का।

यदि हम ऐसा स्वीकार नहीं करेंगे, निमित्त को ही दोष देंगे। तो फिर हमारे द्वारा पाप कभी बंद नहीं होगा। हम पाप को रोक नहीं पायेंगे। एक ने कहा-यदि तुम्हारा उपादान कमजोर है, तो मैं निमित्त भी बन गया, लेकिन तुम्हारा उपादान कमजोर न होता, तो कुछ भी नहीं होता। तो कत्लखाना वाला कहता है, मेरी तलवार की धार का क्या दोष ? गाय की गर्दन ही कमजोर थी सो कट गयी।

ज्ञानी! इसलिये ध्यान से समझना, कहाँ किस तरह का व्याख्यान अनिवार्य है? कभी, यदि निमित्त प्रधान भी व्याख्यान हो तो भी एकांत में न चला जाये और उपादान प्रधान कथन हो तब भी एकांत में न चला जाये, इसलिये निमित्त, उपादान दोनों को साधकर के चलना पड़ता है।

ध्यान देना- पंख चिड़ियाँ को उड़ने में सहायक है लेकिन उसमें जो चेतना शक्ति है वह उपादान है। यदि चैतन्य शक्ति नहीं है, तो पंख होने पर भी चिड़ियाँ नहीं उड़ पायेगी। और पंख नहीं हैं, चेतना शक्ति भी है तो भी नहीं उड़ पायेगी। बिना पंख के चिड़ियाँ उड़ नहीं सकती, बिना चिड़ियाँ के पंख होने पर भी नहीं उड़ सकती। चेतना के अभाव में चिड़ियाँ नहीं उड़ सकती है और चेतना है पंख नहीं है तो भी चिड़ियाँ नहीं उड़ सकतीं। इसलिये निमित्त में पंख भी चाहिये तो उपादान में चेतना भी चाहिये। निमित्त भी कार्यकारी है तो उपादान भी कार्यकारी है दोनों कार्यकारी हैं।

आचार्य कहते हैं-निमित्त वही कहलाता है जो निमित्त कार्य करने में सक्षम हो। एक उदासीन निमित्त होता है और एक प्रेरक निमित्त होता है। जैसे-रेलगाड़ी को चलने के लिये पटरी सहायक है। और मछली को तैरने के लिये जल सहायक है, यह तो उदासीन निमित्त है लेकिन गुरु के लिये शिष्य, शिष्य के लिये गुरु प्रेरक निमित्त हैं, प्रवचन प्रेरक निमित्त है उदासीन निमित्त नहीं है। प्रेरणा देकर जो कार्य किया जाता है, वह प्रेरक निमित्त है।

ज्ञानियो! गुरु प्रेरक निमित्त होते हैं। यदि तुम्हें, हमें, स्वयं को सम्हालना हो तो उपादान को दोष देना। और दूसरों को सम्हालना हो तो निमित्तों को दोष देना। जैसे उमास्वामी जी लिखते हैं-

स्त्रीरागकथा-श्रवण-तन्मनोहरांग-निरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरण-वृष्येष्ट-रस-स्वशरीर- संस्कार-परित्यागा: पन्च ॥8॥ तत्त्वार्थसूत्र॥

यह कथन निमित्त प्रधान है। एक मुनिराज के विषय में ऐसा भी आता है कि उनके गुरु ने आज्ञा दी, कि वेश्या के नगर में चातुर्मास करना है उसके घर में चातुर्मास करना है और उन मुनिराज ने उस स्थान पर चातुर्मास किया। तो उनके गुरु को अपने शिष्य पर विश्वास था, कि हमारा शिष्य इतना मजबूत है कि कैसे भी निमित्त मिलेंगे, लेकिन उन निमित्तों में हमारा शिष्य कभी विचलित नहीं होगा। एक ओर कहते हैं- स्त्री राग कथा श्रवण तन मनोहरांग निरीक्षण इन निमित्तों से दूर रहो कार्य की सिद्धि में प्रतिकूल निमित्तों से बचना अनुकूल निमित्त जुटाना दोनों अनिवार्य हैं।

अनुकूल निमित्तों को जुटाये रखना बहुत-बहुत अनिवार्य है और प्रतिकूल निमित्तों से बचना भी उतना अनिवार्य है। ऐसा नहीं कि अनुकूल निमित्त तुम्हारे पास नहीं है और प्रतिकूल निमित्त तुम्हारे पास हैं। निमित्तों से बचने के लिये उपादान को सम्हाल कर रखें। गीले ईंधन का अभाव और सूखे ईंधन का सद्भाव तभी आग जलेगी उसी तरह से प्रतिकूल निमित्तों से बचो अनुकूल निमित्त जुटाओ।

अप्पसहावे थक्को जोई ण मुणेइ आगए विसए।
जाणइ णिय-अप्पाणं पिच्छइ तं चेव सुविसुद्धं॥62॥

अर्थ-

आत्मस्वभाव में स्थित योगी उदय में आये हुये इन्द्रिय विषयों को नहीं जानता है। किन्तु अपनी आत्मा को ही जानता है और उसी अति विशुद्ध आत्मा को देखता है।

ण रमइ विसएसु मणो, जोइस्सुवलद्धसुद्धतच्चस्स।
एकीहवइ णिरासो, मरइ पुणो झाणसत्थेण॥63॥

अर्थ-

जिसने शुद्ध तत्त्व को प्राप्त कर लिया है, ऐसे योगी का मन इन्द्रिय विषयों में नहीं रमता है। किंतु विषयों से निराश होकर आत्मा में एकमेव हो जाता है। पुन: ध्यानरूपी शस्त्र के द्वारा मरण को प्राप्त हो जाता है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-

विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य भगवन् कहते हैं- जब विकल्प रुक जाते हैं तो आत्मा का स्वभाव प्रकट होता है और वह स्वभाव ही मोक्ष का कारण है। ज्ञानी! विकल्प से हम तो थके चुके हैं लेकिन अभी तक विकल्प नहीं थके हैं। आचार्य कहते हैं-विकल्पों से नहीं थको विकल्पों को थकाओ। अभी तक तुम थकते हो और विकल्पों को करना बंद कर दोगे तो विकल्प थक जायेंगे।

हम थकते कब हैं? यदि राग-द्वेष का विकल्प आ जाये तो हम थक जाते हैं। परिश्रम करने से नहीं थकते हैं क्योंकि यदि परिश्रम-सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान-चारित्र में किया-तो कहाँ थके। बाहुबलि स्वामी एक साल तक श्रम करते रहे-खड़े रहे थके नहीं। यदि परिश्रम स्वभाव में किया जाये तो नहीं थकते है। परिश्रम विभाव में किया जाये तो थक जाते हैं।

थकाता कौन है? थकाते हैं विकल्प और जब तक हम विकल्पों से थके हैं तभी तक संसार में स्थित है। आचार्य भगवन् कहते हैं-विकल्पों से आज तक तुम थके रहे तो प्रगति नहीं कर पाये। प्रगति करने के लिये थका हुआ व्यक्ति नहीं चाहिये। थका व्यक्ति, हारा व्यक्ति, कमजोर व्यक्ति क्या प्रगति करेगा? प्रगति करने के लिये, उन्नति करने के लिये।

''श्रम फलं उन्नति''।

श्रम से थकते नहीं हैं। श्रम से तो आनंद आता है। आचार्य विशुद्धसागर जी बोले यदि अस्वस्थ रहो, तो जरुर प्रवचन करना स्वस्थ हो जाओगे, क्योंकि प्रवचन स्वाध्याय है स्वाध्याय से आनंद आयेगा और आनंद से बीमारी चली जाती है।

जब श्रम सही दिशा में होता है, तो श्रम आनंद देता है। श्रम की दिशा सही हो, श्रम का लक्ष्य सही हो, तो आनंद आयेगा। जो श्रम करते हैं वे श्रमण होते हैं यदि श्रम करने से थकते तो मुनिराज को तो हमेशा थका रहना चाहिये। लेकिन श्रम से नहीं थकते है भ्रम पूर्ण श्रम करने से थकते हैं।

''सम्यक्‌दर्शनज्ञान-चारित्राणि श्रामयन्ति इतिश्रमण:''

जो सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र में श्रम करते हैं वे श्रमण होते हैं। और श्रम का फल उन्नति है।

यदि विकल्प चल रहे है तो स्वभाव प्रकट नहीं होगा। जैसे-जल में लहरें उठ रही हैं, चंचलता है तो जल के भीतर छुपा हुआ रत्न भी दिखाई नहीं देता, जल की सतह में कितनी ही रत्न राशियाँ पड़ी हों। समुद्र की लहरों के कारण वे दिखाई नहीं दे रही हैं, यदि लहरें बंद हो जायें, तो जल में छिपी हुयी रत्न राशि दिखायी देने लगेगी। उसी तरह से जब तक विकल्पों की लहरें चलती है तब तक स्वभाव दिखायी नहीं देता है। तो आचार्य कहते हैं- विकल्पों की लहरों के थक जाने पर, रुक जाने पर आत्मा का स्वभाव प्रकट होता है, वह स्वभाव ही मोक्ष का कारण हैं।

प्रिय आत्मन्!

जो स्वभाव में ठहरा है, ध्यान देना- जल यदि स्थित है यद्यपि ऊपर से हवा भी चल रही है, या सूरज की किरणें भी पड़ रही हैं किंतु जब जल स्वभाव में होता है तो निज शीतलता ही उसका स्वभाव होती है। जितना कष्ट अपन को जीवन काल में नहीं आ पायेगा, उससे कई गुना कष्ट सुकुमाल, सुकौशल, गजकुमार को आया कि नहीं आया ? आया। लेकिन आने के बाद भी ये यह नहीं जान पाये कि यह कष्ट है, क्योंकि स्वयं में इतने लीन हो गये कि ज्ञान को कष्ट की ओर नहीं दौड़ाया, यदि ज्ञान को कष्ट की ओर दौड़ाते तो कष्ट महसूस होता, लेकिन ज्ञान तो स्वभाव की ओर दौड़ रहा था।

ध्यान देना-आपके हाथ में टार्च है। टार्च का प्रकाश एक समय में एक ही ओर होगा, उसी तरह आत्मा का ज्ञानोपयोग है। ज्ञानोपयोग एक समय में एक ही ओर होगा, चाहे तो कष्ट की ओर ले जाओ, चाहे अपने आत्मा की ओर ले जाओ। जिस समय कष्ट की ओर चला जायेगा, उस समय आत्मा स्वभाव का भाव नहीं रह पायेगा और जिस समय स्वभाव की ओर जायेगा उस समय कष्ट की ओर नहीं जायेगा। कष्ट तो आये हैं लेकिन उपयोग स्वभाव की ओर रहा।

प्रिय आत्मन्!

जब आपका चित्त एक कार्य में संलग्न हो जाता है, उस समय अन्य व्यक्ति आपके सामने आते भी हैं, जाते भी हैं, लेकिन आपको विकल्प नहीं होता है, क्योंकि आपका ज्ञान एक में लगा हुआ है। उसी तरह जब मुनि-पारसनाथ, सुकुमाल, सुकौशल आदि उपसर्ग जेताओं का उपयोग आत्मा के स्वभाव लगा, उपसर्ग में नहीं लगा। उपसर्ग उनने जीता है, जो उपसर्ग में चित्त नहीं ले गये, जिनका चित्त उपसर्ग में चला गया वे उपसर्ग नहीं जीत सकते। उपसर्ग वे जीतते हैं, जो स्वभाव में चले जाते हैं।

उपसर्ग किसने जीता है? जो अपने स्वभाव में डूब गया जिसे बाहर का भाव ही नहीं है पत्थर बरसे, बिजली बरसे ऊपर से क्या-क्या हो रहा है पता ही नहीं है। क्योंकि ध्यान का कवच इतना शुद्ध है,

एकाग्रता का कवच इतना शुद्ध है, कि भीतर में इतनी लीनता हो गयी, कि बाहर का कुछ पता ही न पड़े। जैसे आप जब कमरे के अंदर बंद हो जाते हैं, तो बाहर की हवा का प्रभाव आप पर नहीं पड़ता है, उसी तरह योगी ने अपने आपको भीतर से इतना मजबूत कर लिया है, कि बाहर के उपसर्ग करने वाले उपसर्ग करते रहे। उसी तरह योगी अपने भीतर में उपयोग इतनी गहराई तक ले गये, कि बाहर की कोई तकलीफ उन्होंने महसूस नहीं की।

जैसे-कछुआ जल के ऊपर आता है, तो बच्चे या तो चावल डालेंगे, या कंकर डालेंगे लेकिन ज्यों ही कंकर आदि की चुभन आती है, तो कछुआ नीचे गहरायी में डूब जाता है। जब वह गहरायी में डूब जाता है, तो चावल डालो या कंकर डालो उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वही स्थिति योगी के साथ है, जैसे-कछुआ जल की सतह में जाकर के छुप जाता है उसी तरह योगी अपने आत्मा के स्वभाव में जाके डूब जाता है, लीन हो जाता है, विलीन हो जाता है, तो फिर बाहर का प्रभाव नहीं पड़ता है।

ध्यान देना-मौसम गर्मी का हो तो कुँए का पानी ठण्डा निकलता है और मौसम ठण्डी का हो तो कुँए का पानी गरम निकलता है। नल का पानी गर्मी के मौसम में गरम निकलता है और ठण्डी के मौसम में ठण्डा निकलता है। जो नल का पानी है वह बाहर के वातावरण से प्रभावित हो रहा है, ठण्डी के मौसम में ठण्डा हो रहा है और गर्मी के मौसम में गरम हो रहा है। लेकिन कुँए के पानी की विशेषता यह है कि ऊपर की सतह का पानी ठण्डायेगा-ठण्डी में। गरमायेगा-गर्मी में। लेकिन हमने जो बाल्टी डाली है, इतनी नीचे बाल्टी डाली है कि वह नीचे का पानी ठण्डी में गरम रहता है और गर्मी में ठण्डा रहता है, क्योंकि वायु और सूरज की किरणों का प्रभाव नीचे तक नहीं पहुँच रहा है। ठण्डी हवाओं के कारण पानी ठण्डा रहा था लेकिन वह हवा कुँए में नीचे नहीं पहुँच रही। कहाँ तक ठण्डायेगा? जहाँ तक ठण्डी हवायें मिलेगी और ठण्डी हवायें नहीं मिलेगी तो नहीं ठण्डायेगा जिस तरह से नल के पानी और कुँए के पानी में अंतर है वैसा ही अंतर एक श्रावक और श्रमण में होता है।

प्रिय आत्मन्!

आत्म स्वभाव में जो स्थित है-वह इन्द्रिय विषयों को नहीं जानता। जैसे कुँआ का पानी बाहर की हवाओं को नहीं जानता है। सूरज की किरणों को नहीं जानता है। उसी तरह से आत्म स्वभाव में लीन हुआ साधु इंद्रियों के विषयों को जानता ही नहीं है। ज्ञानी ! बोलता तो है, देखता भी है, चलता भी है लेकिन फिर भी।

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरी-कृतात्म-तत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्चति ।।41।। इष्टोपदेश ।।

अपने आत्म-स्वभाव में इतना स्थिर हो गया है कि चलता हुआ पर भी नहीं चलता। जैसे-बस चल रही है, ड्राइवर अपने भीतर में चल रहा है, पाँव से नहीं चल रहा है, हाथों से नहीं चल रहा, लेकिन उपयोग से ड्राईवर चल रहा है, तो कथंचित चल रहा है और कथंचित नहीं चल रहा है। जैसे-ड्राईवर अपने उपयोग में चलता है, वैसे ही साधु अपने भीतर स्वभाव में चलता है, बाहर में नहीं चलता। जब बाहर में चल रहा है, तब भी बाहर में नहीं चल रहा, क्योंकि लक्ष्य भीतर में चलने का है।

ज्ञानी ! देख क्या रहे हो, यह महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण यह है कि इसमें आप तत्त्व क्या देख रहे हो। उपयोग की विशुद्धि कितनी है, उसी वस्तु को उपयोग की शुद्धि से देखा, तो देखने पर भी नहीं देखा। बोला, किंतु बोलने पर भी नहीं बोला। क्यों? यदि किसी ने राग-द्वेष आदि में बोला, तो वह गलत बोलता है और किसी ने एक घंटे भी जिनवाणी बोली, तो भी कुछ नहीं बोला।

महापुरुष बोलने पर भी नहीं बोले, चलने पर भी नहीं चले, क्यों? स्वरुप में इतने निश्चल हो गये, कि बाहर में चलने पर भी, पूरी सावधानी से चल रहे हैं, लेकिन फिर भी वह चलना-चलना नही है।

आचार्य कहते हैं-अपनी आत्मा को जानो। भैया टार्च जला के क्या आपने अपने कुर्ते के बटन देखे? नहीं देखे। क्या दिख नहीं सकते थे? दिख तो सकते थे। जो प्रकाश हम सामने कर रहे हैं, जब जिस टार्च के द्वारा सामने के व्यक्ति दिख सकते थे, क्या उस टार्च के प्रकाश में आपको अपने कुर्ते के बटन नहीं दिख सकते थे? दिख सकते थे। लेकिन कभी हमने आवश्यकता नहीं समझी। इसलिये टार्च का प्रकाश अपनी ओर नहीं किया, उसी तरह से हमने जिस ज्ञान के द्वारा संपूर्ण नगर को जाना है, संपूर्ण देश-विदेश को जाना है, उसी ज्ञान के द्वारा क्या अपने आपको नहीं जान सकते? जिस ज्ञान के द्वारा संपूर्ण जग को जान रहे हो क्या उस ज्ञान के द्वारा निज को नहीं जान सकते? जान तो सकते हैं। लेकिन क्यों नहीं जाना? क्या जानने की चीज आपके पास नहीं है? टार्च तो आपके पास है लेकिन टार्च का प्रकाश आपने अपने ऊपर डाला नहीं, उसी तरह ज्ञान का उपयोग मैंने अपने लिये किया ही नहीं।

टार्च तो अपनी है, लेकिन टार्च से आपने अपने बटन ही नहीं देखे। उसी तरह ज्ञान तो अपना है, जिस तरह ज्ञान से हमने पर को जाना है, उस ज्ञान से हमने अपने ज्ञायक स्वभाव को नहीं जाना।

आचार्य कहते हैं- जब आत्मा आत्म स्वभाव में स्थिर हो जाता है, तो इंद्रियों के विषयों को नहीं

जानता। जैसे कुँए के तल का पानी बाहर की हवाओं को नहीं जानता। उसी तरह जब साधु अपने स्वभाव में लीन होता है, तो बाहर का कुछ पता ही नहीं पड़ता है।

जिसकी जितनी एकाग्रता होगी-उसे बाधक तत्त्व बाधा नहीं पहुँचायेगें। इसलिये अपनी एकाग्रता को बढ़ाओ, न कि बाधक तत्त्वों को हटाओ। हम जितना उपयोग दूसरों को शांत करने में लगाते हैं, उतना उपयोग यदि स्वयं शांत होने में लगा दें, तो दूसरों को शांत करना ही न पड़े।

ज्ञान एक समय में एक जगह होगा-या तो पंचेन्द्रिय के विषयों में ज्ञान चला जाये, या फिर पंच परमेष्ठी में ज्ञान चला जाये, या फिर अपने स्वभाव में ज्ञान चला जाये, जब हम इस पेन को जानने का प्रयास कर रहे हैं, उतने समय तक आत्मा के अनंत गुणों को जानने का प्रयास नहीं कर रहे हैं। एक पेन के जानने में मैंने कितनी हानि की? कि आत्मा के अनंत गुणों को नहीं जाना।

एक पिता बाजार में सब्जी लेने गया और सब्जी लेते समय उसने सब्जी का मोल-भाव किया और सब्जी को ठहराते-ठहराते दस रुपये की सब्जी बेचने वाले ने बतायी और पिता ने नौ रुपया में ले ली एक रुपये कम हुआ, बेटा पिता के साथ था-देखो बेटे! ऐसे खरीदी जाती है सब्जी। देखो, उसने दस रुपये बताये थे, मैंने नौ रुपये में ले ली। ओहो! बेटा बोला- पिताजी जल्दी चलो-जल्दी चलो, बेटा तुझे जल्दी पड़ी है, देख मैंने एक रुपया बचा लिया। पिताजी ! दस बजकर बीस मिनिट हो गये, महाराज का प्रवचन पौन घंटे का निकल गया। अभी तुम एक रुपये और बचाओगे, तो दो रुपये में पूरा प्रवचन बिक गया। इन बातों पर विचार करना।

प्रिय आत्मन्!

एक मस्तिष्क उतना काम कर सकता है, जितने हजार हाथ काम करते हैं। इसलिये तो कहते हैं, यदि सभा में एक विद्वान आ गया, तो समझो-कि सभा में पाँच सौ श्रावक आ गये। काम हाथ से नहीं होता है, काम बुद्धि से होता है।

जैसे-मछली जल को छोड़कर के आग की ओर नहीं जाती है, वैसे ही साधु आत्मा के स्वभाव को छोड़कर के इंद्रिय के विषयों की ओर नहीं जाता है। यदि मछली जल को छोड़कर के बाहर निकलती है तो वह कष्ट पाती है, बाहर निकलने पर भी कष्ट पाती है तो फिर अंगारों पर चले, तो उसके कष्टों का तो कहना ही क्या है? उसी तरह साधु आत्मा के स्वभाव को छोड़कर यदि बाहर आता है तो कष्ट पाता है फिर इंद्रियों के विषयों में तो अग्नि के समान जलेगा ही जलेगा।

ण मरइ तावेत्थ मणो, जाम ण मोहो खयं गओ सव्वो।
खीयंति खीणमोहे, सेसाणि य घाइकम्माणि ।।64।।

अर्थ-

जब तक संपूर्ण मोह क्षय को प्राप्त नहीं होता है, तब तक इस आत्मा का मन नहीं मरता है। मोह के क्षीण होने पर शेष घाति कर्म नष्ट हो जाते हैं।

णिहए राए सेण्णं, णासइ सयमेव गलियमाहप्पं।
तह णिहयमोहराए, गलंति णिस्सेस घाईणि ।।65।।

अर्थ-

राजा के मारे जाने पर जैसे जिसका माहात्म्य गल गया है, ऐसी सेना स्वयं ही नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार मोह रूपी राजा के नष्ट हो जाने पर समस्त घातिया कर्म स्वयं ही गल जाते हैं।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य भगवन्! इस कारिका, के माध्यम से कहते हैं-**''स्यात्कार जीविता जीयात्''** जिनवाणी का, जीवन क्या है? प्रवचन का जीवन क्या है? स्याद्वाद-जिनवाणी का जीवन है। स्याद्वाद प्रवचन का जीवन है। स्याद्वाद-जिसका जीवन है। जिसके बिना-जिनवाणी जी नहीं सकती, रह नहीं सकती, जिस तरह से हृदय यदि नहीं है, तो मनुष्य जी नहीं सकता। उसी तरह से स्याद्वाद जिनवाणी का हृदय है। जिनवाणी का हृदय स्याद्वाद है। यदि स्याद्वाद है, तो आप जी सकते हो। अगर स्याद्वाद नहीं है तो जैनों को जीने का अधिकार नहीं है। जैन धर्म का प्राण है-स्याद्वाद। प्रिय आत्मन्! अनेकांत कहता नहीं है। स्याद्वाद कहता है। अनेकांत होता है, अनेकांत वस्तु का स्वरूप है, स्याद्वाद वस्तु के कथन की शैली है।

स्याद्वाद की औषधि के बिना, एकांत के पक्षाघात का इलाज नहीं हो सकता है। एकांत का लकवा रोग, बिना स्याद्वाद के ठीक हो ही नहीं सकता है। जिसके पास स्याद्वाद की परमौषधि है, वही वैद्य इलाज कर सकता है। इसलिए हम कहते महावीर भगवान-को ''निरापेक्षो बन्धुं आकस्मिकभिषड्'' हे प्रभु! आप नि:शुल्क, आकस्मिक वैद्य हैं। कि आप से इलाज कराने में पैसा-भी नहीं लगता है और बुलाना भी नहीं पड़ता है। आप ऐसे नि:शुल्क वैद्य मिले हैं।

माहा मोहातकं प्रशमनपरा-कस्मिक भिषड्.।
निरापेक्षो-बंधु-र्विदित महिमा मंगलकर:।
शरण्य: साधूनां भव-भय-भृता मुत्तमगुणो,
महावीर स्वामी नयन पथ गामी भवतु में (न:)।।6।।

जो मोह की बीमारी है-कैसी है? महामोह रूपी जो बीमारी है, असाध्य तो नहीं है। है तो साध्य ही, लेकिन सभी जगह इलाज नहीं है। महामोह की बीमारी ऐसी होती है, कि रोग असाध्य नहीं है, साध्य है। किन्तु इसका इलाज हर जगह नहीं मिलता है। और ऐसी बीमारी है, जो खुजली की तरह, आनंद भी देती है, और पीड़ा भी देती है। जब खुजली होती है तो खुजाने में आनंद भी आता है, और जब खुजला लेते हैं, तो बाद में पीड़ा भी होती है। यह मोह की बीमारी, ऐसी है कि तत्क्षण आनंद महसूस होता है। आनंदाभास, सुखाभास की प्रतीति कराती है और बाद में रूलाती है।

जैसे तलवार की धार पर लगी, हुई शक्कर की चासनी, चाटने में, मीठी तो लगती है, लेकिन जीभ कटने पर दु:ख ही देती है। ध्यान देना- इसी तरह जो हमारा पारिवारिक राग है, ये तत्क्षण सुख तो देता है। लेकिन ये सुख नहीं सुखाभास है।

प्रिय आत्मन्!

ऐसी ही स्थिति है, जो एकांत मत में पड़ जाते हैं। तो उनके इलाज, करने के लिए परमौषधि है। ''महामोहातंक, प्रशमन परा'' शमन करने के लिए (प्रशमन) अच्छी तरह से शमन करने के लिए, उत्कृष्ट, श्रेष्ठ, आकस्मिक, अचानक दौड़े आए, अचानक चले आए, इधर बीमार हुए उधर चले आए हम तो बुला ही नहीं पाए वैद्य को, भैया अद्भुत वैद्य हैं। प्रिय आत्मन्! रामवाण औषधि देते हैं। हाँ रामवाण औषधि से तात्पर्य क्या है? कि एक दबा ले लो और रोग समाप्त। कुल अड़सठ लाख निन्यानवे हजार पाँच सौ चौरासी रोग हैं शरीर में। ये तो शरीर के रोग की संख्या है। और आत्मा में कर्मो के रोग की संख्या कितनी है? जितने प्रकार के विभाव परिणाम हैं, उतने प्रकार की बीमारी। असंख्यात लोक प्रमाण

विभाव परिणाम हैं, और जितने प्रकार के विभाव परिणाम हो सकते हैं, जितने प्रकार के विचार हो सकते हैं, जितने अशुभ भाव उतने, प्रकार की बीमारी। अशुभ विचार बीमारी हैं। शुभ विचार औषधि है।

स्वस्थ होने की औषधि अकेले हर्र, बहेड़ा, आँवला ही नहीं है। अकेले त्रिफला से पेट साफ तो हो जाएगा, लेकिन हृदय को साफ करने के लिए तो सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान, चारित्र का त्रिफला चाहिए। रत्नत्रय का त्रिफला, जब सेवन करेगा, तो आत्मा की कलुषता, शांत हो जाएगी। पेट को साफ करना हो तो त्रिफला खिला दो, लेकिन हमारे बाहुबलि भगवान कहते हैं। जो बारह महिने लगातार रत्नत्रय का एक सा सेवन कर लेता है। उसे कैवल्यज्ञान हो जाता है।

प्रिय चैतन्य आत्माओ!

जैनी सिद्धांत पद्धति-ऐसी जिनवाणी की सिद्धांत पद्धति है। वह सिद्धांत पद्धति, जयवंत हो। यह जैनों की सिद्धांत पद्धति जयवंत हो। जिस जैनी सिद्धांत पद्धति में स्याद्ववाद जिसका जीवन हो और एकांत के निराकरण की औषधि हो। मोह की बीमारी का इलाज जिस किताब में लिखा है। उस किताब का नाम है, जिनवाणी। प्रिय आत्मन्! लोहे को सोना बनाने की विधि, तो समयसार में लिखी है। लेकिन, आत्मा को परमात्मा बनाने की विधि भी समयसार में है। संसार में अन्य चीजों की विधि लिखी है। लेकिन आत्मा को परमात्मा बनाने की विधि यदि किसी में लिखी है तो वह एक मात्र जिनवाणी में। पर को अपना बनाने की और अपने को पर का बनाने की कला, तो संसार के सभी प्राणी जानते हैं। लेकिन आत्मा को परमात्मा बनाने की कला यदि कहीं हैं तो वह, जिनवाणी में समाहित है। इसलिए जिनवाणी पढ़ो। भैया! ये शास्त्र ले जाओ, आप घर पर पढ़ना। महाराज! शास्त्र तो हमारे घर में रखे हैं। पढ़ते हो? बेटा! नहीं पढ़ते हैं। पढ़ोगे नहीं तो पड़े रहोगे।

क्यों नही पढ़ते? पढ़ो और बढ़ो। ज्ञानी जीवो! रति किसे कहते हैं? अरति किसे कहते हैं? राग रूप परिणाम को रति कहते हैं। और राग रूप परिणाम नहीं होना अरति है। लेकिन सुनिए जिस कषाय के उदय में जीव दुर्जनों में दुष्ट कार्यो में प्रीति करें वह रति है। और व्रत के साधन, स्वाध्याय के साधन तपस्या के योग्य अवसर, जीवन, स्वाध्याय के योग्य सामग्री मिलने पर भी जो जीव स्वाध्याय नहीं करते, तप नहीं करते, आचार्य कहते हैं-ये अरति कषाय का उदय है। भैया! ललितपुर में इतनी सुंदर व्यवस्था है। कमरा बहुत अच्छा है। तखत लगा हुआ है। चौकी लगी हुई है। अलमारी में शास्त्र रखे हुए हैं। संपूर्ण व्यवस्था है। इतना होने के बाद भी स्वाध्याय कर रहे, कि नहीं कर रहे? स्वाध्याय नहीं कर रहे तो आचार्य कहते हैं-अरति नोकषाय का उदय है। यह अरति का उदय चल रहा है। अरूचि भिन्न है। अरति भिन्न है।

अरति नोकषाय है, लेकिन अरूचि और रूचि कषाय नहीं है। अरति-मेरे लिए शास्त्र आपने दिये। और मैंने ले जाकर के गोदरेज में रख दिया, कौन सी कषाय का उदय चल रहा है? पन्द्रह दिन से खोला नहीं है कौन सी कषाय है? अरति कषाय है। मेरे सामने जिनवाणी रखी चौकी पर, मै जिनवाणी माँ का स्वाध्याय तो नहीं कर पाया, जिनवाणी माता को पढ़ना भूल गया और ममता की चर्चा में लीन हो गया, यह क्या है? अरति कषाय का उदय है। क्योंकि, उतने समय जिनवाणी से अरति हुई है। आपका कीमती समय अन्य चर्चा में लीन हो गया। ओहो प्रभु! तप के योग्य जीवन है, तपस्या नहीं करना। व्रत के योग्य अवसर है-व्रत ले सकते हैं, व्रत पाल सकते हैं, लेकिन फिर भी व्रत नहीं ले रहे। क्यों नहीं ले रहे हैं? जब आपको माल पसंद है, क्वालिटी अच्छी है कल्याणकारी है, फिर आप क्यों नहीं ले रहे? अरति। यह अरति कषाय का उदय है। ध्यान से सुनना। अकेले स्त्री से खेलना ही रति नहीं है, पुत्र और नाती, पोता को खिलाना भी रति है। वरांग चरित्र में आचार्य जटासिंहनंदी महाराज कहते हैं कि रति मात्र स्त्री से ही नहीं होती है। रति-जिस द्रव्य में राग हो जाए उस द्रव्य से रति। जिस द्रव्य क्षेत्र काल भाव में, राग उत्पन्न हो जाए, वही रति, नोकषाय का कारण है। हम युवा अवस्था में स्त्री के साथ जीवन बिता देते हैं। वृद्धा अवस्था होती है तो नाती, पोता में रति चली जाती है। छूटा क्या है? पहले, स्त्री में पागल थे, और अब पोते में पागल हो गए। क्या हुआ पहले स्त्री के साथ घूमा करते थे, अब पोता, पोती, नाती को कंधे पर लेकर घूम रहे हो क्या हुआ? कुछ अंतर नहीं पड़ा, चेंज हुआ है, सिर का भार कंधे पर रख लिया। क्या, अंतर पड़ गया? भार तो भार ही है। राग तो राग ही है। ध्यान देना- मात्र स्त्री में ही रति नहीं होती है या पुरुष में ही रति नहीं होती है। आचार्य कहते हैं-पुत्र, पोता, पोती, नाती, नता इनमें भी राग जा रहा है। तो यह भी रति है। पण्डित जी तुम्हारी विद्वतता का यही उत्कृष्ट फल है कि अध्यात्म में रति होना चाहिए। रति कामदेव का पर्यायवाची ही नहीं रति नोकषाय भी है।

आज इतना अच्छा प्रकरण पढ़ने को मिला है, कि मेरी अलमारी में शास्त्र रखे हैं। लेकिन शास्त्र को मैंने क्यों नही पढ़ा? आठ दिन से शास्त्र खोला क्यों नही? जब दो मिनिट श्रीमंत सेठ को दिए जा सकते हैं, तो दो मिनिट सिद्धांत शास्त्र को नहीं दिए जा सकते हैं? बोलो! विचारणीय बात है कि नहीं? घर में आने वाले प्रत्येक महानुभाव के लिए समय दे सकते हैं, लेकिन घर में रखी हुई जिनवाणी को समय क्यों नही? आने वाले से रति है। और जो घर में जिनवाणी रखी उससे रति नहीं है। ऐसा ही प्रसंग था। नगर में कर्फ्यू लगा था। प्रतिदिन उपन्यास बेच करके जीवन चलाने वाला व्यक्ति आपकी गली में घूमा और सेठ जी के पास जा पहुँचा। सेठ जी! एक उपन्यास आप खरीद लीजिए। खरीद लीजिए, क्योंकि मुझे भोजन की आवश्यकता है।

मैं आप से भोजन नहीं माँग सकता, लेकिन आप उपन्यास खरीद लेंगें तो हमारे घर का भोजन तैयार हो जाएगा। सेठ जी ने कहा-देखिए इस अलमारी पर उपन्यास रखा है। उसने कहा-सेठ जी ! यह उपन्यास नहीं है, यह आपकी जिनवाणी होगी। सेठ जी बोले आपसे किसने कह दिया कि यह मेरा धर्म ग्रंथ जिनवाणी होगा।

सेठ साहब! इसलिए कह दिया है कि इतनी धूली उपन्यास पर नहीं लगती, आप इस उपन्यास को देखिए। इस उपन्यास को आप पढ़ेंगें, विशेषता यह होगी कि, उपन्यास में धूली नहीं लगेगी। ''यह-बात अलग है, कि उपन्यास के पढ़ने वाले के जीवन में धूली लग जाए, लेकिन उपन्यास पर धूली नहीं लगेगी। क्योंकि, उपन्यास से रति है। उसे हाथ में लिए रहोगे, विस्तर पर सोओगे तो साथ में रखोगे। लेकिन जिनवाणी जहाँ रखी है, सो रखी है। ज्ञानी जीवो! ध्यान देना-जो जिनवाणी रखी है। यदि उस रखी को आप, अगर विलोम कर दें तो क्या बन जाता है? खीर। ज्ञानियो! जो अलमारी में रखी है, वह आत्मा की खीर है। प्रिय आत्मन्! आचार्य कहते हैं। मोह की जो बीमारी है। उसकी औषधि जिनवचन हैं। उसका इलाज माँ जिनवाणी है। प्रिय आत्मन् ! मोह को विलय करने का उपाय क्या है? आचार्य कहते हैं

जा जाणदि अरिहंतं, दव्वत्त गुणत्त पज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं, सो जादु तस्य मोह लयं॥

जो अरिहंत देव को गुणों को पर्यायों को जानता है। वह अपनी आत्मा को जानता है, और उसका मोह प्रलय को प्राप्त हो जाता है।

प्रिय आत्मन्!

जब तक मोह का नाश नहीं होता है, तब तक मन नहीं मरता है। मन को शांत करने के लिए मोह को शांत करना, आवश्यक है। इसलिए आचार्य कहते हैं-मोह के क्षीण हो जाने पर शेष घातिया कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। सब कर्मो में सबसे बलवान कर्म मोहनीय कर्म है। सबसे पहले नष्ट होता है मोहनीय कर्म, सबसे अधिक स्थिति किस कर्म की है? मोहनीय कर्म की। सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कर्म बंध बंधता है-मोहनीय। और यह सत्तर कोड़ाकोड़ी, बाँधता कौन है ?

जब एक चारित्र धारी का अनादर यदि स्वप्न में भी होगा, तो हम भी चारित्र को धारण नहीं कर पायेंगें। चारित्रवान की जितनी विनय पूजा करेंगें, उतने जल्दी चारित्र को अंगीकार करेंगे। हमें दिखाई दे रहा है कि-जीवन निकल गया, लेकिन ज्यों के त्यों खड़े हैं, क्योंकि ज्ञान आने पर ऐसा अभिमान कर

लिया, कि चारित्रवान की विनय नहीं कर पाते हैं, तो वह जीव चारित्र को प्राप्त नहीं कर पाते हैं। इसलिए ज्ञानियो ! भले ही ज्ञान कम हो, लेकिन कभी किसी चारित्रवान की अविनय न हो। ज्ञान यदि पीतल है, तो श्रद्धान चाँदी है, चारित्र सोना है। ध्यान देना-ज्ञान की कीमत ज्ञान कितना भी होगा पीतल की तुलना। आवश्यक तो है, लेकिन चारित्र भी अनिवार्य है। आचार्य कहते हैं-चारित्रमोहनीय कर्म का बंध किनसे होता है? दर्शन मोहनीय कर्म का बंध किनसे होता है ?

जब तक कारण नहीं हटाओगे तब तक कार्य नहीं हटेगा। कषाय के उदय में जब तीव्र परिणाम होता है, तो उससे चारित्र मोहनीय कर्म का बंध होता है। संसार में कहीं भी जाके कषाय कर लेना लेकिन कभी भी मंदिर में आकर के मंदिर के द्वार पर कभी कषाय मत करना। यदि मंदिर में आके कषाय करते हैं। मंदिर में आके, हम हे प्रभू ! आपको सारे संसार का गीत सुनाता हूँ। और हम मंदिर के अंदर बैठकर के गालियाँ गाऐं, तो ज्ञानियो ! जीवन में ध्यान रख लेना, इससे चारित्र मोहनीय का तीव्र बंध होता है। हम फिर लाखों-लाखों सेवायें करते रहेंगें। लेकिन वह सेवायें हमारी निर्मूल्य हो जाऐंगी। इसलिए मैंने आपसे पहले भी कहा था। यदि तुम दुकान पर बैठे नौकर को कुछ कह रहे हो, तो वह वचन आपका नौकर तक ही नहीं रहता, तीर्थंकर तक पहुँचता है।

एक बार फिर से सुनो। आपकी दुकान पर जो नौकर है। उस नौकर को भी तुमने बुरे वचन कहे हैं तो मात्र वह नौकर के कान तक नहीं रहेंगे। वे तीर्थंकर के समवशरण तक पहुँचते हैं। पूरी त्रसनाली में जो-जो जीव भरे पड़े हैं। सब तक पहुँचेंगे। यदि आपने एक वचन कहीं पर भी उच्चारा है तो वह वचन कहाँ रह गया, क्या आपके मंदिर में? मकान में? घर में? दुकान में? नहीं। वचन विखरेगा। और वही आपको प्रभावित करेगा। जैसे कमरे के अंदर जलाई हुई अगरबत्ती पहले कमरे को सुगंधित करती है। बाद में उसकी खुशबू बाहर जाती है। उसी तरह से किसी घर के कोने के बिल में मरा हुआ चूहा पड़ा हो तो दुर्गंध पहले उस घर को दुर्गंधित बनाती है, बाद में बाहर वाले को दुर्गंध देती है। उसी तरह जिसके मुख से दुर्वचन निकलता है। पहले उसको अपवित्र कर देती है। बाद में किसी दूसरे को अपवित्र करती है।

प्रिय आत्मन्!

ध्यान देना भैया! यदि घर के किसी कोने में चूहा मर गया, भले ही न दिखे लेकिन दुर्गंध तो आती ही है। और जब तक पड़ा रहेगा तब तक आती रहेगी। इसीलिए जब तुम चूहे को निकाल देते हो, तो वह दुर्गंध समाप्त होती है। उसी तरह मन के अंदर से विद्वेष को जब निकाल दोगे, तो यह विद्वेष मन के कोने में पड़े चूहा कि तरह है। प्रिय आत्मन्! ध्यान देना- अपने वचन को अगरबत्ती की तरह महकाओ, जिससे

आपको भी सुगंध मिले, दूसरों को भी सुगंध मिले और सबको सुगंध मिले। ध्यान देना-यह मत सोचना की यहाँ कौन देख रहा है। जैसे तुम्हारी अगरबत्ती की सुगंधी से सुगंधित होकर ग्राहक तुम्हारी दुकान तक आ जाते हैं। उसी तरह तुम्हारी वचन सुगंध से सुगंधित होकर मुनिराज भी रुक जाए। वचन इतने महान निकलना चाहिए। मोह के उदय में जीव भूल जाता है, कि मैं किस द्रव्य में हूँ? मैं किस क्षेत्र में हूँ? मैं किस काल में हूँ? मैं किस भाव मैं हूँ? स्वभाव ही भूल गया। क्रोध भी तो मोह की संतान है, मोह में पच्चीस कषायें हैं। और दर्शन मोह को ले ले तो तीन। जब तक मोह नहीं मरेगा, तब तक ये मन नहीं जीता जा सकता। मन को जीतने के लिए मोह को जीतना होगा। जैसे-सेना को जीतने के लिए राजा को परास्त करना आवश्यक है। यदि राजा पर विजय पा ली जाए तो सेना पर विजय स्वत: हो जाती है। उसी तरह मोह की जीतने पर शेष कर्म जीते ही जाते हैं।

मोहक्षयाज्ज्ञान दर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम् ।।1।। तत्त्वार्थ सूत्र ।।

सबसे पहले मोहनीय कर्म नष्ट होता है। कर्मों में मोहनीय सबसे बलवान, इंद्रियों में रसना सबसे बलवान, गुप्तियों में मन गुप्ति सबसे बलवान, व्रतों में बह्मचर्य सबसे बलवान और इनको जिसने जीत लिया वह इस संसार का भगवान। मुनिराज को भगवान क्यों कहते हैं? तो आचार्य भगवन् ने उत्तर दिया मूलाचार में।

भिक्कं वक्कं हिययं सोधिय जो चरदि णिच्च सो साहू।
एसो सुद्वद साहू, भणिओ जिण सासणो भयवं।।

आचार्य कुंदकुंद भगवान आज के मुनिराज को भगवान कहते हैं। जो मुनि भिक्षा को शोध करके लेते हैं। वचन को शोधकर के बोलते हैं। हृदय को शोधकर आचरण करते हैं। जिनके भोजन की शुद्धि हो, जिनके वचन कि शुद्धि हो और जो हृदय से शुद्ध हो, ऐसे मुनिराज को कुंदकुंद ने जिनशासन में भगवान कहा है।

प्रिय आत्मन्!

यदि मुनिराज आपके आँगन में आ गए तो समझना कि हमारे आँगन में भगवान आ गए।

कैसा पुण्य उदय में आया, सबके मनके सुमन खिले हैं।
समाचार क्या हमें मिला है, घर बैठे, भगवान मिले हैं।।
गुरुदेव क्या नगर में आए, घर बैठे भगवान मिले हैं।

यही विशेषता है, तभी तो कहना पड़ता है-

महावीर से मिले नहीं हम, इसका हमें नही गम है ।
निर्ग्रंथ मुनिवर हमें, मिले जो, महावीर से क्या कम है?

प्रिय आत्मन्!

भावी सिद्ध भगवान, अरिहंतो के बीज रूप, अगर बीज नहीं होगा तो वृक्ष नहीं होगा और निर्ग्रंथ नहीं होगा तो अरिहंत नहीं होगा। बिना बीज के जैसे-वृक्ष नहीं होता, वैसे ही बिना संत बने कोई अरिहंत नहीं होता है।

जब तक मोह नहीं मरेगा, तो मन के विकल्प नही हटेंगे। मोह टूट जाए, छूट जाए तो विकल्प छूट जाते हैं। मात्र मोह को तोड़ दो विकल्प छूट जायेंगे। जिससे मोह होता है, उसमें विकल्प होते हैं। और मोह नहीं है तो अब विकल्प नहीं रह गया। बोम्बे में बेटे ने बिल्डिंग खरीदी बेटे ने पिता जी को समाचार दिया, पिता जी! मैंने एक बिल्डिंग खरीदी है। पिता जी खुश। बेटे अच्छा किया आपने एक करोड़ की बिल्डिंग खरीदी। दूसरे दिन फिर समाचार दिया। पिता जी जो एक करोड़ की बिल्डिंग खरीदी थी, वह आज सवा करोड़ में बेच दी है। पिता जी और खुश, सवा करोड़ में बेच दी है। शाम को एक समाचार फिरसे आया पिता जी, जो एक करोड़ की बिल्डिंग बेची थी, उस बिल्डिंग में आग लग गई है। पिता जी निश्चिंत है, बिल्डिंग तो आपने बेच ही दी थी? पिता जी! बिल्डिंग तो बेची थी, सौदा किया था लेकिन रजिस्ट्री और पेमेन्ट नहीं हुआ था।

इसलिए आग लगने से नुकसान हो गया। पिता जी कहते हैं। बड़े दु:ख की बात है। आग लग गई बताओ। किसका दुख है आग लगने का दुख नहीं है कि कितने जले कितने मरे? इसका दुख नहीं है। लेकिन पेमेन्ट मिल गया होता, तो दु:ख नहीं था।

दु:ख किस बात का है ? लेकिन दूसरे दिन समाचार आता है। पिता जी आग लग जाने से मकान में जो अनैतिक तत्त्व रहते थे वह भाग गये और मकान पूरा जलकर खाली हो जाने से उसकी कीमत दोगुनी दो करोड़ हो गई है। क्योंकि जगह खाली हो गई। अब पिता जी फिर खुश हैं। प्रफुल्लित हैं। बताओ कौन हँसा रहा ? कौन रूला रहा ? मोह, हँसा रहा, और मोह रूला रहा है। बताओ, हँसना अच्छा है कि रोना अच्छा है। ज्ञानी जीवो ! ज्ञानियों के लिए हँसना भी नोकषाय है और रोना भी नोकषाय है। हास्य भी नोकषाय है और शोक भी नोकषाय है। इसलिए ज्ञानी जीवो ! हँसना भी मना हैं और रोना भी मना है।

यदि हँसना अच्छा है तो बताओ भगवान अच्छे हैं कि बुरे हैं? अच्छे हैं। अगर हँसना अच्छा है तो भगवान को भी हँसना चाहिए। अगर रोना अच्छा है तो भगवान को रोना चाहिए। इसलिए ज्ञानी! न

हँसना अच्छा है, न रोना अच्छा है। इसलिए अच्छा यह है कि, न हँसो, न रोओ। हँसना हास्य कषाय है। और रोना शोक कषाय है। हँसने से भी कर्म बंध होता है और रोने से भी कर्म बंध होता है। रोने से असाता वेदनीय कर्म का बंध होता है। और हँसने से चारित्र मोहनीय कर्म का बंध होता है। इसलिए बहुत सावधानी का जीवन है। इसलिए सदा पवित्र और प्रसन्न रहो। हँसो, रोओ, चलो, बोलो मत। प्रिय आत्मन्! जैसे-राजा के मर जाने पर सेना स्वमेव भाग जाती है। युद्ध में राजा को जीत लिया जाए, या राजा बंधन में पड़ जाये, या राजा का मरण हो जाये तो फिर सेना अपने आप भाग जाती है। उसी तरह मोहनीय कर्म नष्ट हो जाने पर शेष घातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं। इसलिए सर्वप्रथम पुरुषार्थ करना है, मंदिर लाने में और उससे बड़ा पुरुषार्थ है। गुरु के पास लाने में और सबसे बड़ा पुरुषार्थ है, जिनवाणी को पढ़ने में।

देव-शास्त्र-गुरु के पास आने से मोह टूटता है। इससे दर्शन मोहनीय कर्म का खंडन होता है, जिसके खंडन न होने से अनंतकाल लग गया और लग सकता है। तथा चारित्र मोहनीय को खंडन करने में मात्र अर्द्धपुद्गल परावर्तनकाल लगता है। मोह को समाप्त करने की औषधि है, देव-शास्त्र-गुरु का समागम एवं समीपता। इनकी सन्निधि को प्राप्त करने में सबसे बड़ी सफलता है।

पर द्रव्यन ते भिन्न आपमें, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आप रुप में लीन पना सो, सम्यक्ज्ञान कला है।। छहढ़ाला।।

यह चिदानंद आत्मा परद्रव्य से अत्यंत भिन्न है। आत्मा की रूचि आत्मा का ज्ञान और आत्मा में स्थिरता, मोह के नाश करने से है। आचार्य भगवन् कहते हैं-चारों घातिया कर्म के नष्ट हो जाने पर, लोकालोक को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान प्रकट हो जाता है।

घाइचउक्के, णट्ठे, उप्पज्जइ विमलकेवलं णाणं।
लोयालोयपयासं, कालत्तयजाणगं परमं।।66।।

अर्थ-

चारों घातिया कर्मों के नष्ट होने पर लोक और अलोक को प्रकाशित करने वाला, तीनों कालों को जानने वाला, परम निर्मल केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-

विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

तत्त्वसार का सारतत्त्व प्रस्तुत है। ''घाइचउक्के णट्ठे'' चार घातिया कर्म नष्ट हो जाने पर, केवलज्ञान उत्पन्न होता है। जो लोकालोक को प्रकाशित करने वाला होता है। और तीनों कालों को जानने, वाला होता है। और कैसा होता है? उत्कृष्ट होता है। समस्त ज्ञानों में उत्कृष्ट वह ज्ञान कौन सा है? केवलज्ञान-केवलज्ञान का विषय क्या है? ''सर्व द्रव्य पर्यायेषु केवलस्य'' (तत्त्वार्थसूत्र) द्रव्यों की समस्त पर्यायों में, केवलज्ञान का विषय है।

अर्थात् केवलज्ञान त्रिकालवर्ती, त्रिलोकवर्ती, समस्त द्रव्यों की, समस्त पर्यायों को जानता है। अब हमारा विषय है, कि काल कितने हैं? ''त्रैकाल्यं''। द्रव्य कितने हैं? ''द्रव्य षट्कम्''। पदार्थ कितने हैं? ''नवपद''। तो तीन काल की छः द्रव्यो को जानता है। अब छः द्रव्य में से, जीव द्रव्य कितने हैं? अनंत हैं। ''जे त्रिभुवन में, जीव अनंत'' पुद्गल कितने हैं? पुद्गल अनंतानंत हैं। फिर एक-एक द्रव्य के, गुण अनंत हैं। एक-एक गुण की पर्यायें अनंत हैं।

सबसे पहली बात-कि तीन काल हैं, तीन लोक हैं। तीन लोक में द्रव्य कितने हैं? मुख्य रूप से छः द्रव्य हैं, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश काल। इनमें जीव द्रव्य अनंत हैं। पुद्गल द्रव्य अनंतानंत हैं। धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, अखण्ड एक-एक हैं। आकाश द्रव्य एक है। और काल द्रव्य रत्नराशि की, तरह असंख्यात हैं। जीव द्रव्य के गुण अनंत हैं। और एक-एक गुण की पर्याय भी अनंत हैं। पुद्गल अनंतानंत हैं। एक पुद्गल के गुण मुख्यता से चार हैं। वैसे अनंत हैं। उनमें भी एक-एक गुण की पर्यायें अनंत हैं। भूत की पर्यायें अनंत हैं। वर्तमान की पर्याय एक है। और भविष्य की पर्याय, अनंतानंत हैं। इतना समग्र ज्ञान, इन सब को विषय करने वाला कौन है। केवलज्ञान। केवलज्ञान की महिमा कैसी है ?

क्षायिक-मनन्त-मेकं त्रिकाल-सर्वार्थ-युगपद व भासम्।
सकल - सुख- धाम सततं, वन्देऽहं केवलज्ञानम् ।।29।। श्रुत भक्ति ।।

आचार्य भगवन् श्रुत भक्ति में कहते हैं। ये जो केवलज्ञान है-क्षायिक ज्ञान है। अर्थात् ज्ञानावरणी कर्म के, क्षय से उत्पन्न हुआ है। इसलिए क्षायिक है। इसका कोई प्रतिबंधी नहीं है। इसका कोई प्रतिरोधी

नहीं है। इसका कोई प्रतिवादी नहीं है। ये, अपने आपमें अनंत है। अर्थात् असीम है। एक है। अर्थात् मुख्य है। प्रमुख है। तीनों कालों, के संपूर्ण पदार्थो को, एक साथ, देखता है। संपूर्ण सुखों का स्थान है। ज्ञान कैसा है ''सकल-सुख-धाम सततं केवलज्ञान'' ''केवलज्ञान सकल सुख धाम'' सुखों का धाम है। माताओ! ''ज्ञान सुखो का धाम'' ''ज्ञान सुखधाम'' ''अज्ञान दुख धाम''।

ध्यान दो-''जितना ज्ञान, उतना सुख'', ''जैसा ज्ञान वैसा सुख'' ''जितना अज्ञान उतना दुख'' दुख-सुख कितना है? अज्ञान प्रमाण दु:ख, और ज्ञान प्रमाण सुख है। भैया, हम यह कह सकते हैं। कि, एक छोटा सा बालक है। उसके कपड़े कितने हैं? उसके बराबर। उसका बड़ा भाई है, उसके कपड़े उसके बराबर हैं, उसी तरह जिसका जितना तन होता है। उसके उतने वस्त्र हैं। उसी तरह जिसका जितना ज्ञान है, उसका उतना सुख है। और, जिसका जितना अज्ञान है, उसका उतना दुख है।

हम तो बता ही नहीं सकते कि कितना सुख है। वह कितना सुख भोगते होंगे? भैया! अनंत ज्ञान हैं, तो सुख भी अनंत हैं। आत्मा ज्ञान प्रमाण है। और सुख भी, ज्ञान प्रमाण है।

जैसे बताया था, सौ ग्राम आम में सौ ग्राम पीलापन है। सौ ग्राम आम में सौ ग्राम सुगंधी है। सौ ग्राम में सौ ग्राम मीठापन है। उसी तरह-आत्मा में जितना ज्ञान है। उतना, सुख है। और जितना अज्ञान है, उतना दुख है। अब, बताओ! आप लोग कहते हैं-हमें इतनो दुख है, इतनो दुख है, कितनो? कुछ कह नही सकता इतनो, कओ नहीं जात, भैया बताई नहीं सकत। तुम का जानो, हमारे दुख को। अरे भैया! ये मत कहो कि दुख है, ये कहो कि मुझे इतना अज्ञान है। जो व्यक्ति अपने दुख को बताता है, वह व्यक्ति अपने अज्ञान को बताता है। दुख को बताना, अज्ञान को प्रकटाना है। ध्यान देना-दुख को सुनाना, अज्ञान को प्रकटाना है। और सुख को सुनाना, ज्ञान को प्रकटाना है। परस्थितियाँ आपके सामने हैं। लेकिन ज्ञानी उसी में से, सुख प्रकटा लेता है, और अज्ञानी, दुख निकाल लेता है।

स्पष्ट है-एक व्यक्ति रो रहा है। क्यों? दूध खराब हो गया। और दूसरा व्यक्ति उसके, रसगुल्ला, बना रहा है। संपूर्ण सुखों का धाम है। कितने समय तक? अनंतकाल तक सुखी रहो। अंतमुर्हुर्त मेहनत कर लो, अनंतकाल के लिए सुखी रहो। भरत चक्रवर्ती ने, अंतमुर्हुर्त तक मेहनत कर ली, तो अनंत काल तक के लिये सुखी हो गये। और हम, अनंतकाल से मेहनत कर रहे हैं, और अंतमुर्हुर्त के लिए भी सुखी नहीं हो पा रहे। ध्यान देना-साठ हजार वर्ष तक विजय यात्रा की भरत चक्रवर्ती ने, और जब घर के द्वारे आए, तो पराजय को प्राप्त हो गये। क्या, काम की वह विजय? अरे जिस विजय के बाद पराजय हो, वह विजय किस काम की? और जिसके बाद अगति हो, वह गति किस काम की? जिस ज्ञान के बाद अज्ञान

हो, वो ज्ञान किस-काम का? जिस सुख के बाद दु:ख हो, वह सुख भी किस काम का? प्रिय आत्मन्! सुख वह है, जहाँ जिसके, बाद दु:ख न हो। गति वह है, जिसके बाद अगति न हो। इसीलिए कहता हूँ। जाओ तो वहाँ जाओ-जहाँ से लौटके आना न पड़े। कभी नहीं, कहीं नही। वह एक मात्र स्थान है, सिद्धालय। सिद्धालय-जाओ पर ऐसे नहीं जाना, कर्म नाश करके जाना। यदि निगोदिया बनके जाएगा, तो लौटके आना पड़ेगा। ध्यान देना-ज्ञानी जीवो! सकल सुख, धाम, केवल ज्ञान।

सुख का धाम क्या है? ज्ञान है। ज्ञानी जीव उसी में से सुख निचोड़ता है। और अज्ञानी उसी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में से दुख निचोड़ता है। एक ही स्थान पर-युद्ध की भूमि, हाथी के मस्तिष्क के निकले हुए गज मोती पड़े हैं, और वहीं पर माँसखण्ड के टुकड़े पड़े हैं। हँसा मोती चुग लेगा, कौआ माँस पिंड चुग लेगा! द्रव्य वही, क्षेत्र वही, काल वही, पर भाव वही नहीं है। लेकिन-चुग कौन-क्या रहा है? कौआ अपनी बुद्धि से, चुग रहा है और हँसा अपनी बुद्धि से चुग रहा है। बोलो! संसार यही है-ज्ञानी का संसार अलग नहीं है। अज्ञानी का अलग संसार नहीं है। वही द्रव्य, क्षेत्र, काल पर वही एक से भाव नहीं है। लेकिन ज्ञानी! अपनी प्रज्ञा से हँसा की तरह, मोती-मोती चुग लेता है।

इसी संसार में आकर कि किसी ने ज्ञान और वैराग्य को और किसी ने राग और अज्ञान को, चुन लिया। अहो! प्रिय आत्मन्! देखो तो, इसी संसार में कैसी विचित्रता है। आप, क्या करते हैं? एक ने वर को, एक ने जिनवर को चुन लिया, एक ने संसार को, एक ने शिवपद को चुन लिया। यही अंतर है-ज्ञानी और अज्ञानी का। रहना एक ही स्थान पर होता है, हंसा भी वहीं है और काक भी वहीं है। लेकिन प्रज्ञा, अपनी-अपनी है। अब तुम क्या चुनते हो? ज्ञानी! बहुत अच्छी तरह से सावधान रहना।

तुम अपने घर में रहते हो। महाराज श्री! यह मेरी श्रीमती जी हैं, ये मेरे श्रीमान् जी हैं। देखो-आपने श्रीमान् और श्रीमती को चुना। और आपके यहाँ साधु आया है तो वह क्या कह रहा है? ये मेरी माँ हैं और ये पिता हैं। साधु ने तुम्हें माँ के रूप में देखा है। और तुम साधु से परिचय कराते हो-कि ये मेरी श्रीमती हैं, और ये मेरे श्रीमान् जी हैं।

आचार्य देव कहते हैं-द्रव्य, क्षेत्र, काल नहीं बदलता, भाव बदलता है। क्यों? क्योंकि- आपकी स्वयं की प्रज्ञा बदली है। एक ही वस्तु को देखकर, एक ही व्यक्ति को देखकर, नाना जीवों के नाना प्रकार के भाव होते हैं। ''णाणा जीवा, णाणा कम्मा'' नाना प्रकार के जीव है। नाना प्रकार के कर्म हैं। नाना प्रकार की उपलब्धियाँ हैं। न तो सब जीव एकसे हैं, न सबके कर्म एक से हैं, न सबकी उपलब्धियाँ एक सी हैं। क्यों? ध्यान में अंतर है। आचार्य भगवन् कहते हैं-केवलज्ञान में सब झलकता है। ''सकल सुख

धाम सततं, वंदेहं केवलज्ञान'' केवलज्ञान वंदेहं'' वंदे केवलज्ञानं, मैं केवलज्ञान की, वंदना करता हूँ, कैसा है, केवल ज्ञान ?

यः सर्वाणि चराचराणि विधि-तद्, द्रव्याणि तेषां गुणान् ।
पर्यायानपि भूत-भावि-भावितः सर्वान् सदा सर्वदा ।
जानीते युगपत्-प्रतिक्षण-मतः सर्वज्ञ इत्युच्यते ।
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ।।11।।

-प्रतिक्रमण वीरभक्ति

नमः श्री वर्द्धमानाय, निर्धूत-कलिलात्मने।
साऽलोकानां त्रिलोकानां, यद्-विद्या दर्पणायते ।।9।।

-रत्नकरंडश्रावकाचार

श्रीमते वर्द्धमानाय नमो नमित-विद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गत भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदाऽयते ।।9।।

-प्रतिक्रमण वीरभक्ति

उन श्री वर्द्धमान स्वामी को नमस्कार हो, जिनके चरणों में शत्रु नमस्कार करते हैं। लोक तीन हैं-इसलिए तीन को जान रहे हैं, यदि छः लोक होते तो भी झलकते, उनके ज्ञान में। काल तीन ही होते हैं, इसलिए तीन को ही जान रहे हैं। यदि उससे भी अधिक काल होते तो भी जान लेते। क्योंकि-केवलज्ञान अनंतज्ञान है। उनके ज्ञान में-गाय के खुर के समान, जैसे-विशाल धरती पर गाय का खुर समाहित हो जाता है। उसी तरह जिनके ज्ञान में, तीनो लोक समाविष्ट है। ऐसा केवलज्ञान है।

प्रिय आत्मन्!

केवलज्ञान की प्राप्ति जीवन के परमज्ञान का क्षण है। वह ज्ञान-ज्ञान से नहीं आता है। वह ज्ञान आता है-ध्यान से। जितना-जितना, चारित्र निर्मल होगा उतना-उतना ध्यान निर्मल होगा। ज्ञान भी उतनी शीघ्रता से प्रकट होगा। महावीर ने ज्ञान साधना नहीं की, महावीर ने ध्यान साधना की है, बारह वर्षो तक। ध्यान में जुटे रहे और केवलज्ञान प्रकट हो गया। ओहो! तीन ज्ञान लेकर आये थे। चौथा ज्ञान-दीक्षा के समय प्रकट हो गया। और ध्यान किया तो पंचम ज्ञान हो गया।

प्रिय आत्मन्!

मुख्यता यह है-ज्ञान जो है विशुद्धि से प्रकट होता है, और अशुद्धि से नष्ट होता है। अशुद्धि से घटते हैं और विशुद्धि से बढ़ते हैं। संक्लेश से कटते हैं और विशुद्धि से प्रकटते हैं। यदि संक्लेश करोगे तो जैसे-करोंत (आरी) लकड़ी को काट देती है। वैसे ही संक्लेश ज्ञानी को काट देता है, घाव देता है।

इसलिए ज्ञान पाना-अलग बात है और ज्ञान को स्थिर रखना-अलग बात है। सुनो! धन कमाना-अलग बात है, और धन को सुरक्षित रखना-अलग बात है। जैसे-धन कमाने वाला कमाए लेकिन यदि खर्च करने वाला मितव्यता नहीं रखे तो, कमाने वाले की मेहनत बेकार। उसी तरह-दिन भर तो यहाँ सीख करके गए, और रात को घर में जाके संक्लेश कर लिया, किसी से लड़ झगड़ लिया। तो क्या हुआ? पूरा ज्ञान चला गया। ओहो! वस्तुस्थिति यह है कि विशुद्धि से विशुद्धि बढ़ती जाये, तो ज्ञान बढ़ता-बढ़ता चला जाए। आप लोगों के साथ ऐसा है। जैसे-हाथी, सरोवर में स्नान करने जाए। अच्छी तरह नहाए, और ज्यों ही सरोवर के बाहर निकला, कि सूंड़ से अपने ऊपर मिट्टी डाल ली। वही बात-आपके साथ है। जब तक स्वाध्याय करेंगे, जाप देंगे तो सब ठीक और फिर घर जायेंगे, तो फिर वैसे ही यहाँ से कलश (अभिषेक) करके गए और द्वारे पर ही नहीं पहुँच पाए और कलह शुरू। इधर कलश-उधर कलह, कैसे ज्ञान रहे। हे भाई! जैसे-शेरनी का दूध स्वर्ण पात्र में ठहरता है। वैसे ही सम्यक्ज्ञान, विशुद्ध आत्मा के हृदय में ठहरता है। संक्लेशी आत्मा के हृदय में ज्ञान नहीं ठहरता। संक्लेश आत्मा, अपवित्र आत्मा, ज्ञानी! पुण्यात्मा है या पापात्मा? सम्यक्ज्ञान पुण्य है, कि पाप? पुण्य है। कैसे पुण्य है? यह क्षायोपसमिक भाव है। यह पुण्य के उदय में ही, प्रकट होता है। ये पुण्य प्रकृति है। क्षायोपसमिक भाव पुण्य के उदय में होता है। साता वेदनीय का उदय चाहिए। वीर्यांतराय कर्म का उदय चाहिए। साता वेदनीय का क्षयोपशय हो। वीर्यांतराय कर्म का क्षयोपशय हो। फिर ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशय हो। तब कहीं ज्ञान प्रकट होता है। और इन तीनों चीजों को प्रकट करने क लिए, सातिशय पुण्य चाहिए और पुण्य के लिए चाहिए, विशुद्धि। विशुद्धि बढ़ जाये तो ज्ञान बढ़े।

जैसे-हम स्वर्ण को बैंक में जमा करके पैसे ले सकते हैं। उसी तरह-विशुद्धि को जमा करके हम, ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। पहले स्वर्ण को जमा करना पडेग़ा। बैंक की शर्त है, आप सोना जमा करिए, पैसा मिल जाएगा। इसी प्रकार विशुद्धि रूपी सम्पत्ति को रख देने पर, ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। विशुद्धि से ज्ञान आता है। विशुद्धि से ही चारित्र आता है। तो जो जितनी विशुद्धि बढ़ाऐगा, उतना ज्ञान आएगा। ज्ञानी! बुद्धि मत बढ़ाओ, विशुद्धि बढ़ाओ। आचार्य मानतुंगाचार्य जी लिखते हैं-

यः संस्तुतः सकल-वांड्मय तत्त्वबोधा ।
दुद्भूत-वुद्धि-पटुभिः सुरलोक नाथैः।
स्तोत्रै - र्जगत - त्रितय-चित्त-हरै-रूदारैः।
स्तोष्ये किलाह-मापि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ।।2।। भक्तामर स्तोत्र ।।

तत्त्व के बोध से, बुद्धि उत्पन्न होती है, बुद्धि कहाँ से उत्पन्न हुई? मानतुंगाचार्य ने यह भक्तामर कहाँ से लिख लिया? उन्होंने कहीं से चुराके तो नहीं लिखा? किन्तु मानतुंगाचार्य जी कहते हैं-नहीं। ''तत्त्वबोधा'' तत्त्व के बोध से, तत्त्व के ज्ञान से। आप बताओ! आपके साथ क्या होता, यदि आपको जेल में डाल देते तो आप क्या करते? लेकिन उन्हें जेल में डाल दिया तो क्या हुआ? वह अपनी भक्ति में लीन हो गए। तत्त्व के बोध से-बुद्धि उत्पन्न हुई, बुद्धि की उत्पत्ति-व्यक्ति के तत्त्व के बोध से उत्पन्न होती है। और शांति भी वहीं से मिलती है। यदि तत्त्वज्ञान होगा तो शांति मिलेगी। वस्तु स्थिति ऐसी है, कि हमारा लौकिक ज्ञान चरम उत्पकर्ष को प्राप्त हो रहा है।

लेकिन आध्यात्मिक ज्ञान जो हमारा तत्त्वज्ञान है, वहाँ हमारी दृष्टि प्रक्षेपण नहीं कर रही है। आचार्य भगवन् कहते हैं- ज्ञानी जीवो! हम केवलज्ञानी को नहीं पा सकते इस काल में, तो कम से कम केवलज्ञानी की वाणी तो, पा रहे हैं। हमें केवलज्ञान नहीं हो सकता है। कोई बात नहीं, लेकिन केवलज्ञानी ने जो उपदेश दिया है, उस उपदेश को तो हम जीवन में सुन सकते हैं। और आचरण में उतार सकते हैं।

अच्छा यह बताओ कि-जितनी वस्तु आप उपयोग करते हो, क्या सबकी फ्रैक्ट्री आप के पास है? आप गेहूँ उपयोग करते हो-क्या खेत आपके पास है? दाल उपयोग करते हो-क्या उसका खेत आपके पास है? चावल उपयोग करते हो-तो क्या खेत आपके पास है? हे भाई! लेकिन, गेहूँ को खा तो सकते हैं। चावल नहीं उगाते तो खाते हैं, कि नहीं खाते? सब्जी नहीं उगाते, खाते हैं कि नहीं खाते ?

उसी तरह-भले ही केवलज्ञान उत्पन्न न हो, लेकिन केवलज्ञानी ने जो ज्ञान दिया है। उस ज्ञान पर श्रद्धा तो कर सकते हैं। श्रद्धा के साथ अभ्यास भी हो। यदि आज हम उस ज्ञान के अनुसार अपना प्रमार्जन करना शुरू कर दें तो ज्ञानियो! मुझे आज जो अलौकिक निधि मिली है, वह अलौकिक निधि मात्र शब्दों में है। अरति रति की परिभाषा क्या है? अभी तक मैं यह मानता था, स्त्री पुत्रादि विषयक परिणाम होना रति है, और किसी से द्वेष रूप परिणाम होना, अरति है।

लेकिन वरांग चरित्र में जो पढ़ा-अद्भुत पढ़ा अद्भुत निधि मिली। इतने जीवन काल में पहली बार अद्भुत निधि मिली। ऐसा लगा कि हमारा पूरा शास्त्र पढ़ना सार्थक हो गया। मात्र दो परिभाषा के

पढ़ने से, कि रति क्या है? स्त्री, पुत्र, पोता, नाती में रमना, उनमें मगन हो जाना, लीन हो जाना, तल्लीन हो जाना, यह सब क्या है? रति है। नाती-पोतों के प्रेम में समय गँबा दिया। जड़ से भी-किसी द्रव्य, क्षेत्र, काल में और किसी भी भाव में रति। ओहो! और अरति क्या है? रति नोकषाय में दुष्ट जनों में-प्रीति कर रहा है, यह रति नोकषाय का उदय है। चोर-चोर से प्रीति कर रहा है, यह रति नोकषाय है। यदि, रति नोकषाय नहीं होगी तो चोर-चोर में प्रेम नहीं करेगा, नरक के नारकी में भी रति पाई जाती है, नरक के नारकी में इतनी रति पाई जाती है कि उस बराबर तो, तुम सब में नहीं पाई जाती है। जब एक नरक का नारकी, दूसरे नारकी को मारता है, तो मारने के बाद इतना आनंद आता है उसे यही तो रति है। माताओ! सुनो जैसे-तुम व्यंजन बनाती हो और व्यंजन बनाने के बाद कोई तुम्हारे व्यंजन क प्रशंसा कर दे, तो तुम्हें आनंद आता है। यह क्या है? रति है। ज्ञानी! नरक के नारकी में भी रति है। यह अशुभ रति हो गयी।

नरक के नारकी में शुभ रति भी है। जब स्वर्गीय देवता-तीसरे नरक तक जाते हैं और उपदेश देते हैं। तो उपदेश को सुनकर जो प्रसन्नता की अनुभूति होती है। ओहो! मेरा जीवन धन्य हो गया जो आपने उपदेश दिया। आज से में उपदेश पर श्रद्धान करूँगा। अभी आप प्रवचन सुन रहे हो न अच्छा लग रहा है। आचार्य कहते हैं- यह रति भाव है। लेकिन प्रशस्त रति है। ज्ञानी! यह आरती है। यह रति नहीं आरती है, गुणानुवाद है। प्रशस्त रति ही तो आरती है। चारों ओर से, प्रीति को उत्पन्न कर लेना और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में प्रसन्नता की अनुभूति होना, आरती है। सम्यक्ज्ञान की आरती (प्रवचन) चल रही है। ज्ञान की आरती है। प्रवचन-ज्ञान आरती है।

और अरति क्या है? आचार्य कह रहे हैं-व्रतों के योग्य जीवन है, स्वाध्याय के योग्य हमारी आँखे हैं, प्रवचन सुनने लायक हमारे कान हैं। तीर्थ वंदना लायक हमारे पैर हैं, पढ़ने के लिए शास्त्र हैं, साधना के योग्य शरीर है, संयम के दो उपकरण हैं, ज्ञान अभाव नाश के साधन हैं, अर्थात् अज्ञान निवारण के साधन हैं, हमारे पास। इतनी-सुविधाऐं मिलने के बाद लाभ न उठाना अरति है। आचार्य कहते हैं-अरति है। मनुष्य को श्रावक पर्याय, साधु का समागम मिल रहा है, जिनवाणी रखी है, फिर भी समय नहीं मिल रहा पढ़ने के लिए।

अगर घर में चार सदस्य आ जायें तो बैठ जायेंगे। ओहो! टी0वी0 का नया सीरियल आ जाए, तो समय है। और जिनवाणी दो हजार वर्ष पहले के आचार्यो की सद्वाणी अलमारी में रखी है। तो भी खोल कर देखने का समय नहीं है। घर में यदि दस हजार की वस्तु मार्केट में आ जाए, दस लाख की गाड़ी नई आ जाऐ बाजार में तो खरीदने के लिए तैयार हो। आप सब बोल दोगे पापा जी गाड़ी खरीद लो, अपन पूरे परिवार के साथ पिकनिक के लिए चलेंगे। बोलो! लेकिन अभी तक यह नहीं कहा होगा, कि पिता जी एक शास्त्र लाऐंगे घर पर और सब मिलकर सामूहिक स्वाध्यााय करेंगे, तो अपने मन से पूँछना, चित्त से

पूँछना, बड़ा आश्चर्य होता है। यह अरति है। ज्ञानी जीवो! ये सब सद्गुण, व्रत, संयम, साधना की सुविधा, मिलने के बाद-भी तपस्या न करना अरति है। ज्ञान के योग्य शास्त्र मिलने के बाद भी, ज्ञान प्राप्त न करना, शास्त्र के प्रति अरति है। गुरु मिलने के बाद भी गुरु का लाभ न लेना, यह गुरु के प्रति अरति है। और देव प्रतिमा मिलने के बाद भी पूजा-भक्ति न करना देव से अरति है। ज्ञानी! ध्यान रख लेना-यदि, देव में रति होगी, तो देव के पास जाएगा। शास्त्र में रति होगी, तो शास्त्र के पास आएगा, गुरु में रति होगी, तो गुरु के पास जाएगा।

ज्ञानी! जिसकी-जिसके प्रति रति होती है, वह उसके पास जाता है। ज्ञानियो! सौधर्म स्वर्ग में देवियाँ जन्म लेती हैं, सोलहवें स्वर्ग तक के देव लेने आते हैं, क्यों? क्योंकि रति है, वह भी चली जाती हैं। अरे! जिसकी-जिसके प्रति रति होगी, उसके पास ही तो जाएगा। इसी प्रकार जिनदेव के प्रति रति रखने वाले जिनदेव के पास जाते हैं, शास्त्र में रति रखने वाले शास्त्र का अध्ययन करते हैं। गुरु में रति रखने वाले गुरु के पास रहते हैं। और व्रत में रति करने वाले, व्रत करते हैं। तपस्या में रति करने वाले तप करते हैं। संयम में रति करने वाले, संयम पालते हैं। कौन? कहाँ? रति करता है? किससे रति करता है? अरे, जहाँ जिसका चित्त जहाँ रहता है, वह वहाँ रति करता है।

यत्रैवाहितधीः पुंसः, श्रद्धातत्रैव जायते।
यत्रैव जायते श्रद्धा, चित्तं तत्रैव लीयते ॥95॥ समाधितंत्र॥

यो यत्र निवसन्नास्ते, स तत्र कुरूते रतिं।
यो यत्र रमते तस्मा, दन्यत्र स न गच्छति ॥43॥ इष्टोपदेश॥

जो जीव जहाँ-जहाँ रम जाता है, अन्यत्र नहीं जाता है। मेरी रति कहाँ पर है? किसमें है? और ये भी परम् सत्य है, कि जितने समय तू एक में रति करेगा उतने समय दूसरे में नहीं कर पाएगा। मेरी रति का विषय यदि जिनेन्द्र देव बन गए हैं, तो मेरी रति का विषय संसार का प्राणी नहीं बनेगा।

प्रश्न: रति नोकषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर: जिस कर्म-स्कन्ध के उदय से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों में राग उत्पन्न होता है उसकी रति संज्ञा है (ध:6/47) जिसके उदय से देशादि (क्षेत्रादि) में उत्सुकता होती है बह रति है। (सर्वा0 8/9) मनोहर वस्तुओं में परम प्रीति को रति कहते हैं (नि0सा0ता06)

प्रश्न: रति नोकषाय के क्या लक्षण हैं?

उत्तर: जब किसी जीव के रति नोकषाय का उदय होता है तो उसे उन दुष्ट लोगों से ही प्रीति होती है जो पाप कर्मो के करने में सदा ही लगे रहते हैं, जिनके कर्मो का परिणाम कुफल प्राप्ति ही होती है तथा निष्कर्ष शुद्ध अहित ही होता है (व0चा04रु84)

प्रश्न: अरति नोकषाय किसे कहते हैं?

उत्तर: जिसके उदय से आत्मा की देश आदि में उत्सुकता उत्पन्न नहीं होती है वह अरति कषाय है (सर्वा 8/9) नाती, पुत्र एवं स्त्री आदि में रमण करने का नाम रति है, इसकी प्रतिपक्षभूत अरति कही जाती है। (ध012/185)

प्रश्न: अरति नोकषाय वाले के क्या लक्षण हैं?

उत्तर: अरति नोकषाय के फल में जीव ज्ञानार्जन के साधन, व्रतपालन का शुभ अवसर, तप तपने की सुविधायें, ज्ञानभावमार्जन की सामगी, लौकिक और पारलौकिक सम्पत्ति (द्रव्य) तथा अन्य सुखों के कारणों की प्राप्ति हो जाने पर भी अपने आपको उनमें नहीं लगा सकता है (व0चा04/85)

मेरी रति का विषय पंच परमेष्ठि बन गए हैं, तो मेरी रति ये संसार के प्राणी नहीं बनेंगे। ज्ञानी! एक काल में, एक में ही रति होगी। चाहे तू स्त्री में-रति करले, चाहे ईश्वर में। एक काल में एक समय में एक ही उपयोग होता हैं, इसलिए एक समय में एक ही रति होगी। चाहे तू हँसले, चाहे तू रो ले, एक समय में एक ही कर पाएगा। जो हँसेगा-वह रोयेगा नहीं। जिस समय रोयेगा-उस समय हँसेगा नहीं। जो हँसेगा-वह रो नहीं सकता। और रोते समय-हँस नहीं सकता। हँसने का काल अलग है। रोने का काल अलग है। उसी तरह मेरी रति पंचपरमेष्ठि में है, उस समय पंच पाप में हो नहीं सकती। प्रीति समयसार में होगी, तो संसार में नहीं होगी।

प्रीति, यदि सत्य तत्त्व में होगी तो असत्य तत्त्व में नहीं होगी। प्रीति कहाँ है? यह सबसे महत्वपूर्ण बात है। प्रशस्त रति के बिना व्रत करने के परिणाम नहीं होते, संयम पालने के परिणाम नहीं होते, शरीर की तो शक्ति है-पर हम बोलते हैं हम ये नियम नहीं ले सकते। बस ज्ञानी! तू नहीं बोल रहा, तेरे अंदर की नोकषाय बोल रही है। व्यक्ति कभी नहीं बोलता-

तू क्या बोले रे बाबू, तेरा पैसा बोले रे।
टन-टना-टन पर सारी, दुनिया बोले रे ।।

हे ज्ञानी! ''उसी तरह तू नहीं बोलता, तेरी कषाय बोले रे'' कषाय बोलती है, व्यक्ति क्या बोलेगा? नोषाय बोल रही है। दीक्षा ले लो, अबे नई लेने। यह कौन बोल रहा है? यह आत्मा का विभाव-भाव बोल रहा है? यह भीतर में बैठी चारित्र मोहनीय कषाय बोल रही है। भीतर में बैठा-अरति भाव बोल रहा है। ज्ञानी! प्रवचन अच्छा लग रहा-यह सम्यक् रति है। अच्छा नहीं लग रहा-अरति भाव है। जैसे-गुबरीला अपने मुख में गोबर की डली रख ले तो उसे फूल का रस नहीं आ पाता है। उसी तरह-हमारे अंदर जब कोई विचार चलते हैं तो अच्छी बातें भी नहीं रूच पाती हैं। हम घर के विकल्प लेकर के आते हैं और वह विकल्प हमारे चित्त में चल रहे हैं। तो इतने परिश्रम से दिया गया उपदेश कार्यकारी नहीं हो पाता है ।

इसलिए यह बात सत्य है कि सुबह का प्रवचन सामान्य होता है और दोपहर का प्रवचन विशेष होता है। क्यों? क्योंकि दोपहर में चित्त निराकुल करके आते हो ।

प्रिय आत्मन्! तत्त्व के बोध से ज्ञान आता है। रति की परिभाषा समझ में आई-स्त्री में प्रेम करना ही या पुरूष में रति करना ही रति नहीं है। अपितु पोता में, नाती में, पत्नी में, इनमें प्रेम भाव उत्पन्न होना भी रति है ।

चलते हुए रूकने का भाव हो गया, खिलाने का भाव हो गया, यह रति कषाय चल रही है। भाई पहले स्त्री-पति में प्रेम कर रही थी। पति-स्त्री में प्रेम कर रहा था। अब उस प्रेम का स्थान पोता पोती को दे दिया। नाती, नातिन को दे दिया। तो क्या कर्म बंध से बच गए? नहीं बच गए। ये मत सोच लेना कि पोता पोती में प्रेम करेंगे, तो कर्म बंध नहीं होगा ।

आचार्य कहते हैं-रति कषाय चल रही है। राग करो सो खाई में गिरे और द्वेष करो सो कुँआ में गिरे। इसलिए अच्छा है-कि समता के साथ चलो। ''न राग में न द्वेष में'' विश्वास दिगम्बर वेश में ।

''धुन रे धुनिया अपनी धुन, अपनी धुन में पाप न पुण्य''

हे ध्यान लगाने वाले योगी! ये ध्यानी पुरुष तू अपनी आत्मा का ध्यान कर, किसी और का ध्यान मत कर। आत्मा के ध्यान करने वाले को न पुण्य होता है, न पाप होता है। वह तो कर्मो का नाश करके सिद्धालय चला जाता है। सिद्धों के लिए नमस्कार हो। नमस्कार करने से पाप नहीं पड़ेगा, जो केवलज्ञान है-संपूर्ण सुखो का धाम है। जितना अज्ञान उतना दुख, जितना ज्ञान उतना सुख। इसलिए किसी से नहीं कहना कि मैं दुखी हूँ, कहना मैं अज्ञानी हूँ।

तुम अज्ञान को हटाओ तो दुख हट जाएगा। अंधकार को हटाना है दीपक को जलाओ तो अंधकार हट जाएगा। और ज्ञान को लाओ तो दुख हट जाएगा। जैसे-प्रकाश के होते ही अंधकार हट जाता है। उसी तरह ज्ञान के आते ही दुख मिट जाता है। उसी तरह दुख का वेदन अज्ञान का प्रमाण है। सुख का वेदन ज्ञान का प्रमाण है।

''सकल सुख धाम, ज्ञान फलं सौख्यम्''

ज्ञान का फल सुख है, अज्ञान का फल दुख है। यदि अज्ञान है, तो दुख है, अगर ज्ञान है तो, सुख है। अपना सुख अपने अधीन अपना दुख अपने अधीन। जिस समय ज्ञान का उपयोग करोगे तो सुख का वेदन करोगे।

अज्ञान का वेदन करोगे तो दुख का वेदन होगा। न कोई सुख देता है न कोई दुख देता है।

(षष्ठ पर्व)

तिहुवणपुज्जो होउं, खविउ सेसाणि कम्मजालाणि।
जायइ अभूदपुव्वो, लोयग्गणिवासिओ सिद्धो ॥67॥

अर्थ-

अरहंत अवस्था में तीन भुवन के जीवों का पूज्य होकर पुन: शेष कर्मजालों को क्षय करके अभूतपूर्व लोकाग्र का निवासी सिद्ध परमात्मा हो जाता है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

शुद्ध बुद्ध हो परम सिद्ध हो, जिन परमातम हो।
ज्ञाता दृष्टा अरस अरूपी, तुम शुद्धातम हो।।
जो तुम हो वह मैं हूँ भगवन्, निश्चयनय लाके।
चित्त प्रफुल्लित हुआ हमारा, जिन दर्शन पाके।।

शुद्ध चिदानंद, चैतन्यचिद्चमत्कार, चिद्ज्योतिस्वरूप, चिदानंदकारणी, स्वरूपप्रकाशनी, आनंदविकासनी, पापप्रणासणी, पुण्यप्रकाशनी, माँ जिनवाणी की अगाध भक्ति करते हुए हम सभी भव्य जीव, तत्त्वसार के षष्टं पर्व, में प्रवेश कर रहे हैं।

आज सिद्ध परमात्मा का स्वरूप यहाँ हम निहारेंगे। सिद्ध भगवान-अर्थात् आत्मा की शुद्ध दशा, आत्मा की उत्कृष्ट दशा, आत्मा की निर्मल दशा, आत्मा की चरम दशा, परम दशा-क्या है? प्रिय आत्मन्! आत्मा का शुद्ध स्वरूप ही सिद्धों का स्वरूप है। सिद्धों का स्वरूप ही शुद्धात्मा का स्वरूप है। जो सिद्धात्मा है वही परम् शुद्धात्मा है। वह सिद्धात्मा सिद्धालय में किस तरह निवास करते हैं? यह सब विवेचन हम यहाँ देखना चाहते हैं। मेरे जीवन का अंतिम ध्येय है, वह सिद्धत्व की प्राप्ति में है। सिद्ध होना मेरे जीवन का उत्कृष्ट लक्ष्य है। उस लक्ष्य को पाने में हम निरन्तर प्रयत्नशील हैं। हम सभी असिद्ध हैं।

तत्त्वार्थसूत्र में एक भाव आया है-असिद्ध भाव। अभिव्यक्तित रूप में हम असिद्ध हैं, लेकिन शक्ति रूप में हम सभी सिद्ध हैं। लेकिन जो अभिव्यक्ति रूप में सिद्ध हैं, उनकी अभिव्यक्तियाँ हम यहाँ अभिव्यक्त करने जा रहे हैं। हे प्रभु! आप कैसे हैं? सिद्ध भगवान का स्वरूप अवश्य ही सुनने से आत्मा की परिणति में निर्मलता आती है। क्योंकि, सिद्धों का स्वरूप सिद्धों का नहीं मेरी, आत्मा का शुद्ध स्वरूप है। जो-जो गुण सिद्धों में हैं। वह-वह गुण मेरी-आपकी आत्मा में शक्ति रूप में विद्यमान हैं।

प्रिय आत्मन्!

सिद्धों का स्वरूप हम कहें आपसे, उन सिद्धों की दशा को, उन सिद्धों की सुख अवस्था को, कितने सुंदर ढ़ंग से विवेचित किया है। ये पंक्तियाँ जब भी गुनगुनाते हैं, तो कुछ तत्त्व समझ में आता है।

पुनर्जन्म ना जिनका होगा, ना अवतार कभी।
उन सिद्धों को नमस्कार हो, शत्-शत्वार अभी।
नित्य निरंजन निराकार मय, निज स्वरूप भाऊँ।
णमो णमो श्री सिद्धाणं पद, पल-पल मैं गाऊँ।।2।।

सिद्ध वंदना करके स्वामी, सिद्धालय पाऊँ ।
णमो णमो श्री सिद्धाणं पद, पल-पल मैं गाऊँ ।
सिद्धालय में आप, विराजे, सिद्धप्रिया स्वामी ।
सर्व सिद्धियाँ देने वाले, सादर प्रणमामि।
दो अक्षर का महामंत्र यह, सिद्ध-सिद्ध ध्याऊँ ।
णमो-णमो...।

सिद्ध-कैसे होते हैं?

सम्यग्दर्शन ज्ञान सिद्ध को, चारित सिद्धों को ।
तप सिद्धों को नय सिद्धों को, संजम सिद्धों को ।।
जिन भावों से सिद्ध हुए हैं, वही भाव भाऊँ ।।
णमो-णमो.....................................।

जल सिद्धों को थल सिद्धों को, सागर सिद्धों को ।
नभ सिद्धों को नग सिद्धों को, सरवर सिद्धों को ।।
गुफा, कन्दरा तरूवर तल के, सिद्धों को ध्याऊँ ।
णमो-णमो.....................................।

कोई जल, थल, सागर, आकाश, पर्वत, सरोवर, गुफा और कोई वृक्ष की कोटर से सिद्ध हुये हैं। ऐसे समस्त सिद्धों को उनमें से कोई सम्यक्दर्शन की, कोई सम्यक्ज्ञान की, कोई सम्यक्चारित्र की, कोई तपस्या की, कोई नय की, कोई संयम की प्रधानता से सिद्ध हुये हैं। जो भी सिद्ध जिन भावों से सिद्ध हुए हैं। मैं, उन सभी के भावों को एकत्रित करके अपने आप में भाता हूँ।

धन्य हैं-कोई भरत क्षेत्र से, कोई ऐरावत से, कोई विदेह से सिद्ध हुए हैं। ढाई द्वीप में जो भी, जहाँ से, सिद्ध हुए हैं, उन समस्त सिद्धों को, नमस्कार करके मैं प्रणाम करता हूँ। सिद्धालय में विराजमान समस्त भूतकाल के सभी सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गइं पत्ते ।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवली भणियं ।।9।। समयसार ।।

ढ़ाई द्वीप में होने वाले उन समस्त सिद्धों को, मेरा नमस्कार हो। हो चुके, हो रहे होंगे-उनके लिए भी, नमस्कार है।

तीन काल के जिनवरा, तीन काल के सिद्ध।
मन-वच-तन से वंदहूँ, तीनों जगत प्रसिद्ध ।।

भविष्य के सिद्धों को नमस्कार हो, क्योंकि भविष्य के सिद्धों के गुण ऐसे ही होंगे, जैसे भूतकाल एवं वर्तमान के सिद्धों में हैं। गुणों में, परिवर्तन नहीं होगा। ज्ञानी! ध्यान देना-अभी कम्पनी में माल नहीं बना है, लेकिन फिर भी हम पेमेन्ट भेज देते हैं, कि भैया, अगला माल हम लेंगे। शक्कर खरीदना हो तो पहले से पैसा जमा करना होता है, जिससे क्वालिटी में अंतर न आए। ऐसे ही सिद्धों के गुणों में अंतर नहीं आएगा, इसलिए भविष्य के सिद्धों के लिए भी नमस्कार।

क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधित ।
ज्ञानावगाहनान्तर संख्याल्प बहुत्वत: साध्या: ।।9।। तत्त्वार्थसूत्र ।।

सभी सिद्धों को नमस्कार हो-साढ़े तीन हाथ की अवगाहना वाले और सवा पाँच सौ धनुष वाले सिद्धों को भी नमस्कार हो। सिद्धों को कितनी बार नमस्कार? भो ज्ञानी ! सुन-केवलज्ञान के जितने प्रतिक्षेत्र हैं। उन प्रतिक्षेत्रों में अनंत का गुणा और कर दो-इतनी बार। प्रत्येक को अलग-अलग, सबको एक साथ नमस्कार। जैसे-लड्डू गोल है लेकिन संपूर्ण है, आदि नहीं है मध्य नहीं है, अंत नहीं है, संपूर्ण है। सिद्ध जो अनादि काल से चले आए-वह सिद्ध, अनंत काल में होंगे-वह सिद्ध। ध्यान देना-सिद्ध अनादि अनंत नहीं है। प्रत्येक सिद्ध आदि अनंत सिद्ध है। एक भी सिद्ध अनादि अनंत नहीं है। किन्तु अनादि काल से सिद्ध होते आए हैं। इस अपेक्षा से-अनादि अनंत है। लेकिन एक सिद्ध की अपेक्षा आदि अनंत है, जिसका प्रांरभ तो है, लेकिन अंत नहीं होगा। केवलज्ञान का आदि तो है, लेकिन अंत नहीं है। सिद्ध पर्याय का प्रारंभ तो है, लेकिन सिद्ध अवस्था का अंत नहीं है। इसलिए आदि अनंत है। सिद्ध भगवान कौन से मंगल हैं? आदि अनंत मंगल। एक अपेक्षा महावीर भगवान आदि अनंत मंगल हैं। लेकिन एक सिद्ध की अपेक्षा अनादि अनंत हैं। ठीक है। देखिए! सिद्धों का स्वरूप अपनी आत्मा का ही स्वरूप है। क्योंकि आपकी चेतना में और सिद्धों की चेतना में एक भी गुण में कमी नहीं है। मात्र अंतर यह है, कि उनने प्रकट कर लिया है और हमें प्रकट करना है। जैसे-दो किसान हैं। एक किसान ने कुँआ खोद लिया है और पानी निकाल लिया है। और दूसरे किसान के खेत में पानी तो है। लेकिन कुँआ नहीं खोदा तो पानी जमीन के अंदर है। एक किसान ने खेत में कुँआ खोदा पानी निकाल लिया। रोज पानी ले रहा है, और एक किसान ने कुँआ खोदा नहीं, लेकिन जब जमीन खरीदी थी, तो बता दिया था। कि दोनों खेत में पानी है। उसको भी पता है, लेकिन कुँआ नहीं खोद रहा। आ गया ध्यान में-लेकिन शक्ति रूप से। पिता

ने तो दोनों भाईयों को पानी वाली ही बराबर जगह दी थी। इस भाई के खेत में भी पानी है और इस दूसरे भाई के खेत में भी पानी है, लेकिन एक ने कुँआ खोद लिया, तो पानी पी रहा है और पूरे गाँव को पिला रहा है। और एक ने कुँआ खोदा नहीं है, तो प्यासा तड़फ रहा है। यही दशा है-यद्यपि शक्ति रूप से पानी तो दोनों के पास है, लेकिन अभिव्यक्ति का अंतर है। बोलो! सिद्धों में और हम सभी में अंतर कितना है? जितना एक कुँआ वाले में और एक जमीन के पानी वाले में अंतर है। अंतर आ गया समझ में। जैसे-गर्मी की दोपहरी का समय हो और जिसको प्यास लगी हो उससे कहो कि वह कुँआ वाला और बिना कुँआ वाला दोनों एक समान हैं, तो वह कहेगा, नहीं भैया! जब प्यास लगेगी तो कुँआ वाले के पास ही जाना पड़ेगा। क्यों? मैंने कुँआ नहीं खोदा है, और जब, तक कुँआ न खोद लेते तब तक उसे कुँआ वाले के पास जाना होता है। वहीं से पानी लेना पड़ेगा। भले ही स्वयं के खेत में कितना भी पानी हो, जमीन के नीचे। लेकिन जब तक कुँआ नहीं खोद लिया जाए, पानी ऊपर न आ जाए, तब तक उसकी उपलब्धि नहीं मानेंगे। ज्ञानी! ध्यान देना-कुँआ खोदने में, एक बार प्रयत्न कर लेगा, तो जीवन भर सुख से पानी पी लेगा। तो सिद्धों ने, भरतचक्रवर्ती आदि पुरूषों ने, आदिनाथ से महावीर तक सभी ने अपनी चेतना में गुणों का कुँआ खोद लिया है, तो अनंत सुख का भोग कर रहे हैं, अनंत काल के लिए। जैसे-एक किसान अपने खेत में कुँआ खोद करके जीवन भर के लिए पानी को प्राप्त कर लेता है। उसी तरह से-एक भव्य जीव रत्नत्रय की साधना करके अपने भीतर में सिद्धत्व को प्रकट कर लेता है।

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिया होंति।
जरमरणजमुक्का अट्ठगुणालंकिया जेण।। 47।। नियमसार।।

जैसे सिद्धात्माऐं हैं वैसे ही संसारी जीव हैं, क्योंकि जरा-मरण-जन्म से रहित तथा सम्यक्तवादि आठ गुणों से अलंकृत हैं। और भी आप बोलते हो क्या? हूँ। स्वतंत्र, निश्चल, निष्काम, ज्ञाता-दृष्टा, आत्मराम। जो तुम हो, वह हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान। अंतर यही ऊपरी जान, वे विराग यहाँ राग वितान। हूँ स्वतंत्र।

ज्ञानी! अंतर कितना है? यह बात सत्य है कि जो तुम हो-वह मैं हूँ, जो मैं हूँ-वह तुम हो। लेकिन सुनो-अंतर यही है। क्या अंतर है? कि, मैं रागी हूँ, और तुम वीतरागी हो, कैसा अंतर है? कि तुमने कुँआ खोद लिया है, और मैंने कुँआ नहीं खोदा है। इसलिये इतना ही अंतर है। कि तुम परिपूर्ण हो चुके हो, और मैं प्यासा तड़फ रहा हूँ। ज्ञानी! प्रिय आत्मन्! उन्होंने शक्ति को अभिव्यक्त किया है और हमने शक्ति को शक्ति रूप में रहने दिया। मूल्यांकन किसका है? जिसने कुँआ खोद लिया, उस किसान का मूल्यांकन

बढ़ गया। क्योंकि? पानी निकल आया। और अभव्य जीव तो ऐसा है। जैसे-कितने ही, कुँआ खोदो पर पानी ही नहीं निकलना है। और कितने ही उपाय करो, उसको केवलज्ञान होना ही नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

अभव्य की चर्चा यहाँ नहीं है। आज चर्चा यह है, कि आचार्य भगवन् कहते हैं-कि जैसे जब बाँस के वृक्ष परस्पर रगड़ते हैं, तो उसमें आग उत्पन्न होती है। उसी तरह, आत्मा-निजआत्मा का जब ध्यान करता है तो परमात्म अवस्था प्रकट हो जाती है। जैसे-एक बुझे दीपक के पास में यदि प्रज्ज्वलित दूसरा दीपक लाया जाता है। तो प्रज्ज्वलित दीपक के माध्यम से, अज्ज्वलित दीप भी, प्रज्ज्वलित हो जाता हैं। उसी तरह सिद्धों के स्वरूप की विवेचना, स्मृतियाँ, ध्यान करने से, आत्मा में-शुद्धत्व आता है। आचार्य भगवन् कहते हैं-निज स्वरूप को निहारना, तभी संभव है जबकि-सिद्धों का स्वरूप दर्पण के समान तुम्हारे सामने हो। जैसे-प्रतिबिम्ब में निजबिम्ब झलकता है, वैसे-सिद्धों के चिंतन में, अपना स्वरूप झलकता है। सिद्ध-चक्र विधान, मात्र आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने एक शब्द में लिख दिया। ''वंदित्तु सव्व सिद्धे'' जितना सिद्ध-चक्र विधान है, वह एक शब्द में आ गया, समयसार तो सिद्धचक्र है। हम यहाँ देख रहे हैं कि आत्मा जब सिद्ध होता है तो त्रिभुवन पूज्य हो जाता है, ये तीन लोक के स्वामी होते हैं।

तीनों लोकों में पूज्यता कहाँ से मिलती है? दूसरे के पूजने से, पूज्यता नहीं आती है। और दूसरे से पुजवाने से, पूज्यता नहीं आती है। स्वयं के गुण प्रकटाने में, पूज्यता आती है। भगवान ने किसी को, पूजने के लिए पराधीन नहीं किया। न पूजा का उपदेश दिया, उन्होंने तो अपने गुण प्रकटाये हैं। पूजा का उपदेश सिद्ध देते ही नहीं हैं।

प्रिय आत्मन्!

सिद्ध तो उपदेश की परम्परा से भी परे हैं। अरहंत हैं जो हमें उपदेश देते हैं। महाराज श्री ! बिना उपदेश के भी पूजा होती है, यदि कोई कहे कि प्रवचन नहीं देंगे तो समाज पूँछेगी नहीं, यह बिल्कुल गलत है। सिद्ध भगवान कोई प्रवचन नहीं देते हैं, लेकिन सभी सिद्धों को नमस्कार करते हैं।

ध्यान देना- सिद्धों को सब नमस्कार करते हैं। सिद्ध किसी को उपदेश, आशीर्वाद नहीं देते हैं। अपने गुणों को प्रगटाओ। जैसे-जैसे गुण प्रकट होंगे, वैसे-वैसे पूज्यता बढ़ती जाती है। जैसे-खट्टे आम की कीमत कम होती है, लेकिन जैसे-जैसे, पकता जाता है कीमत बढ़ती जाती है। जब खेत में बीज अंकुरित होते हैं, तो कीमत कम है। वही फसल रूप में हो जाता है, तो कीमत बढ़ जाती है। और मण्डी

में आ जाता है तो, कीमत और ज्यादा मिल जाती है। उसी तरह से-अपने गुणों को विकास होने पर जीवन का मूल्यांकन प्राप्त होता है। आयु पूर्ण होने के बाद शेष कर्म स्वत: नष्ट हो जाते हैं। हम ये निरन्तर सुनते हैं-अभूतपूर्व कार्यक्रम हुआ। आचार्य भगवन् कहते हैं, आज तक अभूतपूर्व कार्यक्रम हुआ ही नहीं है। जितने भी कार्यक्रम हुए हैं, सब भूतपूर्व हुए हैं। अभूतपूर्व कार्य का नाम है, क्षायिक सम्यक्दर्शन, केवलज्ञान, सिद्ध पर्याय। आचार्य भगवान कहते हैं-तुमने जितने भी, दर्शन किए हैं, तुमने जितना भी लाभ लिया है, उसमें से कुछ अंश, पहले भी लिया था, तो वह अभूतपूर्व नहीं है।

अभूतपूर्व वह है जो भूतकाल में कभी पहले नहीं हुआ हो, वह है, आपकी अरिहंत दशा और सिद्ध दशा-जो सिद्ध बनने के लिए प्रयत्न किया। वह अभूतपूर्व कार्यक्रम की तैयारी है। हम बोलते हैं-अभूतपूर्व कार्यक्रम की तैयारी चल रही है। आचार्य कहते हैं-जब कार्यक्रम ही अभूतपूर्व नहीं है तो, तैयारी अभूतपूर्व कैसे होगी। अभूतपूर्व कार्य भगवान बनना है, जो कभी नहीं हुआ हो वह हो जा ओ जो कभी नहीं बने वह बन जाओ, यह है अभूतपूर्व कार्यक्रम। निर्वाण प्राप्त करना है कार्यक्रम। परन्तु आचार्य भगवान कहते हैं-कर्मठ कार्यकर्ता वह है जो आठ कर्मो को नष्ट कर दे।

आठ कर्मो के नष्ट करने में जो जुटा है, वह कर्मठ है। और जो कर्मो में ठहरा है, वह कमठ है।

''सिद्ध भगवान् अभूतपुव्वो भवति''

एक शब्द पर विचार करना। क्या? अभूतपूर्व करना है। महाराज ! कुछ नया करने का मन है, हम कुछ नया करना चाहते हैं। अधिकांशत: व्यक्ति यह बोलता है-यह तो हमने पहले किया है, यह माल तो पहले देखा है, यह वस्तु तो पहले खरीदी है। कुछ नई क्वालिटी दिखाओ। ज्ञानियो! सबसे नवीन क्वालिटी का नाम है-सिद्ध दशा। इससे अच्छी क्वालिटी का माल, इससे अच्छी वस्तु कोई हो ही नहीं सकती। इसलिए वह नवीन है, अभी तक नहीं पाई। इसलिए नवीन है। और दूसरी बात यह है, संसार में जितने जीव हैं, उनमें से यह दशा किसी ने नहीं पाई है। इसलिए अभूतपूर्व है। जो किसी के पास न हो, जैसे-हम मार्केट में जाते हैं, तो हम सोचते हैं। कि हम ऐसी वस्तु लायेंगे जो किसी के पास न हो, बोलो न! कोशिश तो यही रहती है। कि नहीं ?

आचार्य भगवन् कहते हैं- जो किसी के पास नहीं है। वह एक ही चीज है जो किसी के पास न हो वह सिद्ध दशा है, अरिहंत दशा है, मुनि दशा है, क्षायिक सम्यक्दर्शन दशा है, ऐसी दशा पाओ। हमारा प्रयत्न ऐसा हो। हम ऐसा भाव करते हैं-कि कुछ नया करेंगे, हम अपना कुछ नया व्यापार करेंगे, हम अपना कुछ नया चिंतन करेंगे, हम कुछ नया विचार करेंगे, हम कुछ नया क्रय-विक्रय करेंगे।

लेकिन हम करते वही हैं, जो अनादि से किया है। मिला वही है, जो अनादि से मिला है। क्या पाया? हमने नया मकान खरीद लिया। ज्ञानी! मकान नया हो नहीं सकता है। क्योंकि ऐसे मकानों को खरीदा और छोड़ा है। मेरी नई दुकान बन गई। नई हो ही नहीं सकती। कपड़े नये आये हैं, हो ही नहीं सकते। ज्ञानी! अब ऐसा करो, जो कभी न किया हो, कहीं न किया हो, वह कर दिखाने का नाम है-साधना। भो ज्ञानी! अभव्य जीव की मुनि दशा, भले ही अनंतवार हो जाये, लेकिन भव्य तो मात्र अधिकतम बत्तीस बार ही मुनि दीक्षा लेकर मोक्ष चला जाता है। यदि किसी मुनि के जीवन काल में मात्र एक बार भी मुनि पने का भाव आ गया तो पूरा जीवन धन्य हो गया। जैसे-ज्ञानी! चौबीस घण्टे में एक बार स्नान कर लेते हो, तो चौबीस घण्टे को शुद्ध मान लेते हो।

यदि अपने जीवन काल में एक बार जन्म का प्रमाण पत्र, नगर पालिका में बनवा लेते हो तो वह जीवन भर के लिए माना जाता है। जैसे-एक बार जन्म का प्रमाण पत्र बनाते हो तो पूरे जीवन काल के लिए माना जाता है। उसी तरह से यदि संपूर्ण जीवन काल में एक बार भी मुनि दशा का अनुभव हो गया तो उसकी महिमा ही निराली है। ऐसा मुनि कितनी भी कम साधना करे तो भी बत्तीस भव के अंदर-अंदर उत्कृष्ट साधना का अभ्यासी होकर, मोक्ष को पा ही लेगा, यह विशेषता है। ज्ञानी जीवो! ये मत कहना कि अनंतो बार मुनि बना। अनंतो बार मुनि बनने वाला इस सभा में नहीं रहेगा। अनंत बार मुनि बनना अभव्य जीव की अपेक्षा है। भव्य जीव की अपेक्षा नहीं है।

''ताहि, सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण''॥ छहढ़ाला॥

हे भव्य जीवो! जब मैं भव्य कह रहा हूँ। तो स्पष्ट है कि आप अनंतो बार मुनि नहीं बने। अनंतों बार यदि मुनि बने होते, तो अनंतानंत बार श्रावक की बात कहना पड़ेगी। अनंतानंत बार व्रती की बात कहना पड़ेगी। क्यों? क्योंकि जब मुनि की इतनी दुर्लभ अवस्था को तुमने अनंतों बार पाया है, तो फिर व्रती, कितने बार बने होगे, तो फिर श्रावक कितनी बार बने होगे, तो फिर मंदिर कितनी बार गए होगे, तो फिर पूजा कितनी बार की होगी, इसका भी तो विवेक लगाओ। तुम जब उत्कृष्ट बात को कह रहे हो, कि अनंतो बार मुनि बने, तो श्रावक कितनी बार बने होंगे।

ज्ञानी जीवो! भव्य जीव की अपेक्षा से सुनो। इस जीव ने अनादि काल से आज तक क्या किया? जिनवाणी को नहीं सुना। गुरुओं को नहीं पूजा यदि मैंने भूतकाल में देव शास्त्र गुरु की संगति की होती और श्रद्धा जाग गई होती तो इस पंचमकाल में जन्म ही नहीं होता। ज्ञानियो! पंचमकाल में, सम्यक्दृष्टि का जन्म नहीं होता है। इस बात को नोट करके रख लेना। ध्यान देना-पंचमकाल में सम्यक्दृष्टि जीव का जन्म

नहीं होता हैं इसका तात्पर्य है पूर्व काल में हम में से किसी ने भी ऐसे महान कार्य नहीं किए। जिससे कि हमारा सम्यक्त्व अखण्ड बना रहता। हम सबने कुछ किया होगा, देव शास्त्र गुरु की पूजा भी की होगी, अच्छे संस्कार रहे होंगे। यह मैं मानता हूँ। महाराज! श्री आपके तो भव-भव के संस्कार लगते हैं। ऐसा लगता है कि आचार्य विशुद्धसागर कई भवों के मुनि हों, ऐसा लगता है कि आचार्य विद्यासागर जी कई भवों के मुनि हों। लेकिन इतना ध्यान रख लेना-कि पंचमकाल में सम्यक्दृष्टि जीव का जन्म नहीं होता, तो कितना दुर्लभ है वह सम्यक्दर्शन पाना। और मुनि बनना तो इतना दुर्लभ है, ज्ञानी जीवो! कितनी विशाल संख्या में कितने कम मुनि होते हैं। आचार्य कहते हैं, जितने मुनि होते हैं, उनमें से बहुत कम उपशम श्रेणी, क्षपक श्रेणी, आरोहण करते हैं। और जिनमें से क्षपक श्रेणी वाले ही अरिहंत बनते हैं। और उपशम श्रेणी वाले अरिहंत भी नहीं बनते हैं। प्रिय आत्मन्! तीन कम नौ कोटी मुनिराज में क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले छः महिना आठ समय में, कुल छः सौ आठ जीव ही अरिहंत बनते हैं, अधिक नहीं बनते। ओहो! मात्र तीन कम नौ कोटी मुनिराज। उनमें छः महिने आठ समय में मात्र छः सौ आठ जीव ही अरिहंत बनने की डिग्री, सिद्ध होने की डिग्री प्राप्त कर पायेंगे। माताओ ! आपको एक संदेश देता हूँ, आज सुबह-सुबह आपके घर भगवान आए थे। पता है, सुनो, अरिहंत भगवान आए थे। पता है, कि नहीं ? तुम कहते हो महाराज आप हमारे घर नहीं आये, चिंता मत करो। मैं, तुम्हारे घर न आ पाऊँ तो विकल्प नहीं करना तुम तो श्रद्धा बनाओ, तुम्हारे घर तो अरिहंत भगवान आयेंगे। महाराज! क्या अरिहंत भी आते हैं? अरे! पंचम काल में तो दिखाई ही नहीं देते। आयेंगे-कहाँ से? ज्ञानी! आगम से देखो अरिहंत भगवान आपके घर आते हैं। और सुनो! छः महिना आठ समय में छः सौ आठ जीव सिद्धि को प्राप्त हैं। उनमें से जितने जीव लोकपूरण समुद्घात करते हैं। वह सभी जीव आपके घर आते हैं। सिद्ध होने के पहले पूरे लोक के समस्त जीवों को स्पर्श करके जाते हैं। पूरे लोक में उनके प्रदेश फैल जाते हैं। आपको मालूम है, जैसे-आप एक साड़ी को एक अटैची में रखते हो, लेकिन जब सुखाना हो तो फैला देते हो। उसी तरह एक आत्मा लोकपूरण समुद्घात करता है, तो उसके प्रदेश पूरे लोक में फैलते हैं। इसका तात्पर्य है, जहाँ आप हैं, आपके शरीर का स्पर्श करके वे प्रदेश चले जाते हैं। भले ही आप भगवान को न छू पाओ, लेकिन भगवान तो आपको छू ही लेते हैं, तो लोकपूरण के काल में सिद्ध होने के पहले, केवली भगवान के काल में सिद्ध होने के पहले केवली भगवान की आत्मा के प्रदेश दण्ड, कपाट, प्रतर, लोकपूरण, चौथे समय जब लोकपूरण समुद्घात होता है। तो उस समय उनके आत्मा के प्रदेश पूरे लोक में फैल जाते हैं। जब उनके आत्मा के प्रदेश लोक में फैलेंगे तो आपका स्पर्श होगा। यदि छः महिना आठ समय में, छः सौ आठ जीव हुए तो अनुपात की दृष्टि लगाऐं तो रोज दो-तीन सिद्ध तो होते ही हैं। यदि छः महिने तक भी सिद्ध नहीं हुए तो

अंतिम आठ समयों में, छ: सौ आठ जीव सिद्ध पर्याय को प्राप्त हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि आज तक कई भगवानों ने हमें स्पर्श कर लिया।

पारसमणी के स्पर्श से लोहा-सोना बन जाता है। कितने केवली भगवान अनादि काल से आज तक लोकपूरण समुद्घात कर चुके होंगे। अनंत कर चुके होंगे। तो अनंतानंत भगवानों ने, हमको छुआ है। हे माताओ ! विकल्प नहीं करना कि हम भगवान को नहीं छू पाते। कोई बात नहीं, तुम भले ही भगवान को न छू पाओ, लेकिन भगवान तो तुम्हें छूके जाते हैं। भगवान को पकड़ ही नहीं सकते। वह चार समय में लोकपूरण समुद्घात के बाद सिद्धालय चले जाते हैं। प्रिय आत्मन्! सिद्धों का सुख सिद्धों के पास है। उनका सुख उनके पास ही है। उनके सुख की कोई उपमा नहीं है। वह अनुपमेय सुख है। तीन लोक में कहीं भी कुछ भी होता रहे, लेकिन उनको कुछ भी अंतर नही पड़ने वाला, वह जहाँ हैं, वहीं रहेंगे। हलन-चलन भी होने वाला नहीं है। उनको कोई, विकल्प नहीं होने वाला चाहे भूमण्डल पर, नभमण्डल में, कहीं पर भी कुछ भी हो। जल, थल,नभ कहीं पर भी पूरे विश्व में कुछ भी हो, लेकिन सिद्धों को किसी भी तरह का विकार नहीं आता। वह अपने स्वरूप से विचलित नहीं होते। ऐसे वह सिद्ध भगवान हैं।

सिद्ध भगवान जानते सबको हैं, लेकिन जाते किसी में नहीं हैं। जानते सब कुछ हैं, होते कुछ भी नहीं हैं।

प्रिय आत्मन्!

अंतर इतना है, भैया। जो सब कुछ जानते हैं, वह कहते कुछ नहीं हैं। और जो जानते कुछ नहीं हैं और वह कहते बहुत कुछ हैं। जिनके पास एक भी दोष नहीं है, वह किसी के दोष नहीं बताते। लेकिन जानते जरूर हैं। ज्ञानी! तू अनंत दोषी है। ये सिद्ध भगवान जानते हैं, लेकिन वह आपको नहीं बतायेंगे। और हम अनंत दोषी होने के बाद अपना एक दोष बताने के लिए सकुचाते हैं, कि पता न पड़ जाए। अपने दोषों का ढंक्रना, जुगुप्सा नामकर्म-कषाय का उदय है। जुगुप्सा कषाय चल रही है, अपने दोष को ढ़ंकना दूसरे के दोषों को कहना और दूसरे के गुणों को ढंक्रना अपने गुणों का प्रचार करना। ये जुगुप्सा नोकषाय के उदय में जीव करता हैं। आज हमने जाना वह सिद्ध भगवान लोक शिखर पर रहते हैं। वह सदा जयवंत हों, जयवंत हों। उन सिद्धों के श्री चरणों में, हम सदा नमस्कार करते हैं। वह सिद्ध-सिद्धालय में रहते हैं। वे, सर्वसिद्धियों को देने वाले, सिद्ध भगवान सदा जयंवत हों।

गमणागमणविहीणो, फंदण-चलणेहि विरहिओ सिद्धो।
अव्वाबाहसुहत्थो, परमट्ठगुणेहिं संजुत्तो ॥ 68 ॥

अर्थ-

गमन और आगमन से रहित परिस्पन्द और हलन-चलन से रहित, अव्याबाध सुख में स्थित परमार्थ या परम अष्ट गुणों से संयुक्त सिद्ध परमात्मा होता है।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी ! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

सिद्ध भगवान, सिद्धालय में, पहुँच चुके हैं। यह जीव-कर्म का नाश करते ही एक समय में ऊर्ध्वलोकवासी हो जाता है, गति और आगति रहित अवस्था को प्राप्त होकर के, एक स्थान पर ठहर जाता है। जो सिद्ध है, वह कहाँ जाते हैं? और फिर कब आते हैं? अन्य मत वाले कहते हैं। जैसे-गुब्बारे की डोर छोड़ दी जाए, तो गुब्बारा आकाश में उड़ता जाता है। वैसे ही-परमात्मा ऊपर-ऊपर, अनंत आकाश में उड़ता जायेगा, अनंतकाल तक, ऊपर-ऊपर चलता जाता है। किन्तु आचार्य कहते हैं-कि एक समय में, सिद्ध-शिला पर पहुँचने के बाद, उसके आगे नहीं जाता।

सिद्ध शिला के आगे क्यों नहीं जाता है?

''धर्मास्तिकायाभावात्'' (तत्त्वार्थ सूत्र)

धर्मास्ति काय का अभाव होने से, गमन वहाँ तक ही होता है, जहाँ तक धर्मास्ति काय पाया जाता है। क्योंकि, गमन में सहायक धर्मास्ति काय है। और धर्म द्रव्य जहाँ पर नहीं है, तो वहाँ सिद्ध भगवान नहीं जा सकते, यद्यपि सिद्ध भगवान में अनंत शक्ति है, लेकिन बिना निमित्त के सिद्ध भगवान भी गमन नहीं कर सकते, उपादान में क्षमता है, लेकिन निमित्त का अभाव है। तो सिद्ध भगवान भी लोकाकाश में ही ठहर जाते हैं, वह अलोकाकाश में नहीं जा सकते, क्यों नहीं जा सकते? वह तो भगवान हैं, जहाँ जाना चाहें, वहाँ चले जायें? नहीं-जा सकते, उनकी भी मर्यादा है। अपने यहाँ तो, भगवान को भी बाँध लिया, कि धर्म द्रव्य का अभाव है। आप लोक के बाहर नहीं जा सकते हो। जैसे-धर्म द्रव्य का अभाव

होने से भगवान लोक के बाहर नहीं जा सकते हैं। भगवान लोक के अंदर ही रहते हैं। लोक में रहते हैं, लोक के बाहर नहीं रहते हैं। तो उनका गमन सिद्ध भगवान बनने के बाद होता है, क्या? नहीं। अरिहंत परमात्मा का गमन होता है, सिद्ध परमात्मा का गमन नहीं होता है। अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी- ये चार परमेष्ठी विहार करते हैं, गमन करते हैं। सिद्ध परमेष्ठी गमन नहीं करते हैं। लेकिन परिणमन करते हैं।

ऐसे कितने परमेष्ठी हैं, जो शुद्ध परिणमन करते हैं ? सिद्ध परमेष्ठी पूर्णत: शुद्ध परिणमन करते हैं, अरिहंत में तो योगों की मलिनता है, योग उनके अंदर मल पैदा करता है, इसलिए पूर्ण शुद्धता नहीं है, लेकिन सिद्ध भगवान में पूर्ण शुद्धता है। इसलिये साधु परमेष्ठी ही शुद्ध परिणमन करते हैं। ऐसे कितने परमेष्ठी हैं, जिनका आगमन (विहार) होता है? चार परमेष्ठी गमनागमन कर सकते हैं। अरिहंत का भी तो समवशरण आता जाता है, तो चार परमेष्ठी आ जा सकते हैं, लेकिन सिद्ध परमेष्ठी न आ सकते हैं, न जा सकते हैं, ''जहाँ हैं वहीं रहते हैं। एक बार सिद्धालय में पहुँच गये, तो न उससे एक बाल-नीचे ऊपर नहीं आ जा सकते। क्योंकि नीचे आने का कारण अष्ट कर्म थे। ऊपर जाने के लिए धर्मास्ति काय था। इसके ऊपर जाने के लिये धर्मास्ति काय का अभाव है। और नीचे आने का कारण कर्म था। उसका भी अभाव हो गया।

वंदिन्तु सव्वसिद्धे, धुवमचलमणोवयं गइं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणयो सुयकेवली भणियं ।।9।। समयसार ।।

सिद्ध भगवान ध्रुव हैं, अचल हैं, चलायमान नहीं होते, चंचल नहीं हैं। शरीर धारी ही विहार कर सकता है। जिनका शरीर नहीं है, तो उसका भी विहार पाया जाता है। लेकिन वह एक समय में लोक के शिखर तक जा सकता है। उसके आगे कहीं नहीं जा सकता है। ''अविग्रहा: जीवस्य'' सिद्ध जीव की एक ही गति होती है, अविग्रह गति होती है। और अविग्रह गति वाला-सीधे सिद्धालय जाता है। अन्यत्र कहीं नहीं जाता है। क्योंकि, सिद्ध भगवान मुक्त हो गए हैं। और मुक्त जीव की एक ही गति होती है, अविग्रह। तो वह सिद्ध लोक तक ही जाते हैं। न तो सिद्ध कहीं जाते हैं, न आते हैं। बोलो। सिद्ध भगवान आयेंगे क्या? नहीं। पूजा करोगे तो आते हैं क्या? नहीं। आव्हानन, स्थापन, सन्निधिकरण हे! सिद्ध परमेष्ठी अत्र-अत्र, अवतर-अवतर, तिष्ठ-तिष्ठ आयेंगे क्या? नहीं। तो फिर क्यों करते हो? अरे ! श्रद्धा के भगवान तो हृदय में ही आयेंगे।

लेकिन जो शास्वत सिद्ध जो सिद्धालय में हैं वह वहीं पर रहेंगे। लेकिन श्रद्धा के सिद्ध हृदय में आ

जायेंगे, भावों के भगवान हृदय में विराजमान होंगे। आ गया ध्यान में-हम अपने भावों में कल्पना तो कर सकते हैं, भाव निक्षेप से। वस्तुत: आमंत्रण देना तो, हमारा कार्य है। आना और न आना उनका कार्य है। यह भी परम सत्य है, कि सिद्ध भगवान सिद्धालय से नहीं आते हैं। तो सिद्धचक्र में आव्हानन क्यों करते हैं? क्योंकि भावों, की प्रधानता है।

ज्ञानी! पूजा तो भक्ति है, सिद्धांत नहीं है। पूजा में भक्त अपने आपको समर्पण करता है, और भावों के आधार पर हृदय में भावों को स्थापित करता है। जो सिद्ध भगवान सिद्धालय में हैं, वही सिद्ध भगवान मेरे हृदय में विराजमान हैं। यह परोक्ष विनय है। परोक्ष विनय का सबसे अच्छा लक्षण है-आव्हानन। पूजा दो प्रकार की है-सचित्त पूजा और अचित्त पूजा। सचित्त पूजा-अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इन पंचपरमेष्ठी की जो-चेतन, जिन हैं। उनकी पूजा जिनमें-चार परमेष्ठी की तो हम सचित्त पूजा साक्षात् कर लेते हैं। लेकिन सिद्ध भगवान की पूजा परोक्ष करते हैं। पर है सचित्त पूजा ही। अचित्त पूजा क्या है? प्रतिमा आदि की स्थापना करके प्रतिमा के सम्मुख करना-अचित्त पूजा है। और साक्षात् समवशरण में अरिहंत की, आचार्य, उपाध्याय, साधु के समक्ष आचार्य, उपाध्याय, साधु की पूजा करना सचित्त पूजा है, आ गया ध्यान में।

सचित्त से तात्पर्य फल फुल नहीं है। सचित्त से तात्पर्य है, चेतन प्राण सहित जो आत्मा है। उस आत्मा की पूजा-सचित्त पूजा है। और चेतन रहित प्रतिमा आदि की पूजा करना अचित्त पूजा है। उनमें स्पन्दन नहीं होता, परिस्पन्दन नहीं होता। यहाँ कुछ भी हो जाए, वहाँ कुछ नहीं होता। वस्तु व्यवस्था यह है, कि हमारे अंदर परिस्पन्दन पाया जाता है। हम मोही जीव हैं, योगी जीव हैं, हमारे पास मन, वचन, काय का योग है। इसलिए परिस्पन्दन पाया जाता है और मोह के कारण परिस्पंदित हो जाते हैं। यदि मात्र योग ही होता, तो कुछ भी नहीं था। लेकिन मोह के कारण हम बुद्धिहीन, विचारहीन, निरन्तर शोक मग्न होकर के, राग-द्वेष में निमग्न होकर, चक्कर काटते रहते हैं तो परिस्पन्दन और बढ़ जाता है। मोह के कारण परिस्पन्दन की गति बढ़ जाती है। सिद्ध भगवान हलन-चलन से रहित हैं। जहाँ हैं-वहाँ हैं। जैसे हैं-वैसे हैं। जो हैं, सो हैं। जहाँ हैं, वहीं रहेंगे। सिद्धों का स्थाई पता-सिद्धालय। जिनकी पूजा कर रहे हैं उनका स्थाई पता है। और जो पूजा कर रहे हैं वह अस्थाई पते वाले हैं। हमें अस्थाई अवस्था में पूजा करके-सिद्धालय स्थाई अवस्था में पहुँचना है। सिद्ध भगवान-न स्वयं बाधित होते हैं। न किसी को बाधा पहुँचाते हैं। किसी भी प्रकार की बाधा उन्हें नहीं हैं। हम सभी तो, बाधा वाले हैं। कोई जाना चाहता है, कोई रोक देता है। कोई रूकना चाहे, कोई भेज देता है। यह बाधा है। लेकिन, सिद्ध भगवान अव्यावाधी हैं। उन्हें किसी

प्रकार की बाधा नहीं है। सुख में स्थित हैं। आप क्या हैं? गृहस्थ हैं, वह सुखस्थ हैं। सुख में स्थित हैं। अनंत सुख में निमग्न हैं। सुबह बताया था, एक मनुष्य अनंत पदार्थो को भोगे-उसे जितना सुख मिलेगा, उससे अनंत गुना सुख सिद्धों को मात्र एक समय में प्राप्त होता है। तू अनंत काल तक अनंत पदार्थ को भोगते हुए जितना सुख पायेगा उससे अनंत गुना सुख सिद्ध के एक समय में प्राप्त होता है। और तेरा सुख नाशवान है। सिद्धों का सुख शास्वत है। इसलिए संसार में सुख पाने की कल्पना छोड़ देना। यदि सुख किसी के पास है, तो वह परम सुख सिद्धों में है। अरहंत-सिद्धों में ही सुख है। जहाँ मोहनीय का नाश हो गया है। वहाँ परम सुख है। हम सब मोही जीव है। कभी सुख-कभी दुख, क्रम चलता जाता है। लेकिन इंद्रिय सुख को हम सुख मान लेते हैं, कि सुख हो गया। और इंद्रिय सुख नहीं हुआ, तो दुख मान लेते हैं।

श्रावक को नहीं रोना चाहिए। रोने से कर्म बंध होता है। क्योंकि रोना-शोक कषाय के आधीन है। हँसना-हास्य कषाय के अधीन है। और दोनों कषायें हैं, कोई अच्छी नहीं है। ध्यान देना-हँसने से पहले समझ लेना, कि सामने वाला किस बात पर, हँस रहा है। दूसरे के हँसने के प्रकरण को जाने बिना हँसने नहीं लगना। न जाने वह किस प्रकरण में हँस रहा है। आ गया ध्यान में, हँसना भी अनुमोदना है। और अनुमोदना से कर्म का बंध तो होता ही है। और वह कर्म उदय में भी आ जाता है। हँसना अनुमोदना है। श्रीपाल के सात सौ मित्रों ने क्या किया था ? मुनिराज को देखकर हँसा ही तो था। परिणाम ऐसा हुआ भैया! यह, हास्य कषाय भी बहुत जबरदस्त कषाय है। बड़े-बड़े युद्ध इसी से हुए हैं।

महाभारत का युद्ध हास्य कषाय ने कराया था। सिद्धों के आठ गुण होते हैं। ''समकित, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघु, अवगाहना, सूक्ष्म, वीरजवान, निराबाध गुण सिद्ध के। सिद्ध भगवान के आठ गुण होते हैं। चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं। एक कहता है मैं तो पेट पाल रहा हूँ, दूसरे से पूँछा, क्या कर रहे हो? मैं तो तसला ढो रहा हूँ। तीसरे से, पूँछा, मैं दीवाल बना रहा हूँ। चौथे से पूँछा-क्या कर रहे हो। मैं तो यह महल बना रहा हूँ। देखो सबका चिंतन अलग-अलग है।

प्रिय आत्मन्!

सिद्ध के आठ गुण हैं। समकित, दर्शन, ज्ञान, अगगुरुलघु, अवगाहना, सूक्ष्मत्व और अवगाहनत्व, आठ गुणों से संयुक्त हैं-सिद्ध भगवान। मोहनीय कर्म का नाश सबसे पहे होता है। उसके पश्चात ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अंतराय, इन तीन कर्मो का नाश होता है। इस तरह चार घातिया कर्मो का नाश होता है।

मोहनीय कर्म के अभाव से-अनंत सुख उत्पन्न होता है-क्षायिक सम्यकत्व। और पश्चात् ज्ञानावरणी से-अनंत ज्ञान। दर्शनावरणी से-अनंत दर्शन। और अंतराय के नाश से-अनंत शक्ति प्रकट होती है। चार

कर्मो के नाश से चार गुण प्रकट हो गए। फिर उसके पश्चात् नाम,गोत्र, अंतराय, वेदनीय का अभाव वेदनीय के अभाव से-अव्याबाध प्रकट होता है। नामकर्म के अभाव से-सूक्ष्मत्व गुण प्रकट होता है। और गोत्रकर्म के अभाव से-अगुरुलघुत्व गुण प्रकट होता है। आयु कर्म के अभाव से-अवगाहना गुण प्रकट होता है। इस तरह आठ कर्मो के अभाव से-आठ गुण प्रकट होते हैं। इसलिए इन कर्मो को भी जानना। किस कर्म के अभाव से-कौन सा गुण प्रकट होता है? यह भी जानना कि-किस गुण की परिभाषा क्या है? तो सबसे पहले मोहनीय कर्म के अभाव से-क्षायिक सम्यक्त्व-दर्शनमोहनीय के अभाव से प्रकट होता है। और चारित्रमोहनीय के अभाव से क्षायिक सुख प्रकट होता है।

जहाँ क्षायिक सम्यकत्व लिखा हो-वहाँ दर्शन मोहनीय की विवक्षा है। जहाँ क्षायिक सुख लिखा हो-वहाँ चारित्र मोहनीय की विवक्षा है। विवक्षा क्या कहलाती है? वक्ता की अपेक्षा को विवक्षा कहते हैं। वक्ता-कब, कहाँ, किस प्रकार, कहना चाहता है। यह उसकी इच्छा पर निर्भर करता है। और उसकी इच्छा की अभिव्यक्ति को विवक्षा कहते हैं। ज्ञानावरणी कर्म के नाश से-अनंत ज्ञान प्रकट होता है। ज्ञान (जानना) जो अनंत पदार्थो को ''सर्वद्रव्य पर्यायेषु केवलस्य'' जो त्रिकाल वर्ती, संपूर्ण द्रव्य, संपूर्ण योगियों को, युगपत् एक समय में जानने की क्षमता रखता है। वह केवलज्ञान है-जो अनंत ज्ञान है। अनंत दर्शन-अनंत पदार्थो को अवलोकन करने की, सामर्थ्य वाला होता है। वह दर्शन-अनंत दर्शन है। मोहनीय कर्म के नाश से-आत्मा का जो निज स्वभाव (सुख स्वभाव) प्रकट होता है। वह अनंत सुख है। अंतराय कर्म के अभाव से-जो अनंत शक्ति उत्पन्न हुई है। वह अनंत वीर्य नाम का गुण है। आयु कर्म के अभाव से अवगाहना गुण प्रकट होता है। अवगाहना गुण में क्या है ''एक माँहि अनंत राजे'' एक सिद्ध में अनंतानंत सिद्धों को रखने की क्षमता और अनंतानंत सिद्धों को एक सिद्ध में समा जाने की क्षमता का नाम है। अनंतानंत जैसे-माँ! तुम्हारी गोद में बेटा आ जाता है। लेकिन एक ही बनेगा दूसरे को नीचे बिठालना पड़ता है। दो को बिठाओगे तो तीसरे को नीचे बिठालना पड़ता है।

लेकिन सिद्धों की विशेषता यह है कि, एक सिद्ध सिद्धालय में पहुँचे, यदि उसी स्थान से दूसरे मुनि सिद्ध साधना करें, और कर्म नाश करके सिद्ध हो जाऐं, तो एक सिद्ध में, दूसरा सिद्ध दूसरे में, तीसरा सिद्ध तीसरे में, चौथे। इस तरह एक में अनंतानंत, सिद्ध हो जायेंगे। जैसे-मानके चलिए, यह सिंहासन है, इस सिंहासन पर बैठे-बैठे एक मुनिराज सिद्ध हो गए। उसके बाद दूसरे सिद्ध बैठे। वह भी सिद्ध हो गए। और तीसरे बैठे वह भी सिद्ध हो गए। वह कहाँ जायेंगे? जायेंगे, सीधे एक ही स्थान पर। तो एक ही सिद्ध में अनेक-अनेक, सिद्ध समाते चले जायेंगे। जैसे यह बल्ब जल रहा है, इसका प्रकाश यहाँ पर है। दूसरा जल गया तो भी यही प्रकाश हो गया। तीसरा जला, तो उसका भी प्रकाश यही पर हो गया। उसी तरह

एक सिद्ध में अनंतानंत सिद्ध को समाहित करने की, क्षमता है। कभी सिद्ध शिला छोटी नहीं पड़ेगी। निगोद भी कभी खाली नहीं होगा।

क्योंकि अक्षय अनंत राशि है। और कभी सिद्ध शिला छोटी नहीं पड़ेगी। क्योंकि एक में इतनी क्षमता हैं। कि अनंत को समा लेते हैं। जिसका हृदय विशाल होता है। वह सबको संभाल लेता है। ज्ञान विशाल, वात्सल्य विशाल, हृदय विशाल, भावना विशाल, यह सब की विशालता चाहिए।

नामकर्म के अभाव से-सूक्ष्मत्व गुण प्रकट होता है। और अगुरुलघुगुण गौत्र कर्म के अभाव से प्रकट होता है। इस तरह से वेदनीय कर्म के अभाव से अव्याबाध, गुण प्रकट होता है। जिसके कारण किसी तरह की कोई बाधा नहीं होती है। यह आठ गुण सिद्धों के होते हैं। मुख्यता आठ का कथन किया है। गुण तो अनंत होते हैं। इस तरह आठ गुणों से संयुक्त होते हैं। सिद्धों का स्वरूप, आपके सामने कहा। अपने जीवन में, इन सिद्धों के, स्वरूप को अच्छी तरह समझ करके रखना चाहिए।

यह सिद्ध भगवान बहुत ही, कल्याणकारी, संपूर्ण जीवों के लिए, सुखदायक हैं। समंतभद्र स्वामी कहते हैं-वह सिद्ध भगवान जन्म, जरा, बीमारी, मरण, शोक, दुख, भयों से मुक्त होते हैं। निर्वाण दशा को प्राप्त हैं। शुद्ध सुख को प्राप्त होते हैं। अपना सुख अशुद्ध सुख होता है। अपन शुद्ध भोजन तो करते हैं। लेकिन शुद्ध सुख नहीं भोगते हैं।

अनंत काल-सैकड़ों काल भी बीत जाने पर भी, उन सिद्धों में कोई विकृति नहीं पाई जाती है। संसार में किसी भी तरह का उपद्रव होता रहे, लेकिन उनके चित्त में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होता है। इस बात को रत्नकरण्डश्रावकाचार में अच्छी तरह स्पष्ट करते हैं।

लोयालोयं सव्वं, जाणइ पेच्छइ करण कमरहियं।
मुत्तामुत्ते दव्वे, अणंत पज्जायगुणकलिए॥69॥

अर्थ-

इंद्रियों के क्रम से रहित एक साथ, सर्वलोक और अलोक को तथा अनंत पर्याय और अनंत, गुणों से संयुक्त सभी, मूर्त और अमूर्त द्रव्यों को जानता है और देखता है।

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी,

विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

वंदित्तु सव्वसिद्धे-मैं उन समस्त सिद्धों को, नमस्कार करता हूँ। जो-सम्यक्त्व आदि आठ गुणों से संयुक्त, निज स्वरुप को प्राप्त, स्वात्मोपलब्धि लक्ष्य को जिन्होंने पा लिया है। जो अष्ट कर्म से मुक्त, नित्य निरंजन अविनाशी परम शुद्ध, परम पारिणामिक भावों में लीन, निज दशा में लवलीन अनंत सुख के भोगने वाले, अपने स्वरुप से स्थान से और स्वभाव से कभी चलायमान नहीं होने वाले हैं। ऐसे उन अनंतानंत सिद्धों को केवल ज्ञान के प्रतिच्छेद प्रमाण नमस्कार करता हूँ। द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्म से मुक्त, पंच शरीर से मुक्त, चारों गति से मुक्त, पंचइंद्रियों से रहित त्रस, स्थावर, षट्काय से रहित, तीन वेदन से रहित, पच्चीस कषाय से रहित, छः लेश्यायों से रहित, सात ज्ञान से रहित, संयम, मार्गणातीत, क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त, भव्य और अभव्य स्वभाव से रहित, संज्ञी और असंज्ञी के भेद से रहित, आहारक, अनाहारक, अवस्था से रहित, गुणस्थान से परे गुणास्थानातीत, जीव समासातीत पर्यातित रहित प्राणातित परमात्मा को, मैं ज्ञान दर्शन प्राण से प्रणाम करता हूँ। द्रव्य प्राण से रहित, किन्तु ज्ञानदर्शन भाव प्राणमय शुद्ध प्राण से सहित, अनंत काल तक जीवित रहने वाले, जन्म, जरा, मृत्यु के विजेता, होकर भी जो अनंत काल तक, जीवित रहेंगे, ऐसे मृत्युन्जयी जन्मजयी, जराजयी, निर्वाण-धाम को प्राप्त, सिद्ध परमात्मा, जिनके स्वरूप का स्मरण करने से स्वरूप का भान हो जाता है। जिनका ध्यान करने से, रूपातीत ध्यान हो जाता है। जिनको ज्ञान में लाने से सम्यक्ज्ञान हो जाता है, जिनमें मन स्थिर होने से ध्यान हो जाता है। जिनका स्वरूप विचारने से चारित्र उत्पन्न होता है। ऐसे सिद्धालयवासी लोकाग्र शिखर के चूड़ामणि, अनंतानंत गुणराशि से सहित त्रिलोक पूज्य त्रिकाल पूज्य, निज गुणों से समर्थ, अरस, अगंध अवर्ण अरूप, अमूर्त, आत्मा स्वभाव की, उन सिद्धों की याद करता हूँ। जो सिद्ध मेरा भविष्य है। मैं उन सिद्धों की याद करता हूँ। जिन सिद्धों का भूत मैं हूँ। प्रिय आत्मन्! सिद्धों के गुण, श्रद्धा में आते हैं। तो सम्यक्ज्ञान हो जाता है।

सिद्धों के गुण ज्ञान में आते हैं, तो सम्यक्ज्ञान हो जाता है। और सिद्धों के, गुण चारित्र में आते हैं, तो सम्यक् चारित्र हो जाता है। धन्य हैं, वह सिद्ध। जो सात राजू ऊपर, सिद्धालय में विराजमान हैं। किंतु जैसे सूर्य आकाश मण्डल में रहता भी, अपनी प्रभाओं से सरोवर में कमलों को विकसित कर देता है, वैसे ही सिद्धालय के सिद्ध प्रभु हमारी आत्मा को सम्यक्दर्शन ज्ञान, चारित्र से प्रफुल्लित कर देते हैं।

कर्माष्टक विनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मी निकेतनं।
सम्यक्त्वादि गुणोपेतं, सिद्ध चक्रं नमाम्यहं।।

जो मुक्त हैं, मोक्ष लक्ष्मी के आलय हैं। सम्यकत्वादी गुणों से विभूषित हैं। ऐसे सिद्ध स्वरूप को मैं नमस्कार करता हूँ। धन्य हैं, कृतकृत्य दशा को प्राप्त वह सिद्ध प्रभु सदा-सदा जयवंत हो। तीन लोक में, तीन काल में कहीं भी किसी भी प्रकार का कार्य होता रहे, लेकिन उन सिद्धों में कभी कोई विकार उत्पन्न नहीं होता, वह अपने स्वरूप में निमग्न हैं। जिन पर आवरण नहीं है। उन पर वातावरण का प्रभाव नहीं पड़ता है। धन्य हैं, शुद्ध चैतन्य तत्त्व सिद्ध परमात्मा उनका स्वरूप तो निहारो-

अट्ठविय कम्म वियला, सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किद किच्चा, लोयग्ग णिवासिणो, सिद्धा।।

हे प्रभू! तुम कहाँ रहते हो। एक बार ले चलो वहाँ, रहते हो तुम नाथ जहाँ। हे प्रभू! एक बार वहाँ ले चलो, जहाँ आप रहते हो। भगवान कहते हैं-मैं जहाँ रहता हूँ, तुमको वहाँ ले चलूँ? हाँ! आप जहाँ रहते हो, वहीं ले चलो। तो भगवान कहते हैं-व्यवहार नय से तो हम सिद्धालय में रहते हैं। लेकिन निश्चय नय से निज स्वरूप में रहते हैं। भो ज्ञानी! जिस दिन तू अपने निज स्वरूप में आ जायेगा। उसी दिन तू सिद्धालय में आने का पात्र हो जाएगा। हे प्रभु! आपने सिद्धालय जाने के पहले क्या किया? भगवान बोलते हैं-सिद्धालय में आने के पहले, अपने स्वरूप में आया, अपने स्वरूप को जाना, स्वरूप पर श्रद्धान किया, तथा आचरण किया।

इस प्रकार मोक्षार्थी पुरुष जीव रूपी राजा को जानें, और फिर उसी तरह श्रद्धान करे उसके बाद आचरण करें और तन्मय हो जायें, बस यही स्वरूप सिद्धि का मार्ग है।

एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो, सो चेव दु मोक्खकामेण।।18।। समयसार।।

और मैं स्वरूप में ठहरा हूँ, जो, स्वरूप में आ जाता है, वह सिद्धालय की ओर चला जाता है। ज्ञानियो शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति में निहित है। जितनी-जितनी शुद्धता आएगी, उतनी-उतनी सिद्धियाँ आती हैं।

सिद्ध होने के लिए बाह्य सिद्धियाँ नहीं चाहिए। सिद्ध होने के लिए, कर्म का नाश चाहिए। प्रिय आत्मन्! मैं स्वरूप में आया, बाद में सिद्धालय गया। तुम स्वरूप में आ जाओ, तुम भी सिद्धालय चले

जाओगे। भगवान पारसनाथ स्वामी कहाँ से मोक्ष गए, बोलो? सम्मेदशिखर से। महावीर स्वामी कहाँ से मोक्ष गए? पावापुर से। नेमीनाथ स्वामी कहाँ से मोक्ष गए? चम्पापुर से। और बीस तीर्थंकर? सम्मेदशिखर जी से? अब आपको कहाँ से मोक्ष जाना है? सुनो ज्ञानी ! महावीर स्वामी चाहे पावापुर से मोक्ष गए हो, चाहे वासुपूज्य चम्पापुर से गए हों। किन्तु परम सत्य तो ये है ये सभी, अपने स्वरूप में लीन होने से, मोक्ष गए हैं। महावीर स्वामी पावापुर जाने से मोक्ष नहीं गए हैं, पारसनाथ सम्मेद शिखर जाने से मोक्ष नहीं गये हैं। चम्पापुर जाने से, वासुपूज्य को मोक्ष नहीं हुआ है। और नेमीनाथ को गिरनारी जाने से, मोक्ष नहीं मिला। ध्यान देना-महावीर स्वामी आदि सभी को अपने स्वभाव में ठहरने से, मोक्ष हुआ है। इन सबको कर्मो से मोक्ष हुआ है, कर्मो से छूटे की, पावापुर से छूटे? पावापुर तो कई बार छूटा, लेकिन कर्म नहीं छूटे। यदि हम कहें कि-पावापुर से मोक्ष होता तो, सबको होना चाहिए, चम्पापुर से, तो चम्पापुर जाए, उसे मोक्ष होना चाहिए। ज्ञानी यह व्यवहार की दशा है। कि हम व्यवहार नय से कहते हैं कि पावापुर से मोक्ष हुआ। अरे! ज्ञानी! ऐसा पावापुर से तो भवों-भवों में कितनी बार छूटा होगा। पावापुर छोड़ देने का नाम मोक्ष नहीं है। कर्मो से मोक्ष हुआ है। वस्तुत: छूटे कर्मो से ही है। कर्मो से छूटने पर-जैसे हिमालय से गंगा नदी निकली, उसी तरह कर्मो से निकल कर आत्मा मोक्ष को प्राप्त हुआ है। तो मोक्ष स्थान कौन सा हुआ? आप बोलते न सम्मेद शिखर जी मोक्ष स्थान है। सिद्ध भूमि है। क्योंकि आत्मा सिद्ध कहाँ पर हुई? सम्मेद शिखर में हुई। यह कहना शिखर जी क्या है? सिद्ध क्षेत्र है। द्रोणगिरि क्या है? सिद्ध क्षेत्र है। आत्मा अष्ट कर्मो से रहित, कहाँ पर हुई है? इसी क्षेत्र पर हुई है। ध्यान रखना सिद्धालय में मोक्ष नहीं होता है। मोक्ष तो यहीं पर होता है। जैसे विद्यार्थी पाँचवी कक्षा की परीक्षा तो प्राईमरी स्कूल में देता है। उसके बाद मिडिल में पहुँचता है। मिडिल परीक्षा पास करके फिर हाईस्कूल में पहुँचता है। उसी तरह से, जब कर्मो से छूट जाओगे, तो कहाँ पहुँचोगे? यदि तुम कहते हो कि मोक्ष सिद्धालय में है। इसका तात्पर्य क्या है? कर्म सहित आत्मा वहाँ जाता है क्या? नहीं। तो मोक्ष कहाँ है? जहाँ कर्मो से छूटना, वहीं स्थान मोक्ष स्थान है। हमने बताया न, पारसनाथ स्वामी का मोक्ष स्थान स्वर्णभद्र कूट, सम्मेद शिखर जी। महावीर स्वामी, पावापुर से, यह है क्षेत्र की प्रधानता लेकिन वस्तुत: आत्मा के प्रदेशों से ही कर्म छूटे हैं। तो आत्मा के प्रदेशों में ही मोक्ष हुआ है। पहले मोक्ष होता है कि, पहले आत्मा सिद्धालय जाता है। पहले मुक्त हुआ फिर मुक्त होने के बाद, सिद्धालय जाने में कितना, समय लगता है।

''कृत्स्न कर्म विप्रमोक्षो मोक्ष''।। तत्त्वार्थसूत्र ।।

संपूर्ण कर्मो से मुक्त होने का नाम मोक्ष है। पावापुर से छूटने का नाम मोक्ष नहीं है। चम्पापुर से छूटने का नाम मोक्ष नहीं है। यह जो चर्चा है, इसलिए है, कि मोक्ष आत्मा में ही होता है। आत्मा के बाहर नहीं

होता है। आत्मा में जो कर्म लगे हैं। उन कर्मों से छूटने का नाम मोक्ष है। अथवा कर्मों को नष्ट कर देना मोक्ष है।

मोक्ष कहाँ होता है? मोक्ष क्या है? संपूर्ण कर्मों से, आत्मा का मुक्त हो जाना, छूट जाना, जैसे मेरे हाथ में एक पेन है, और छूट गया, तो मैं पेन से मुक्त हो गया, इसी तरह से आत्मा का कर्मो से छूटना, इस प्रक्रिया का नाम मोक्ष।

''कृत्स्न कर्म विप्रमोक्षो मोक्षः''।।तत्त्वार्थसूत्र।।

संपूर्ण कर्मो का अभाव हो जाना मोक्ष है। अब मोक्ष कहाँ होता है? मोक्ष यहीं होता है। मोक्ष होने के बाद जीव सिद्धालय जाता है। कि सिद्धालय पहले जाता है फिर मोक्ष होता है, भैया यदि आपने कहा कि सिद्धालय में मोक्ष है। तो सिद्धालय में मोक्ष नहीं है। सिद्धालय मोक्ष स्थान नहीं है। ज्ञानी! सिद्धालय तो मुक्त जीवों के रहने का स्थान है। मुक्त होने का स्थान नहीं है। मुक्त कहाँ हुआ? जो जहाँ ठहरा था वही से तो मुक्त हुआ है। और जब मुक्त हो गया, तब फिर उसने ऊर्ध्व गमन किया है।

जितना ज्ञान-उतना सुख, जितना अज्ञान-उतना दुख। स्पष्ट याद रखना, जो कहता है कि मैं दुखी हूँ। वह यह कहता है, कि मैं अज्ञानी हूँ। अज्ञान की नींव पर ही दुख का महल खड़ा होता है, और ज्ञान की आधार शिला पर, सुख का महल खड़ा होता है।

जितना अज्ञान, उतना दुख। जितना ज्ञान उतना सुख। सकल सुख-धाम सततं। वह क्या है? सकल, सुख के धाम को प्राप्त है। क्यों? ज्ञानियो ! तो सुख कहाँ से उत्पन्न होता हैं ज्ञान से, ज्ञान का उपयोग किया, तो सुख मिल गया। तुम अज्ञान का उपयोग कर रहे हो तो दुख मिल रहा है।

प्रिय आत्मन्!

जैन दर्शन की तत्त्वमीमांसा को, समझना तत्त्वज्ञान की प्रबल धारा में रमो। आचार्य भगवन् कहते हैं-सिद्ध भगवान लोक और अलोक सबको जानते हैं। ध्यान देना- यह व्यवहार नय की चर्चा है। कि सिद्ध भगवान, लोक और अलोक सबको जानते हैं। लेकिन निश्चय नय से, अपने स्वरूप में ही, निमग्न है। अवलोकन करते हैं। कैसे हैं? इंद्रियों तथा कर्मो से रहित है।

मुक्त जीव को एक समय, लगता है सिद्धालय जाने में। एक समय से क्या सिद्ध हुआ? ''अविग्रहा जीवस्य'' मुक्त जीवों के कौन सी गति होती है? अविग्रह गति होती है। एक समय की होती है। किन जीवों की होती है? मुक्त जीवों की। गति से, तात्पर्य क्या है? पहले जीव मुक्त हुआ है, बाद में सिद्धालय गया है।

पहले सिद्ध हुआ है, बाद में सिद्धालय गया। स्पष्ट हो गया। मुक्त कहाँ होता है जीव? संसार में। ज्ञानी जीवो! कर्म से छूटने के बाद ही, सिद्धालय जाता है। मुक्त तो यहीं होता है। मुक्त अवस्था का नाम है। मोक्ष प्रक्रिया का नाम है। प्रिय आत्मन्! ऐसे सिद्ध होने के बाद भी, आत्मा जहाँ रहता है। उसका नाम सिद्धालय है।

वह सिद्ध जिस स्थान पर स्थाई रहते हैं। उस स्थान का नाम सिद्धशिला है। आ गया ध्यान में-तो ऐसे, कितने जीव हैं। ''अनंतानंत सिद्धेभ्यो नम:'' कितने हैं? अनंतानंत सिद्ध भगवान हैं। एक दो नहीं हैं। वह कहाँ रहते हैं? सिद्धालय में। व्यवहार से सिद्धालय में रहते हैं? लेकिन निश्चय से अपने स्वरूप में रहते हैं। यह अपने स्वरूप में निवास करते हैं। अपने स्वभाव में ही रहते हैं। सिद्धालय में क्या करते हैं? सिद्धालय में प्रतिपल अनंत सुख का, संवेदन करते हैं। अनंत ज्ञानी, अनंत सुख का संवेदन कर रहे हैं।

मूर्त और अमूर्त, द्रव्य को भी जानता है। ऐसा वह केवल ज्ञान है। प्रिय आत्मन्! जैन दर्शन में परमात्मा का स्वरूप क्या है? विभिन्न दर्शनों में परमात्मा का स्वरूप, नाना प्रकार से, विवेचित है। लेकिन जैन दर्शन में, यह बताया है कि वह परमात्मा, लोकालोक को जानता है, अवलोकन करता है। क्रम रहित अनंत पदार्थो को जानना, जिसके ज्ञान की क्षमता है। एक साथ एक ही क्षण में, त्रिकालवर्ती अनंत पदार्थो की जानने की क्षमता है, मूर्त द्रव्य, अमूर्त द्रव्य, संपूर्ण द्रव्यों को जानता है। ऐसा वह परमात्मा अखिल विश्व के लिए, सदैव, सर्वदा, महामंगलकारी है। ऐसे सिद्ध परमात्मा को, हम भक्ति भाव के साथ, श्रद्धा, भक्ति से, प्रान्जलि प्रणति समेत, हम प्रणाम करते हैं।

प्रिय आत्मन्!

वह परमात्मा कहाँ तक जाता है? लोक शिखर तक जाता है। प्रश्न यह होता है, कि-क्या परमात्मा उसके आगे नहीं जा सकता है? अन्यमति जीव कहते हैं कि परमात्मा, मुक्त होने के बाद, ऊपर-ऊपर जाता जा रहा है। कैसे जा रहा? जैसे गुब्बारा, हाथ से छूटने के बाद ऊपर-ऊपर जाता है। उसी तरह परमात्मा भी, ऊपर जाता है। लेकिन भगवान कहते हैं-ऐसा नहीं परमात्मा लोक शिखर के ऊपर नहीं जा सकता। क्यों नही जाता है ? क्योंकि धर्मास्तिकायाभावात्, धर्म द्रव्य का अभाव होने से, वह परमात्मा लोक शिखर के बाहर नहीं जाता है। प्रश्न यह आता है, कि माना ऊपर धर्मास्तिकाय का अभाव है। इसलिए परमात्मा ऊपर नहीं जाता है। लेकिन नीचे तो आना चाहिए न, नीचे तो धर्म द्रव्य है। जैसे कि जब आगे जाने को जगह नहीं मिलती, यदि देखते हैं कि आगे का पुल सही नहीं है। या आगे रास्ता नहीं है। तो उसी रास्ते से हम पीछे आ जाते हैं। इसी तरह परमात्मा को भी जब आगे जाने का रास्ता नहीं मिल रहा है, तो उनको लोक शिखर से वापस इस संसार में आ जाना चाहिए ?

वह कब तक वहाँ ठहरे रहेंगे? आचार्य भगवन् कहते हैं-यदि जाने के लिए धर्म द्रव्य चाहिए, तो आने के लिए भी कर्म चाहिए। आने के कारण क्या हैं? कर्म उदय के बिना गति के, बिना, आयु के बिना जीव संसार में नहीं आता है। जीव को संसार में लाने वाला कर्म है। और वह परमात्मा कर्म का नाश करके गए हैं। इसलिए उनके वापसी आगमन का कोई कारण भी नहीं है। इसलिए वह परमात्मा कभी वापिस नहीं आते, न कहीं जा सकते न कहीं आ सकते। अचल हैं। जा इसलिए नहीं सकते, कि धर्म द्रव्य का अभाव है। आ इसलिए नहीं सकते, क्योंकि-कर्म का अभाव है, स्पष्ट हो गया। यह बताइए, जैसे महावीर स्वामी सिद्धालय पहुँच गए। अब वहाँ से आगे कब बढ़ेंगे? आगे कभी नहीं बढ़ेंगे, तो पीछे कब हटेंगे? न आगे बढ़ेंगे, न पीछे हटेंगे। जहाँ पर रह रहे हैं, वहीं पर डटे रहेंगे। वहीं पर स्थित रहेंगे। स्थायी हो गये।

स्थाई, हम जो स्थाई पता लिख देते हैं। वह स्थाई पता नहीं है। शाश्वत धाम, शाश्वत स्थान, रंच मात्र भी अपने स्वरूप से, अपने स्थान से और निज स्वभाव से, कभी विचलित नहीं होने वाले, वह अचल परमात्मा है। अमल परमात्मा है। आ गया ध्यान में, जबकि अन्य दर्शन कहते हैं कि परमात्मा का अवतार होता है। लेकिन जैन दर्शन कहता है। परमात्मा का अवतार नहीं होता हैं लेकिन हमने तो देखा है कि-महावीर भगवान का जन्म कल्याणक हुआ, जन्म कल्याणक परमात्मा का नहीं होता है। भविष्य में होने वाले परमात्मा का होता है। हुए परमात्मा के कल्याणक नहीं होते, होने वाले परमात्मा के कल्याणक होते हैं। जब धर्म ग्लानि को प्राप्त होने लगता है। आचार का घात होने लगता है।

कुदृष्टि का प्रभाव संसार में छाने लगता है। धर्म घृणा को प्राप्त होने लगता है। ऐसे समय में तीर्थंकर आदि महापुरूषों का जन्म होता है। लेकिन परमात्मा का अवतार नहीं होता है। सुनिए

आचाराणां विघातेन, कुदृष्टिनां च सम्पदाम्।

धर्म ग्लानि परिप्राप्त, मुच्चयन्ते जिनोत्तमाः ॥ प0पु0 ॥

जब सदाचार का, विघात होने लगता है। कुदृष्टि की सम्पदायें, अर्थात् मिथ्यात्व का प्रभाव, जोर पकड़ लेता है। हिंसा, अनीति, अत्याचार का ताण्डव होने लगता हैं पाप क्रियायें, संसार में साम्राज्य स्थापित कर लेती है। ऐसे समय में धर्म तीर्थ को प्रवर्तन करने वाले उत्कृष्ट महा मानव, जिन संज्ञा को प्राप्त भविष्य में जिनेन्द्र होने वाले, महापुरूषों का जन्म होता है। प्रिय आत्मन् ये जैन दर्शन की विवेचना है। जैन दर्शन कहता है-आत्मा यदि परमात्मा बन जाए, तो संसार में पुर्नजन्म नहीं लेगा। जब तक आत्मा बहिरात्मा, अंतर-आत्मा है। तभी तक संसार में शरीर धारण करता है। एक कार्मण शरीर से मुक्त होने के बाद, जीव कोई शरीर धारण नहीं करता।

औदारिक शरीर छूटने पर, औदारिक या वैक्रियक मिल सकता है। लेकिन एक बार कार्माण शरीर से, मुक्त होने के बाद फिर कोई शरीर नहीं मिलता है। प्रिय आत्मन्! जो लोग सोचते हैं। कि हम पर कष्ट हैं। विपत्ति हैं, हम इस शरीर से मुक्त होना चाहते हैं। और कोई यह सोचकर के आत्म हत्या जैसा उपाय रचते हैं। इच्छा मृत्यु मानकर आत्म हत्या करते हैं तो उनके लिए एक ही संदेश-

तुम सोचते हो मौत आकर, अलविदा हो जायेगी।
जन्म लोगे तुम नया, उस पर फिदा हो जायेगी॥

प्रिय आत्मन्!

इस शरीर से मुक्त होने से दु:खों से मुक्ति नहीं मिलती है। क्योंकि ये औदारिक शरीर छूटेगा। तो नारकी का वैक्रियिक शरीर मिल जायेगा, अनंत दु:ख मिलेगा। यहाँ तो जरा सा विकल्प, परीक्षा में फेल हो गए। जरा सा विकल्प परिवार में कष्ट है। जरा सा विकल्प कि रोग है, बीमारी है, निर्धनता है, आदि-आदि। थोड़े से कष्टों में व्यक्ति ऐसा सोच लेता है, कि मरण कर लेंगे। लेकिन ज्ञानियो! तुम्हारे मरने की इच्छा है तो इच्छा के अनुसार मरोगे तो, अनंत बार में भी नहीं मर पाओगे। मरण तुल्य कष्ट जरूर पाओगे।

ऐसे स्थान पर जाओगे कि मरने के प्रयास ही नहीं मारने वाले मारना चाहेंगे, लेकिन कभी मर नहीं पाओगे। नरक में जीव जाता है, छिन्न-भिन्न किया जाता है, लेकिन मर नहीं पाता। इसलिए-इस शरीर से मुक्त होने का प्रयास, मत करो। प्रयास करो कार्मण शरीर से मुक्त होने का। और ध्यान दो-फाँसी लगाने से, कार्माण शरीर से मुक्ति नहीं मिलती है। आत्म हत्या करने से कार्माण शरीर से मुक्ति नहीं मिलती है। ज्ञानियो! इस शरीर से छुटकारा पाने की आवश्यकता नहीं है। कार्माण शरीर से छुटकारा पाने का नाम साधना है, जब तक कार्माण शरीर नहीं छूटेगा, ये शरीर कितने भी छोड़ दे छुटकारा नहीं मिलेगा। अनंतानंत बार-जीव ने इस शरीर को छोड़ा है। क्या दुख छूटा? इस बात को आप, अच्छी तरह लिख लेना। कि-विभवसागर जी ने कहा था, अनंतानंत बार इस जीव ने, औदारिक शरीर को छोड़ा है। लेकिन औदारिक शरीर के छूटने से, इस शरीर के छूटने से, दुख नहीं छूटता है। यदि दु:खों से मुक्त होना है। तो इस शरीर को छोड़ो मत, इस शरीर से साधना करो। कार्माण शरीर को छोड़ो। सुनो! औदारिक शरीर दु:ख नहीं देता। पहले यह निर्णय कर लो। औदारिक शरीर दुख नहीं देता, दुख होता है कार्माण शरीर से, जो शरीर को दु:ख देता है। तुम उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते हो, अच्छे से सुनना। जो शरीर दुख दे रहा है, तुम उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते हो, उसको तो तुम देख भी नहीं सकते।

उसको तुम पकड़ भी नहीं सकते। बोलो! जो दुख दे रहा है, वह कौन सा शरीर है? कर्माण शरीर। कर्माण शरीर के पास कर्म हैं-आठ। तुम उस आठ कर्म वाले शरीर को न देख पा रहे हो, न पकड़ पा रहे हो, जो तुम्हें दुख दे रहा है। तुम उसकी ओर तो ध्यान नहीं दे रहे। और जो तुम्हारे साथ हमेशा सहयोगी है, साधना में, तुम उसी को दण्ड दे रहे हो। जीवन साथी तो औदारिक शरीर है। जन्म-जन्म का साथी कार्माण शरीर है। जीवन साथी, धर्मसाथी, इस शरीर को फाँसी दे देना, क्या ये उचित है? यदि यह बात समझ में आ जाए तो, जीव आत्म हत्या जैसा भाव ही न करे। क्यों, अपराध किसका है? दुःख किसने दिया है? कार्माण शरीर ने दुख दिया है। स्पष्ट याद रखना। आत्माओ! यदि कार्माण शरीर नहीं होगा, तो अनंत सुख होगा, और जितने कार्माण शरीर से कर्म कम होते जायेंगे, उतना-उतना सुख होता जाएगा। लेकिन इस आत्मा की, अबोधता कहिए कि जो दण्ड दे रहा है, उसका तो मैं स्वागत कर रहा हूँ। और जो सहयोग कर रहा है, मैं उसको दण्ड दे रहा हूँ। क्यों भाई! यह अन्याय नहीं है? बोलिये! अज्ञान भी है, अन्याय भी है। अन्याय तो वहीं होता है, जहाँ अज्ञान होता है। इसलिए इस शरीर के प्रति अन्याय करोगे, तो यह शरीर फिर नहीं मिलेगा। बोलो! कब मिलेगा यह शरीर, अनंत काल के बाद ये, औदारिक शरीर मिलता है। औदारिक शरीर मिलने के बाद तुमने, इसके साथ अन्याय किया है। किसी ने अपराध किया, दण्ड किसी को दिया।

कार्माण शरीर अपराधी है और दण्ड किसको दे रहे हो औदारिक शरीर को। यदि दुख दिया तो कार्माण शरीर ने, लेकिन हम दण्ड देते हैं, औदारिक शरीर को, ज्ञानी जीवो! यह बात समझलो, जो भी, यहाँ इस बात को समझ लेगा। वह कभी औदारिक शरीर को दण्ड नहीं देगा। ध्यान देना-ज्ञानियो! ये, शरीर केवलज्ञान दिलाता है। महाराज इस शरीर में गंदगी है, हाँ ये शरीर देवों के शरीर से अपवित्र है। इस शरीर में धातु, उपधातु, मल, मूत्र, सब कुछ अशुचि पदार्थ हैं। लेकिन फिर भी इस शरीर की विशेषता है कि, ये शरीर तुम्हें केवलज्ञान दिला सकता है। ये शरीर रत्नत्रय का पालन कराता है। ''शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनं'' पहला शरीर मेरे पास है। कौन सा शरीर? औदारिक शरीर। सबसे पहला है। मोक्ष के काम वैक्रियिक शरीर नहीं आएगा।

वैक्रियक शरीर में कोई गंदगी नहीं है। लेकिन वह शरीर धर्म नहीं करा पाएगा। ध्यान देना-ज्ञानी! यदि तुमने शरीर को छोड़ दिया, और काश देवगति में भी पहुँच गए। तो भोग तो भोग सकते हो। लेकिन योग नहीं कर, पाओगे, ध्यान देना।

यदि तुम स्वर्ग को चाहते हो, तो ये तुम्हारी बहुत बड़ी अज्ञानता है। क्योंकि, मनुष्य गति के

औदारिक शरीर में तुम आज रात्रि भोजन का त्याग किए बैठे हो। स्वर्ग में जाके रात्रि भोजन का त्याग नहीं कर पाओगे। इस शरीर से देश व्रत का पालन होता है। वैक्रियिक शरीर से देशव्रत का पालन नहीं होता। ज्ञानी जीवो! याद रखना, इस शरीर को पाने के लिए देवता भी तरसते हैं, सौधर्म इंद्र कहता है मेरे स्वर्ग का पूरा खजाना ले लो, भैया ! लेकिन मुझे मनुष्य पर्याय दे दो, मिलती है क्या? नहीं। ज्ञानियो! मानता हूँ कि-शेर पापी है। जीवन भर हिंसा करता है। जीवन भर हिंसा करने वाला शेर, जहाँ नहीं जाता है। उससे अधिक पापी एक-मनुष्य हो सकता है। शेर पाँचवे नरक जाता है। महिला छठवें नरक जाती है। लेकिन पुरुष सातवें नरक तक जाता है। याद रखना, जीवन भर पाप करने के बाद शेर, पाँचवे नरक महिला छठवें नरक, क्योंकि शेर आत्म-हत्या नहीं करता है। महिला आत्म-हत्या करती है जो, आत्मघाती ''महापापी'' इतना बड़ा पापी कि-शेर, से बड़ा पापी वह जीव, है। जो आत्म-हत्या कर लेता है। और उससे भी बड़ा पापी, पुरुष हैं, जो सातवें नरक जाता है। प्रिय आत्मन्! ध्यान रख लेना, अपराध किसी का, और दण्ड किसी को, ये जीवन में बहुत बड़ा अन्याय हो रहा है। यदि किसी असफलता के कारण, कोई सोचे कि आत्म-हत्या कर लेंगे, ज्ञानियो! आत्म-हत्या कर लेने से, दु:खों का अंत नहीं हो जाएगा।

दु:ख अनंत हो जाएगा। भव-भव में भ्रमण करता रहेगा। और संसार बड़ा लेंगे। अनंत काल तक भटकोगे। जिस शरीर से तुम इस तरह विदा लोगे, क्या फिर से मिलेगा? भैया जिस रिश्तेदार से तुम, झगड़ के निकलोगे, उसके बाद वह दुबारा नहीं बुलाएगा-अपने घर। उसी तरह जिस शरीर को इस तरह का दण्ड देके निकलोगे। तो वह शरीर पुन: कैसे मिलेगा? फिर क्या करोगे? जैसे घर से लड़ झगड़ने के बाद-व्यक्ति कहीं सुख नहीं पाता, उसी तरह इस शरीर के साथ-अन्याय करने वाला जीव कहीं सुख नहीं पाएगा। इसलिए शरीर को साधना का साधन बनाओ। कार्माण शरीर को नष्ट करो-औदारिक शरीर के द्वारा जिस शरीर को नष्ट करना है, उस शरीर को तुम देख भी नहीं पा रहे हो। वस्तुत: जो आपके पक्ष के सैनिक हैं, तुम उन्हीं की हानि कर रहे हो, और जो शत्रु सेना है। उसको तुम देख भी नहीं पा रहे हो। औदारिक शरीर तो, आपके पक्ष की सेना है। और कार्माण शरीर शत्रु सेना है। और कार्माण शरीर पर आपका ध्यान नहीं है। और जो आपके पक्ष में है। तुमने उन्हीं को कष्ट दिया।

प्रिय आत्मन्!

इस तत्त्व को समझने का प्रयास करो। और इस तत्त्वज्ञान की अविरल धारा में, हमने यह जाना है। कि सिद्धों ने कार्माण शरीर को नष्ट किया है। औदारिक शरीर को नष्ट नहीं किया। कार्माण शरीर को नष्ट किया। औदारिक शरीर तो कपूर की भाँति उड़ गया।

यदि कार्माण शरीर नष्ट होगा, तो औदारिक तो कपूर की भाँति उड़ जाएगा और कार्माण शरीर को नष्ट नहीं, किया तो भव-भव में चिता जलती रहेगी। इसलिए आत्मन्! इस शरीर को कपूर की भाँति उड़ जाना है। साधना कर्मो को नष्ट करने की करो। यही जीवन का सार है।

धम्माभावे परदो, गमणं णत्थि त्ति तस्स सिद्धस्स।
अच्छइ अणंतकालं, लोयग्गणिवासिओ होउ ॥70॥

अर्थ-

उस सिद्ध परमात्मा का धर्मद्रव्य का अभाव होने से लोक से परे अलोक में गमन नहीं है, इस कारण लोकाग्र निवासी होकर वहाँ अनंत काल तक रहते हैं।

संते वि धम्मदव्वे, अहो ण गच्छेइ तह य तिरियं वा।
उड्ढगमणसहाओ, मुक्को जीवो हवे जम्हा ॥71॥

अर्थ-

कर्मो से मुक्त हुआ जीव धर्मद्रव्य के होने पर भी नीचे नहीं जाता है, उसी प्रकार तिरछा भी नहीं जाता है, क्योंकि मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन स्वभाव वाला है।

असरीरा जीव घणा, चरमसरीरा हवंति किंचूणा।
जम्मण-मरण-विमुक्का, णमामि सव्वे पुणो सिद्धा ॥72॥

अर्थ-

पुन: वे सिद्ध जीव शरीर रहित हैं, अर्थात् बहुत घने हैं, कुछ कम चरम शरीर प्रमाण हैं, जन्म और मरण से रहित हैं। ऐसे सर्व सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

तत्त्वसार ग्रंथादिराज अध्यात्म ग्रंथ देवसेन स्वामी की देववाणी से निःसृत अध्यात्म प्रधान ग्रंथ है। ग्रंथराज में षष्ठं पर्व की सत्तरवीं कारिका के माध्यम से तरने की कला बता रहे हैं और कह रहे हैं जो सत् होता है वही तरता है असत् नहीं तरता है। फिर कहते हैं-एकत्व भावना को पैदा करो तो तर जाओगे यह कहती है गाथा नवम्बर इकहत्तर। सत्य है तो तरेगा। एकत्व है तो तरेगा।

मुक्त हुआ जीव अविग्रह गति से गमन करता हुआ एक समय में लोकाग्र के भाग पर स्थित हो जाता है। फिर प्रश्न आता है धर्म द्रव्य का अभाव होने से आगे गमन नहीं होता है सिद्धों के और वे सिद्ध इस कारण से लोकाग्र निवासी होकर के अनंत काल तक वही पर ठहरते हैं। फिर प्रश्न यह होता है कर्मो से मुक्त हुआ जीव धर्म द्रव्य के होने पर भी नीचे नहीं आता उसी प्रकार तिरछा भी नहीं जाता। मुक्त हुआ जीव उर्ध्वगमन स्वभाव वाला है। हमने पहले भी कहा था, जब गाड़ी को आगे जाने का रास्ता नहीं मिलता तो हम गाड़ी को ब्रेक करके पीछे ले जाते हैं, इसी तरह सिद्धों के आगे जाने का रास्ता नहीं है। क्योंकि धर्म द्रव्य का अभाव है, तो सिद्धों को संसार में लौट के आ जाना चाहिये ? लेकिन आचार्य कहते हैं-मुक्त जीव की गति न तिरछा गमन होता है, न नीचे गमन होता है मुक्त जीव मात्र उर्ध्वगमन ही करता है।

जैसे- अग्नि की लौ नियम से ऊपर जाती है। जैसे-अण्डी का बीज फटने के बाद नियम से ऊपर जाता है। उसी तरह से सिद्ध भगवान नियम से ऊपर की ओर ही जाते हैं। और कहीं नहीं जाते हैं। क्योंकि सिद्ध जीव का स्वभाव ही उर्ध्वगमन वाला है। किंतु जीव स्वभाव से तो ऊपर जाता, फिर गतिबंध के अनुसार नीचा तिरछा कहीं भी जा सकता है। लेकिन मुक्त हुआ जीव नियम से उर्ध्वगमन स्वभावी है। मुक्त जीव का अधोगमन त्रिकाल में नहीं होगा। क्यों नहीं होगा ?

इस कारण नहीं होगा, कि कर्म का अभाव है अधोगमन कराने वाले कर्म थे, गति थी, आयु थी, लेकिन उसके पास न गति है, न आयु है, न कोई कर्म है जिस कारण वह आ सके, कारण के अभाव में कार्य नहीं होता है।

कारणानुसारी कार्यः, कारणा भावे कार्य अभावं।
उपादान कारण सदृशे हि कार्यं।।प्रवचनसार ।।

उपादान कारण के अनुसार कार्य होता है।

जब कारण का अभाव हो जाता है तो कार्य का भी अभाव हो जाता है।

प्रिय आत्मन्!

प्रश्न यह था कि जो सत्य है वही तरता है जो सिद्ध परमात्मा धर्म द्रव्य का अभाव होने से लोक से परे अलोक में गमन नहीं है, इस कारण लोकाग्र निवासी अनंत काल तक रहते हैं। आगे आचार्य कहते हैं- कर्मो से मुक्त हुआ जीव धर्म द्रव्य के होने पर भी नीचे नहीं जाता है उसी प्रकार तिरछा भी नहीं जाता है मात्र उर्ध्वगमन स्वभाव वाला ही है।

जो सड़न-गलन स्वभाव को प्राप्त होते हैं, उन्हें शरीर कहते हैं। वे शरीर औदारिक वैक्रियक, आहारक, तैजस कर्माण यह पाँच शरीर होते हैं।

प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ।।38।। तत्त्वार्थसूत्र ।।

प्रदेश की अपेक्षा से तैजस शरीर के पहले-पहले के शरीर असंख्यात-असंख्यात गुणे हैं औदारिक शरीर अनंत प्रदेशी है। वैक्रियक शरीर उससे असंख्यात गुना है। वैक्रियक से आहारक उससे असंख्यात गुणा है। तैजस उससे असंख्यात गुणा है। कार्माण शरीर अनंत प्रदेशी है।

''परं-परं सूक्ष्मम्''।।2/37।।तत्त्वार्थसूत्र।।

आकार की अपेक्षा यह शरीर सबसे स्थूल शरीर औदारिक शरीर है, औदारिक से सूक्ष्म शरीर वैक्रियक है, वैक्रियक से छोटा शरीर आहारक है, आहारक से भी छोटा शरीर तैजस है और तैजस से छोटा शरीर कार्माण है। प्रदेश की अपेक्षा बढ़ते क्रम पर है और आकार की अपेक्षा घटते क्रम पर है। इस तरह जो पाँचों शरीरों से रहित हैं-वे सिद्ध भगवान हैं। सिद्धों के शरीर नहीं होता है। सिद्ध भगवान के न औदारिक शरीर हैं, न वैक्रियक शरीर हैं, न कार्माण शरीर हैं। सब कर्मों का जनक, सब शरीरों का जनक, मात्र एक कार्माण शरीर है। उस कार्माण शरीर को नष्ट करने के बाद ही यह आत्मा मुक्त होता है और सिद्ध बनता है। और जो एक बार कर्मो को नष्ट कर देता है, वह पुन: शरीर को प्राप्त नहीं करता है। इसलिये सिद्ध भगवान न पुन: शरीर को पाते हैं न अवतार को पाते हैं। अवतार को पाने के लिये शरीर पाना पड़ेगा और शरीर पाने का कारण उनके पास नहीं है। इसलिये भगवान के पास शरीर भी नहीं है, शरीर से रहित है, उनको इसलिये कहते हैं-ज्ञान शरीरी मात्र-उनके पास ज्ञान ही शरीर है, शरीरी का अर्थ शरीर नहीं है। शरीरी का अर्थ आत्मा है। और वे शरीर रहित हैं।

सिद्ध भगवान अशरीर होते हैं, जब हम ओम बोलते हैं तो अरहंत का ''अ'' सिद्ध अशरीर होते हैं तो उनका ''अ'' इस तरह से अशरीर शब्द का प्रयोग किसके लिये है? सिद्ध के लिये है। वे सिद्ध

भगवान बहुत घने हैं, कैसे घने हैं? एक सिद्ध में अनंतानंत सिद्ध समाहित हो जाते हैं इस अपेक्षा से घने-घने हैं। बहुत घने रहते हैं अपन लोग तो बहुत-बहुत दूर बैठते हैं, एक को अपने पास नहीं बिठा पाते हैं, कहते हैं तुम नीचे बैठो, हम ऊपर बैठते हैं, तुम इधर बैठोगे, तो हम यहाँ नहीं आयेंगे।

ज्ञानी! ध्यान रखो- जिस दिन सिद्धालय में बैठोगे तो सिर तो सबके समान ही होंगे, पाँव भले ही किसी के नीचे ऊँचे रहें। सिद्धालय में सिर सबके एक समान होते हैं, अंतर इतना है यहाँ पर पाँव सबके एक समान हैं और सिर नीचे ऊँचे हैं। और सिद्धालय में सिर सबके एक समान हैं और पाँव नीचे ऊँचे हैं।

प्रिय आत्मन्!

पैंतालीस लाख योजन में मनुष्य लोक है। पैंतालीस लाख योजन में सिद्ध शिला है। पैंतालीस लाख योजन में सर्वार्थसिद्धि है। पैंतालीस लाख योजन में सौधर्मेन्द्र का ऋजु विमान हैं और पैंतालीस लाख योजन में सीमांतक बिल सातवें नरक का है। इस तरह से पाँच पेंतल्ला होते हैं, यह पैंतालीस-पैंतालीस लाख योजन के होते हैं। प्रयोजनीय यह है कि पैंतालीस लाख योजन प्रमाण मनुष्य लोक में जीव कर्मो से मुक्त होकर के सिद्धालय पहुँचते हैं।

प्रिय आत्मन्!

सिद्धालय में किंचित भी जगह ऐसी नहीं है, जहाँ पर कोई सिद्ध न हो। इस अपेक्षा से देखें तो पूरा मनुष्य लोक सिद्ध क्षेत्र है। जहाँ से जीव सिद्धि को प्राप्त कर सके वह सब सिद्ध क्षेत्र है लेकिन वर्तमान की अपेक्षा हम सम्मेद शिखर आदि को सिद्ध क्षेत्र मानते हैं, जैसे-कि जहाँ पर वृक्ष खडे.होते हैं, हम उसी को वन कहते हैं। क्या इस भूमि पर कभी वृक्ष न खड़े होंगे? खड़े तो हुये होगें। लेकिन वर्तमान में वृक्ष नहीं खड़े हैं उस अपेक्षा से हम जहाँ वृक्ष खड़े हैं, उसी को वन कहते हैं, इसी अपेक्षा से सम्मेद शिखर आदि में निकट भूत में, सिद्धि को प्राप्त जीव हैं, इस अपेक्षा से सम्मेद शिखर आदि क्षेत्रों को सिद्ध क्षेत्र कहते हैं। यह हमारी आस्था और श्रद्धा के विशेष केन्द्र हैं, लेकिन जिनको यह ज्ञान है, कि पैंतालीस लाख योजन प्रमाण सिद्धालय में एक भी जगह ऐसी नहीं है, जहाँ पर सिद्ध भगवान न हों। वह तो समस्त मध्यलोक को सिद्ध क्षेत्र मानते हैं।

प्रिय आत्मन्!

स्थूल शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं- यह औदारिक शरीर मनुष्य और तिर्यंचों में पाया जाता है। एकेन्द्रिय से लेकर के संज्ञी पंचेन्द्रिय तक के समस्त त्रस स्थावरों के शरीर को औदारिक शरीर कहते

हैं। लेकिन यह मात्र मनुष्य और तिर्यंचों में ही पाया जाता है। औदारिक शरीर जब तक पूर्ण नहीं होता है, तब तक कार्माण शरीर का सहयोग लिये रहता है, तब तक उसको औदारिक मिश्र कहते हैं। देव और नारकियों के शरीर को वैक्रियक शरीर कहते हैं, यह शरीर धातु उपधातु से रहित होता है विक्रियात्मक होता है जबकि औदारिक शरीर में धातु-उपधातु पायी जाती है, लेकिन वैक्रियक शरीर में धातु-उपधातु नहीं पायी जाती है।

औदारिक शरीर अकाल में विनाश को प्राप्त हो सकता है, लेकिन वैक्रियक शरीर अकाल में विनाश को प्राप्त नहीं होता है। औदारिक शरीर में यदि कोई विक्रिया होती है, तो वह विशेष विशिष्ट पुरुषों की, विशिष्ट तपस्या, आदि के प्रभाव से होती है किंतु इसे वैक्रियक शरीर नहीं कह सकते हैं। वैक्रियक मिश्र उसे कहते हैं, जब तक वैक्रियक शरीर पूर्ण नहीं हो जाता है और कार्माण शरीर का सहयोग लेता है तब तक उसे वैक्रियक मिश्र शरीर कहते हैं।

आहारक मुनिराजों के प्रश्न समाधान हेतु, जिज्ञासा के समाधान हेतु, उनके शरीर से जो एक हाथ का पुतला निकलता है, वह तीर्थंकर के समवशरण आदि में जाता है, वहाँ से समाधान लेकर आता है, यह आहारक शरीर होता है, और यह नियम से मस्तिष्क से निकलता है। तैजस शरीर जब शुभ निकलता है, तो दायें कंधे से निकलता है और अशुभ निकलता है, तो बायें कंधे से निकलता है किंतु आहारक शरीर मस्तिष्क से निकलता है, यह नियम से श्वेत होता है और समचतुस्र संस्थान वाला होता है, शुभ होता है, प्रशस्त होता है, मंगलकारी होता है। समवशरण में जाकर के समाधान करके लौट आता है। आहारक शरीर जब तक पूर्ण नहीं होता है उसके पूर्व की अवस्था आहारक मिश्र होती है। यह नियम से मुनिराजों के ही होता है। अन्य किसी के नहीं होता है और ऋद्धिधारी मुनियों के ही होता है यह विशेष बात है।

आठों कर्मो के समूह को कार्माण शरीर कहते हैं। तैजस-इन तीनों शरीरों में जो कांति को करने वाला होता है, वह तैजस शरीर होता है तो कांति को प्रदान करता है। यह विशेष बात है। इन पंच शरीर से जो रहित है वे अशरीरी हैं। जिस शरीर से मोक्ष गये हैं, उस शरीर से कुछ कम क्यों? क्योंकि जैसे-मुख में जितनी खाली जगह एवं नख केश हैं, उस जगह में आत्म प्रदेश नहीं हैं, उसकी अपेक्षा किंचित न्यून हैं।

जहाँ आत्म प्रदेश नहीं हैं, वहाँ कष्ट नहीं होता है। जहाँ आत्म प्रदेश है वहाँ पर कष्ट या इष्ट की अनुभूति होती है। जन्म और मरण से मुक्त हैं, ऐसे सभी सिद्धो को मैं पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ।

जं अल्लीणा जीवा, तरंति संसारसायरं विसमं।
तं भव्वजीवसरणं, णंदउ सग-परगयं तच्चं ।।73।।

अर्थ-

जिसमें तल्लीन हुए जीव विषम (दुस्तर एवं भयानक) संसार समुद्र को तिर जाते हैं वह भव्य जीवों को शरणभूत स्व और परगत तत्त्व सदा वृद्धि को प्राप्त हो।

सोऊण तच्चसारं, रइयं मुणिणाह देवसेणेण।
जो सिद्दट्ठी भावइ, सो पावइ सासयं सोक्खं ।।74।।

अर्थ-

जो सम्यक्दृष्टि मुनिनाथ देवसेन के द्वारा रचित इस तत्त्वसार को सुनकर उसकी भावना करेगा, वह शाश्वत सुख को पावेगा।

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी, अरिहंत-भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य-आचरित, उपाध्याय-उपासित सर्वसाधु-साधित, जीवतत्त्व-प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व-विवेचनी, सर्वास्रव-निरोधनी, कर्मबंध-विमोचनी, संवरपथ-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण-कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल नभ में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

ग्रंथ का निर्दोष तरीके से पढ़ना-वाचना कहलाता है। वाचना का क्रम अनवरत चल रहा है। श्री तत्त्वसार ग्रंथराज आचार्य भगवन् देवसेन स्वामी की परम पुनीत चिंतन प्रधान अध्यात्मिक शैली से निःसृत आत्म तत्त्व की संवेदना से ओत-प्रोत महा कल्याणकारी अत्यंत सरल सार गर्भित मंगलमयी कृति है।

ग्रंथ के प्रारंभ, मध्य, अंत में तीन जगह, मंगल किया जाता है, आज ग्रंथ राज की तेहत्तरवीं, चौहत्तरवीं कारिका अर्थात् ग्रंथ के समापन की ओर चल रहे हैं, जहाँ पर आचार्य भगवन् मंगल वचन कहते हैं।

आचार्य भगवन् कहते हैं- तत्त्व में लीन हुआ जीव संसार सागर से पार हो जाता है। तत्त्व क्या है? वस्तु का जो स्वभाव है वह ही तत्त्व है। द्रव्य भिन्न है, तत्त्व भिन्न है। जीव तत्त्व भी है, और जीव द्रव्य भी है। द्रव्य का लक्षण उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य है। सत् जिसका लक्षण है वह द्रव्य है लेकिन तत्त्व का लक्षण स्वभाव है।

जैसे-गन्ना पुद्गल द्रव्य है लेकिन गन्ने का तत्त्व क्या है? मिठास तत्त्व है और गन्ना द्रव्य है। जीव द्रव्य भी है जीव तत्त्व भी है। द्रव्य क्यों है? क्योंकि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से युक्त है, और तत्त्व क्यों हैं? ''उपयोगो लक्षणं'' उपयोग लक्षण वाला होने से तत्त्व है और उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होने से द्रव्य है। और जीव अस्तिकाय भी है। जीव पदार्थ भी है। जीव ज्ञान-दर्शन स्वभावी होने से, जीव उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य वाला होने से जीव द्रव्य है। अपने स्वभाव वाला पदार्थ, अर्थ, प्रयोजन को धारण करता है। जीव अस्तिकाय है, क्योंकि बहुप्रदेशी, अर्थात असंख्यात प्रदेशी है। इस कारण जीव अस्तिकाय है। लेकिन बहु प्रदेशी होने से जीव अस्तिकाय भी है, जीव द्रव्य भी है और जीव तत्त्व भी है।

प्रयोजन को धारण करने वाला होने से जीव पदार्थ है। जो सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, और सम्यक् चारित्र रुप निज प्रयोजन में परिणमन करता है, इसलिये यह जीव पदार्थ है। जीव क्या है? जो जिया था, जी रहा है, जीवेगा वह जीव है। कैसे जीता है? तीनों कालों में जो चार प्राणों के द्वारा जीता है यह व्यवहार नय की विवक्षा है लेकिन निश्चय नय से शुद्ध ज्ञान, दर्शन जो प्राण-उनके द्वारा जो जीता है वह जीव है। इस विवक्षा से देखें तो व्यवहार नय से प्राणों का अभाव होने पर भी, ज्ञान-दर्शन प्राण का कभी अभाव नहीं होता है, इसलिये जीव, अजर, अमर, अविनाशी कहा गया है, क्योंकि ज्ञान दर्शन द्रव्य का लक्षण है और ज्ञान दर्शन का कभी अभाव नहीं होता है।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य भगवन् कहते हैं- जो जीव तत्त्व में लीन हो जाता है वह जीव संसार से पार हो जाता है। इसलिये कहते हैं- हे जीव ! तू आज तक पुद्गल द्रव्य में लीन हुआ, जीव द्रव्य होकर भी, जीव तत्त्व में लीन नहीं हुआ। इस कारण इस संसार में परिभ्रमण कर रहा है, क्योंकि पुद्गल में ही इसको जीव दिखाई देता है, पुद्गल ही छूने में, चखने में, सूँघने में आता है और हम जो देखते हैं, सूँघते हैं, सुनते हैं उसी को पसंद करते हैं, क्योंकि हमारी यह प्रवृत्ति है, या तो हम देखकर या सुनकर के या चखकर के या फिर सूँघकर के वस्तु पसंद करते हैं, लेकिन आत्मा न देखी, सुनी, सूँघी जाती है, न चखी ही जाती है, इसलिये इस आत्मा को आज तक हम पसंद ही नहीं कर पाये, पकड़ ही नहीं पाये।

प्रिय आत्मन्!

आत्मा का संवेदन किया जाता है और यह आत्मा संवेदन की अपेक्षा से ग्राह्य है। आत्मा ग्राह्य है कि अग्राह्य है।

सोऽस्त्यात्मा सोपयोगोऽयं, क्रमाद्धेतुफलावहः।
यो ग्राह्योऽग्राह्यनाद्यन्तः, स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकः ॥2॥ स्वरूप संबोधन ॥

ज्ञान-संवेदन की अपेक्षा से आत्मा ग्राह्य है, जीव द्रव्य ग्राह्य है, लेकिन इंद्रियों की अपेक्षा से अग्राह्य है, इसलिये एक ही काल में आत्मा ग्राह्य अथवा ग्रहण करने योग्य भी है और आत्मा करने के योग्य नहीं भी है।

जिस तत्त्व में लीन हुये जीव तिर जाते हैं, पार हो जाते हैं, वह तत्त्व तीर्थ रुप है। तत्त्व ही तीर्थ है। ''तत्त्व मेव तीर्थं'' तत्त्व ही तीर्थ है। क्यों है? क्योंकि जैसे-जहाज में बैठा हुआ व्यक्ति समुद्र से पार हो जाता है, उसी तरह से इस तत्त्व में लीन हुआ जीव संसार समुद्र से पार हो जाता है, इसलिये तत्त्व ही जहाज है, तत्त्व ही नौका है, तत्त्व ही तीर्थ है, तत्त्व ही शासन है।

प्रिय आत्मन्!

यदि समुद्र के एक किनारे से दूसरे किनारे जाना होता है तो जीव क्या करते हैं? नौका का सहारा लेते हैं, खेवटियाँ को देखते है। आचार्य कहते हैं-गुरु खेवटियाँ हैं और शास्त्र नौका है। इस शास्त्र रुपी नौका में बैठ जाओ और गुरु रुपी खेवटियाँ इस नौका को खेयेंगे तो यह आत्मा पार हो जायेगी, तर जाती है। कहाँ से तर जाते हैं? संसार समुद्र से तर जाते हैं। यह संसार सागर कैसा है? संसार विषम है। अत्यंत कठिन है, इस संसार सागर को पार पाना सरल नहीं है, इस समुद्र में नौका चलाना भी आसान नहीं है।

ज्ञानी ! ध्यान देना-यदि नाव में एक भी छेद हुआ तो नौका डूब जाती है, उसी तरह से तत्त्व ज्ञान में जरा सी भी कमी हुयी, चूक हुयी, कि यह जीव डूब जायेगा, इसलिये ध्यान देना-कागज की नौका और लोहे की नौका पार नहीं होती है, उसी प्रकार जैसे समुद्र से पार पाने के लिये कागज की नौका लोहे की नौका से काम नहीं चलता है, लकड़ी की ही नौका काम आती है, उसी तरह संसार सागर से पार होने के लिये मात्र एक जिनवाणी और जिन गुरु की आवश्यकता है।

आचार्य कहते हैं-यदि तुमने अन्य गुरु की या अन्य शास्त्र की सेवा कर ली तो वह शास्त्र वह धर्म पत्थर की नौका के समान होगा। क्योंकि पत्थर की नौका स्वयं डूबती है, और बैठने वालों को भी डुबा

देती है। आचार्य भगवन् कहते हैं- तत्त्व ज्ञान श्रुत ज्ञान है, तत्त्वज्ञान सम्यक् ज्ञान है, तत्त्व ज्ञान मतिज्ञान है।

प्रिय आत्मन्!

सम्यक्दर्शन, सम्यक् ज्ञान के अभाव में, जीवों के इतना कुटिल ज्ञान पाया जाता है, इतना विपरीत ज्ञान पाया जाता है। कि क्षयोपशम तो है, लेकिन क्षयोपशम ज्ञान की महिमा नहीं हैं-सम्यक् ज्ञान की महिमा है।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य भगवन् ने कहा-आस्रव, बंध को रोकना है, तो पहले कुमति ज्ञान और कुश्रुतज्ञान को हटाओ। कुमति, कुश्रुत ज्ञान कब हटता है? जब श्रुतज्ञान का निरंतर अभ्यास किया जाये। आचार्य कहते हैं-विष, यंत्र, पिंजर, कूट आदि बनाने की विधि, हिंसात्मक उपकरण बनाने की बुद्धि अपने आप जाग रही है, पाप कार्यो की बुद्धि जागना यह कुमति ज्ञान और कुश्रुत ज्ञान के संस्कार हैं।

विष किसे कहते हैं? जिसके, खाने से मरण हो जाये उसे विष कहते हैं। जो रस्सी आदि के द्वारा बनाया जाये उसे पिंजर कहते हैं। जिस पर पाँव रखते ही व्यक्ति उसमें फंस जाता है, जैसे-चूहा आदि, बकरी आदि, जो जानवरों के लिये फंसाने के लिये उपयोग किये जाते हैं, यह कुमति, कुश्रुत ज्ञान है।

व्यक्ति की बुद्धि कुज्ञान में प्रवृत्त हो रही है, वर्तमान में आलआउट, कछुआ छाप, लक्ष्मणरेखा, कीटनाशक आदि कुश्रुत ज्ञान चल रहा है गुडनाईट उपयोग करते हैं, ताकि मच्छर न काटे।

ज्ञानी जीवो! जरा से मच्छर के काटने से बचने के लिये उन जीवों को मरण की ओर ले जाना और अपने कमरे को श्मशान बना लेना कहाँ तक उचित है। तत्त्वसार का मतलब यह नहीं कि हम मात्र पढ़ते-पढ़ते ही रहें, लेकिन जीवन में परिवर्तन न लायें। प्रवचन में परिवर्तन का शंखनाद है, प्रवचन परिवर्तन की बेला है, प्रवचन परिवर्तन के लिये है, नहाने के पहले आप क्या थे और नहाने के बाद क्या हो गये। प्रवचन में आने के पहले क्या थे? और प्रवचन सुनते हुये क्या हो गये? और प्रवचन के बाद क्या हुये ?

यदि एक बाल्टी पानी में इतनी क्षमता है कि, वह चौबीस घंटे को पवित्र कर देती है तो मैं यह जानना चाहता हूँ, कि एक प्रवचन में कितनी क्षमता है, जानना हमें अनिवार्य है। एक समय भोजन किया तो चौबीस घंटे के लिये भूख मिट गयी। लेकिन मैं यह जानना चाहता हूँ, कि एक घंटा आपको क्या मिला? क्या परिवर्तन आया? हम बार-बार आपसे कहेगें। कि जीवन के आऊट होने से पहले ऑलआउट का त्याग कर दो।

प्रिय आत्मन्!

मच्छर खाने की, मच्छर मारने की मशीन है ऑलआउट। ध्यान देना- जैसे- जिन में सामर्थ्य है वे बाहर चले जायेंगे और सामर्थ्य हीन मच्छर, मच्छर से भी छोटे कीड़े उस कमरे में हो सकते हैं, तो वह जहर में वहीं के वहीं समाप्त हो जायेंगे।

प्रिय आत्मन्!

परिवर्तन क्या आया? परिवर्तन की ओर देखिये। वस्तुत: संसार विषम है इस संसार को पार करने के लिये शिकार करना तो छोड़ना ही पड़ेगा, यदि आप सोते समय भी ऑलआउट का प्रयोग कर रहे हैं तो, समझ के चलिये कि चौबीस घंटे हिंसा का ताडंव चल रहा है।

पार होने के लिये तत्त्व ज्ञान चाहिये। कुतत्त्व ज्ञानी जीव पार नहीं हो सकता है, इसलिये जो विष बनाने की विधि है, यंत्र बनाने की विधि है, वर्तमान में कई मच्छर मारने के बेट (बल्ला) बना रहे है, नव-नव प्रकार का जो मशीनरी सिस्टम तैयार हो रहा है, इसमें अधिकांशत: षट्काय जीवों को मारने का ज्ञान पैदा हो रहा है।

आचार्य कह रहे हैं- आज के युग में ज्ञान का विस्तार जो हो रहा है, यह ज्ञान का विस्तार कुश्रुत ज्ञान का हो रहा है। सम्यक् ज्ञान ह्रास पा रहा है और मिथ्याज्ञान, कुश्रुत विकास पा रहा है। जितना ज्ञान जीवन काल में सीखा। बेटे! पच्चीस साल तो तुमने सीखने में लगा दिया, उसके पश्चात् सर्विस में चले गये, वही निर्माण, वही विचार, वही बुद्धि-तात्पर्य क्या है? सम्यक् ज्ञान कहाँ मिला? प्रथम आधार शिला तो है-सम्यक् ज्ञान, उसकी तो आधार शिला ही नहीं है, उसके पश्चात् भविष्य में सर्विस, उसी केन्द्र क्षेत्र में चले गये तो उपलब्धि नहीं हो पाती है।

हमें चाहिये तत्त्वज्ञान। मानतुंग आचार्य ने लिखा है-बुद्धि किताब से उत्पन्न नहीं होती है। तत्त्व के बोध से बुद्धि उत्पन्न होती है। कुश्रुत ज्ञान की वृद्धि चारों ओर हो रही है, हम अपने बच्चों को स्कूली शिक्षा दे रहे हैं, यह शिक्षा तो है, लेकिन सुशिक्षा नहीं है। सम्यक् ज्ञान नहीं है। सम्यक् ज्ञान तो वह तब बनेगा, जबकि सम्यक् दर्शन से पुष्ट होगा।

संसार से पार होने के लिये सम्यक् ज्ञान आवश्यक है। जीवन भर के लौकिक ज्ञान की अपेक्षा चार क्षण का सम्यक् ज्ञान श्रेष्ठ है। कैसे श्रेष्ठ है? जैसे-बहते हुये गंदे नाले की अपेक्षा एक लोटा भर पानी श्रेष्ठ है, उसी तरह जीवन भर के लौकिक ज्ञान की अपेक्षा चार क्षण का सम्यक् ज्ञान श्रेष्ठ है।

सम्यक् ज्ञान थोड़ा भी हो-यदि मधुर जल है तो लोटा भर भी होगा तो प्यास बुझा देगा और खारा जल है-तो समुद्र भर भी होगा तो प्यास नहीं बुझायेगा। उसी तरह कुश्रुत ज्ञान तो संसार में फैला है, सर्वत्र है। लेकिन सुश्रुत ज्ञान, सम्यक् ज्ञान जो है वह बहुत दुर्लभ है।

दुर्लभ कैसा है? कुश्रुत ज्ञान तो एक इंद्रिय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय सब में पाया जाता है। जल में भी ज्ञान है, अग्नि में भी ज्ञान है, वायु में भी ज्ञान है, वनस्पति में भी ज्ञान है और मिट्टी में भी ज्ञान है।

प्रिय आत्मन्!

ध्यान देना-पाँचों स्थावरों में ज्ञान है। लेकिन कुश्रुत ज्ञान है। अनंत काल तक जीव कुश्रुत ज्ञान में रहा है। जिस ज्ञान में अनंत काल बिताया हो उस ज्ञान को छोड़ना इतना आसान कैसे हो सकता है? इसीलिये तो जीव उस ज्ञान सम्यक् को छोड़कर इस ज्ञान तक आ नहीं पाता है। चारों गतियों में जीव के साथ कुश्रुत ज्ञान, कुमति ज्ञान है। संज्ञी पंचेन्द्रिय में भी मिथ्यात्व की दशा है, अनंतानुबंधी की दशा है वह कुमति, कुश्रुत ज्ञान है।

चारों गतियों में, पाँचों इंद्रियों में, तीनों वेदों में, पच्चीस कषायों में, गति मार्गणा, इंद्रिय मार्गणा, वेद मार्गणा, कषाय मार्गणा, योग मार्गणा, मात्र आहारक मिश्र को छोड़कर के तेरह योग वाले चारों प्रकार के मनोयोगियों को, चारों प्रकार के वचन योगियों और पाँच प्रकार के काय योगियों-तेरह प्रकार के योगियों को यह कुमति, कुश्रुत ज्ञान पाया जाता है।

चाहे पुरुष हो, चाहे स्त्री हो, चाहे नपुंसक हो, तीनों के लिये कुमति, कुश्रुत ज्ञान है। कुमति, कुश्रुत ज्ञान वाले को देश संयम नहीं हो सकता। कुमति, कुश्रुत ज्ञान वाले को सकल संयम नहीं हो सकता। संयम को पाने के लिये सम्यक् ज्ञान चाहिये। संयम बाद में होता है, सम्यक् ज्ञान पहले होता है। जिसको सम्यक् ज्ञान होता है वही संयम की ओर अभिमुख होता है।

देश संयम कब होगा? यदि सम्यक् ज्ञान हो गया है तब कहीं तुम संयमासंयम, की ओर बढ़ सकते हो। यदि सम्यक् ज्ञान नहीं हुआ है तो वह भी संभव नहीं है। चक्षु-अचक्षु दर्शन वाले को कुमति, कुश्रुत ज्ञान होता है।

छहों लेश्या वालों को कुमति कुश्रुत हो सकता है। भव्य को भी, अभव्य को भी दोनों को हो सकता है। संज्ञी को भी, असंज्ञी को भी हो सकता है। आहारक को भी, अनाहारक को भी हो सकता है। पहले

गुणस्थान में कुमति, कुश्रुत ज्ञान, दूसरे गुणस्थान में कुमति-कुश्रुत ज्ञान इस तरह तीसरे में भी कुमति-कुश्रुत ज्ञान। उन्नीस जीव समास में कुमति-कुश्रुत ज्ञान। छह पर्याप्ति, दस प्राण, चार संज्ञा, उपयोग में कुमति-कुश्रुत ज्ञान एक समय में एक ही ज्ञान होगा तो वही ज्ञानोपयोग होगा। चक्षु-अचक्षु दर्शन दो हो जायेंगे, इस तरह से उपयोग चौरासी लाख जातियों में संपूर्ण योनियों में मिथ्या ज्ञान पाया जाता है। एक सौ साढ़े तिरानवें लाख करोड़ कुल कोटियों में मिथ्या ज्ञान, कुमति, कुश्रुत ज्ञान पाया जाता है, बहुलता इनकी है। इसलिये सम्यक् ज्ञान की सोचो कि सम्यक् ज्ञान किन-किन को पाया जाता है ?

तत्त्वज्ञान कौन पा सकता है। पहले हमने निषेधात्मक सोच लिया अब हम सकारात्मक सोच पर चलते हैं, कि तत्त्व ज्ञान या मति श्रुत ज्ञान किन-किन को पाया जा सकता है? मतिज्ञान सबसे पहले तो यद्यपि नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव में, चारों गतियों में उत्पन्न हो सकता है। लेकिन शर्त यह है कि वह संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होना चाहिये। यदि त्रिर्यंच में एकेन्द्रिय, दोइंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय है तो ऐसे जीव को मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान उत्पन्न नहीं होगा।

षट्काय में मात्र त्रस काय को ही सम्यक् ज्ञान होगा। स्थावर को सम्यक् ज्ञान नहीं होगा। त्रस में भी दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, और असंज्ञी पंचेन्द्रिय को नहीं होगा, मात्र संज्ञी पंचेन्द्रिय त्रस को ही सम्यक् ज्ञान उत्पन्न होता है।

योग में चार मन, चार वचन और सात काय, पन्द्रह योग वालों के लिये यह सम्यक् ज्ञान उत्पन्न हो सकता है। आहारक शरीर वालों को भी मतिज्ञान, श्रुतज्ञान पाया जा सकता है और वैक्रियक वालों को भी पाया जाता है, सबको पाया जाता है।

वेद में तीनों वेद वालों को सम्यक् ज्ञान उत्पन्न होता है। इसलिये बता रहा हूँ कि आपको सम्यक् ज्ञान हो सकता है, हो रहा है, है, होगा। क्योंकि प्रतिपल सम्यक् ज्ञान का विकास हो रहा है। जैसे- बैंक में पड़े हुये पैसे का ब्याज बढ़ रहा है, वैसे ही प्रवचन में तुम्हारा ज्ञान बढ़ रहा है।

कषाय में अनंतानुबंधी कषाय वाले को मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान नहीं होता है, इस कारण इक्कीस कषाय वाले जीव को मतिज्ञान, श्रुतज्ञान सम्यक् हो सकता है, पच्चीस वालों को नहीं होता है।

ज्ञान में-मतिज्ञान में मतिज्ञान ही होगा। श्रुतज्ञान में-श्रुतज्ञान ही होगा। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान वाले को असंयम भी हो सकता है, संयमासंयम भी हो सकता है। सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म संम्यराय, यथाख्यात जिसको सम्यक् ज्ञान हो गया है वह सभी संयमियों का अधिकारी बन जाता है।

सम्यक् ज्ञानी के लिये सभी संयम के द्वार खुल जाते हैं। इसलिये संयम मार्गणा की अपेक्षा सातों प्रकार का संयम सम्यक् ज्ञानी को हो सकता है, लेकिन मिथ्या ज्ञानी को एक मात्र असंयम ही होता है।

दर्शन में चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, दोनों दर्शन हो सकते हैं। छहों लेश्या होती हैं। मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी के लिये तीन सम्यक्त्व होते हैं, उपशम, क्षयोपशम, और क्षायिक यह तीनों प्रकार के सम्यक्त्व हो सकते हैं। मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र यह तीन नहीं होते हैं।

आहारक, अनाहारक दोनों जीव हो सकते हैं। गुणस्थान चौथे से लेकर के बारहवें गुणस्थान तक यह नौ गुणस्थान सम्यक्मति-श्रुत ज्ञानी के पाये जाते हैं। जीव समास एक मात्र संज्ञी पंचेन्द्रिय को ही सम्यक् ज्ञान होता है, शेष अठारह जीव समास वालों को मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान उत्पन्न ही नहीं होता है।

जिसके पास छहों पर्याप्ति हो यदि एक भी पर्याप्ति कम है, तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान नहीं होगा। प्राण दस में से दस ही होना चाहिये, यदि नौ प्राण है तो सम्यक् ज्ञान के अधिकारी नहीं हो। सकल पंचेन्द्रिय होना अत्यंत अनिवार्य है। त्रस ही होना अत्यंत अनिवार्य है, यह शर्ते हैं सम्यक् ज्ञान की। अब सोचिये-आपके लिये सब कुछ मिल गया और फिर भी आगम का अभ्यास न करो, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान की जितनी शर्ते हैं, जितने नियम हैं उन सब नियमों को आपने पा लिया है।

नियम था मतिज्ञान पाना हो तो दस प्राण पाना पड़ेगें। मतिज्ञान पाना हो तो छहों पर्याप्ति पाना पड़ेगीं। छहों पर्याप्ति मिल गयी। दसों प्राण मिल गये। सकल पंचेन्द्रियपना मिल गया। त्रस होना पड़ेगा-त्रस भी हो गया। पंचेन्द्रिय होना पड़ेगा? तो पंचेन्द्रिय भी हो गया। आप अपने आपको कोई कम मत समझो, आपके पास मतिज्ञान, श्रुतज्ञान पाने की जितनी शर्ते हैं उन सब शर्तो को आपने पूर्ण कर लिया है।

जैसे- तुम्हारे देश में कुछ शर्ते चलती हैं, उसी प्रकार संयम के साथ कुछ शर्ते हैं, कि संयमी होने के लिये एक मात्र मनुष्य ही होना चाहिये। देव को संयम नहीं होगा। नारकी को संयम नहीं होगा। त्रिर्यच को सकल संयम नहीं होगा।

प्रिय आत्मन्!

गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, उपयोग और ध्यान मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी को कितने ध्यान हो सकते हैं, चाहो तो चार आर्तध्यान भी हो सकते हैं। चाहो तो चार रौद्र ध्यान के भी हो सकते हैं। चाहो तो चार धर्म ध्यान के भी हो सकते हैं, और दो शुक्ल ध्यान के इस तरह से चौदह ध्यान आप कर सकते हैं।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी जीव इस तत्त्व ज्ञान के बल पर जो हमने तत्त्वसार में तत्त्व ज्ञान पाया है, यदि इसका उपयोग करते हैं, तो चारों धर्मध्यान कर सकते हैं और दो शुक्ल ध्यान तक पहुँच सकते हैं। और उपयोग न करें तो जो करते आये हैं, आर्तध्यान, और रौद्रध्यान वह तो चलेगा ही चलेगा उसको कोई छुड़ाने वाला नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

प्रवचन सुनने के क्या फायदे हैं? प्रवचन सुनते सम्यक् दर्शन हुआ, प्रवचन सुनते सम्यक् ज्ञान हुआ तो पाँच प्रकार के मिथ्यात्व का आस्रव रुक गया। चार प्रकार के आस्रव तो रुक ही जाते हैं। सम्यक् ज्ञान होने से मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी जीव को अड़तालीस प्रकार के आस्रव होते हैं, संतावन में से।

चौरासी लाख योनियों में से छब्बीस लाख योनियाँ ही हैं, जिनमें सम्यक् ज्ञान उत्पन्न हो सकता है शेष योनियों में सम्यक् ज्ञान उत्पन्न ही नहीं होता है। यह सम्यक् ज्ञान बहुत दुर्लभ है, किंतु यह सम्यक् ज्ञान ही भव्य जीवों के लिये शरण है और कोई शरण नहीं है-

सम्यक् ज्ञानं शरणं।
तत्त्व ज्ञानं शरणं।।
तं भव्य जीव शरणं सम्यक् ज्ञानं।

जो तत्त्व का ज्ञान है वही जीव के लिये शरण है, यह सम्यक् ज्ञान, यह तत्त्वज्ञान सदा जयवंत हो। जो पंच परमेष्ठी स्वरुप ज्ञान है, आत्म तत्त्व रुप ज्ञान है यह दोनों तत्त्व ज्ञान सदा जयवंत हों।

******

परम पूज्य 108 आचार्य श्री विभसागर जी महाराज के वर्षायोग स्थल

1. ललितपुर (उ.प्र.) 1995
2. जबलपुर (म.प्र.) 1996
3. भिण्ड (म.प्र.) 1997
4. मुरैना (म.प्र.) 1998
5. मड़ावरा (उ.प्र.) 1999
6. हजारीबाग (झारखंड) 2000
7. कोतमा (म.प्र.) 2001
8. जबलपुर (म.प्र.) 2002
9. नागपुर (महाराष्ट्र) 2003
10. परभणी (महाराष्ट्र) 2004
11. श्रवणबेल गोला (कर्नाटक) 2005
12. शिरडशाहपुर (महाराष्ट्र) 2006
13. नागपुर (महाराष्ट्र) 2007
14. द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र (म.प्र.) 2008
15. जबलपुर (म.प्र.) 2009
16. टीकमगढ़ (म.प्र.) 2010
17. गढ़ाकोटा (म.प्र.) 2011
18. जयपुर (राज.) 2012
19. अशोकनगर (म.प्र.) 2013

आचार्य श्री द्वारा सृजित साहित्य 87

1.	अमृत गीता	1997	भिण्ड वर्षायोग
2.	गुरु पूजा	1997	बड़ागांव धसान
3.	भक्तामर स्तोत्र (अनुवाद)	1999	मड़ावरा (वर्षायोग)
4.	रयणसार (अनुवाद) (अप्रकाशित)	2000	अयोध्या एवं बनारस
5.	लघु स्वयंभू स्तोत्र (अनुवाद)	2000	हजारी बाग, झारखण्ड
6.	प्रवचन भारती	2001	कोतमा (वर्षायोग)
7.	विरागाष्टक (हिन्दी)	2001	कोतमा (वर्षायोग)
8.	विरागाष्टक (संस्कृत)	2001	कोतमा (वर्षायोग)
9.	मंदिर गीता (कल्याणमंदिर स्तोत्र पर भावानुवाद)	2002	डिण्डौरी (ग्रीष्मकाल)

10.	एकीभाव स्तोत्र (अनुवाद)	2003	भेड़ाघाट, जबलपुर
11.	विषापहार स्तोत्र (अनुवाद)	2003	बहोरीबंद, जबलपुर
12.	जिनवर गीता (एकीभाव स्तोत्र का भावानुवाद)	2003	नागपुर (वर्षायोग)
13.	वंदन गीता (लघुस्वयंभू स्तोत्र पर भावानुवाद)	2003	नागपुर
14.	तीर्थंकर विधान	2003	नागपुर
15.	एकीभाव विधान	2003	डिण्डौरी (म.प्र.)
16.	धर्म भारती (भाग-1)	2002	सागर (ग्रीष्मवाचना)
17.	धर्म भारती (भाग-2)	2003	सोलापुर (ग्रीष्मवाचना)
18.	धर्म भारती (भाग-3)	2006	सोलापुर (ग्रीष्मवाचना)
19.	धर्म भारती (भाग-4)	2006	सोलापुर (ग्रीष्मवाचना)
20.	गोमटेश विधान	2005	श्रवणवेलगोला (वर्षायोग)
21.	गोमटेश्वर अर्घावली (अप्रकाशित)	2005	मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र
22.	मुक्तागिरि (पूजा अर्घावली) (अप्रकाशित)	2004	नागपुर (वर्षायोग)
23.	तीर्थंकर शिक्षण	2003	परभणी (वर्षायोग)
24.	सुनहरा अवसर (प्रवचन कृति)	2004	परभणी (वर्षायोग)
25.	रात्रि भोजन त्याग (प्रवचन कृति)	2004	परभणी (वर्षायोग)
26.	जीवन है पानी बूंद (प्रवचन कृति)	2004	परभणी (वर्षायोग)
27.	घर को स्वर्ग कैसे बनायें ? (प्रवचन कृति)	2004	परभणी (वर्षायोग)
28.	आनंद यात्रा (रचित भजन)	2004	परभणी (वर्षायोग)
29.	सम्मेद शिखर वंदना (अप्रकाशित)	2007	कामठी क्षेत्र महाराष्ट्र
30.	निर्ग्रन्थ गुरुपूजा	2008	द्रोणगिरि वर्षायोग

31. तीर्थंकर संस्तुति	2008	द्रोणगिरि वर्षायोग
32. द्रोणगिरि विधान	2008	द्रोणगिरि वर्षायोग
33. पात्रकेशरी स्तोत्र (अनुवाद) (अप्रकाशित)	2003	नागपुर
34. अकलंक स्तोत्र (अनुवाद)	2005	श्रवणवेलगोला
35. जिनवरस्तोत्र	2009	छतरपुर शीतकाल
36. कुलभूषण चरित्र (काव्य)	2005	कुंथगिरी यात्रा
37. बारह भावना	2005	श्रवणवेलगोला
38. उपसर्गहर स्तोत्र (अनुवाद)	2009	पार्श्वगिरी भगवाँ
39. गुरुमंत्र	2007	नागपुर
40. कुण्डलपुर विधान	2009	जबलपुर
41. हृदय प्रवेश	2009	दमोह
42. दशलक्षण देशना	2009	जबलपुर (वर्षायोग)
43. अक्षर-अमृत	2009	जबलपुर
44. हृदय परिवर्तन	2009	जबलपुर
45. भक्ति भारती	2010	टीकमगढ़ (वर्षायोग)
46. भक्तिभाषा	2009	दमोह
47. संस्तुति सरिता	2011	पटेरियाजी
48. आलोचना सार	2010	टीकमगढ़ वाचना
49. विश्वशान्ति विधान	2010	टीकमगढ़
50. विधान-विभव	2013	जयपुर
51. भक्तामर शास्त्र	2012	जयपुर

52.	अरहनाथ विधान एवं नवागढ़ क्षेत्रपूजा	2012	जयपुर
53.	सामायिक शास्त्र	2012	जयपुर
54.	भक्ति शास्त्र	2013	निवाई
55.	प्रवचन भारती	2001	कोतमा
56.	समाधि शास्त्र	2012	जयपुर
57.	पुरुषार्थ शास्त्र	2013	अशोकनगर

गुरुदेव की सर्वप्रिय रचनाएँ

1.	समाधि भक्ति	10 पद	2005	श्रवणबेलगोला
2.	दर्शन भावना	4 पद	2005	श्रवणबेलगोला
3.	जिनवाणी स्तुति	5 पद	2009	जबलपुर
4.	जिनवाणी स्तुति	5 पद	2010	टीकमगढ़

आचार्य श्री जी की प्रेरणा से श्री सम्यग्ज्ञान शिक्षण समिति द्वारा प्रकाशित अन्य उपयोगी साहित्य

1.	वर्द्धमान यशोगान	स्व. श्री कृष्ण पाठक	2003	नागपुर
2.	स्वयंभू स्तोत्र	ले. आचार्य समन्तभद्र		
		स्व. पं. पन्नालाल सा.	2006	नागपुर
3.	इष्टोपदेश प्रवचन	आचार्य विरागसागर	2006	नागपुर
4.	सल्लेखना से समाधि	आचार्य विरागसागर	2006	नागपुर
5.	सम्यग्दर्शन	आचार्य विरागसागर	2006	नागपुर

6. आगम चक्खु साहू	आचार्य विरागसागर	2006	नागपुर
7. प्रमेय रत्नमाला	आचार्य लघु अनंतवीर्य	2009	नागपुर
8. लब्धिसार	आचार्य नेमिचन्द	2009	जबलपुर
(अंग्रेजी, हिन्दी, प्राकृत)	प्रस्तोता-एल.सी. जैन, जबलपुर		
9. षट्खण्डागम ध.पु. 8,11	आ. पुष्पदन्त भूतबली	2010	टीकमगढ़
	(जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर)		

जनोपयोगी साहित्य, सी.डी. आदि

1. कल्याणमंदिर गीता	नंद कुमार जैन	जबलपुर
2. जिनवर गीता	प्रसन्न श्रीवास्तव	जबलपुर
3. वंदन गीता	संगीता जैन, शिल्पा जैन	जबलपुर
4. तेरी छत्रच्छाया	नंदकुमार जैन	जबलपुर
5. मेरा घर मेरी पाठशाला	अनिल आगरकर परिवार	नागपुर
6. विभव वन्दना	साधना जैन	जबलपुर
7. विभवसागर के प्रवचन	सी.डी. एवं कैसेट	
8. भक्तामर प्रवचन 48	आ. विभवसागर	जयपुर
9. गुरु उपहार	आ. विभवसागर	जयपुर
10. सामायिक पाठ प्रवचन	आ. विभवसागर	जयपुर